गांधी-साहित्य—७

मेरे समकालीन

अपने समयके राजनीतिज्ञो तथा
सामान्य लोकसेवकोके
महात्मा गांधी
द्वारा लिखित
संस्मरण

१९५१
सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री
सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली

पहली वार १९५१

मूल्य
अजिल्द साढे चार रुपये
सजिल्द पॉच रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक गाधी-साहित्यका सातवा भाग है। इसमे गाधीजीकी उन रचनाओका सग्रह किया गया हैं, जिनमे उन्होने अपने समयके वडे-से-वडे नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओका अत्यत मार्मिक रूपमे स्मरण किया है। अपने वहुतसे सम्माननीय नेताओके नामो और कार्योसे हम सब परिचित है, लेकिन इसी दुनियामे ऐसे भी लोग है, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमे सलग्न रहते है और जिनके नामका कही भी उल्लेख नही मिलता। गाधीजीने ऐसे दर्जनो मूक सेवकोको इस सग्रहके लेखोमे वाणी प्रदान की है। जहा लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओको उन्होने अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है, वहा निरक्षर वालीअम्मा, मोतीलाल दरजी, केलप्पन आदि दर्जनो लोकसेवकोकी महान सेवाओको भी वडे गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस प्रकार उन्होने स्पष्ट कर दिया है कि जिन्हे छोटा मानकर प्राय उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है, वे वस्तुत छोटे नही है और उनकी सेवाओका भी उतना ही मूल्य है, जितना किसी भी महान नेताकी सेवाका। इस दृष्टिसे यह सग्रह अद्वितीय है।

पुस्तकका सकलन और सपादन हिन्दीके सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकरने किया है। उनकी सावधानी और प्रयत्नके वावजूद यदि कुछ सगत सामग्री छूट गई हो अथवा कही कोई चूक रह गई हो तो पाठक कृपया उसकी सूचना हमे दे दे, जिससे अगले सस्करणमे उसका सुधार किया जा सके।

—मत्री

संकेत-निर्देश

हि० न० हि० न० जी०	=	हिंदी नवजीवन
प्रा० प्र०	=	प्रार्थना प्रवचन
द० अ० स०	=	दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास
ह० से०	=	हरिजन सेवक
का० क०	=	बापूकी कारावास-कहानी
म० डा०	=	महादेवभाईकी डायरी
य० इ०	=	यंग इंडिया
आ० आ० क०	=	आत्म-कथा
य० म०	=	यरवदा मंदिरसे
दी० श्री०	=	दीनबंधु श्रीएंड्रूज
इ० ओ०	=	इंडियन ओपीनियन
ह०	=	हरिजन

(इनके अतिरिक्त जिन अन्य साधनोंसे सामग्री इकट्ठी की गई है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।)

आमुख

प्रसिद्ध गायक श्रीदिलीपकुमार रायसे बातचीत करते हुए सन् १९३४ मे गाधीजीने कहा था—"जीवन समस्त कलाओसे श्रेष्ठ है। मै तो समझता हू कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवनकी भूमिकाके बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है। कलाके मूल्यका आधार है जीवनको उन्नत बनाना। जीवन ही कला है।"[1] साहित्य-को इस दृष्टिसे कलासे अलग नही किया जा सकता। जीवनसे इतना अटूट सबध हो जानेके बाद वह नितात सरल और सुगम हो जाता है। कदाचित ऐसे ही साहित्यको दृष्टिमे रखकर गाधीजीने इन्ही श्रीरायसे कहा था—"वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेगे, जिसे वे आसानीसे पचा सकेगे।" ऐसे साहित्यका सृजन वही कर सकता है जिसने साहित्यके विषयसे साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् जो उसे जीता है। इसीको गाधीजीकी भाषामे यो कह सकते है कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही साहित्यिक है। इस दृष्टिसे वे एक ऊचे साहित्यिक थे। निस्सदेह वे एक साहित्यिकके नाते आगे नही आये और न उन्होने कभी कवि, कथाकार या आलोचक होनेका दावा ही किया, परतु फिर भी जहा तक जीवनी-साहित्य, आत्मकथा, शब्द-चित्र और सस्मरण आदिका सबध है उनकी पूजी सहज ही उन्हे प्रथम श्रेणीके लेखकोमे ला बैठाती है।

उनकी आत्मकथा (अथवा सत्यके प्रयोग) एक अपूर्व ग्रथ है। वह सभी दृष्टियोसे इस क्षेत्रमे स्थापित सभी परपराओको खड-खड करनेवाली क्रातिकारी पुस्तक है। उनके घोर-से-घोर विरोधी भी उसकी महानता-को मुक्त कठसे स्वीकार करते है।

---

[1] हिन्दी नवजीवन, १० फरवरी १९२४

वस्तुत गाधीजीने सच्चे अर्थोमे 'आत्मकथा' लिखी है। जीवनमे यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा-के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नही लिख सकता। जिस प्रकार उन्होने अपना विश्लेषण करते समय सत्यको नही छोडा है उसी तरह दूसरोके बारेमे लिखते समय उन्होने अहिंसाको अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्यमे जहा उनकी पारदर्शिनी दृष्टिका चमत्कार है वहा वह मानवके सहज सौदर्य सहानुभूतिसे भी आप्लावित है। जब कभी उन्होने किसीके बारेमे लिखनेके लिए कलम उठाई है अपनी सरल, सुबोध और सुगठित भाषामे उस वर्ण्य व्यक्तिका बडा ही सहानुभूतिपूर्ण चित्र उतार कर रख दिया है।

वे कभी लिखनेके लिए ही किसीका जीवनवृत्त या सस्मरण लिखने बैठे हो, यह तो उनके लिए सभव नही था, परतु अपने बहुमुखी सार्वजनिक जीवनमे उन्हे असख्य छोटे और बडे व्यक्तियोके सपर्कमे आना पडा था। केवल भारत ही नही, दक्षिण अफ्रीकामे भी अनेकानेक देशी और विदेशी व्यक्तियोसे उनका सबध रहा था। बहुतोसे वह सबध अति प्रगाढ और आत्मीयतासे छलकता हुआ था। बहुतोके साथ उन्होने अपने सघर्षमय जीवनके अनेक वर्ष बिताए थे। कुछके साथ वे कुछ ही दिन रहे थे। उनमे अनेक उनसे बडे थे, जिनसे उन्होने बहुत-कुछ सीखा था। बहुतसे उनसे प्रेरणा लेते थे और उन्हे अपना आराध्यदेव मानते थे। बहुतसे उनके विरोधी भी थे, जिनसे उन्हे टक्कर लेनी पडती थी। ऐसे भी लोग थे जिनसे उनका कोई विशेष सबध तो नही था, पर किन्ही विशेष कारणोसे गाधीजीको उन व्यक्तियोमे रुचि थी। इन सब व्यक्तियोमे जाति, लिग, वर्ण या वर्गका कोई भेद नही था। उनमे राजनीतिके धुरधर पडित और साधारण स्वय-सेवक, धर्माचार्य और श्रद्धालु भक्त, सम्राट और सेवक, पूजीपति और मजदूर, विद्रोही और प्रतिक्रियावादी सभी थे। सभीके बारेमे उन्होने समान भाव और समान रूपमे लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है लिखनेके ये अवसर कभी पूर्व योजनाके अनुसार नही आये। उस बहुवधी व्यस्त जीवनमे न जाने कब किस पर लिखना पड जाए, यह कोई नही जानता था। फिर भी ऐसे अवसर बहुत आते थे और साधारणतया उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

१—गाधीजी अपने सहयोगियो, समाजके मूक सेवको या किसी रूपमे प्रख्यात व्यक्तियोकी मृत्युपर समवेदना और श्रद्धाजलिके रूपमे लिखा करते थे।

२—जब उनके सहकर्मियो और सहयोगियोपर आक्षेप होते थे तब उनका निराकरण और समाधान करनेके लिए उन्हे लिखना पडता था।

३—राष्ट्रीय महासभाके सभापति पदके लिए चुने जानेवाले व्यक्तिके बारेमे चुनावसे पूर्व या पश्चात् वे कभी-कभी लिखते थे।

४—अपने आदोलनोमे भाग लेनेवालो और उनके विरोधियोके विषयमे उन आदोलनोके दौरानमे वे लिखते थे।

५—'आत्मकथा' और 'दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' आदि पुस्तकोमें तत्सबधी व्यक्तियोका वर्णन आया है।

६—अनेक व्यक्तियोके जन्म-दिन या जयती आदिके अवसरपर पत्रोको सदेश और शुभकामनाके रूपमे उन्होने लिखा है।

७—कभी-कभी विशुद्ध सपादकीय कर्तव्यको निबाहनेके लिए लिखना पडता था।

८—निजी पत्रोमे व्यक्तियोकी चर्चा आ जाती थी।

यदि उनके साहित्यका काल-क्रममे अध्ययन किया जाय तो एक बात ज्ञात होगी कि शुरूमे वे व्यक्तियोके बारेमे अधिक लिखते थे, परतु जैसे-जैसे समय बीतता गया यह लेखन कम होता गया। जबसे उन्होने 'हरिजन' पत्रोका प्रकाशन किया तबसे तो हरिजन सेवकोको छोड कर और किसीके बारेमे वे उन पत्रोमे नही लिखते थे। इन पत्रोको छोडकर पुस्तकादि लिखनेका समय अब उनके पास नही रहा था।

फिर भी इस सबधमे गाधीजीके एक गुणकी बात विशेष उल्लेखनीय है। वे प्रत्येक सपर्कमे आनेवाले व्यक्तिसे, चाहे वह छोटा हो या बडा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक-से-अधिक आत्मीयता स्थापित करनेकी चेष्टा करते थे। वे उसकी मानव-सुलभ भावनाओको छू कर उससे बाते करते थे। सबसे पहले वे मानव थे और दूसरोको भी मानव समभते थे। और यह सब था अहिसाके कारण। इस दृष्टिसे उनके सस्मरण अध्ययन की वस्तु है।

प्रस्तुत सग्रह 'मेरे समकालीन' मे गाधीजी द्वारा लिखे गये इसी प्रकारके सस्मरण—शब्द-चित्र और लेख—सकलित किये गए है। यह सकलन इस दृष्टिसे नई चीज है। अबतक गाधीजीके लेखो और भाषणो-के अनेकानेक सग्रह विभिन्न भाषाओमे प्रकाशित हुए है। परतु उन सबका विषय गाधीजीके विचारो और मान्यताओसे सबध रखता है। जिन असख्य व्यक्तियोके सपर्कमे वे आए उनके बारेमे गाधीजीके क्या विचार थे, यह जाननेकी अभीतक किसीने चेष्टा नही की। इस सकलन द्वारा उसी अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

जैसे वे सरल और सशक्त भाषा लिखनेमे लासानी थे वैसे ही वे शब्द-चित्र खीचनेमे भी बहुत कुशल थे। एक तो अपने जीवनके प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सत्य) के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहारके इतने अधिक व्यक्तियोके सपर्क मे आनेके तथा मानवता (अहिसा) मे अपनी आस्थाके कारण उनकी परख बडी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वत ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ मे प० जवाहरलाल नेहरूके लिए उन्होने जो कुछ लिखा था वह शब्दोमे एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरीमे कोई उनसे बढ नही सकता और देशप्रेममे उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमे एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राज-

नीतिज्ञका विवेक भी है । वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहसे परे है । वह अहिसक और अनिदनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमे सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीकाके श्री थम्बी नायडूका चित्र देखिये "उनकी वुद्धि भी वडी तीव्र थी। नवीन प्रश्नोको वे वडी फुर्तीके साथ समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवावी आश्चर्यजनक थी। वे भारत कभी नही आये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भरा हुआ था। उनकी दृढता चेहरेपर ही चित्रित थी। उनका शरीर वडा मजवूत और कसा हुआ था। मेहनतसे कभी थकते ही न थे। कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा वढा दे, पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे। सिर पर वोझा उठाकर वाजारसे निकलनेमे थम्वी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनतके समय न रात देखते, न दिन। कौमके लिए अपने सर्वस्व की आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे।" (पृष्ठ ३२९)

पर इन शब्द-चित्रोमे कोई यह न समझ ले कि गाधीजी विशेषणों-का ही प्रयोग करना जानते थे। वैसे वे जव विशेषणोका प्रयोग करते थे तो दिल खोलकर करते थे। कुमारी श्लेजीन, नारणदास गाधी, मगन-लाल गाधी, महादेव देसाई आदिके रेखा-चित्र इस वातके प्रमाण है। परतु किसी भी व्यक्तिकी दुर्वलता उनसे छिपी नही रहती थी और अवसर आनेपर वे उसी स्पष्टतासे उसे प्रकट कर देते थे, जिस प्रकार उसके गुणोपर प्रकाश डालते थे। सत्यका पुजारी व्यक्तित्वका अधूरा चित्रण कर ही नही सकता। ऊपर जिन थम्वी नायडूका शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हीके वारेमे उसी चित्रमे गाधीजीने आगे लिखा है—"अगर थवी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रान्सवालमे काछलियाकी अनुपस्थितिमे आसानीसे कौमका

नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रान्सवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नही हुआ था, वल्कि तवतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे, पर वादमे मैने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रवल शत्रु सावित हुए और उन्होने उनके गुणोको छिपा दिया ।" (पृष्ठ ३२९)

सरोजिनी नायडूका चित्र उन्होने एक ही वाक्यमे उतार दिया है —
"सरोजिनी नायडू काम तो वहुत वढिया कर लेती है, मगर सच्ची संस्कृति-की कीमत देकर।" (पृष्ठ ३३५)

जिन महादेव भाईके लिए वे स्वप्नमे भी अधीर रहते थे, उनके वारेमे भी उन्होने लिखा है

"महादेवकी मै भाटकी तरह स्तुति करता हू मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है।" (पृष्ठ ३१५)

वस्तुत किसी भी व्यक्तिका ठीक-ठीक विश्लेपण करनेमे उन्हे अद्भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दोमे वे वर्ण्य व्यक्तिके अंदर और वाहरका चित्र कागजपर उतार कर रख देते थे।

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखले गंगाकी तरह। उसमे मै नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमे डूवनेका भय रहता है, पर गंगाकी गोदीमे खेल सकते है, उसमे डोंगीपर चढकर तैर सकते है। (पृष्ठ १७८)

"शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत् भाव है। मैने १८८८ मे दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे वहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊंचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे वयान करनेका भी साहस नही होता था । वदरुद्दीन तैयवजी पिताकी

तरह प्रतीत हुए। उन्होने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे सरक्षक वन गये। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मै चुपचाप स्वीकार करता। ववईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होने मुझे अपना शागिद नही वनाया। उन्होने आजमाइग भी नही की।

"जिस समय मै उनसे (लोकमान्य तिलकसे) मिला, वे अपने साथियोसे घिरे वैठे थे। उन्होने मेरी वाते सुनी और कहा—"आपका भाषण सार्वजनिक सभामे होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलवदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकरसे मिले तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भाव प्रदर्शित करके उन्होने मेरी घवराहट दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया जिस तरह गुरु शिष्यका करता है। उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमे श्रद्धाका ज्वार उमड आया, पर गुरु-भक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजा-की पदवी तक कोई न पहुच सका।

"पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, वाते एकदम वदल गई। यह मिलन ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सवधमे उन्होने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमे कहा—"वस, मेरे मनका आदमी मिल गया।" १९०१ मे दूसरी वार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस वार

मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई। उन्होने अपने हाथमे मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया—"किस तरह रहते हो ? क्या कपडे पहनते हो ? भोजन कैसा होता है ?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थी। मेरे और उनके बीचमे कोई अतर नही था। यह चक्षुराग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमे प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया था। (पृष्ठ २०३)

इस उद्धरणमे गाधीजीने भारतके तत्कालीन नेताओका जो तुलनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शिनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। गोखलेके चित्रमे कितनी आत्मीयता है। वह उनके अपने मानवतासे छलकते हुए हृदयकी झाकी है। श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने जीवन-चरितमे गाधीजीके विचारोकी अच्छी खासी आलोचना की है, पर सब कुछ कहकर उन्होने लिखा है—"लेकिन वे अपने भारतको अच्छी तरह जानते है।" इसी तरह और लोगोको भी उनसे मत-भेद हो सकता है, पर वे मानेगे कि गाधीजी व्यक्तिको पहचानते थे। गोखलेसे उनका बहुत-सी बातोपर मतभेद था, परतु उन्हीके शब्दोमे "पर इससे हम लोगोमे किसी तरहका अतर नही आ सका।" आही नही सकता था, क्योकि अहिसाका पुजारी प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता और प्रेमकी शर्त है मित्रता, दासता० नही।

लोकमान्य तिलकसे उनके मतभेदकी बात सब जानते है। उनके जीवनकालमे और मृत्युके बाद गाधीजीने उन मतभेदोको कभी कम करके बताने या भुलानेकी चेष्टा नही की, पर इसी कारण वे लोकमान्यका सही मूल्याकन करनेमे नही झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होने लिखा—

"लोकमान्य बालगगाधर तिलक अब ससारमे नही है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गए। हम लोगोके समयमे ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनतापर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारो देश-वासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह

अपूर्व थी। यह अक्षरश सत्य है कि वे जनता के आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानूनसे थे। पुरुषोमे पुरुष-सिह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूतिकी तीव्रता ओर वास्तविकताका और भी सुदर चित्रण उनके सस्मरणोमे हुआ है। घटनाओ और वार्तालापके द्वारा उन्होने वर्ण्य व्यक्तिकी वाहरी और आतरिक सुदरता-कुरूपताकी रेखाओको इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाकके साथ-साथ व्यक्तिका सपूर्ण चित्र हृदयपर पत्थरकी लीक वन जाता है। कस्तूरवा गाधी, वाला-सुदरम्, देशवधुदास, घोषाल वावू तथा वासती देवी आदिके सस्मरण इस दृष्टिसे वहुत ही सुदर वने है

"मै घोषालवावूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और वोले "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे?"

मैने उत्तर दिया—"जरूर करूगा। अपने वस भर सवकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते है।"

कुछ स्वयसेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिव होकर कहा—"देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो यह चिट्ठियोका ढेर देखते हो न कि सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अव मै उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हे उत्तर दू। इनमे वहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सवको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी है उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे वडी खुशी हुई। श्री घोषाल मुझे पह-चानते न थे। मेरा इतिहास जाननेके वाद तो कारकुनका काम देनेमे उन्हे जरा शर्म मालूम हुई, पर मैने उन्हे निश्चित कर दिया—"कहा मै

और कहा आप !   यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने एहसान ही किया है, क्योकि मुझे आगे चलकर काग्रेसमे काम करना है ।"

घोपालबाबू बोले, "सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है, परतु आजकलके नवयुवक ऐसा नही मानते । पर मै तो काग्रेसको उसके जन्मसे जानता हू । उसकी स्थापना करनेमे मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।"

हम दोनोमे खासा सबध हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोपालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता । यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बडे-बूढोकी ओर मेरा बडा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोसे परिचित हो गये तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे । बटन लगवाते हुए मुह पिचकाकर मुझसे कहते—"देखो न, काग्रेसके सेवकको बटन लगाने तक की फुरसत नही मिलती, क्योकि उस समय भी वे काममे लगे रहते है ।" इस भोलेपनपर मुझे मनमे हँसी तो आई, परतु ऐसी सेवा-के लिए मनमे अरुचि बिलकुल न हुई ।"

बासती देवीका देशबन्धुकी मृत्युके बाद, जो चित्र गाधीजीने खीचा है वह बहुत ही मानवीय, बहुत ही करुण और बहुत ही यथार्थ है

"वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आस-पास बहुतेरी बहने बैठी थी । पूर्वाश्रममे तो जब मै उनके कमरेमे जाता तो खुद वही सामने आती और मुझे बुलाती । वैधव्यमे मुझे क्या बुलाती । पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोमेसे मुझे उन्हे पहचानना था । एक मिनिट तक तो मै खोजता ही रहा । मागमे सिंदूर, ललाटपर कुकुम मुहमे पान, हाथमे चूडिया और साडी पर लैस, हँस-मुख चेहरा इनमेसे एक भी चिह्न मै न देखू तो वासन्ती देवीको किस तरह पहचानू ? जहा मैने अनुमान किया था कि वे होगी वहा जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा । उनके मुखपर सदा शोभित हास्य आज कहा था ?

मैंने उन्हे सात्वना देने, रिझाने और वातचीत करानेकी अनेक कोशिशे की। वहुत समयके वाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हँसी। मुझे हिम्मत हुई और मै वोला, "आप रो नही सकती। आप रोओगी तो सव लोग रोवेगे। मोना (वडी लडकी) को वडी मुश्किलसे चुपकी रखा है। देवी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो वडे प्रयाससे शात हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अव वहुत काम लेना है।"

"वीरागनाने दृढतापूर्वक जवाव दिया—"मै नही रोऊगी। मुझे रोना आता ही नही।"

"मै इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ। रोनेसे दु खका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा वहनको तो भार हल्का नही करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे? अव मै कैसे कह सकता हू—"लो चलो, हम भाई-वहन पेटभर रो ले और दु ख कम कर ले।"

× × ×

"वासती देवीने अवतक किसी के देखते, आसूकी एक वूद तक नही गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नही रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी वीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय वाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमे तो वैठी, पर वोलने क्यो लगी। मैंने कितनी ही वाते चलाई—वे सुनती रही, पर खुद उसमे वरायनाम शरीक हुई। हवा खोरीकी तो, पर पछताई। सारी रात नीद न आई। "जो वात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है।" ऐसे विचारोमे रात हो गई।

× × ×

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कडाहमे भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले

उसके दु ख की कल्पना करके कापते थे । सती स्त्रियो, अपने दु खको तुम सभालकर रखना । वह दु ख नही, सुख है । तुम्हारा नाम लेकर वहुतेरे पार उतर गए है और उतरेगे । वासती देवीकी जय हो !" (पृष्ठ ५५७)

भावनाकी अतिरजनाने इस करुण चित्रको कितना सशक्त वना दिया है । लेकिन जहा उन्होने अपने युगके महापुरुषोपर लिखा, वहा लुटावन, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियोको भी नही छोडा है । ये कुछ वानगीके चित्र है । पुस्तक ऐसे चित्रोसे भरी है । ये चित्र किसी उद्घोपित साहित्यिकके द्वारा नही लिखे गए, वल्कि एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गये है जिसका समस्त जीवन 'जीनेकी कला'के, सत्यके प्रयोग करनेमे वीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना (अहिंसाको) सीख लिया था, जो सवसे पहले और सवसे पीछे मात्र मनुष्य था और ऐसा मनुष्य ही मनुष्यको नही पहचानेगा तो कौन पहचानेगा ।

चित्र इतने ही नही है । प्रयत्न करनेपर जितनी सामग्री मिल सकी वह इस पुस्तकमे दे दी गई है, पर हम जानते है कि अभी वहुत शेप है । अपने पाठकोसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे ऐसी किसी सामग्रीके वारेमे जानते हो तो हमे सूचना देनेकी कृपा करे । उनके सुझावोका हम कृतज्ञता-पूर्वक स्वागत करेगे ।

इस पुस्तकके सकलनमे जिन मान्य व प्रिय वधुओने मुझे सहायता दी है, उनका मै हृदयसे आभारी हू । डा० युद्धवीर सिह और जैन पुस्तकालय, दिल्लीका मै विशेष रूपसे आभारी हू । 'नवजीवन'के अनेक अलभ्य अक उनके पास न मिल जाते तो सग्रह एकदम अधूरा रह जाता ।

पो० वॉ० ११६७, दिल्ली
रवीन्द्र-जयती, ९ मई १९५१

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

मेरे समकालीन

हकीमजीके स्वर्गवाससे मैने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ साथी ही खोया है, बल्कि एक ऐसा मित्र खोया है जिसपर मै आडे अवसरोपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकताके बारेमे वे हमेशा ही मेरे रहबर थे। उनकी निर्णय-शक्ति, गभीरता और मनुष्य-प्रकृतिका ज्ञान ऐसे थे कि वे बहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नही है। यद्यपि उनका शरीर अब नही रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी और वह अब भी हमे अपना कर्तव्य पूरा करने-को बुला रही है। जबतक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नही कर लेते, उनकी याद बनाये रखनेके लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नही कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करे कि जो काम हम उनके जीतेजी नही कर सके, वह उनकी मौतसे करना सीखे।

हकीमजी कोरे स्वप्नदृष्टा ही नही थे। उन्हे विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिब्बी कॉलेजके द्वारा उनका देशी चिकित्साका स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनैतिक स्वप्न भी उन्होने जामिया मिलियाके जरिए पूरा करनेकी कोशिश की। जबकि जामिया मरणासन्न हो रही थी, उस समय हकीम साहबने प्राय अकेले ही उसे अलीगढसे दिल्ली लानेका सारा भार उठाया। मगर जामियाको हटानेसे खर्च भी बढा। तबसे वे अपनेको जामियाकी आर्थिक स्थिरताके लिए खास तौरपर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करनेमे सबसे मुख्य मनुष्य वे ही थे, चाहे वे अपने ही पाससे दे या अपने दोस्तोसे चन्दे दिलवाएँ। इस समय जो स्मारक देश तुरत ही बना सकता है, और जिसका बनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिलियाकी आर्थिक स्थितिको पक्की कर देना। (हि० न०, ५ १ २८)

• • • • •

एक जमाना था, शायद सन् १५की सालमे, जब मै दिल्ली आया था, हकीम साहबसे मिला और डाक्टर असारीसे। मुझसे कहा गया कि

हमारे दिल्लीके वादशाह अग्रेज नही है, वलिक ये हकीम साहव है। डाक्टर असारी तो वडे वुजुर्ग थे, वहुत वडे सर्जन थे, वैद्य थे। वे भी हकीम साहवको जानते थे, उनके लिए उनके दिलमे वहुत कद्र थी। हकीम साहव भी मुसलमान थे, लेकिन वे तो वहुत वडे विद्वान् थे, हकीम थे। यूनानी हकीम थे, लेकिन आयुर्वेदका उन्होने कुछ अभ्यास किया था। उनके वहा हजारो मुसलमान आते थे और हजारो गरीव हिंदू भी आते थे। साहूकार, धनिक मुसलमान और हिंदू भी आते थे। एक दिनका एक हजार रुपया उनको देते थे। जहातक मै हकीम साहवको पहचानता था, उन्हे रुपएकी नही पडी थी, लेकिन सवकी खिदमतकी खातिर उनका पेशा था। वह तो वादशाह-जैसे थे। आखिरमे उनके वाप-दादा तो चीनमे रहते थे, चीनके मुसलमान थे, लेकिन वडे शरीफ थे। जितने हिंदू लोग मेरे पास आए, उनसे पूछा कि आपके सरदार यहा कौन है? श्रद्धानदजी? श्रद्धानदजी यहा वड़ा काम करते थे। लेकिन नही, दिल्लीके सरदार तो हकीम साहव थे। क्यो थे? क्योकि उन्होने हिंदू-मुसलमान सवकी सेवा ही की। यह सन् '१५के सालकी वात मैनें कही। लेकिन वादमे मेरा ताल्लुक उनसे वहुत वढ गया और उनको और पहचाना। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

कल हकीम अजमल खा साहवकी वार्षिक तिथि थी। वह हिंदुस्तानके हिंदू, मुसलमान, सिख, क्रिस्टी, पारसी, यहूदी सवके प्रिय थे। वह पक्के मुसलमान थे, मगर वह इस खूवसूरत देशके रहनेवाले सव लोगोकी समान सेवा करते थे। उनकी मेहनतकी सवसे वढिया यादगार दिल्लीका मशहूर तिव्वी कॉलेज और अस्पताल था। वहापर हर श्रेणीके विद्यार्थी पढते थे और वहा यूनानी, आयुर्वेदिक और पश्चिमी डाक्टरी सव सिखाई जाती थी। साम्प्रदायिकताके जहरके कारण यह सस्था भी, जिसमे किसी तरह साम्प्रदायिकताको स्थान न था, वद

हो गई है। मेरी समझमें इसका कारण इतना ही हो सकता है कि इस कालेजको बनानेवाले हकीम साहब मुसलमान थे, फिर वे चाहे कितने ही महान् और भले क्यो न रहे हो, और भले ही उन्होने सबका मान सपादन क्यो न किया हो। उस स्वर्गवासी देशभक्तकी स्मृति अगर हिंदू-मुस्लिम फिसादको दफन नही कर सकती तो कम-से-कम इस कालेजको तो नया जीवन दे ही दे। (प्रा० प्र०, २९ १२ ४७)

: २ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

नवीन बस्तीवाला कानून भी सत्याग्रहमे शामिल कर लिया गया।

इस कानूनमे एक यह भी धारा थी कि ट्रासवालमे आनेवाले नवीन आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए कमेटीने किसी ऐसे ही आदमीको ट्रासवालमे लानेको सोचा, जो अग्रेजी जानता हो, पर पहले कभी ट्रासवालमे न रहा हो। कितने ही भारतीय उम्मीदवार खडे हुए, पर कमेटीने उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाकी प्रार्थनाको ही बतौर कसौटी (टेस्ट केस)के मान्य किया।

सोराबजी पारसी थे। नामसे ही स्पष्ट है। सारे दक्षिण अफ्रीकामे पारसियोकी जन-सख्या सौसे ज्यादा नही होगी। पारसियोके विषयमे दक्षिण अफ्रीकामे भी मेरा वही मत था जो मैने भारतवर्षमे प्रकट किया है। ससार भरमे एक लाखसे ज्यादा पारसी नही होगे, परन्तु इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है, अपने धर्मपर दृढ है और उदारतामे ससारकी एक भी जाति उसकी बराबरी नही कर सकती। इस जातिकी उच्चताके लिए इतना ही प्रमाण काफी होगा।

अनुभवसे ज्ञात हुआ कि सोरावजी उसमे भी रत्न थे। जव वह लडाईमें शामिल हुए तव मै उनको वैसे ही मामूली तोरपर जानता था। लडाईमे शामिल होनेके लिए उन्होने पत्र-व्यवहार किया था और उससे मेरा खयाल भी अच्छा हो गया था। मै पारसी लोगोके गुणोका तो पुजारी हू, परन्तु एक कौमकी हैसियतसे उनमें जो खामिया है उनसे मै न तो अपरिचित था और न अव ही हू। इसलिए मेरे दिलमे यह सन्देह जरूर मौजूद था कि शायद सोरावजी परीक्षामे उत्तीर्ण नही हो सकेगे। पर मेरा यह नियम था कि सामनेवाला मनुष्य जव इसके विपरीत वात कर रहा हो तव ऐसे शकपर अधिक ध्यान नही देना चाहिए। इसलिए मैंने कमेटीसे यह सिफारिश की कि सोरावजी अपने पत्रमे जो दृढता जाहिर कर रहे है उसपर हमे विश्वास कर लेना चाहिए। फल यह हुआ कि सोरावजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सावित हुए। लम्वी-से-लम्वी कैद भोगनेवाले सत्याग्रहियोमे वह भी एक थे। इतना ही नही, वल्कि उन्होने तो सत्याग्रहका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके विषयमे वह जो कुछ भी कहते, सवको सुनना पडता। उनकी सलाहमे हमेशा दृढता, विवेक, उदारता, शान्ति आदि गुण प्रकट होते। विचार कायम करनेमे वह जल्दी तो कदापि नही करते थे और एक वार विचार कायम कर लेनेपर वह कभी उसे वदलते भी नही थे। जितने अशोमे उनमे पारसीपन था, और वह उनमे ठूस-ठूसकर भरा हुआ था, उतना ही भारतीयपन भी था। सकीर्ण जाति-अभिमान जैसी वस्तु तो उनमे किसी दिन भी नही पाई गई। लडाई खतम होनेपर डा० मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोमेसे किसीको इग्लैड भेजकर वैरिस्टर वनानेके लिए एक छात्रवृत्ति दी थी। उसके लिए योग्य छात्र चुननेका काम मुझपर ही रक्खा गया था। दो तीन सुयोग्य भारतीय थे। पर समस्त मित्र-मडलको, दृढता तथा स्थिरतामे सोरावजीके मुकावलेमे खडा होने योग्य, कोई नही मिला, इसलिए उन्हीको चुना गया। ऐसे एक भारतीयको इग्लैड भेजनेमे मुख्य उद्देश्य यही था कि वह लौटकर

दक्षिण अफ्रीकामे मेरे बाद मेरा स्थान ग्रहण कर जातिकी मेवा कर सके। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोरावजी इग्लैंड पहुचे। वैरिस्टर हुए। गोखलेसे तो उनका परिचय दक्षिण अफ्रीकामे ही हो चुका था। पर इग्लैंड जानेपर उनका सबध और भी दृढ हो गया। सोरावजीने उनके मनको हर लिया। गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया कि जब कभी वह भारतमे आवे तब 'भारत-सेवक-समिति'के सभ्य जरूर होवे। विद्यार्थीवर्गमे वह बडे प्रिय हो गए थे। प्रत्येक मनुष्यके दुखमे वह भाग लेते। इग्लैंडके न तो आडम्बरकी उनपर जरा भी छाप पडी और न वहाके ऐशो-आरामकी। वह जब इग्लैंड गये तब उनकी उम्र ३० सालसे ऊपर थी। उनका अग्रेजीका अध्ययन ऊचे दर्जेका न था। व्याकरण वगैरह सब भूलभाल गये थे। पर मनुष्यके उद्योगके सामने ये कठिनाइया कब खडी रह सकी है? शुद्ध विद्यार्थी-जीवन व्यतीतकर, सोरावजी परीक्षाओमे उत्तीर्ण होते गये। मेरे जमानेकी वैरिस्टरीकी परीक्षा आजकलकी परीक्षाकी तुलनामे कुछ आसान थी। इसलिए आजकलके वैरिस्टरोको अधिक अभ्यास करना पडता है, पर सोरावजी पीछे नही हटे। इग्लैंडमे जब एम्ब्युलैन्स कोरकी स्थापना हुई तब उसका आरभ करनेवालोमे वह भी थे और आखिर तक उसमे रहे। इस दलको भी सत्याग्रह करना पडा था। उसमेसे कई फिसल गये थे, पर फिर भी जो अटल रहे, उनमे सोरावजी अग्रगण्य थे। यहापर मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इस दलको सत्याग्रहमे भी विजय ही मिली थी।

इग्लैंडमे वैरिस्टर होकर सोरावजी जोहान्सवर्ग गये। वहापर उन्होने सेवा और वकालत दोनो साथ-ही-साथ शुरू कर दी। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिले उनमे सोरावजीकी तारीफ सभी करते थे। वह अब भी वैसे ही सादा मिजाज है, जैसे पहले थे, आडम्बर जरा भी नही है। छोटे-से-वडेतक सबसे हिल-मिलकर रहते है। मालूम होता है, परमात्मा जितना दयालु है, उतना ही शायद निठुर भी है। सोरावजीको

तीव्र क्षयने ग्रसा और कौमका नवीन प्रेम सम्पादनकर उसे दुखमे रोती हुई छोडकर वह चल वसे। इस तरह परमात्माने कौमके दो पुरुप-रत्न छीन लिये—काछलिया[1] और सोरावजी।

पसन्दगी ही करनी हो तो मैं इन दोमेंसे किसे प्रथम पद दू ? पर मैं तो इस तरहकी पसन्दगी ही नही कर सकता। दोनो अपने-अपने क्षेत्रमे अप्रतिम थे। काछलिया शुद्ध मुसलमान और उतने ही शुभ भारतीय भी थे, उसी प्रकार सोरावजी भी शुद्ध पारसी और साथ ही उतने ही शुद्ध भारतीय थे।

यही सोरावजी पहलेपहल सरकारको नोटिस देकर केवल 'टेस्ट' अर्थात् कसौटीके लिए ट्रासवाल आये। सरकार इसके लिए जरा भी तैयार नही थी। इसलिए वह एकाएक यही निश्चय नही कर सकी कि सोरावजीके साथ क्या करना चाहिए। सोरावजी तो जाहिरा तौरपर सरहद लाघकर ट्रासवालमे आ धमके। परवाने जाचनेवाले सरकारी अधिकारी उनको जानते थे। सोरावजीने कहा—"मैं केवल इसी हेतुसे ट्रासवालमे प्रवेश कर रहा हू कि देखू, सरकार मेरा क्या करती है। यदि आप मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो सवाल कीजिए। ओर अगर गिरफ्तार करना हो तो यह खडा हू, गिरफ्तार कर लीजिए।" अधिकारीने कहा, "मुझे यह मालूम है कि आप अग्रेजी जानते है। इसलिए परीक्षा तो कुछ लेना-लिवाना है नही और न आपको गिरफ्तार करनेके लिए मेरे पास कोई हुक्म ही है। इसलिए जहा जाना हो, आप सुखपूर्वक जाइए। यदि आपको गिरफ्तार करना आवश्यक मालूम हुआ तो आप जहा कही जावेगे, सरकार स्वय आपको गिरफ्तार कर लेगी।"

इस तरह सोरावजी तो अकल्पित रूपसे ओर अचानक जोहान्सवर्ग तक आ पहुचे। हम सवने उनका वडे हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको

---

[1]परिचय पृष्ठ ५३ पर देखिए।

यह आशातक नही थी कि सरकार सोरावजीको ट्रासवालके सरहदी स्टेशन वाक्सरस्टसे जरा भी आगे वढने देगी ।

सरकारकी गफलतके कारण कहिए या जान-बूझकर निश्चित की हुई उसकी पहली नीतिके अनुसार कहिए, सोरावजी जोहान्स-वर्ग तक आ पहुचे । इधर न तो स्थानीय अधिकारीको इस विषयमे कुछ खयाल था कि सोरावजीके जैसे मामलेमें क्या करना चाहिए और न ऊपरसे ही उसे कोई सूचना मिली थी । सोरावजीके इस तरह एकाएक जोहान्सवर्ग पहुच जानेसे कौमका उत्साह खूब वढ गया । कितने ही युवक तो यही समझ गये कि सरकार हार गई और शीघ्र ही उसे सुलह भी करनी होगी । पर यह स्वप्न अधिक देरतक न टिका । शीघ्र ही उन्हे इस वातको ठीक विपरीत सिद्ध होते हुए देखना पडा, वल्कि उन्होने तो यह भी देख लिया कि सुलह होनेसे पहले शायद अनेक युवकोको अपना वलिदान देना होगा ।

सोरावजीने अपने पहुचते ही आनेकी खवर वहाके पुलिस सुपरि-टेडेंटको देकर लिखा—"नवीन वस्तीवाले कानूनके अनुसार मैं अपनेको ट्रासवालमे रहनेका हकदार मानता हू ।" इसका कारण वताते हुए उन्होने अपना अग्रेजी भापाका ज्ञान लिखाया । यह भी लिखा कि यदि अधिकारी उनकी अग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहे तो उसके लिए भी वह तैयार है । इस पत्रका कोई उत्तर न मिला । पर इसके कई दिन वाद उन्हे एक समन मिला । मामला अदालतमे पेश हुआ । न्यायालय भारतीय दर्शकोसे खचाखच भर गया था । मामला शुरू होनेसे पहले, न्यायालयमे आये हुए भारतीयोको वही अहातेमे एकत्रकर उनकी एक सभा की गई, जिसमें सोरावजीने एक जोशीला भाषण दिया । भाषणके अतमे उन्होने यह प्रतिज्ञा की—"पूरी जीत होनेतक जितनी वार जेलमे जाना होगा, मैं जानेको तैयार हू और जितने भी सकट आवेगे उन सवको झेलनेको तैयार हू ।" अवतक इतना समय गुजर चुका था कि मै सोरावजीको

अच्छी तरह जानने लग गया था। मैंने अपने मनमे यह भी समझ लिया था कि अवश्य ही सोरावजी एक शुद्ध रत्न सिद्ध होगे। मुकदमा शुरू हुआ। मै वकीलकी हैसियतसे खडा हुआ। समनमे कितने ही दोष थे। उन्हे दिखाकर मैने सोरावजीपरसे समन उठा लेनेके लिए अदालतसे प्रार्थना की। सरकारी वकीलने अपनी दलीले पेश की, पर अदालतने मेरी दलीलोको स्वीकार कर समन हटा लिया। कौम मारे हर्षके पागल हो गई। सच पूछा जाय तो उसके इस तरह पागल होनेके लिए कारण भी था। दूसरा समन निकालकर फौरन ही सोरावजीपर पुन मुकदमा चलाने की हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोमे लग गये।

पर यह छुटकारा हमेशाके लिए नही था। कौमने सरकारकी खामोशीका अत देखनेके लिए एक ऐसा नवीन काम कर डाला जिससे उसे अपनी खामोशी अलग रखकर सोरावजीपर फिर मुकदमा चलाना पडा। (द० अ० स० १९२५)

: ३ :

माधव श्रीहरि अणे

ऊर्ध्व बाहुर्विरोम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्म किं न सेव्यते॥

"मै ऊचा हाथ करके पुकारता हू, पर मेरी कोई सुनता नही। धर्म मे ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यो सेवन नही करते?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमे कुछ मिनटके लिए मेरे

पास आ गए थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हो या देखनेमे विरोधी दिशामे जा रहे हो, बापूजी अणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते है, इसलिए जब कभी उन्हे समय मिलता है, राम-राम कर जाते है, विचारोका विनिमय कर जाते है और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोका जो भडार भरा पडा है उसमेसे कुछ बानगी भी दे जाते है। दिल्लीमे जब वे मुझसे मिलने आये तब काग्रेसमेसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होने कुछ विरोध-सा किया, मगर दरअसल तो उन्होने मुझे इसपर बधाई ही दी। "काग्रेसको या किसीको भी अब आपको नाराज नही करना चाहिए। आप तो अपने रास्ते जाए। आपने अग्रेजोके प्रति जो लिखा है, वह मैने देखा है। वे लोग सुननेवाले नही, पर आपको इससे क्या पडी है ? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते है, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अडीके समय काग्रेसने ही आपकी न सुनी। स्वय व्यासकी किसीने नही सुनी तो किसी दूसरेकी तो बात ही क्या है। महाभारत जैसा ग्रथ लिखकर अन्तमे उन्होने एक श्लोक लिखा है, जो 'भारत-सावित्री'के नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होने मेरी श्रद्धाको दृढ किया और बताया कि मैने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ४ :

डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी

आगामी वर्षके लिए डा० असारीका महासभाके अध्यक्ष-स्थानके लिए चुनाव होना प्राय निश्चित-सा है। राष्ट्रीय क्षितिजपर इस चुनावमे आपत्ति करनेवाला कोई नही है। डा० असारी जितने अच्छे मुसलमान

है, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमे धर्मोन्मादकी तो किसीने शका ही नही की है। वर्षोतक वे एक साथ महासभाके सहमत्री रहे है। हाल हीमे एकताके लिए किये गए उनके प्रयत्नोको तो सब कोई जानते हैं और सच्ची बात तो यह है कि अगर बेलगावमे मै, कानपुरमे श्रीमती सरोजिनी नायडू और गोहाटीमे श्रीयुत श्रीनिवास आयगार मार्गमे न आते तो इनमेसे किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डा० असारी ही चुने जाते, क्योकि जब ये चुनाव हो रहे थे तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जबानपर था, परन्तु कुछ खास कारणोसे डा० असारीका हक आगे बढा दिया गया और अब ज्ञात होता है कि विधिने उनके चुनावको इसीलिए आगे ढकेल दिया था कि वे ऐसे मौकेपर आवे जब देशको उनकी सबसे अधिक जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुसलिम एकताकी कोई योजना दोनो पक्षोको ग्रहण करने योग्य मालूम हो तो नि सन्देह डा० असारी ही उसे महासभाके द्वारा कर ले जा सकते हैं। अकेली यही बात (सर्व-सम्मतिसे और हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुनना) हिन्दुओकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगा कि हिन्दू एकताको दिलसे चाहते है, और राष्ट्रीय विचारोवाले मुसलमानोमे डा० असारीकी अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनतामे अधिक आदृत कोई नही है। इसलिए मेरे खयालसे तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डा० असारी ही राष्ट्रीय महासभाके कर्णधार हो, क्योकि केवल किसी योजनाको मजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नही है। दोनो पक्षो द्वारा उसे मजूर करानेकी बनिस्बत उसे कार्यमे परिणत करना शायद कही अधिक जरूरी है। और यदि हम मान ले कि दोनो पक्षोका समाधान करनेवाली एक योजना मजूर हो भी गई तो उसपर अमल करते समय बराबर सावधानीकी आवश्यकता होगी। डा० असारी ही ऐसे कामके लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष है। इसलिए मै आशा करता हू कि सभी प्रान्त एकमतसे डा० असारीके नामको ही उस सर्वोच्च सम्मानके लिए

सूचित करेंगे जो कि राष्ट्रीय महासभाके अधीन है। (हि. न , २१ ७ २७)

'हरिजन'मे उन सब महान् पुरुषोकी मृत्युपर, जो इस ससारसे सिधार जाते हैं, साधारणतया मैं लिखता नही हू । 'हरिजन' एक विशेष प्रवृत्तिसे सबध रखनेवाला पत्र है । आम तौरपर उन्ही व्यक्तियोके स्वर्गवासके विषयमे इसमें लिखा जाता है जिनका कि हरिजनकार्यके साथ विशेष-रूपसे सम्बन्ध होता है । श्री कमला नेहरूके स्वर्गवासपर मैंने 'हरिजन'मे जो नही लिखा उसमे मुझे खास तौरपर अपने ऊपर पाबदी लगानी पडी । ऐसा करके मैंने करीब-करीब अपने साथ जुल्म किया । मगर डॉ० असारीके स्वर्गवासपर मुझे कोई ऐसा आत्मनिग्रह करनेकी जरूरत नही । कारण यह है कि वे निस्सदेह हकीम अजमल खाकी तरह ही हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यके एक प्रतिरूप थे । कडी-से-कडी परीक्षाके समय भी वे अपने विश्वाससे कभी डिगे नही । वे एक पक्के मुसलमान थे । हजरत मुहम्मद साहबकी जिन लोगोने जरूरतके वक्त मदद की थी, वे उनके वशज थे और उन्हे इस बातका गर्व था । इस्लामके प्रति उनमें जो दृढता थी और उसका उन्हे जो प्रगाढ ज्ञान था उस दृढता और उस ज्ञानने ही उन्हे हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यमे विश्वास करनेवाला बना दिया था । अगर यह कहा जाय कि जितने उनके मुसलमान मित्र थे उतने ही हिन्दू मित्र थे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । सारे हिन्दुस्तानके काबिल-से-काबिल डॉक्टरोमे उनका नाम लिया जाता था । किसी भी कोमका गरीब आदमी उनसे सलाह लेने जाय, उसके लिए बेरोकटोक उनका दरवाजा खुला रहता था । उन्होने राजा-महाराजाओ और अमीर घरानोसे जो कमाया वह अपने जरूरतमद दोस्तोमे दोनो हाथोसे खर्च किया । कोई उनसे कुछ मागने गया तो कभी ऐसा नही हुआ कि वह उनकी जेब खाली किये बगैर लौटा हो । और उन्होने जो दिया उसका कभी हिसाब नही रखा । सैकडो पुरुषो और स्त्रियोके लिए वह एक भारी सहारा थे । मुझे इसमें

तनिक भी सदेह नही कि सचमुच वह अनेक लोगोको रोते-विलखते छोड गये है। उनकी पत्नी वेगम साहिवा तो ज्ञानपरायणा है, यद्यपि वह हमेशा वीमार-सी रहती है। वह इतनी वहादुर है और इस्लामपर उनकी इतनी ऊची श्रद्धा है कि उन्होने अपने प्रिय पतिकी मृत्युपर एक आसू भी नही गिराया। पर जिन अनेक व्यक्तियोकी मै याद करता हू वे ज्ञानी या फिलॉसफर नही है। ईश्वरमे तो उनका विश्वास हवाई है, पर डॉ० असारीमें उनका विश्वास जीवित विश्वास था। इसमे उनका कोई कसूर नही। डॉक्टर साहवकी मित्रताके उनके पास ऐसे अनेक प्रमाण थे कि ईश्वरने जव उन्हे छोड दिया तव डॉक्टर साहवने उन्हे सहायता पहुचाई। पर उन्हे यह क्या मालूम था कि डॉक्टर साहव भी उनकी मदद तभीतक कर सके, जवतक कि सिरजनहारने उन्हे ऐसा करने दिया। जिस कामको वह जीवित अवस्थामे पूरा नही कर सके, ईश्वर करे, वह उनकी मृत्युके वाद पूरा हो जाय। (ह० से०, १६ ५ ३६)

: ५ :

ख्वाजा अब्दुल मजीद

ख्वाजा अब्दुलमजीद आज मुझसे मीठा झगडा करनेके लिए आए थे। वह अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी है। उनके पास काफी वडी जायदाद है, फिर भी उनका मन तो फकीर है। मै जव वहा जाता था उन्हीके यहा खाना खाता था। उस जमानेमे स्वामी सत्यदेव (परिव्राजक) मेरे साथ रहते थे। उन्होने हिमालयकी यात्रा की थी। ईश्वरने आज उनकी आखे छीन ली है। उस समय वह वहुत काम करनेवाले थे। उन्होने मुझसे कहा, "मै तेरे साथ भ्रमण करूगा, पर तू

मुसलमानके साथ खाता है, तो मैं तो नही खाऊगा ।" यह सुनकर ख्वाजा साहवने कहा, "अगर उनका धर्म ऐसा कहता है तो मैं उनके लिए अलग इतजाम करूगा ।" ख्वाजा साहवके दिलमे यह नही आया कि यह स्वामी गाधीके साथ आया है तो क्यो नही मेरे यहा खाया । पुराने दिन फिर वापस आएगे, जव हिंदू-मुसलमानोके दिलोमे एकता थी । ख्वाजा साहव अव भी राष्ट्रीय मुसलमानोके प्रेसीडेट है । दूसरे भी जो राष्ट्रीय भावनावाले मुसलमान लडके उन दिनोमे अलीगढसे निकले थे वे आज जामियाके अच्छे-अच्छे विद्यार्थी और काम करनेवाले वने हुए है । यह सव सहाराके रेगिस्तानमे द्वीप समान है । ख्वाजा साहव ऐसे है कि उनको कोई मार डालेगा तो भी उनके मुहसे वद्दुआ न निकलेगी । ऐसे लोग भले ही थोडे हो, पर हमे तो अपनापन कायम रखना ही चाहिए । (प्रा० प्र०, ६ ४ ४७)

आप लोग देख रहे है कि मेरी दाहिनी ओर ख्वाजा साहव वैठे हुए है । इनके वारेमे एक वार मैं आपको पहले सुना चुका हू कि किस प्रकार मैं स्वामी सत्यदेवके साथ इनके घर पहुचा था और सत्यदेवजी मुसलमानके हाथका पानीतक नही पी सकते थे । लेकिन तव भी ख्वाजा साहवने वुरा नही माना और उदार स्वागत किया । उस समय ये अलीगढ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी थे । वादमे असहयोग आदोलनमे शरीक होनेके लिए इन्होने ट्रस्टीपन छोड दिया । जहातक मुझे याद है, जव मैं वहा गया तव वहा लीगकी मीटिंग हो रही थी । मैंने वहा पूछा था कि यहा भी कोई सत्याग्रही मिलेगा या नही ? मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकतअली तव नजरवद थे और उनके कैद होनेके वारेमे वहा सव मायूस हो रहे थे । तव ख्वाजा साहवने मुझसे कहा था कि आपको ढाई सत्याग्रही मिल सकते है । उनमे एक तो थे श्वेव कुरेशी, जो काफी प्रख्यात और वहादुर जवान थे । दूसरे साहव भी जो वहा मौजूद थे, पक्के सत्याग्रही थे । एक वार लोगोने उन्हे मारा और उनके हाथमे दो जगह चोटे आई, तव

भी वे शात रहे और ताकत होनेपर भी मार सहन की, लेकिन जवावमे हमला नही किया। इन दोनोका परिचय करानेके वाद ख्वाजा साहवने कहा था कि आधा सत्याग्रही मै हू। और तवसे ख्वाजा साहव मेरे सगे भाईकी तरह वनकर रहे है। (प्रा० प्र०, १२ ६ ४७)

: ६ :

शेख अब्दुल्ला

(काश्मीरमे) शेख अब्दुल्ला साहव है। 'शेरे-काश्मीर' उसको कहते है, याने वाघ है, सिंह है। वह वडा तगडा है। आपने उसका चित्र तो देखा ही होगा। मै तो उसको पहचानता भी हू। उसकी वेगमको भी पहचानता हू। वेगम तो आज यहा पडी है। एक आदमीसे जितना हो सकता है वह वे कर रहे है। वे कोई लडनेवाले तो है नही। यो तो काश्मीरमे तगडे मुसलमान पडे है, तगडे हिंदू भी पडे है, राजपूत और सिख भी पडे है। तो उसने तय कर लिया है कि जितना हो सकता है वह करूगा। वह तो मुसलमान है। काश्मीरमे मुसलमानोकी वडी आवादी है। यहासे तो ये लोग वदूक लेकर जाते है, लेकिन वहाके मुसलमान क्या करे और क्या न करे। मानाकि हम तो यहा जाहिल वन गए है, यहा कहो या पाकिस्तानमे कहो, कोई पागलपन वाकी नही रखा है। क्या वहा वे लोग भी जाहिल वन जाय और जिनको काटना है उनको काटे, औरतोको काटे, वच्चोको काटे, इस वुरे हालसे मरे? यह हाल काश्मीरका हो तो प० जवाहरलाल नेहरू और मन्त्रिमडलके सभी सदस्योने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो किया जाय, तो इतने आदमी भेज दिये। वे क्या करे? इतना ही करे कि आखिरी दमतक लडते रहे और लडते-लडते मर जाय। जो लडनेवाले

या शस्त्रधारी होते हैं उनका यही काम होता है कि वे आगे बढते है और हमला करनेवालोको रोक लेते है। वे मर जाते है, लेकिन पीछे तो कभी हटते नही है। इसका क्या परिणाम होगा, वह तो ईश्वर ही जानता है। लेकिन पुरुषार्थ करना तो हमारा काम है। वह हम करे। तो इन १५०० आदमियोने पुरुषार्थ किया। लेकिन कब, जब वे श्रीनगरके बचानेमे सारे-के-सारे कट जाते है। पीछे श्रीनगरके साथ काश्मीर भी बच जायगा। इसके बाद क्या होगा ?

यही होगा न, कि काश्मीर काश्मीरियोका होगा। शेख अब्दुल्ला जो कहते है वह तो मै सपूर्णतया मानता हू कि काश्मीर काश्मीरियोका है, महाराजाका नही। लेकिन महाराजाने इतना तो कर लिया है कि उन्होने शेख अब्दुल्लाको सब कुछ दे दिया और कह दिया है कि तुमको जो कुछ करना है सो करो। काश्मीरको बचाना है तो बचाओ। आखिर महाराजा तो काश्मीरको बचा नही सकते। अगर काश्मीरको कोई बचा सकता है, तो वहा जो मुसलमान है, काश्मीरी पडित है, राजपूत है और सिख है वे ही बचा सकते है। उन सबके साथ शेख अब्दुल्लाकी मोहब्बत है, दोस्ती है। हो सकता है कि शेख अब्दुल्ला काश्मीरका बचाव करते-करते मर जाते है, उनकी जो बेगम है वह मर जाती है, उनकी लडकी भी मर जाती है और आखिरमे काश्मीरमे जितनी औरते पडी है, वे सब मर जाती है, तो एक भी बूद पानी मेरी आखोमेसे आनेवाला नही है। अगर लडाई होना ही हमारे नसीब में है तो लडाई होगी। दोनोको ही लडना है या किस-किसके बीच होगी, यह तो भगवान ही जानता है। हमला-वरोकी पीठपर अगर पाकिस्तानका बल नही है या पाकिस्तानका उसमे कोई उत्तेजन नही है, तो वे वहा कैसे टिक सकते है, यह मै नही जानता। लेकिन माना कि पाकिस्तानकी उत्तेजना नही है, तो नही होगी। जब काश्मीर-के लोग लडते-लडते सब मर जायगे तो काश्मीरमे कौन रह जायगा ? शेख अब्दुल्ला भी चले गए, क्योकि उनका सिंहपन, बाघपन तो इसीमे

है कि वे लडते-लडते मर जाते है और मरते दमतक उन्होने काश्मीरको बचाया, वहाके मुसलमानोको तो बचाया ही, उसके साथ वहाके सिख और हिंदुओको भी। वे ठेठ मुसलमान है। उनकी बीवी भी नमाज पढती है। उन्होने मधुर कठसे मुझे 'ओज अबिल्ला' सुनाया था। मै तो उनके घर पर भी गया हू। वे मानते है कि जो हिंदू और सिख यहा है वे पहले मरे और मुसलमान पीछे, यह हो नही सकता। वहा हिंदू और सिखकी तादाद कम है, तो भी क्या हुआ। अगर शेख अब्दुल्ला ऐसे है और उनका असर मुसलमानोपर है तो हमारा सबका क्षेम है। (प्रा० प्र०, २९ १० ४७)

आपने यह भी देख लिया होगा कि शेख अब्दुल्ला साहब भी यहा आ गए है। जितने काश्मीरके लोग है वे तो सब उनको 'शेरे-काश्मीर' कहते है। और वह है भी ऐसा ही। बहुत काम उन्होने कर लिया है और सबसे आला दर्जेका काम तो उन्होने यह किया कि काश्मीरमे जितने हिंदू, मुसलमान और सिख रहते है उन सबको अपने साथ ले लिया है। तादादमे तो मुसलमान बहुत अधिक है और हिंदू और सिख तो मुट्ठीभर है, ऐसा हम कह सकते है, लेकिन तो भी उनको अपने साथ लेकर वे चलते है। वे खुश न रहे ऐसा कोई काम वे नही करते। पीछे हमने देखा कि वे यहा आते हुए जम्मू भी चले गए थे। जम्मूमे हिंदुओकी तरफसे ज्यादतिया हुई है और काफी ज्यादतिया हुई है। उनका पूरा-पूरा बयान तो हमारे अखबारोमे नही आया। महाराजा साहब भी वहा चले गए थे और उनके नए प्रधान मत्री भी। तब वहा दो प्रधान मत्री है क्या, या कुछ और है, मजाकमे मै उनसे पूछ रहा था। उन्होने कहा कि मुझको भी यह पता नही, मगर इतना तो है कि मै वहाका इतजाम कर रहा हू, दो हो या एक हो। तो वे भी जम्मूमे चले गए थे। जम्मूमे जो कुछ हुआ, वह महाराजाने करवाया या उनके जो नए प्रधान मत्री है उन्होने करवाया, इसका तो मुझको पता नही, लेकिन वहा हुआ और हमारे लिए यह बडी शर्मनाक

वात है कि हम ऐसा करे। शेख अब्दुल्लाने यह सब देखकर भी अपना दिमाग विगडने नही दिया और जम्मूमे जो हिंदू पडे है उन्होने भी उनका साथ दिया। (प्रा० प्र०, २७.११ ४७)

: ७ :

डा० भीमराव अम्बेडकर

डा० अम्बेडकरके प्रति और अछूतोका उद्धार करनेकी उनकी इच्छा-के प्रति मेरा सद्भाव और उनकी होशियारीके प्रति आदर होनेके वावजूद मुझे कहना चाहिए कि वे इस मामलेमे वडी भयकर भूल कर रहे है। उन्हे कडवे अनुभवोमेसे गुजरना पडा है, शायद इस कारण अभी उनकी विवेक-बुद्धि इस चीजको नही समझ पा रही है। ऐसे शब्द कहते हुए मुझे दु ख होता है। मगर यह न कहू तो प्राणोसे प्यारे इन 'अछूतो' के हितोके प्रति मै वफादार नही रह सकता। सारी दुनियाके राज्यके लिए भी मै उनके हकोकी कुरवानी नही करूगा। डा० अम्बेडकर तमाम हिंदुस्तानके 'अछूतो' की तरफसे वोलनेका दावा करते है, मगर उनका यह दावा सही नही है, यह वात मै पूरी जिम्मेदारीके साथ कहता हू। उनके कहनेके अनुसार तो हिंदू-समाजमे फूट पड जायगी। इसे शातिसे देखते रहना मेरे लिए सभव नही है। (१३ ११ ३१ को लदनमे अल्पमत समिति-की आखिरी वैठकमे दिये गए भाषणसे)

वाते उसने वहुत मीठी की। उसमे सिद्धात तो नही है, मगर ये सारी वाते सीधे ढगसे की। उसने यह भी कहा कि मुझे राजनैतिक सत्ता चाहिए थी सो मिल गई। अव मुझे तो राष्ट्रीय काम करना है। अव मै आपके

काममे रोडे नही अटकाऊगा। एम० सी० राजा वहामे जाकर आर्डिनेम विलका समर्थन करे, वैसा मुझमे नही हो सकता। मैने तो अपने आदमियोसे कह दिया—अव तुम मुझमे इम काममे वहुत आशा न रखना। अव मुझे अपनी शक्ति देशके काममे खर्च करनी होगी। मगर आप वाहर निकलकर देशका काम शुरू करे तव हो। योही कुछ नही हो जायगा।

अपने वारेमे कहा—कहा जाता है कि सरकार मुझे रुपया देती है। मेरे जैसा भिखारी कोई नही। तीन सालसे मेरी कुछ भी कमाई नही। यह काम करते हुए मुझे अपना रुपया खर्च करना पडता है और मेरे मुकदमोका काम कम होता है। सार्वजनिक कामके लिए समय भी जाता है और रुपया भी खर्च होता है। थोडे-थोडे मुकदमे मिलते है, उनसे अपना गुजर चलाता हू। आज भी सावतवाडीमे एक मुकदमा है। वहा जाते हुए रास्तेमे उतर गया हू। (म० डा०, भाग २, १७ १० ३२)

इसमे (अम्वेडकरमे) त्यागशक्ति है। कुरवानी करनेकी शक्ति है। यह दावानल तो सुलगेगा ही। हम हिंदू यदि सच्चे होगे तो यरवदा-समझौतेकी तो स्वर्णभस्म वना सकेगे, नही तो चार करोड अस्पृश्य सारे हिंदुस्तानका भक्षण कर जायगे। (म० डा०, भाग २, ३ १२ ३२)

गत मई मास (सन् १९३६) मे लाहौरके 'जात-पात-तोडक मडल' का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डा० अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे। लेकिन डा० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नही किया गया। यह वात विचारणीय है कि स्वागत-समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहातक उचित है कि उनका भाषण उमे आपत्तिजनक मालूम पडा। जाति-प्रथा और हिंदू-शास्त्रोके विषयमे डा० अम्बेडकरके

जो विचार है उन्हे तो समिति पहलेसे ही जानती थी । यह भी उसे मालूम था कि वह हिंदू-धर्म छोडनेका बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके है । डा० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नही की जा सकती थी । लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पडता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वचित कर दिया, जिसने कि समाजमे अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है । भविष्यमे वह कोई भी बाना क्यो न धारण करे, मगर डा० अम्बेडकर ऐसे आदमी नही है जो अपनेको भूल जाने देगे ।

डा० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यो हार जानेवाले नही थे । उसके इन्कार कर देनेपर, उसके जवाबमे उन्होने उस भाषणको अपने ही खर्चेसे प्रकाशित किया है । उन्होने आठ आने उसकी कीमत रखी है, लेकिन मै उनसे कहूगा कि वह उसे घटाकर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दे तो ठीक होगा ।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नही कर सकता । रुढिचुस्त लोग भी इसे पढकर लाभ ही उठायेगे । लेकिन इससे यह नही समझना चाहिए कि भाषणमे ऐतराज करने लायक कोई बात नही है । इसे तो पढना ही इसलिए चाहिए, क्योकि इसमे गहरे ऐतराजकी गुजाइश है । डा० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए मानो एक चुनौती है । हिंदूकी तरह पलने और एक जबरदस्त हिंदू द्वारा शिक्षित किये जानेपर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिंदुओ द्वारा अपने और अपनी जातिवालोके साथ होनेवाले व्यवहारसे वह इतने निराश हो गये है कि वह न केवल उन्हे, बल्कि उस धर्मको भी छोडनेका विचार कर रहे है जो उनकी तथा और सबकी सयुक्त विरासत है । उस धर्मको माननेका दावा करनेवाले एक भागके कारण सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये है ।

लेकिन इसमे अचरजकी कोई बात नही है, क्योकि किसी प्रथा या सस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोके व्यवहारसे ही तो कर सकता

है। अलावा इसके, डा० अम्बेडकरको मालूम पडा है कि सवर्ण हिंदुओके विशाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोके साथ, जिन्हे उन्होने अस्पृश्य शुमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुपिकताका ही व्यवहार किया है, वल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोके आदेशको वनाया है और जव उन्होने शास्त्रोको देखना शुरू किया तो उन्हे मालूम पडा कि सचमुच उनमे अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोकी काफी गुजाइश है। शास्त्रोके अध्याय और श्लोक उद्धृत कर-करके उन्होने तिहेरा दोपारोप किया है (१) उनमे निर्दय व्यवहार करनेका आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनवालोके व्यवहारका धृष्टता-पूर्वक समर्थन किया गया है, और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसधान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिंदू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोसे अधिक प्यारा समझता है, इस दोपारोपकी गभीरताकी उपेक्षा नही कर सकता, और फिर इस तरह निराश होनेवाले अकेले डा० अम्वेडकर ही नही है। वह तो उनमेके एक ऐसे व्यक्तिमात्र है जो इस वातके प्रतिपादनमे कोई समझौता नही करना चाहते और ऐसे लोगोमे वे सवसे योग्य है। निश्चय ही इन लोगोमे वह अत्यत जिद्दी स्वभावके है। ईश्वरकी कृपा समझो जो वडे नेताओमे ऐसे विचारके वही अकेले है और अभी भी वह एक वहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि है। मगर जो कुछ वह कहते है, कम या ज्यादा जोशके साथ वही वाते दलित जातियोके और नेता भी कहते है। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, राववहादुर एम० सी० राजा और दीवान-वहादुर श्रीनिवासन्—हिन्दू-धर्म छोडनेकी धमकी नही दते, पर उसीमे इतनी गुजाइश देखते है कि जिससे हरिजनोके विशाल जन-समूहको जो शर्मनाक कष्ट भोगना पड रहा है उसकी क्षति-पूर्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिंदू-धर्मको नही छोडते, इसी वातसे हम डॉ० अम्वेडकरके कथनकी उपेक्षा नही कर सकते। सवर्णोको अपने विश्वास

और आचरणमे सुधार करना ही पडेगा । इसके अलावा, सवर्णोमे जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोकी प्रामाणिक व्याख्या कर सके उन्हे शास्त्रोके यथार्थ आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा। डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते है, वे ये है

(१) शास्त्र क्या है ?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड देना चाहिए ?

(३) इस तरह काट-छाटकर जिस अशको हम स्वीकार करे वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अतर्जातीय विवाहो-के सबधमे क्या कहता है ? इन सब प्रश्नोकी अपने निबधमे डॉ० अम्बेडकरने योग्यतापूर्वक छानबीन की है। (ह० से०, ११ ७ ३६)

. अम्बेडकर साहबसे तो दूसरी आशा ही नही थी। वह मेरा हमेशा विरोधी रहा है । वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफसोस न होगा । (का० क०, २० ९ ४२)

: ८ :

बी अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी अम्माका देहात हो गया है। बी अम्माकी उस राजसी मूर्त्तिको या सार्वजनिक सभाओमे उनकी बुलद आवाजको कौन नही जानता । बुढापा होते हुए भी उनमे एक नवयुवककी

शक्ति थी। खिलाफत और स्वराज्यके लिए उन्होने अथक यात्राए की। इस्लामकी कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होने देख लिया था कि इस्लामका कार्य, जहातक मनुष्यके वस की वात है, भारतकी आजादीपर आधारित है। इसी निश्चयके साथ उन्होने यह भी महसूस कर लिया था कि हिन्दुस्तानकी आजादी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादीके विना असम्भव है। इसलिए वे अविराम एकताका प्रचार करती थी। यह उनके लिए एक अटल सिद्धात हो गया था। उन्होने अपने तमाम विदेशी और मिलके कपडोका परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थी। मौलाना मुहम्मदअली मुझसे कहते है कि वी अम्माने उन्हे यह हुक्म दे रक्खा था कि मेरे जनाजेपर सिवा खादीके और कुछ न होना चाहिए। जव-जव मुझे उनके विछौनेके नजदीक जानेका सौभाग्य प्राप्त होता तव-तव वे स्वराज्य और एकताकी वाते पूछती। उनके वाद ही प्राय वे खुदा-तालासे दुआ करती—"या खुदा, हिंदुओ और मुसलमानोको ऐसी अक्ल वख्श कि जिससे ये एकताकी जरूरतको समझे और रहम करके स्वराज्य देखनेके लिए मुझे जिदा रहने दे।" इस वहादुर और भद्र आत्माकी याद-गारको वनाए रखनेकी सवसे अच्छी रीति यही है कि हम सर्व-सामान्य कार्योके प्रति उनके उत्साह और उमगका अनुकरण करे। हिंदू धर्म भी विना स्वराज्यके उतना ही सकटमे है जितना कि इस्लाम। परमात्मा करे कि हिंदुओ और मुसलमानोको इस प्रारभिक वातकी कदर करनेकी वी अम्मा जैसी वुद्धि दे। परमात्मा उनकी आत्माको शाति और अली-भाइयोको उनके सौपे कार्यको जारी रखनेकी शक्ति दे।

वी अम्माकी मृत्युकी रातके उस गभीर और प्रभावकारी दृश्यका वर्णन किये विना मै नही रह सकता। उस समय मुझे उनके पास ही रहने-का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि अव वे अपने जीवनकी अन्तिम सासे ले रही है मै और सरोजिनी देवी वहा दौडे गये। उनके कुटुवके कितने ही लोग आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचिंतक

डा० असारी भी मौजूद थे। वहा रोनेकी आवाज नही सुनाई देती थी, अलबत्ते मौ० मुहम्मदअलीके गालोपरसे आसू जरूर टपक रहे थे। बडे भाईने बडी कठिनाईसे अपने शोकावेगको रोक रखा था। हा, उनके चेहरेपर एक असाधारण गभीरता अलवत्तें थी। सब लोग अल्लाका नामोच्चार कर रहे थे। एक सज्जन अत समयकी प्रार्थना गा रहे थे। 'कामरेड प्रेस' बी अम्माके कमरेके इतना पास है कि आवाज सुनाई दे सकती है। परतु एक मिनिटके लिए वहाके काममे गडबड नही हुई और न मौलानाने ही अपने सपादकीय कर्तव्योमे रुकावट आने दी। और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुल्तवी नही किया गया। मौलाना शौकतअलीने तो सपने तकमे न सोचा था कि मै अपना रामजस कालेज जाना मुल्तवी करूगा। वे एक सच्चे सिपाहीकी तरह मुजफ्फरनगरके हिंदुओको दिये गए निश्चित समयपर उनसे मिले हालाकि बी अम्माकी मृत्युके बाद उन्हे तुरत ही वहासे चला जाना पडा था। यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ। जन्म और मरण, ये दो भिन्न-भिन्न दशाए नही है, बल्कि एक ही दशाके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप हे। न मृत्युसे दुखी होनेकी जरूरत है, न जन्मसे खुशी मनानेकी। (हि० न०, २३.११.२४)

: ६ :

राजकुमारी अमृतकौर

आज मैं सोचता हू और यह समझनेकी बात है कि एक क्रिस्टी बहन---उसे आप जानते हैं---राजकुमारी अमृतकौर, वह तो हेल्थ मिनिस्टर (स्वास्थ्य-मत्री) है, जितने लोग कैंपोमे पडे है, हिंदू-मुसलमान, सबके लिए वह कुछ करना चाहती है। मगर उसे किसीका सहारा न मिले तो

वह क्या कर सकती है ? वह पक्षपात तो कर नही सकती। जो कुछ हो सकता है सबके लिए करती है। वह थोडी क्रिस्टी भी है, थोडी मुसलमान भी है, थोडी हिंदू भी, इसलिए उसके सामने सब धर्म एक समान है। वह चली गई और उसके साथ लडकिया भी गई, वे सब तो सेवाके लिए गई थी। सेवामे डर क्या ? लेकिन उन्होने मुझको सुनाया कि वहा जो हिंदू, सिख पडे है वे कहते है कि खबरदार, तुम मुसलमानोकी सेवा करनेके लिए जाती हो तो यहासे भागना होगा। जब मैंने यह सुना तो हँस दिया। वह कहनेकी बात थी, कुछ करना थोडे ही था। (प्रा० प्र० २७ ६ ४७)

: १० :

अरविन्द घोष

अरविन्दबाबूके बारेमे मैं कुछ भी कहनेमे असमर्थ हू। इतना तो अवश्य कबूल करना पडेगा कि अरविन्दबाबूकी छायाके नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियोमे ऐसे लोग है जिनके जीवनमे उनके सहवासके कारण बडे परिवर्तन हुए है। प्रत्येक अपने-अपने स्वभावके अनुसार अनुकरण करता है। (२८ ५ ३५को बोरसदसे लिखे एक पत्रसे)

...

अरविंदका आश्रम क्या चीज है यह भी तो आपको जानना चाहिए। यो तो वहा लोगोकी एक धारा चल रही है। वहा हमेशा काफी लोग जाते है। उनके काफी भक्त है, हिंदू क्या, मुसलमान क्या, किसीके लिए वहा घृणा तो है ही नही। सर अकबर हैदरी, अब तो वह मर गए,

प्रतिवर्ष वहा जाते थे, उसका तो मै गवाह हू । श्रीअरविंद तो दीनभक्त है, किसीसे मिलते नही है । ऊपरसे उनका दर्शन हुआ तो हुआ, नही हुआ तो नही, लेकिन लोग जाते थे । उनके पास यह रहते है । इनके दिलमे भी ऐसी कोई घृणा नही है । तो इतना तो हम सीख ले कि हमारे दिलमे क्यो घृणा होनी चाहिए । (प्रा० प्र०, २६ १०.४७)

: ११ :

लार्ड अर्विन

आज अर्विनपर हॉर्निमैनका लेख है । इसने उसे चालाक मौकापरस्त बताया है ।

[“यह चालाक अवसरवादी है । अपनी असगतताओ तथा सिद्धातो और नीतिके परिवर्त्तनोको सच्चेपनके आग्रह और सचाईके दभी स्वांगके मोटे पर्देके नीचे ढकना चाहता है ।

“वह एक बार साइमन कमीशनके हिमायतीके रूपमें खडा हुआ, फिर नरम दलवालोका विरोध देखकर झुक गया । एक बार उसने सविनयभगकी लडाईको लाठी और आर्डिनेंससे कुचलनेकी कोशिश की । बादमें काग्रेसका जोर देखा तो झुक गया । उसकी सचाईकी बातोसे अरुचि होती है । अब ये बद हो जाय तो ही अच्छा । अगर वह गोलमेज परिषदको फिर जिंदा करा दे तो जरूर उसकी सचाईके बारेमें विचार किया जायगा ।”]

मै इस विचारका नही । इस आदमीमे सचाई है, इस अर्थमे कि उसमे उखाड-पछाड नही, दावपेच नही । वह सीधी-सादी बात करनेवाला है । साइमनके समय उसे वह बात अच्छी नही लगती थी, मगर

उसने विचार कर लिया कि अनुदार दलके नाते जो नीति अपना ली गई है उसके खिलाफ न जाया जाय। उसके खरेपनकी भी हद है और वह हद यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अखण्ड रहे। उसे खतरा हो तो वह वचनभगका भी विरोध नही करेगा। वह ब्रिटिश साम्राज्यको ईश्वरकी एक अद्भुत कृति मानने वाला है—जैसा कि हरएक अनुदार दलवाला मानता है—और उसी दृष्टिसे वह सब चीजोको देखता है। मगर वह खरा हो या न हो इससे क्या सरोकार? हमारा तो वास्ता इस वातसे है कि हमे जो चाहिए वह मिलता है या नही। (म० डा०, भाग १, १९ ७ ३२)

: १२ :

अली-बन्धु

(मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली)

शौकतअली सरल और मिलनसार आदमी है, पर कट्टर है और किसीका उन्हे भय या दवाव नही है। (य० इ०, २३.६ २०)

मौ० शौकतअली तो वडे-से-वडे शूरवीरोमेसे एक है। उनमे वलिदान-की अद्भुत योग्यता है और उसी तरह खुदाके मामूली-से-मामूली जीवको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीव है। वे खुद इस्लामपर फिदा है, पर दूसरे धर्मोसे वे घृणा नही करते। मौ० मुहम्मदअली इनका दूसरा शरीर है। मौ० मुहम्मदअलीमे मैने वडे भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कही नही देखी। उनकी वुद्धिने यह वात तय कर ली है कि हिंदू-मुसलमान एकताके सिवा हिंदुस्तानके छुटकारेका कोई रास्ता नही।

उनका 'पैन इस्लामवाद' हिंदू विरोधी नही है। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोसे सगठित होकर टक्करे ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकाक्षापर कोई कैसे आपत्ति कर सकता है ? कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया था। मैने मौलानाका ध्यान उसपर खीचा। उन्होने उसी दम स्वीकार किया कि हा, वास्तवमे यह भूल हुई। कुछ दोस्तोने मुझे सूचना दी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत-परिषद्वाले भाषणमे कितनी ही बाते आपत्तिजनक है। यह भाषण मेरे पास है, परतु उसे पढनेका मुझे समय नही मिल पाया। यह मै जरूर जानता हू कि यदि उसमे सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखी हो तो मौ० शौकतअली ऐसे लोगोमे पहले व्यक्ति है जो उसको ठीक करनेके लिए तैयार रहते है।

यह बात नही कि अलीभाई दोषोसे खाली हो। मै खुद भी दोषोसे भरपूर हू। इससे इन भाइयोकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमे हिचकिचाता नही। अगर उनके अदर कुछ ऐब है तो उनसे ज्यादा गुण भी है और मै उनके ऐबोके रहते हुए भी उन्हे चाहता हू।

यदि हममेसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुचे हुए होते तो हमारे अदर झगडे होते ही क्यो ? पर हम सब अपूर्ण प्राणी है और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बाते खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर ध्येयके लिए मरना चाहिए। (हि० न०, १ ६.२४)

• • • •

जिस समय खेडाका आदोलन जारी था, उसी समय यूरोपका महा-समर भी चल रहा था। उसके सिलसिलेमे वायसरायने दिल्लीमे नेताओको बुलवाया था। मुझे भी उसमे हाजिर रहनेका आग्रह किया था। मै यह पहले ही लिख चुका हू कि लार्ड चेम्सफोर्डके साथ मेरा मैत्री-सबध था।

मैंने आमत्रण मजूर किया और दिल्ली गया, किंतु इस सभामे शामिल होनेमे मुझे एक सकोच था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसमे अली-भाइयो, लोकमान्य तथा दूसरे नेताओको नही बुलाया गया था। उस समय अली-भाई जेलमे थे। उनसे मै एक-दो वार ही मिला था। सुना उनके वारेमे बहुत-कुछ था। उनके सेवा-भाव, बहादुरीकी स्तुति सभी कोई किया करते थे। हकीम साहबके साथ भी मेरा परिचय नही हुआ था। स्व० आचार्य रुद्र और दीनबधु एड्रूजके मुहसे उनकी बहुत प्रशसा सुनी थी। कलकत्तावाले मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमे श्वेब कुरेशी और बैरिस्टर ख्वाजासे मेरी मुलाकात हुई थी। डाक्टर असारी और डाक्टर अब्दुर्रहमानसे भी परिचय हो चुका था। भले मुसलमानोकी सोहबत मै ढूढता था और उनमे जो पवित्र तथा देशभक्त समझे जाते थे उनके सपर्कमे आकर उनकी भावनाए जाननेकी मुझे तीव्र इच्छा रहती थी। इसलिए मुझे वे अपने समाजमे जहा कही ले जाते, मै बिना कोई खीच-तान कराए ही चला जाता था। यह तो मै दक्षिण अफ्रीकामे ही समझ चुका था कि हिंदुस्तानके हिंदू-मुसलमानोमे सच्चा मित्राचार नही है। दोनोके मन-मुटावको मिटानेका एक भी मौका मै योही जाने नही देता था। झूठी खुशामद करके या स्वत्त्व गवाकर किसीको खुश करना मै जानता ही नही था, किंतु मै वहीसे यह भी समझता आया था कि मेरी अहिंसाकी कसौटी और उसका विशाल प्रयोग इस ऐक्यके सिलसिलेमे ही होनेवाला है। अब भी मेरी यह राय कायम है। प्रतिक्षण मेरी कसौटी ईश्वर कर रहा है। मेरा प्रयोग आज भी जारी है।

इन विचारोको साथ लेकर मै बबईके बदर पर उतरा था। इसलिए इन भाइयोका मिलाप मुझे अच्छा लगा। हमारा स्नेह बढता गया। हमारा परिचय होनेके बाद तुरत ही सरकारने अली-भाइयोको जीते-जी ही दफन कर दिया था। मौलाना मुहम्मदअलीको जब-जब इजाजत मिलती, वह मुझे बैतूल जेलसे या छिंदवाडा जेलसे लबे-लबे पत्र लिखा

करते थे । मैने उनसे मिलने जानेकी प्रार्थना सरकारसे की, मगर उसकी इजाजत न मिली ।

अली-भाइयोके जेल जानेके बाद मुस्लिम-लीगकी सभामे मुझे मुसलमान भाई ले गये थे । वहा मुझसे बोलनेके लिए कहा गया था । मै बोला । अली-भाइयोको छुडानेका धर्म मुसलमानोको समझाया ।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ कालेजमे भी ले गये थे । वहा मैने मुसलमानोको देशके लिए फकीरी लेनेका न्यौता दिया था ।

अली-भाइयोको छुडानेके लिए मैने सरकारके साथ पत्र-व्यवहार चलाया । इस सिलसिलेमे इन भाइयोकी खिलाफत-सबधी हलचलका अध्ययन किया । मुसलमानोके साथ भी चर्चा की । मुझे लगा कि अगर मै मुसलमानोका सच्चा मित्र बनना चाहू तो मुझे अली-भाइयोको छुडानेमे और खिलाफतका प्रश्न न्यायपूर्वक हल करनेमे पूरी मदद करनी चाहिए । खिलाफतका प्रश्न मेरे लिए सहल था । उसके स्वतत्र गुण-दोष तो मुझे देखने भी नही थे । मुझे ऐसा लगा कि उस सबधमे मुसलमानोकी माग नीति-विरुद्ध न हो तो मुझे उसमे मदद देनी चाहिए । धर्मके प्रश्नमे श्रद्धा सर्वोपरि होती है । सबकी श्रद्धा एक ही वस्तुके बारेमें एक ही-सी हो तो फिर जगत्मे एक ही धर्म हो सकता है । खिलाफत-सबधी माग मुझे नीति-विरुद्ध नही जान पडी । इतना ही नही, बल्कि यही माग इग्लैडके प्रधानमत्री लॉयड जार्जने स्वीकार की थी, इसलिए मुझे तो उनसे अपने वचनका पालन कराने भरका ही प्रयत्न करना था । वचन ऐसे स्पष्ट शब्दोमे थे कि मर्यादित गुण-दोषकी परीक्षा मुझे महज अपनी अतरात्माको प्रसन्न करनेकी ही खातिर करनी थी । (आ० १९२७)

उन्हे (मौ० शौकतअलीको) उर्दू कवियोके बढिया वचन जबानी याद थे । जब वे ये वचन सुनाते थे और उस जमानेमे जो बातें करते थे, उस

वक्त भी वे ईमानदार थे। आज भी ईमानदार है। मुझे कभी ऐसा नही लगा कि वे झूठ बोलते या धोखा देते थे। आज वे मानते है कि हिन्दू विश्वासपात्र नही है और उनके साथ लड लेनेमे ही कौमका भला है। यह मनोदशा बुरी है। मगर कौमकी सेवा उनके दिलमे है, उनका कोई स्वार्थी हेतु नही है। ऐसे ईमानदार आदमी बहुत मौजूद है।

(म० डा०, भाग १, ४ ७ ३२)

स्व० मौलाना शौकतअलीके स्मारकके बारेमे मैंने कई तजवीजे पढी है। ज्योही मुझे मौलानाकी मृत्युके बारेमे मालूम हुआ, जिसकी कि अभी बिल्कुल ही आशा नही थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमेसे एक मित्रने लिखा है

". . मैं यह जानता हू कि मौ० शौकतअली अपने खास ढंगसे सच्चा हिंदू-मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चितित थे। स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिरकार पूरा हो गया, जितनी शाति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते है, जिन्हें कि इसमें सदेह हो, लेकिन मौलानाको और उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मैं उन्हें जानता था, मैं भरोसेके साथ इस बातकी ताईद कर सकता हूं।"

कभी-कभी जो वे जोशमे आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके बावजूद मौलानाके दिलमे एकता और शातिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोमे बडे मोहक ढगसे बोलते व काम करते थे। मुझे इसमे कोई शक नही कि उनकी यादगारमे हिंदू और मुसलमान दोनो ही कौमोका एकताके लिए हुआ सयुक्त निश्चय ही सबसे सच्चा स्मारक होगा। खाली कागजी एकताका निश्चय नही, बल्कि दिली एकता-

का, जिसका आधार शक और वेऐतबारी नही, वल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमे नही चाहिए और इस एकताके विना हिंदुस्तानके लिए सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नही हो सकती।

(ह० से०, १७ १२ ३८)

आप लोगोने जो इतनी शाति रखी इसके लिए आपको धन्यवाद है। पहले इतनी शाति नही हुआ करती थी। इससे साफ है कि पिछले तीन दिन जो हुआ उससे हमने धर्म नही खोया है। यदि आदमी शातिसे न रहे, कभी अपने विचारोको भीतरसे न देखे, जीवनभर दोड-दगलमे ही रहे और हर वक्त गरम वना रहे तो वह उस शक्तिको पैदा नही कर सकता, जिसे शौकतअली साहव 'ठडी ताकत' कहा करते थे। मुहम्मदअली साहव भी कहते थे कि हमे अग्रेजोसे लडकर स्वराज्य लेना है और हमारी लडाई होगी तकलीकी तोपोसे और कुकुडियोके गोलोसे। वह तो जितना विद्वान था, उतना ही कल्पनाए दौडानेवाला था। (प्रा० प्र०, ५ ४ ४७)

: १३ :

हाजी वजीर अली

हाजी वजीर आधे मलायी कहे जा सकते है। उनके पिता भारतीय मुसलमान थे और माता मलायी थी। उनकी मादरी जवानको डच कह सकते है, पर उन्होने अग्रेजी शिक्षा भी यहाँतक प्राप्त कर ली थी कि वे अग्रेजी और डच दोनो अच्छी तरह वोल सकते थे। अग्रेजीमे भाषण करते वक्त उन्हे कही भी ठहरना नही पडता था। अखवारोमे पत्र वगैरह लिखने-की आदत भी उन्होने कर ली थी। ट्रान्सवाल ब्रिटिश एसोसियेशनके

वे मेम्वर थे और वहुत दिनसे सार्वजनिक हलचलोमे भाग लेते आए थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह वोल सकते थे। एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था और उससे उनकी प्रजाका वडा विस्तार था।

(द० अ० स०, पृष्ठ १७१)

: १४ :

सी० पी० रामस्वामी अय्यर

मैने अखवारोमे सर सी० पी० रामस्वामीका ऐलान देखा। वे वडे विद्वान व्यक्ति है। ऐनी वेसेटके शिष्य रहे है। जव मै हरिजन-यात्रामे था तव उनके निमत्रणपर उनके यहा त्रावनकोरमे मेहमान वनकर गया था। लडने नही, पर मिलकर काम करनेको गया था। उनसे यह वात सुनकर अच्छी नही लगती। अगर अखवारमे गलती हो तो वे मुझे माफ करे, सही हो तो मेरी वातपर गौर करे। उन्होने कहा है कि पद्रह अगस्तसे जव हिंदुस्तान स्वतत्र होगा तव त्रावनकोर आजाद हो जायगा। और उनकी वह आजादी ऐसी है कि आजसे ही त्रावनकोरकी स्टेट काग्रेसके लिए सभावदी कर दी गई है। खवर यहातक है कि सी० पी० रामस्वामीने उन लोगोको त्रावनकोर छोडकर चले जानेके लिए कहा है जो त्रावनकोरकी स्वतत्रताकी मुखालफतमे हो। और यह आज्ञा वे सज्जन दे रहे है जो खुद त्रावनकोरके नही, वल्कि मद्रासके रहनेवाले है। वे किस तरह ऐसा कहते है।

व्रिटिश राजमे आजतक त्रावनकोरको अग्रेज शाहशाहीको सलामी देनी पडती थी तो अव हिंदुस्तानके प्रजातत्र सघमे वह मनमानी कैसे कर सकता है? वह अव हमारा राज्य है यानी भारतके प्रजाकीय राज्यको उसे (त्रावनकोरको) अपना ही राज्य समझना चाहिए। मैने वताया है

कि प्रजाकीय राजमे राजा और मेहतरकी कीमत एक-सी रहनेवाली है। मनुष्यके नाते दोनोकी कीमत एक ही रहेगी, पर दोनोकी बुद्धिमत्तामे भेद हो सकता है। अगर त्रावनकोरके महाराजाके पास बडी अकल है तो उन्हे उसे लोगोकी सेवामे लगाना चाहिए। अगर प्रजाको कुचलनेमे वे अपनी बुद्धि दौडाते है तो उनकी वह अकल फिजूलकी है। अपनी सारी रैयतको कुचलकर और मार डालकर क्या त्रावनकोर नरेश निरी जमीन-पर राज करेगे? (प्रा० प्र०, १३.६ ४७)

कल मैने त्रावनकोरके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी बात आप लोगोको सुनाई थी। आजकल तो तार और रेडियोका जमाना है। उनके कानोतक मेरी वह बात पहुच गई और उन्होने एक लवा-चौडा तार मेरे पास भेज दिया है। उन्होने बहुतसे खुलासे किये है, पर त्रावनकोर-काग्रेस-कमेटीको सभा करने और जुलूस निकालनेकी इजाजत नही दी है। उसके बारेमे वे कुछ नही बोले है। इसमे मुझे बुराई नजर आती है। यह लक्षण अच्छे नही है। वे कहते है कि त्रावनकोर तो सदासे आजाद रहा है।

सर सी० पी० रामस्वामी तो मेरे दोस्त रहे है, सब बात सही, लेकिन मेरा लडका ही क्यो न हो, सही बात कहनेसे मै क्यो रुकू? हिंदुस्तान जब आजाद होता है तब अगर वे यही कहते है कि त्रावनकोर आजाद है तो इसका मतलब यह है कि वे आजाद हिंदसे लडना चाहते है।

मै तो उनसे कहूगा कि आप तख्तपरसे नीचे उतरिए और त्रावन-कोरके लोगोके खादिम बनकर रहिए। जब अग्रेजोने आपसे एक बार राज्य छीन लिया और कुछ पैसे लेकर तथा अपनी रैयतको कुचलनेका आपको अधिकार देकर वह राज आपको लौटा दिया तो उसमे इतनी फख्रकी बात क्या थी? फख्रकी बात तब है जब आप जनताको अपना मालिक माने। वैसे तो हिदुस्तान गिरा नही है और अगर वह अपनी

परेशानीमे पडा है तो यह शराफतकी बात नही है कि आप जो आदमी गिर पडा है उसको ऊपरसे लात धर दे। हिंदुस्तानके एक-चौथाई और तीन-चौथाई ऐसे दो टुकडे होते है तो उन टुकडोकी बातसे आपका कोई सबध नही। आप शरीफ बने और समझे। (प्रा० प्र०, १४ ६ ४७)

आज फिर मेरे पास त्रावनकोरके दीवान सर रामस्वामीका लबा-चौडा तार आया है, जिसमे मुझे समझानेकी कोशिश की गई है कि उनके साथ वहाके ईसाई आदि भी है। पर ऐसे तारसे मुझे बुरा लगता है। कडवी चीजको मीठी बनानेसे वह मीठी नही बन जाती। मूलसे ही इनकी बात बुरी है। 'आ जाओ, हम तो आजाद है।' 'आप किससे आजाद है?' रैयतसे? लोग इस तरह भारतसे आजाद होकर करेगे क्या? आप इस तरह घुमा-फिराकर बात न करे। सीधी बात करे कि हिंदुस्तानके साथ हम है, तब ही आप अपने राजाके प्रति सच्चे वफादार है, नही तो बेवफा है। (प्रा० प्र०, १७ ६ ४७)

सर सी० पी० कहते है कि गाधी और काग्रेस सरहद्दी सूबेको तो आजादी देनेको तैयार है, परतु त्रावनकोरको नही। इतना बडा विद्वान होकर भी वह कितनी गलत बात करता है। यदि त्रावनकोर अलग हुआ तो हैदराबाद, काश्मीर और इदौर आदि सब अलग हो जायगे। इस तरहसे तो हिंदुस्तानके अनेक टुकडे हो जायगे। इसके अलावा फ्राटियरके खान हिंदुस्तानसे पृथक् नहीं होना चाहते। वे कहते हैं कि हम पाकिस्तानमें नही जायगे। तब फिर क्या वे हिंदुस्तानमे हिंदुओकी गुलामी करेगे? उनपर काग्रेससे पैसा खानेका इल्जाम लगाया जाता है। काग्रेस यदि इस तरहसे किसीको पैसा देकर अपनी तरफ करे तो वह अबतक जिदा नही रहती। बादशाह खानने हमे विश्वास दिलाया है कि हिंदुस्तान पहले अपना विधान बना ले। इस दोरानमे वह किसी फैसलेपर पहुच जायगे। मगर रामस्वामी जो कहते है वह बिल्कुल गलत है। फ्राटियरमे

वहा रहनेवाली प्रजाकी आवाज है, जबकि त्रावनकोरमे तो एक राजा और उसका सचिव ही सारी प्रजाकी तरफसे बोल रहा है।

आजकी हालतमे राजा और प्रजा दोनोका एक हक है, यह मेरा दावा है। फ्राटियरकी मिसाल देकर सर सी० पी० लोगोकी आखोमे धूल नही झोक सकते। इस तरहसे न तो धर्म रहता है और न कर्म रहता है। मै तो रामस्वामीसे यही कहूगा कि सही चीज यही है कि त्रावनकोर राज्य विधान-परिषद्मे आ जाए। (प्रा० प्र०, २४ ६ ४७)

• • •

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारतमे तो हरिजनोके लिए इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आध्रके सब बडे-बडे मदिर हरिजनोके लिए खोल दिये गये, परतु युक्तप्रातका क्या हुआ? युक्त-प्रातमे हरिद्वार पडा है। क्या हरिद्वारके मदिरोमे अछूत जा सकते है? दक्षिण भारतकी त्रावनकोर रियासतमे तो बहुत पहलेसे ही यह सब हो गया था। वहाके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर आज तो हमसे बिगडे हुए है, और बिगडे हुए है भी या नही, यह आज तो मै नही जानता। मगर तब उन्होने वहाके महाराजाको समझाकर अबसे बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासतमे अछूतपनको मिटा दिया था। युक्तप्रातमे हरिद्वारके अलावा काशी विश्वनाथ भी है जहा गगाजीमे स्नान करनेसे मोक्ष मिलता बताया जाता है। वहाके मदिरोमे हरिजन जा सकते है, ऐसा मै नही कह सकता, परतु मै तो यही कहूगा कि जहा हरिजन नही जा सकते वे मदिर नापाक है। (प्रा० प्र०, १९.७ ४७)

: १५ :

जनरल यू आंग-सांग

ब्रह्मदेश भी हिंदुस्तानकी तरह आजाद हो रहा है। वहाके नेता जनरल यू आग-सागने आधुनिक वर्माको जन्म दिया और उसे आजादीके दरवाजेपर लाकर छोड दिया। वह सत्याग्रही नही था तो उससे क्या हुआ ? वह एक वहादुर लडाका था और उसीके फलस्वरूप आज वर्मा आजाद होने जा रहा है। एक सगस्त्र गिरोहने उनको और उनके चार अन्य साथियोको कत्ल कर दिया, यह कोई छोटी वात नही है। हम चाहे उनसे कितनी ही दूर हो, मगर हमारे लिए यह वडे रजकी वात है। अगर ऐसी घटनाए होती रही तो दुनियाका क्या हाल होगा ? हत्यारे सचमुच लुटेरे थे, ऐसा मुझे नही लगता। मै वर्मामे काफी रहा हू। रगून और माडले आदि स्थान सव मेरे देखे हुए है। वहा वृद्ध-धर्म चलता है। वर्माके लोग अधिकाश वुद्ध-वर्मको मानते है। जहा बुद्ध-धर्म प्रचलित है वहा ऐसा खून-खच्चर क्यो ? इन हत्याओमे लुटेरपन नही, वल्कि उनके पीछे कुछ पार्टीवाजी रही है। इस तरहकी लडाइयोने दुनियाका सत्यानाश कर दिया है। इस तरहसे तो जो हमारे मुखालिफ है वे आकर हमारा खून करने लगे तो कैसे काम चलेगा। वर्मा जव आजादीके दरवाजेमे दाखिल हो गया है तव ऐसा होना वहुत दु खदायी वात है। हम ऐसे जाहिल क्यो वन जाते है ?

मुझे आशा है कि हिंदुस्तान इससे सवक लेगा, क्योकि यह न केवल वर्माके लिए, वल्कि सारे एशिया और ससारके लिए एक दु खद घटना हुई है। हम सव यह प्रार्थना करे कि हे भगवान, वर्माके जो लोग है वे हमारी ही तरहसे आजादीके लिए तडप रहे है, उनको तू इस दु खमे सान्त्वना दे और मृत व्यक्तियोके परिवारोको शोक सहन करनेकी शक्ति

दे ! जिन लोगोने खून किया है उनके दिलोकी भी तवदीली कर। (प्रा० प्र०, २०.७ ४७)

: १६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

काग्रेसमे अनेक विचारक पडे हुए है। मौलाना स्वय एक महान् विचारक है। वह तीव्र बुद्धिके है। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी, फारसीके अध्ययनमे उनके जोडका विद्वान मिलना कठिन है। अनुभवने उन्हे सिखाया है कि अहिसासे ही हिंदुस्तान आजाद होगा। (ह० से०, १० ८.४०)

: १७ :

श्रीनिवास आयंगर

श्री श्रीनिवास आयगरके आगामी काग्रेसके लिए सभापति चुने जानेकी वात पहलेसे ही पक्की थी। काग्रेस कमेटिया एक कट्टर स्वराजीको ही चुननेके लिए वाध्य थी। श्रीनिवास आयगर एक लडैये है और साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी है। वे वेसब्र है और उनका वेसब्रीसे भरा हुआ जोश उनको प्राय वडे गहरेमे ले उतारता है, जहाकि मामूली आदमीकी गति नही। वे किसी काममे विना दुवारा सोचे ही कूद पडते है। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुना जाना ऐसे सकटके अवसरपर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा। लेकिन श्री आयगर-

को अपनेमे तथा अपनी शक्तिमे विश्वास है। यह वात सर्वविदित है कि अपनेमे विश्वास रखनेवालोकी ईश्वर सहायता करता है। हम आशा करे कि ईश्वर श्री आयगरकी सहायता करेगा। श्री आयगरको उस तमाम मददकी आवश्यकता है, जो कि काग्रेसवाले उन्हे दे सकते हो। हमने निष्क्रिय भक्तिकी विद्या तो सीख ली है, लेकिन अव समय आ पहुचा है, जवकि हमको सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए। अगर काग्रेस-वाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावोका, जिनके स्वीकृत किये जानेमे उनका हाथ रहता है, पालन करेगे तो श्री आयगरका काम कठिन होते हुए भी आसान वन जायगा। जिस सस्थाको उन्नति करना है उसके सदस्योको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए। मै श्री आयगरको उस वडी प्रतिष्ठाके लिए वधाई देता हू, जो कि उनको मिली है और मै उन साधारण कठिनाइयोपर उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू, जो कि उनके सामने है। मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उन्हे उन कठिनाइयोपर विजय पानेकी वृद्धि और वल दे। (हि० न०, १६ ९ २६)

: १८ :

एस० रंगास्वामी आयंगर

'हिंदू'के भूतपूर्व सपादक श्री एस० रगास्वामी आयगरकी मृत्यु हो गई है। उनके कुटुव तथा 'हिंदू'के कर्मचारियोके साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमे मै भी आदरपूर्वक शरीक होता हू। उनकी मृत्यु श्री कस्तूरी रगा आयगरकी मृत्युके कुछ ही वाद होनेसे सपादक-ससारकी भारी क्षति हुई है। (हि० न०, २८ १० २६)

: १६ :

मीर आलम

एक शख्स मीर आलम था। सरहदी गांधीके मुल्कका। जैसे ये पहाडके-से है, वह उनसे भी ऊचा था। पहले वह मेरा मित्र था। पर पठान तो भोले ही होते है। इसी कारण वे बादशाह है। उसको किसीने बहका दिया कि गांधीने पद्रह हजार पौड जनरल स्मटससे ले लिए है और कौमको बेच डाला है। बस, एक दिन वह मीर आलम मेरा दुश्मन बनकर आया। उसके हाथमे बडी-सी लाठी थी और उसपर सीसेकी मूठ लगी थी। उसने ठीक मेरी गर्दनपर वह लाठी मारी। मै गिर पडा। नीचे पत्थरका फर्श था। मेरे दात टूट गए। ईश्वरको मजूर था, इसलिए मै बच गया। मीर आलमको दो-तीन अग्रेजोने, जो उस रास्तेसे जा रहे थे, पकड लिया, लेकिन मैंने उसे यह कहकर छुडवा दिया कि वह बेचारा दूसरेके धोखेमे आ गया कि मै लालची हू और इसपर फौजी पठानका खून खौल उठे और वह मारनेको उतारू हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नही है। इस तरहसे मीर आलमको मैंने कैद कर लिया। वह मेरा पक्का दोस्त बन गया। (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: २० :

अरुणा आसफअली

श्रीमती अरुणा मेरी लडकी है, क्या हुआ कि उन्होने मेरे घरमे जन्म नही लिया या कि वह विद्रोही बन गई है। जब वह छिपकर रहती थी

तव भी मै कई वार उनसे मिला हू । मैने उनकी वहादुरी, नये-नये रास्ते खोजनेकी शक्ति और गहरे देश-प्रेमकी सराहना की है । पर मेरी सराहना इससे आगे नही वढी । मैने उनके छिपकर काम करनेको पसद नही किया । (ह० से०, ३ ३ ४६)

: २१ :

डॉ. मुहम्मद इक़बाल

इकवालने कहा—"मजहव नही सिखाता आपसमें वैर करना।" इकवालने ऐसा कहा उस वक्त वह लदनमे रहता था। वह वडा कवि था। उस वक्त वह गोलमेज कान्फ्रेसमे आया हुआ था। वहा उसके लिए सवने एक खाना किया तो मुझको भी वुलाया गया। मै चला गया। उसने कहा कि मै तो व्राह्मण हू। क्यो व्राह्मण हू ? क्योकि मेरे वाप-दादे व्राह्मण थे। कहाके ? काश्मीरके। मै तो काश्मीरका हू। व्राह्मण हू और अव मै इस्लाममे आया हू। अभी नही, वहुत पीछे हम इस्लाममे आए। तो भी हममे व्राह्मण खून पडा है और इस्लामका तमद्दुन (सस्कृति) हमारेमे पडा है। तो इकवालने कहा—"मजहव नहीं सिखाता आपसमें वैर करना।" पीछे उसने दूसरा-तीसरा भी लिखा है। वह दूसरी वात है। इकवाल तो चले गए, लेकिन हम इतना तो सीख ले कि हमको हमारा धर्म नही सिखाता है कि हम किसीसे वैर करे। इसलिए मै कहूगा कि हम इन्सान वने। इन्सान वने तो हम हिंदुस्तानको ऊचा ले जाते है। (प्रा० प्र०, ३० ९ ४७)

: २२ :

जयचंद्र इंद्रजी

'नवजीवन' के एक पाठक खबर देते है

"गुजरातके प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र-भक्त श्री जयकृष्ण इद्रजीका ता० ३ को कच्छमें देहात हो गया। वह अपने पीछे एक विधवा छोड़ गये हैं। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

पोरवदरमे श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था और उसी समय अपने विपयमे सर्वोपरि वननेकी उनकी दृट इच्छा और वैसी ही उनकी सादगी देखकर मै आश्चर्यचकित वना था। वनस्पतियोकी खोजमे वह पर्वतीय प्रदेशोमे कई वार घूमे थे और अपने विशाल अनुभवके फलस्वरूप एक सुदर पुस्तक भी लिख गये है। अपने घर हीमे उन्होने अनेक प्रकार-की वनस्पतियोका एक सग्रहालय वना रक्खा था, जिसे हर मिलनेवालेको वह अभिमानके साथ वताया करते थे। उन्हे वनस्पतिकी शोध-खोजके सिवा और कोई वात ही नही सूझती थी। अपनी इस धुनमे वह इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे। यही वजह थी कि मै उन्हे एक आदर्श विद्यार्थी मानता था। कच्छकी यात्रामे मै फिर उनसे मिला था। वहा भी उनपर वही धून सवार थी। नये-नये पौधे लगानेका शौक वुढापेमे घटनेके वदले और भी वढ गया था। इस तरह अपने विपयमे अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ है। श्री जयकृष्ण इद्रजी इनमेसे एक थे। वह तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निवटकर गये है, इसलिए उनकी आत्मा शात ही है। आइए, हम सव उनकी एकाग्रता और उनके आत्म-विश्वासका अनुकरण करे। (हि० न०, २६ १२ २९)

: २३ :

इमाम साहब

गिरफ्तार किये गए लोगोमे हमारे इमाम साहब भी थे। उनकी कैदका आरभ चार दिनमे हुआ था। वह फेरीमे पकडे गये। उनका शरीर ऐसा नाजुक था कि लोग उन्हे जेल जाते हुए देखकर हँसते थे। कई लोग आकर मुझसे कहते—"भाई, इमाम साहबको इसमे शामिल न करो तो अच्छा हो। वह कौमको लज्जित करेगे।" मैने इस चेतावनी-पर जरा भी ध्यान नही दिया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-जोख करनेवाला मै कौन होता हू? यह सब सत्य है कि इमाम साहब कभी नगे पैर नही चलते थे। शौकीन थे। उनकी स्त्री मलायी महिला थी। घर बडा सजा हुआ रखते और बिना घोडा-गाडी लिये कही न जाते। पर उनके दिलको कौन जानता था? यही इमाम साहब चार दिनकी सजा भुगतकर फिर जेलमे गये। वहा एक आदर्श कैदीकी तरह रहे। पसीनेकी कमाई खाते, और उन्ही नित्य नये पकवान खानेकी आदत रखने-वाले इमाम साहबने मक्काके आटेकी लपसी पीकर खुदाका एहसान माना! वह हारे तो जरा भी नही। हा, उन्होने सादगी जरूर अख्तियार कर ली। कैदी बनकर पत्थर फोडे, झाड्-बुहारी की और अन्य कैदियोकी बराबरीमे एक कतारमे खडे रहे। अतमे फिनिक्समे पानी भरा और छापाखानेमे कपोजिग तक किया। फिनिक्स आश्रममे रहनेवालोके लिए कपोजिग सीख लेना अनिवार्य कर्तव्य था। उसे इमाम साहबने पूरा किया। आजकल भारतवर्षमे भी वह अपना हिस्सा दे रहे है, पर ऐसे तो कई लोग जेलमे शुद्ध हो गये। (द० अ० स०, १९२५)

•

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुब अनन्य भक्तिसे आश्रममे

वसा। उन्होने मृत्युसे हमारे और मुसलमानोके बीच न टूटनेवाली गाठ बाध दी है। इमाम साहब अपने आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमे आश्रममे आए। (य० म०, ३०.५.३२)

: २४ :

उर्मिला देवी

बगालमे आज यह आग किसने सुलगाई? श्रीमती वसती देवी और उर्मिला देवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरी। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबधु-दासके प्रचड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नही दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहासे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नही हो सकती, क्योकि स्त्री क्या है, वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममे जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाडको भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियोका बडा दुरुपयोग किया है। जहा तक हो सके हमने उनकी ओर ध्यान नही दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद! यह चरखा उनके जीवनको बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे-सहे तमाम नेताओको जेलका सौभाग्य प्राप्त करा दे, फिर देखिए कि भारतकी देविया किस तरह मैदानमे आती है और पुरुषोके अधूरे कामको अपने हाथोमे लेकर उनसे भी अधिक अच्छाई और खूबीके साथ उनका सचालन करती है! (हि० न०, २५.१२.२१)

: २५ :

सी० एफ० एंड्रूज

श्री एड्रूजका स्वयनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी वन पडे वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवाका रूप अक्सर शाति स्थापित करना होता है। अभी उन्होने उडीसामे दु खी और पीडित मनुष्यो और ढोरोके वीच और ववईके कष्ट-पीडित मिल-मजदूरोके सवघमे अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हे दक्षिण अफ्रीकामे जाकर वहाके भारतीयोकी, जो कष्टमे पडे हुए है, मदद करनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहा केवल भारतीयोकी ही मदद न करेगे, यूरोपियनोकी भी सहायता करेगे। उनमे न द्वेष है, न क्रोध। वे हिदुस्तानियोके प्रति दया दिखानेको नही कहते है। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते है। श्री एड्रूज दक्षिण अफ्रीकाके लिए कोई नये नही है। दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञ उन्हे जानते है और वे इस वातको स्वीकार करते है कि वे यूरोपियनोके भी उतने ही मित्र है जितने कि हिदुस्तानियोके। भारतीयोका प्रश्न वडी विकट समस्या हो गया है। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोके लिए तो वह जीवन-मरणका प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसगपर श्री एड्रूजके उनके पास होनेसे उन्हे वडी शाति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्रके प्रयत्नोका अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। (हि० न०, १२ ११ २५)

यूनियन सरकारके भारतीयोके खिलाफ कानून वनानेके विलका चाहे कुछ भी परिणाम क्यो न आवे, इस प्रश्नको हल करनेमे नि सदेह श्री एड्रूजका हिस्सा सवसे वढकर ही रहेगा। उनका श्रमहीन उत्साह, उनकी नित्य सावधानी और सुशील समझानेकी शक्तिने हमे सफलताकी आशा

दिलाई है। वे स्वय यद्यपि आरभमे वडे निराश थे, परतु अब उन्हे आशा वधी है कि वह विल, सभव है, कम-से-कम इस वैठकके लिए तो मुलतवी रहे। वे शातिके साथ पत्र सपादकोसे और सार्वजनिक कार्यकर्ताओसे मुलाकात कर रहे है। वे पादरियोकी सहानुभूति प्राप्त कर रहे है और इस नए कानूनका उनसे जोरदार शब्दोमे विरोध करा रहे है। इस प्रकार उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोकी रायको, जो इस कानूनके पक्षमे थी, हिला दिया है। इस प्रश्नका उनका अध्ययन गहरा होनेके कारण दक्षिण अफ्रीकाके कुछ नेताओको सतोपकारक रीतिसे वे यह समझा सके है कि उस कानूनसे स्मट्स-गाधी समझौतेका स्पष्ट भग होता है। उन्होने विखरी हुई भारतीय शक्तियोको भी इस विलपर आक्रमण करनेके लिए इकट्ठा किया है। इस प्रकार श्री एड्रूजने भारतकी और मनुष्य-समाजकी सेवामे वडी अच्छी वृद्धि की है। अग्रेज और भारतीयोके सवधको मधुर वनानेके लिए जितना प्रयत्न श्री एड्रूजने किया है उतना आज किसी भी जीवित अग्रेजने नही किया है। उनकी एक आशा इन दोनो राष्ट्रोके लोगोको एक ऐसे अभेद्य वधनमे वाध देना है, जिसका आधार परस्परका आदर और स्वतत्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो। (हि० न०, ४ २ २६)

•

कविवर, श्रद्धानदजी और श्री सुशील रुद्रको मै एड्रूजकी 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीकामे वह इन तीनोकी स्तुति करते हुए थकते नही थे। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे स्नेह-सम्मेलनकी वहुत-सी स्मृतियोमे यह सदा मेरी आखोके सामने नाचा करती है कि इन तीन महापुरुषोके नाम तो उनके हृदयमे और ओठोपर रहते ही थे। सुशील रुद्रके परिचयमे भी एड्रूजने मेरे वच्चोको ला दिया था। रुद्रके पास कोई आश्रम नही था, उनका अपना घर ही था, परतु उस घरका कब्जा उन्होने मेरे इस परिवारको दे दिया था। उनके वाल-वच्चे इनके साथ

एक ही दिनमे इतने हिल-मिल गये थे कि ये फिनिक्सको भूल गये। (आ० १९२४)

.. ..

एंड्रूजको लेलो। यह बात नही कि दिल-ही-दिल मे एंड्रूज भी यह न मानते हो कि अग्रेजी राज्यने इस देशका कुछ-न-कुछ भला ही किया है।
(म० डा०, भाग २, ११३३)

यहा आनेपर मेरे जीमे जो सबसे प्रबल भावनाए उठ रही है वे दीनबधुके विषयमे है। शायद आप लोग न जानते होगे कि कल सुबह गाडीसे उतरते ही कलकत्तेमे पहला काम मैने यह किया कि उनसे अस्पतालमे जाकर मिला। गुरुदेव विश्वकवि है, पर दीनबधुमे भी कवि की-सी भावना और प्रकृति है। वे आज यहा होते तो उन्हे कितनी खुशी होती और गुरुदेवके साथ इस मुलाकातके अवसरपर एक-एक शब्द, एक-एक सकेत और एक-एक हरकतका वे किस तरह रसपान करते और उन्हे अपने स्मृति-भडारमे जमा करते। किंतु ईश्वरकी इच्छा और ही थी। आज वे कलकत्तेमे रोगशैय्यापर पडे है—पूरी तरह बोल भी नही सकते। मै चाहता हू कि आप सब लोग मेरी इस प्रार्थनामे शामिल हो कि भगवान् उन्हे जल्दी ही हमे वापस देदे और हर हालतमे उनकी आत्माको शाति प्रदान करे।
(ह० से० ३०.३.४०)

.

चार्ली एंड्रूजको जितना मै जानता था उससे अधिक शायद और कोई नही जानता। गुरुदेव तो उनके लिए गुरु-तुल्य थे। पर हम जब दक्षिण अफ्रीकामे एक-दूसरेसे मिले तो भाई-भाईकी तरह मिले और अत तक वैसे ही बने रहे। हम दोनोमे कोई भेद नही था। हमारा सबध एक हिंदुस्तानी और एक अग्रेजके बीच मित्रताका नही, बल्कि सत्यके दो जिज्ञासुओ और सेवकोके बीच न टूटनेवाला एक प्रेम-बधन था। लेकिन यहा मै

एड्रूजके सस्मरण नही लिख रहा हू, जो कि बहुत पवित्र है।

ऐसे समय, जबकि एड्रूजकी स्मृति ताजी है, भारतीयो और अग्रेजो-का ध्यान मै उस पवित्र विरासतकी ओर आकर्षित करता हू जिसे वे छोड गये है। इगलैण्डके प्रति किसी भी अग्रेज देशभक्तसे कम प्रेम उनके हृदयमे नही था। इसी प्रकार किसी भारतीयके देश-प्रेमसे कम प्रेम भारतके प्रति उनके हृदयमे नही था। उन्होने अपनी रुग्ण-शैय्यासे, जिसपर वे सदाके लिए सो गये, यह कहा था—"मोहन, स्वराज आ रहा है।" यदि अग्रेज और भारतीय दोनो मिलकर चाहे तो वह जरूर आ सकता है। वर्तमान शासको और जिनकी राय वजनदार मानी जाती है ऐसे अग्रेजोके लिए एड्रूज कोई अजनबी नही थे। इसी प्रकार राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाला कोई भारतीय ऐसा नही जो उन्हे न जानता हो। इस समय मै अग्रेजोके उन बुरे कारनामोको याद नही करना चाहता जो उन्होने किए है। उन्हे हम भूल जा सकते है, पर एड्रूजने जो वीरता-पूर्ण प्रयत्न किए है उन्हे जबतक इगलैण्ड और भारत जीवित है भुलाया नही जा सकता। अगर हम एड्रूजसे स्नेह करते है तो हम अपने हृदयमे उन अग्रेजोके प्रति घृणाका भाव न आने देगे जिनमेसे एड्रूज महान् और सर्वोत्तम थे। भले अग्रेजो और भले भारतीयोके लिए यह सभव है कि वे एक-दूसरेसे मिले और तबतक अलग न हो जबतक कि दोनोके लिए सतोषजनक रास्ता न ढूढ निकाले। एड्रूज जो काम छोड गये है वह पूरा करनेके योग्य है। जब मै एड्रूजके दयापूर्ण चेहरे और उनके उन अगणित प्रेम-पूर्ण प्रयत्नोकी याद करता हू जो भारतको ससारके राष्ट्रोके बीच स्वतन्त्र पद पानेके लिए उन्होने किये तो मेरे मनमे यही विचार रहा है।

(ह० से०, १३.४.४०)

सी० एफ० एड्रूजकी मृत्युके रूपमें न केवल भारतने, बल्कि मानवताने अपनी एक सच्ची सतान और सेवकको खो दिया। फिर भी उनकी मृत्यु पीडासे छुटकारा और ससारमे जिस मिशनको लेकर वे आये थे, उसकी

पूर्ति ही कही जायगी। वे उन हजारो लोगोके हृदयमे जीवित रहेगे, जिन्होने उनकी रचनाओंको पढकर या उनके वैयक्तिक सपर्कमे आकर कुछ भी लाभ उठाया है। मेरी रायमे तो चार्ली एड्रूज महान् और सर्वोत्तम अग्रेजोमेसे एक थे और चूकि वे इगलैण्डकी एक अच्छी सतान थे, भारतकी भी अच्छी सतान हुए। जो कुछ उन्होने यहा किया, सब मानवता और प्रभु ईसामसीहके लिए ही। अबतक मुझे सी० एफ० एड्रूजसे उत्तम मनुष्य या ईसाई नही मिला है। भारतने उन्हे 'दीनबधु' की उपाधि दी जिसके वे सभी तरहके दीन-दलितोके सच्चे मित्र होनेके कारण पूर्ण अधिकारी थे। (ह० से०, पृष्ठ १०२)

जैसा सदा होता है, इस स्मारकके लिए भी अपने आप ही चदा नही आयेगा। उसके लिए सगठनकी जरूरत पडेगी। सबसे वाछनीय तो यह है कि दीनबधुके बहुसख्यक भक्तोको यह काम खुद अपने ऊपर उठा लेना चाहिए। इसलिए यह प्रकाशित करते हुए आनद होता है कि आगरामे यह काम वहाके छात्र करने जा रहे है। इससे अच्छा और क्या हो सकता है? उन्हे इस सग्रहके लिए, जो आखिरकार एक छोटी-सी रकम है, सर्वत्र सगठन करना चाहिए। चार्ली एड्रूज बहुत ऊचे दर्जेके शिक्षा-शास्त्री थे। शिक्षाशास्त्रीके रूपमे ही वह अपने मित्र और प्रधान प्रिंसिपल रुद्रकी मदद करने आए थे। अपने अतिम गृहके रूपमे उन्होने अतर्राष्ट्रीय ख्यातिकी एक शिक्षण-सस्थाको चुना था। उसके निर्माणके लिए उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अगर एड्रूजके घनिष्ट सपर्कका खयाल छोड दिया जाये तो भी शातिनिकेतन खुद छात्र-ससारकी भक्ति पानेके योग्य है। इसलिए मै आशा करता हू कि हिंदुस्तानके छात्र चदा इकट्ठा करनेके काममे अग्र भाग लेगे। इनके बाद दीन जनोकी बारी आती है जिन्होने कि एड्रूजकी सेवाओसे विशेष रूपसे फायदा उठाया है। यदि यह पाच लाख, हजारो छात्रो और दीन जनोकी भेटोसे पूरा हो जाए तो बहुत

बडी, बहुत उचित, बात होगी, बनिस्बत इसके कि दीनबधुके कुछ ऐसे खास धनी मित्रोके दानसे उसकी पूर्ति कर ली जाए, जो उनके निकट सपर्कमे आए थे और जिन्हे उनके महत्त्वकी पूरी जानकारी थी।

(ह० से०, १५ ६ ४०)

•　　•

आज एड्रूज साहबकी सातवी पुण्य-तिथि है। उनके गुणोको हमे याद करना चाहिए। उनका जीवन बहुत सादा था। हम दोनो घने मित्र रहे है। उनकी चमडी गोरी थी, लेकिन वह इतने सादे थे और देहातियोसे मिलते-जुलते थे कि वह अग्रेज है, ऐसा पहिचानना कठिन हो जाता था। उनको कपडे पहननेका भी शऊर न था। मोटेसे बदनपर ढीली-ढाली धोती किसी तरह लपेट लेते थे। उनको ऊपरके दिखावेसे काम न था। उनका दिल सोनेका था। (प्रा० प्र०, ५.४ ४७)

: २६ :

वैद्यनाथ ऐयर

मदुराके एक सनातनी सज्जनने शिकायत करते हुए मुझे लिखा था कि वहा सुप्रसिद्ध मीनाक्षी-मदिर जिस तरीकेसे खोला गया वह ठीक नही था। मैने उस शिकायतको श्री वैद्यनाथ ऐयरके पास भेज दिया था और एक दूसरे मित्रको भी उसके बारेमे लिखा था। उन सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमे उन्होने यह भी लिखा कि सनातनियोने श्री वैद्यनाथ ऐयरको इतना ज्यादा सताया है कि उनका हृदय विदीर्ण हो गया है। इसपर मैने उन्हे एक लबा तार भेजा कि उन्हे सतानेवाले उनके बारेमे चाहे जो कहे या करे, उन्हे उसपर ध्यान

नही देना चाहिए । एक धार्मिक सुधारकके रूपमे उन्हे तो पूरी अनासक्तिसे काम करना चाहिए और अत्याचारो तथा बुरी-से-बुरी स्थितिमे भी स्थिर चित्त रहना चाहिए। मेरे तारका उन्होने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया, "भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे स्वाभाविक शाति प्राप्त कर ली है । काम जारी है । आशा है कि दूसरे बडे-बडे मदिर भी जल्दी ही खुल जाएगे । आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे बडे-से-बडा सहारा दे रहे है ।" यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है । अस्पृश्यता-निवारण प्रवृतिके अत्यत विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओमेंसे श्री वैद्यनाथ ऐयर है । वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य है ।

दिल्लीके श्रीव्रजकृष्ण चादीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभवको इस प्रकार लिखा है

" श्री वैद्यनाथ ऐयरके घरपर मैंने अनुभव किया कि उनके जैसे सुधारकोको मदिर-प्रवेशके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड रहे हैं । मैंने अगर खुद अपनी आखो न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ ऐयरपर कैसी-कैसी बीत रही है तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा । उनके प्रति सनातनियोका बर्ताव अत्यत अनुचित रहा है । विरोधियोने यह भी एक तरीका अख्त्यार किया है कि वैद्यनाथ ऐयरके बारेमें झूठी बातोका प्रचार किया जाये, किंतु वे तथा उनकी पत्नी दोनो ही इन तमाम अत्याचारोको बहादुरीसे बर्दाश्त कर रहे है ।" (ह० से०, २३ १० ३९)

: २७ :

कबीन

कवीन नामक एक व्यक्ति जोहान्सवर्गमे रहनेवाले चीनी लोगोके अगुवा भी थे। जोहान्सवर्गमे उनकी सख्या कोई तीन-चार सौ होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे। भारत कृषि-प्रधान देश है। पर मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोने खेतीको जितना वढाया है उतना हम लोगोने नही। अमरीका आदि देशोमे खेतीकी जो प्रगति हुई है वह आधुनिक है और उसका तो वर्णन ही नही हो सकता। उसी प्रकार पश्चिमी खेतीको मै अभी प्रयोगावस्थामे मानता हू। पर चीन तो हमारे ही जैसा प्राचीन देश है और वहा प्राचीन कालसे ही खेतीमे तरक्की की गई है। इसलिए चीन और भारतकी तुलना करे तो हमे उससे कुछ शिक्षा मिल सकती है। जोहान्सवर्गके चीनियोकी खेती देखकर और उनकी बाते सुनकर तो मुझे यही मालूम हुआ कि चीनियो-का ज्ञान और उद्योग भी हम लोगोसे वहुत वढकर है। जिस जमीनको हम ऊसर समझकर छोड देते है, उसमे वे अपने खेतीके सूक्ष्म ज्ञानके कारण बीज बोकर अच्छी फसल पैदा कर सकते है। यह उद्यमशील और चतुर कौम भी उस खूनी कानूनकी श्रेणीमे आती थी। इसलिए उसने भी भारतीयोके साथ युद्धमे शामिल होना उचित समझा। फिर भी शुरूसे आखिरतक दोनो कौमोका हरएक व्यवहार अलग-अलग होता था। दोनो अपनी-अपनी सस्थाओके द्वारा झगड रही थी। इसका शुभ फल यह होता है कि जवतक दोनो जातिया अपने निश्चयपर दृढ रहती है तवतक तो दोनोको फायदा होता है, पर आगे चलकर यदि एक फिसल भी जाय तो इससे दूसरी जातिको कोई हानिकी सभावना नही रहती। वह गिरती तो हरगिज नही। आखिर वहुतसे चीनी तो फिसल गये, क्योकि उनके

नेताने उन्हे धोखा दिया। नता कानूनके वश तो नही हुए, पर एक दिन किसीने आकर मुझसे कहा कि वे विना हिसाव-किताव समझाए ही कही भाग गये। नेताके चले जानेके वाद अनुयायियोका दृढ रहना तो हमेशा मुश्किल ही पाया गया है। फिर नेतामे किसी मलिनताके पाए जानेपर तो निराशा दूनी वढ जाती है। पर जिस समय पकडा-धकडी शुरू हुई उस समय तो चीनी लोगोमे वडा जोश फैला हुआ था। उनमेसे शायद ही किसीने परवाने लिए हो, इसीलिए भारतीय नेताओके साथ चीनियोके कर्त्ता-धर्त्ता मि० क्वीन भी पकडे गये। इसमे शक नही कि कुछ समयतक तो उन्होने वहुत अच्छी तरह काम किया था। (द० अ० स० १६२५)

: २८ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

भारतीयोके भाषण शुरू हुए। इस प्रकारके, और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके, नायकका परिचय तो मुझे अभी देना ही वाकी है। जो वक्ता खडे हुए उनमे स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। उन्हे तो मै एक मवक्किल और दुभाषियेकी हैसियतसे जानता था। वे अभी-तक किसी आदोलनमे आगे होकर भाग नही लेते थे। उनका अँग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उन्होने उसे यहातक वढा लिया कि जव वे अग्रेज वकीलोके यहा अपने मित्रोको ले जाते तव दुभाषियेका काम वे स्वय ही करते थे। वैसे उनका पेशा दुभाषियेका नही था। यह काम तो वे वतौर मित्रके ही करते थे। पहले वे कपडेकी फेरी लगाते थे। वादमे उन्होने अपने भाईके साझेमे छोटे पैमानेपर व्यापार शुरू किया। वे सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमे हुआ था। सूरती मेमनोमे उनकी

खासी प्रतिष्ठा थी। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली ही था। हा, अनुभवसे उन्होने उसे खूब वढा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे चाहे जिस वातको वडी आसानीसे समझ लेते थे। मामलोकी उलझन इस प्रकार स्पष्ट करते कि मैं तो कई वार चकित हो जाता। वकीलो के साथ कानूनी दलीले करनेमे भी जरा न हिचकते थे। उनकी कई दलीले तो ऐसी होती कि वकीलोको भी विचार करना पडता।

वहादुरी और एकनिष्ठामे उनसे वढकर आदमी मुझे न तो दक्षिण अफ्रीकामे मिला और न भारतमे। कौमके लिए उन्होने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी थी। उनके साथ जितनी वार मुझे काम पडा, उन सब प्रसगो-पर मैंने उन्हे एकवचनी ही पाया। स्वय चुस्त मुसलमान थे। सूरती मेमन-मसजिदके मुतवल्लियोमे वे भी एक थे। पर साथ ही वे हिंदू और मुसलमानोके लिए समदर्शी थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही आता जब उन्होने धर्माध वनकर हिदुओके खिलाफ किसी वातकी खीचातानी की हो। वे विलकुल निडर और निष्पक्ष थे। इसलिए मौकेपर हिंदुओ और मुसलमानोको भी उनका दोष दिखाते समय उन्हे जरा भी सकोच न होता था। उनकी सादगी और निरभिमानता अनुकरणीय थी। उनके साथ मेरा जो बरसोका सबध रहा, उससे मुझे यह दृढ विश्वास हो चुका है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा पुरुष कौमको फिर मिलना कठिन है।

प्रिटोरियाकी सभामे वोलनेवालोमे एक पुरुष यह भी थे। उन्होने वहुत ही छोटा भाषण दिया। वे वोले—"इस खूनी कानूनको हरएक हिदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सब जानते है। मि० हास्किनका भाषण मैंने खूब ध्यान लगाकर सुना। आपने भी सुना। मुझपर तो उसका परिणाम यही हुआ है कि मैं अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ हो गया हू। ट्रासवाल सरकारकी ताकतको हम जानते है, पर इस खूनी

कानूनसे और अधिक किस वातका डर सरकार हमे वता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद वेच देगी , हमे देशसे वाहर कर देगी—फासीपर लटका देगी । यह सव हम वरदाश्त कर सकते है । पर इस कानूनके आगे सिर नही झुका सकते ।" मै देखता था कि यह सव वोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया वडे उत्तेजित होते जा रहे थे । उनका चेहरा लाल हो रहा था । सिर और गर्दनकी रगे जोशके मारे वाहर उभड आई थी । वदन काप रहा था । अपने दाहिने हाथकी उगलिया गर्दनपर रखकर वे गरजे—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मै कत्ल हो जाऊगा, पर इस कानूनके आगे कभी अपना सर नही झुकाऊगा । और मै चाहता हू कि यह सभा भी यही निश्चय करे ।" यह कहकर वह वैठ गये । जव उन्होने गर्दनपर हाथ रक्खा तव मचपर वैठे हुए कितने ही लोगोके मुहपर मुस्कराहट दिखाई दी । मुझे याद है कि मै भी उन्हीमेसे था । जितने जोरके साथ काछलिया सेठने ये शब्द कहे थे उतना जोर अपनी कृतिमे वे दिखा सकेगे या नही, इस वातमे मुझे जरा सदेह था । पर जव-जव वह सदेह-वाली वात मुझे याद आती है तो आज यह लिखते समय भी मुझे अपने ऊपर लज्जा मालूम होती है । इस महान् युद्धमे जिन वहुत-से आदमियोने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरश पालन किया था, काछलिया सेठ उनमे अग्रगण्य थे । मैने कभी उन्हे अपना रग पलटते हुए नही देखा ।

सभाने तो इस भाषणका करतल-ध्वनिसे स्वागत किया । मेरी अपेक्षा अन्य सभासद उन्हे इस समय वहुत अधिक जानते थे, क्योकि उनमेसे अधिकाशको इस 'गुदडीके लाल'से व्यक्तिगत परिचय भी था । वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते है, वही करते है और जो कहते है उसे अवश्य ही पूरा करते है । और भी कई जोशीले भाषण हुए । काछलिया सेठके भाषणको उनमेसे इसीलिए छाट लिया कि उनकी वादकी कृतिसे उनका यह भाषण भविष्यवाणी सावित हुआ । जोशीले भाषणोके देने-वाले सभी अततक नही टिक सके । इस पुरुष-सिहकी मृत्यु अपने देश-

भाइयोकी सेवा करते-करते ही सन् १९१८मे अर्थात् इस युद्ध (दक्षिण अफ्रीकाका) के खतम होनेके चार साल बाद हुई।

उनका एक और स्मरण है। उसे और कही नही दिया जा सकता, इसलिए यहीपर लिख देता हू। टॉल्स्टॉय फार्ममे सत्याग्रहियोके कुटुब रहते थे। वहा आपने अपने पुत्रोको भी बतोर उदाहरणके तथा सादगी और जाति-सेवाका पाठ पढनेके लिए रक्खा था और इसीको देखकर अन्य मुसलमान माता-पिताओने भी अपने बच्चे इस फार्मपर भेजे थे। जवान काछलियाका नाम अली था। उम्र १०-१२ सालकी होगी। अली नम्र, चपल, सत्यवादी और सरल लडका था। लडाईके बाद, पर काछलिया सेठके पहले, उसे भी फरिश्ते खुदाके दरबारमे ले गये, पर मुझे विश्वास है कि यदि वह भी जीता रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको और भी पल्लवित करता।

कई भारतीय व्यापारियोको अपने व्यापारके लिए गोरे व्यापारियोकी कोठियोपर अवलबित रहना पडता था। वे लाखो रुपयोका माल बिना किसी प्रकारकी रहनके केवल भारतीय व्यापारियोके विश्वासपर दे दिया करते है। सचमुच, भारतीय व्यापारकी प्रामाणिकताका यह एक सुदर नमूना है कि वे वहापर इतना विश्वास सपादन कर सके है। काछलिया सेठके साथ भी कई अग्रेजी फर्मोका इसी प्रकारका लेन-देनका सबध था। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे, किसी प्रकार सरकारकी ओरसे इशारा मिलते ही, ये व्यापारी काछलिया सेठसे अपनी वे सब मुद्राए मागने लगे, जो उनकी तरफ लेना निकलती थी। उन्होने तो काछलिया सेठको बुलवाकर यहातक कहा कि 'यदि आप इस युद्धसे अपनेको अलग रक्खे तब तो आपको उन मुद्राओके लिए कुछ भी जल्दी करनेकी आवश्यकता नही है। अगर आप यह न करे तो हमे यह भय हमेशा रहेगा कि सरकार आपको न जाने किस वक्त पकड ले और यदि ऐसा ही हुआ तो

फिर हमारी मुद्राओका क्या होगा ? इसलिए यदि इस युद्धमेसे अपना हाथ हटा लेना आपके लिए किसी प्रकार असभव हो तो हमारी मुद्राए आपको इसी समय लौटा देनी चाहिए ।' इस वीर पुरुषने उत्तर दिया—"युद्ध तो मेरी व्यक्तिगत वस्तु है। मेरे व्यापारके साथ उसका कोई सबध नही है । अपने धर्म, अपनी जातिके सम्मान और स्वय मेरे स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध छिड़ा हुआ है । आपने मुझे केवल विश्वासपर जो माल दिया है उसके लिए मै आपका जरूर एहसानमद हू । पर इसलिए मै न तो उस कर्जको और न अपने व्यापारको ही सर्वोपरि स्थान दे सकता हू । आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरे है। अगर मै जिदा रहा तो अपने आपको वेचकर भी आपके पैसे लौटा दूगा । पर मान लीजिए कि मेरा और कुछ हो गया तो उस हालतमे आप यह विश्वास रक्खे कि मेरा माल और तमाम उगाही आपके हाथोमे ही है । आजतक आपने मेरा विश्वास किया है । मै चाहता हू कि आगेके लिए भी आप इसी प्रकार मेरा विश्वास करे ।" यह दलील विलकुल ठीक थी । काछलियाकी दृढताको देखते हुए गोरोको उनपर और भी विश्वास होना चाहिए था । पर वात यह थी कि इस समय उन लोगोपर इसका कोई असर नही हो सकता था । हम सोए हुए आदमीको तो जगा सकते है, पर सोनेका ढोग करनेवालेको नही । यही हाल उन गोरे व्यापारियोका भी हुआ । वे तो काछलिया सेठको दवाना चाहते थे, उनकी लेन-देन थोडे ही डूवने वाली थी !

मेरे दफ्तरमे लेनदारोकी एक मीटिंग हुई । मैने उन्हे साफ-साफ शब्दोमे कह दिया कि आप इस समय जो काछलिया सेठको दवाना चाहते है उसमे व्यापार-नीति नही, राजनैतिक चाल है । व्यापारियोको यह काम शोभा नही देता । पर वे तो और भी चिढ गये । काछलिया सेठके माल और उगाही दोनोकी फेहरिस्त मेरे पास थी । उसे मैने उन व्यापारियोको दिखाया । यह भी सिद्ध कर दिखाया कि उससे उन्हे अपना पूरा

धन मिल सकता है और कहा—"इतनेपर भी यदि आप इस तमाम व्यापारको किसी दूसरे आदमीके हाथ बेच देना चाहते हो तो काछलिया सेठ अपना तमाम माल और उगाही खरीददारको सौंपनेके लिए भी तैयार है। यदि यह भी आपको स्वीकार न हो तो दूकानमे जितना भी माल है, उसे मूल कीमतमे आप ले ले। केवल मालसे यदि काम न चले तो उसके बदलेमे उगाहीमेंसे जिसे पसद करे ले ले।" पाठक सोच सकते है कि गोरे व्यापारी यदि इस प्रस्तावको मजूर कर लेते तो उनकी कोई हानि नही होती। (और कई मवक्किलोके सकट-समयमे मैंने उनके कर्जकी यही व्यवस्था की थी) पर इस समय व्यापारी न्याय न चाहते थे। काछलिया नही झुके और वह दिवालिया देनदार साबित हुए।

पर यह दिवालियापन उनके लिए कलक-रूप नही, बल्कि भूषण था। इससे कौममे उनकी इज्जत कही बढ गई और उनकी दृढता और बहादुरीपर सबने उनको बधाई दी। यह वीरता तो अलौकिक है। सामान्य मनुष्य उसको भलीभाति नही समझ सकते। सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नही कर सकता कि दिवालियापन एक बुराई और बदनामीके बदले सम्मान और आदरकी वस्तु किस तरह हो सकती है। पर काछलियाको तो यही बात स्वाभाविक मालूम हुई। कई व्यापारियोंने केवल इसी भयके कारण खूनी कानूनके सामने सिर झुका लिया कि कही उनका दिवाला न निकल जाय। काछलिया भी यदि चाहते तो इस नादारीसे छूट सकते थे। युद्धसे विमुख होकर तो वह अवश्य ही ऐसा कर सकते थे। पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हू। कई भारतीय काछलियाके मित्र थे जो उनको इस सकट-समयमे कर्ज दे सकते थे। पर यदि वह इस तरह अपने व्यापारको बचा लेते तो उनकी बहादुरीमे धब्बा नही लग जाता? कैदकी जोखिम तो उनकी भाति दूसरे सत्याग्रहियोके लिए भी थी। इसलिए यह तो उनसे हरगिज नही हो सकता था कि वे सत्याग्रहियोसे पैसे लेकर गोरे व्यापारियोका ऋण अदा कर दे।

पर सत्याग्रही व्यापारियोंके समान ही अन्य भारतीय भी उनके मित्र थे, जिन्होंने खूनी कानूनके सामने सिर झुका दिया था, और मैं जानता हू कि उनकी सहायता भी काछलिया सेठको मिल सकती थी। जहातक मुझे याद है, एक-दो मित्रोंने उन्हे इस विषयमे कहलाया भी था। पर उनकी सहायता लेनेका अर्थ तो यही न होता कि हमने इस वातको स्वीकार कर लिया कि खूनी कानूनको मानने ही मे वुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनो इमी निश्चयपर पहुचे कि उनकी सहायता हमे कदापि स्वीकार नही करनी चाहिए। फिर हम दोनोंने यह भी सोचा कि यदि काछलिया अपनेको नादार कहलाएगे तो उनकी नादारी दूसरोके लिए ढालका काम देगी, क्योकि अगर सौमे पूरी सौ नही तो निन्यानवे फीसदी नादारियोमे लेनदारको नुकसान उठाना पडता है। अगर उनके लेनेमेंसे फीसदी पचास भी मिल जाते है तो भी वे खुश होते हैं। जव फीसदी पिचहत्तर मिल जाय तव तो वे इमीको पूरे सौ ही मान लेते है, क्योकि दक्षिण अफ्रीकामे प्रतिशत ६) नही, वल्कि फी सैकडा २५) मुनाफा लिया जाता है। इमलिए अपनी लेनमेंसे फी सैकडा ७५ मिलनेतक तो वे उसे घाटेका व्यवहार नही मानते, किंतु नादारीमे पूरा-का-पूरा तो शायद ही कभी मिलता है। इसलिए कभी कोई लेनदार यह नही चाहता कि उसका कर्जदार दिवालिया हो जाय।

इसलिए काछलियाका उदाहरण दिखाकर गोरे लोग दूसरे व्यापारियोको धमकी नही दे सकते थे। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे चाहते थे कि काछलियाको युद्धसे अपना हाथ हटा लेनेके लिए मजवूर करे और यदि काछलिया इसे मजूर न करे तो उनसे पूरे सौ-के-सौ वसूल करे। पर इन दोमेंसे उनका एक भी हेतु सिद्ध न हुआ। इसका तो उलटे एक विपरीत ही परिणाम हुआ। एक प्रतिष्ठित भारतीयको इस तरह नादारीका स्वागत करते हुए देखकर गोरे व्यापारी चकित हो गए और हमेशाके लिए शात हो गए। परतु इधर एक सालके अदर ही काछलियाके माल-

मेसे ही गोरे व्यापारियोको पूरे सौ-के-सो मिल गए। दक्षिण अफ्रीकामें दिवालिया देनदारसे लेनदारको पूरे सौ-के-सौ मिल जाना अपनी जानकारीमे मेरा पहला ही अनुभव था। युद्ध शुरु हो गया था, पर फिर भी इससे गोरे व्यापारियोमे काछलियाका सम्मान वेहद वढ गया। आगे चलकर युद्ध-कालमे उन्ही व्यापारियोने काछलियाको मनमाना माल देनेके लिए अपनी तत्परता दिखाई। पर काछलियाका वल तो दिन-व-दिन वढता ही जा रहा था। युद्धके रहस्यको भी वह भलीभाति समझ चुके थे। और यह तो कौन कह सकता था कि युद्ध शुरु होनेके वाद वह कितने रोज चलेगा। इसलिए नादारीके वाद हमने तो यही निश्चय कर लिया कि लवे-चोडे व्यापारकी झझटमे पडना ही नही। उन्होने भी निश्चय कर लिया कि अव, जवतक युद्ध समाप्त नही होता, उतना ही व्यापार किया जाय कि जिससे एक गरीव मनुष्य अपना निर्वाह कर सके इससे ज्यादा नही। इसलिए गोरोने जो वचन दिया, उसका उपयोग उन्होने नही किया। काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मैं कर चुका हू, वे कमिटी को मीटिगके वाद हुई हो सो वात नही, पर मैंने उन्हे यहापर इसीलिए लिख देना ठीक समझा कि उनको कही एक ही वार दे देना योग्य होगा। अगर तारीखवार देखा जाय तो दूसरा युद्ध शरू होनेपर कितने ही समय वाद काछलिया अध्यक्ष हुए और नादार होनेके पहले, इसके वाद और भी कितना ही समय वीत गया।　　　　(द० अ० स० १९२५)

: २९ :

अलबर्ट कार्टराइट

अलबर्ट कार्टराइट ('ट्रांसवाल लीडर'के संपादक) बडे चतुर और अतिशय उदार हृदय सज्जन थे। वे अपने अग्रलेखो तकमे अक्सर भारतीयोका ही पक्ष लिया करते। मेरे और उनके बीच गहरा स्नेह-संबंध हो गया था और मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे भी मिले थे। जनरल स्मट्सने उन्हे संधिकर्ता स्वीकार किया तब मि० कार्टराइट कौमके अगुओसे मिले। पर उन्होने यही उत्तर दिया कि हम लोग कानूनकी बारीकियोको नही जानते। गांधी जेलमे है। जबतक वह छोड नही दिये जाते इस विषयमे कोई सलाह-मशविरा करना हम अनुचित समझते है। हम सुलह तो चाहते है, पर यदि हमारे आदमियोको बिना छोडे ही सरकार सुलह करना चाहती हो तो गांधी जाने। आप गांधीसे मिले। वह जो कहेगा, हम सब मंजूर करेगे। इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आए। साथ ही जनरल स्मट्सका बनाया अथवा पसंद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाए थे। उसकी भाषा गोलमाल थी। वह मुझे पसंद नही आई। फिर भी एक जगह कुछ दुरुस्ती करनेपर मै उसपर दस्तखत करनेके लिए तैयार हो गया। पर मैने कहा कि बाहरवाले यदि इसे मानले तो भी मै इसपर तबतक दस्तखत नही कर सकता जबतक जेलके साथियोकी आज्ञा अथवा सम्मति भी मै प्राप्त नही कर लेता। समझौतेका सार इस प्रकार था "भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपने परवाने बदलवा ले। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोकी सलाहसे सरकार बनावे और यदि इस भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले ले तब तो खूनी कानून रद हो ही जायगा और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोको कानून, करार देनेके लिए सरकार एक नया कानून

वना लेगी।" खूनी कानूनको रद करनेकी वात इस मसविदेमे स्पष्ट नही लिखी गई थी। उसे स्पष्ट करनेके लिए मैंने अपनी समझके अनुसार एक सुधारकी सूचना की। पर अलवर्ट कार्टराइटने उसे पसन्द नही किया। उन्होने कहा, "जनरल स्मट्सका यह आखिरी मसविदा है। स्वय मैने भी इसे पसद किया है। और यह तो मै आपको विश्वास दिलाता हू कि अगर आप सब परवाने ले ले तव तो यह खूनी कानून रद हुआ ही समझिए।" मैंने कहा, "समझौता हो या न हो, लेकिन आपकी इस सहानुभूति और समझौतेकी कोशिशके लिए हम आपके सदाके लिए अनुग्रहीत होगे। मै एक भी अनावश्यक फेरफार करना नही चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो उसका मै ख्वामख्वाह विरोध नही करूँगा। पर जहा अर्थके विषयमे स्वय मुझे शका है वहा तो मुझे अवश्य ही कुछ स्पष्टीकरणकी सूचना करनी चाहिए और अतमे यदि समझौता करना ही है तो दोनो पक्षोको कुछ परिवर्तन करनेका अधिकार जरूर ही होना चाहिए। जनरल स्मट्स पिस्तौल दिखाकर उसके बलपर कोई समझौता हमसे मजूर करानेकी व्यर्थकी कोशिश न करे। खूनी कानून-रूपी एक पिस्तौल तो पहले हीसे हमारे सामने है। अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमपर और क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इसके उत्तरमे कुछ न कह सके। उन्होने यह मजूर किया कि मै आपका वताया यह परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने पेश कर दूगा। मैंने अपने साथियोसे भी मशविरा किया। भाषा तो उन्हे भी पसद नही आई, पर यदि उतने परिवर्तनके साथ जनरल स्मट्स समझौता करते हो तो हम भी उसे मजूर कर ले यह वात उन्हे पसद थी। वाहरसे जो लोग आए थे, वे भी अगुआओका यह सदेश लाए कि यदि उचित समझौता हो रहा हो तो कर लेना चाहिए। हमारी सम्मतिकी राह न देखी जाय। इस मसविदेपर मैंने मि० कवीन और थवी नायडूके भी दस्तखत लिए और तीनो दस्तखतोवाला मसविदा कार्टराइटको सौप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन जोहान्सवर्गका पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आया और मुझे जनरल स्मट्सके पास ले गया। उनकी मेरी बहुत-सी बाते हुईं। उन्होने मुझसे यह भी कहा कि मि० कार्टराइटके साथ मैने चर्चा की थी। मेरे जेल जानेपर कौम दृढ रही, इसके लिए उन्होने मुझे मुबारकबाद दिया और कहा—"आप लोगोके विषयमें मेरा कोई व्यक्तिगत दुर्भाव नही है। आप जानते ही है कि मै एक वैरिस्टर हू। मेरे साथ कितने ही भारतीय पढे भी है। मुझे तो यहा केवल अपना कर्तव्य-पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनको चाहते है। आप यह भी स्वीकार करेगे कि उनमें भी अधिकाश बोअर नही, अग्रेज ही है। आपने जो सुधार किया उसे मै मजूर करता हूं। जनरल बोथाके साथ भी मै बातचीत कर चुका हू और मै आपको विश्वास दिलाता हू कि यदि आपमेसे अधिकाश लोग परवाने ले लेगे तो एशियाटिक एक्टको रद कर दूगा। स्वेच्छापूर्वक लिए जानेवाले परवानेको मजूर करनेवाले कानूनका मसविदा तैयार करनेपर उसकी एक नकल आपके पास नोटके लिए भेजूगा। मै नही चाहता कि यह आदोलन फिरसे जागे। आपके भावोका मै सम्मान करता हू।'(द०अ०स०१९२५)।

: ३० :

राजासाहब कालाकांकर

राजासाहब कालाकाकर २० सितम्बरको असमय ही स्वर्ग सिधार गए। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक सालसे वे बीमार थे। मै पिछली बार जब कलकत्ते गया तो मै उन्हे मुश्किलसे पहचान सका। वहा वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब सयुक्त प्रातके एक अत्यत उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषयमे निस्सदेह यह कहा

जा सकता है कि उन्होने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजाके लिए बिताया। बडी सादी रहन-सहन थी। लोगोसे खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनोपर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियोपर। अपने प्रत्यक्ष आचरणके दृष्टातसे वे अपनी रियासतसे सवर्ण हिंदुओसे अस्पृश्यता छुडवाने और हरिजनो को भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजाको प्राप्त थे। राज्यके प्रबधाधीन तमाम विद्यालय, कुए और मदिर उन्होने हरिजनोके लिए खोल दिए थे। हमे आशा है कि रानीसाहिबा तथा कालाकाकरके अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजासाहबकी स्मृतिको अजर-अमर बनाए रखनेके लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारताका सदैव अनुसरण करते रहेगे। (ह० से०, २६ १० ३१)

: ३१ :

हर्बर्ट किचन

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध-हृदय अग्रेज थे। वे बिजलीका काम-काज करते थे। बोअरयुद्धमे उन्होने हमारे साथ काम किया। कुछ समय तक वे 'इडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे थे। उन्होने मृत्यु समयतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था। (द० अ० स० १९२५)

: ३२ :

जे० सी० कुमारप्पा

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन (राष्ट्रीय ऋण) के सबधमे जाच

करनेके लिए महासमिति (आल इडिया काग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) का कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रक्खे विना न रहेगा। श्री वहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल-शाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अधिकारी है। समितिके सचालक श्री कुमारप्पा गुज-रात विद्यापीठके अध्यापक है, इसलिए उनके लिए इसमे कुछ विशेष त्याग नही है। वे तो राष्ट्र-सेवककी तरह नामाकित है, इसलिए उनका समय और श्रम तो राष्ट्रीय महासभाके चरणोमे अर्पित हो ही चुका है। वे इस विशिष्ट कार्यके लिए पसद किए गये, इसका कारण है उनका अर्थशास्त्रका सजग ज्ञान और सशोधन कार्यके प्रति उनकी लगन। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सके कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है, और जो धाधलीवाज उपदेशक नही, वरन् स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमे लाने वालोकी यह कृति है। (हि० न०, ६. ८ ३१)

: ३३ :

आचार्य जे० बी० कृपलानी

मुजफ्फरपुरमे उस समय आचार्य कृपलानी भी रहते थे। उन्हे मै पह-चानता था। जब मै हैदरावाद गया था, उनके महात्यागकी, उनके जीवनकी और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी वात डाक्टर चोइथ-रामके मुखसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कॉलेजमे प्रोफेसर थे, पर उस

समय वहा से मुक्त हो वैठे थे। मैंने उन्हे तार दिया। ट्रेन मुजफ्फरपुर आधीरातको पहुचती थी। वह अपने शिष्य-मडलको लेकर स्टेशन आ पहुचे थे, परतु उनके घरवार कुछ न था। वह अध्यापक मलकानीके यहा रहते थे। मुझे उनके यहा ले गए। मलकानी भी वहाके कालेजमे प्रोफेसर थे और उस जमानेमे सरकारी कालेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहा ठहराना एक असाधारण वात थी।

कृपलानीजीने विहारकी और उसमे तिरहुत-विभागकी दीन-दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अदाज वताया। कृप-लानीजीने विहारियोके साथ गाढा सवध कर लिया था। उन्होने मेरे कामकी वात वहाके लोगोसे कर रखी थी। (आ०, १६२७)

... .

यह तो हुआ विहारी-सघ। इनका मुख्य काम था लोगोके वयान लिखना। इसमे अध्यापक कृपलानी भला विना शामिल हुए कैसे रह सकते थे? सिंधी होते हुए भी वह विहारीसे भी अधिक विहारी हो गये थे। मैंने ऐसे थोडे सेवकोको देखा है जो जिस प्रातमे जाते है वहीके लोगोमे दूध-शक्करकी तरह घुल-मिल जाते हैं और किसीको यह नही मालूम होने देते कि वे गैर प्रातके हैं। कृपलानी इनमे एक है। उनके जिम्मे मुख्य काम था द्वारपालका। दर्शन करने वालोसे मुझे वचा लेनेमे ही उन्होने उस समय अपने जीवनकी सार्थकता मान ली थी। किसीको हँसी-दिल्लगीसे और किसीको अहिसक धमकी देकर वह मेरे पास आनेसे रोकते थे। रातको अपनी अध्यापकी शुरू करते और तमाम साथियोको हँसा मारते और यदि कोई डरपोक आदमी वहा पहुँच जाता तो उसका हौसला वढाते। (आ०, १६२७)

: ३४ :

वेंकटकृष्णय्या

छ वर्षके वाद आज आप लोगोसे मिलकर मुझे वडा आनद हुआ है। आपको मालूम है कि पिछले दौरेके अवसरपर मेरा स्वास्थ्य वहुत गिर गया था और उसे सुधारनेके लिए ही मै आपके मैसूर राज्यमे आया था। इससे स्वभावत उन दिनोकी स्मृतिया मेरे लिए अत्यत सुखद है। श्रीमान् महाराजा साहव, दीवान और अन्य अफसरोसे लेकर मैसूरकी प्रजातकके प्रगाढ प्रेमका मैने अनुभव किया था। अव आप लोग अच्छी तरहसे समझ सकते है कि आपके वीच आज पुन आनेसे मुझे कितनी अविक खुशी न हुई होगी। मैसूरके पितामह स्व० श्री वेकटकृष्णय्याके चित्रका मेरे हाथसे उद्घाटन कराके आपने मेरा आतरिक आनद और भी वढा दिया है। चित्रकारको उसकी कला-कुशलतापर मै वधाई देता हू। वडा ही सुदर और यथार्थ चित्रण किया है। कदाचित् आप सव यह न जानते होगे कि उस दिवगत महर्षिके सत्सगका आनद-लाभ मुझे उन दिनो कितना अधिक प्राप्त हुआ था। मै उनके अनेक सद्गुणोसे काफी परिचित हो गया था। मैने तभी जान लिया था कि आप लोगोके हृदयोमे उनके लिए एक खास स्थान है। मुझे विश्वास है कि उनके अनेक गुणोका वखान करनेकी आप मुझसे आशा न करते होगे। आप तो यहाके निवासी ही ठहरे, इससे आपको मेरी अपेक्षा उनके गुणोका अविक पता होगा। मै तो केवल यही आशा करता हू कि स्व० वेकटकृष्णय्याके जिन गुणोका हम लोग आज आदर कर रहे है, उन्हे हम स्वय अपने जीवनमे उतारने की चेष्टा करेगे। इस आत्म-प्रशसासे सदा वचना ही अच्छा कि चलो, उस महान् आत्माके चित्रका उदघाटन गाधीके हाथसे करा दिया और उनकी स्मृतिमे एक अच्छा उत्सव भी हमने मना लिया! (ह० से०, १९ १ ३४)

: ३५ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोने मुझसे कई बार पूछा कि तात्यासाहव केळकर जैसे महान देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यो नही किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोमे मेरे बारेमे बहुत बडी गलतफहमी है। इन कारणोने मुझे अपील नही किया, हालाकि मेरे टीकाकारोके मुताबिक इन्ही कारणोको मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित करना चाहिए था।

मृत्यु जैसी बडी भारी घटनाका साधारण नियमके अनुसार उल्लेख कर देना मै बहुत अनुचित मानता हू। लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मै एकदम स्वीकार कर लूगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मो और मृत्युओका उल्लेख करना 'हरिजन' के लिए साधारण नियम होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन'-पत्रोको ध्यानसे पढनेवाले पाठकोने देखा होगा कि 'हरिजन' ने ऐसे किसी नियमको नही माना है। इस तरहकी घटनाओका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अर्सेमे तो मै नियमसे अखबार भी नही पढ सका हू।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे लाभ होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके

नाते मैं उन्हे जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १९१९ मे अखिल भारत काग्रेस कमेटीकी एक बैठकमे मैंने यह सिफारिशकी थी कि काग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य, तात्यासाहबको और देशबधु श्री निशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दे तो मै विधान तैयार करके काग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हू। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनो सज्जनोकी प्रशसामे मुझे यह कहना चाहिए कि हालाकि मैने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेशकर दिया, लेकिन उन्होने कभी उसमे रुकावट नही डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमे तात्यासाहबने हमेशा ऐसी टीका की, जिसमे उसे सुधारने-सवारनेमें मदद मिली। इसके अलावा, मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा काग्रेस वर्किग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता, जब उनकी टीका—हालाकि वह कभी-कभी कड़वी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे, लेकिन सभ्य और मित्रता-भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बडे विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृत-पान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नही मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपत चिन्तामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य ओर अशोभन बात होगी। (ह० से०, ४१४८)

: ३६ :

केलकर (आइस डाक्टर)

डा० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आए। वह महाराष्ट्री है। उनको हिंदुस्तान नही जानता। पर मेरे ही जैसे 'चक्रम' है, यह मैंने उन्हे देखते ही जान लिया। वह अपना इलाज मुझपर आजमाने के लिए आए थे। बबईके ग्रैंड मेडिकल कॉलेजमे पढते थे। पर उन्होने द्वारकाकी छाप—उपाधि—प्राप्त न की थी। मुझे बादमे मालूम हुआ कि वह सज्जन ब्रह्मसमाजी है। उनका नाम है केलकर। बडे स्वतत्र मिजाजके आदमी है। बरफके उपचारके बडे हिमायती है।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर जब वह अपने बरफके उपचार मुझपर आजमानेके लिए आए तबसे हमने उन्हे 'आइस डाक्टर' की उपाधि दे रक्खी है। अपनी रायके बारेमे वह बडे आग्रही है। डिग्रीधारी डाक्टरोकी अपेक्षा उन्होने कई अच्छे आविष्कार किए है, ऐसा उन्हे विश्वास है। वह अपना यह विश्वास मुझमे उत्पन्न नही कर सके, यह उनके और मेरे दोनोके लिए दु खकी बात है। मै उनके उपचारोको एक हद तक तो मानता हू, पर मेरा खयाल है कि उन्होने कितने ही अनुमान बाधनेमे कुछ जल्दबाजी की है। उनके आविष्कार सच्चे हो या गलत, मैंने तो उन्हे उनके उपचारका प्रयोग अपने शरीरपर करने दिया। बाह्य उपचारोंसे अच्छा होना मुझे पसद था। फिर ये तो बरफ अर्थात् पानीके उपचार थे। उन्होंने मेरे सारे शरीरपर बरफ मलना शुरू किया। यद्यपि इसका फल मुझपर उतना नही हुआ, जितना कि वह मानते थे, तथापि जो मै रोज मृत्युकी राह देखता पडा रहता था सो अब नही रहा। मुझे जीनेकी आशा बधने लगी। कुछ उत्साह भी मालूम होने लगा। मनके उत्साहके साथ-साथ

शरीरमें भी कुछ ताजगी मालूम होने लगी। खुराक भी थोडी बढी। रोज पाच-दस मिनट टहलने लगा। "अगर आप अडेका रस पिये तो आपके शरीरमे इससे भी अधिक शक्ति आ जावेगी, इसका मै आपको विश्वास दिला सकता हू, और अडा तो दूधके ही समान निर्दोष वस्तु होती है। वह मास तो हरगिज नही कहा जा सकता। फिर यह भी नियम नही है कि प्रत्येक अडेसे बच्चे पैदा होते ही हो। मै साबित कर सकता हू कि ऐसे निर्जीव अडे सेये जाते है जिनमेंमे बच्चे पैदा नही होते।"—उन्होने कहा। पर ऐसे निर्जीव अडे लेनेको भी मै तो राजी न हुआ। फिर भी मेरी गाडी कुछ आगे चली और मै आस-पासके कामोमे थोडी बहुत दिलचस्पी लेने लगा। (आ०, १९२७)

: ३७ :

केलप्पन

श्री केलप्पन मेरी रायमे भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे मूक सेवकोमेसे एक है। उन्हे कभी भी प्रतिष्ठित पद मिल सकता था। मलाबारके वे प्रसिद्ध लोकसेवक है, परन्तु वे जानबूझकर 'दलित' और 'अस्पृश्य' लोगोकी सेवामे कूद पडे है। वाईकोमके सत्याग्रहके समय मुझे उनके साथ काम करनेका आनद और सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके पहले लबे समयस और उसके बाद से उन्होंने दलित वर्गकी उन्नति मे अपना जीवन लगाया है। जनता जानती है कि लबे समयतक राह देखनेके बाद गुरूवायुरका मदिर हरिजनोके लिए खुलवानेके प्रयत्नमे उन्होने प्राणार्पण करनेका अटल निश्चय कर लिया था। (म० डा०, ५.११.३२)

: ३८ :

हरमन कैलेनबेक

मि० कैलेनबेकका टॉल्स्टॉय फार्मपर और सो भी हमारे जैसा रहना एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। गोखले सामान्य बातोसे आकर्षित होनेवाले पुरुष नही थे। कैलेनबेकके जीवनमे यह महान परिवर्तन देखकर वह भी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए थे। मि० कैलेनबेकने कभी धूप-जाडा नही सहा था, न किसी प्रकारकी मुसीबत पहले उठाई थी। अर्थात् स्वच्छद जीवनको उन्होने अपना धर्म बना लिया था। ससारके आनदोका उपभोग लेनेमे उन्होने किसी प्रकारकी कसर नही रहने दी थी। धनसे जितनी भी चीजे खरीदी जा सकती है उन सबको प्राप्त करनेके लिए उन्होने कभी कुछ उठा नही रक्खा था।

ऐसे पुरुषका फार्मपर रहना, वही खाना-पीना, फार्मवासियोके जीवनके साथ अपनेको पूर्णतया मिला देना, कोई ऐसी-वैसी बात नही थी। भारतीयोको इस बातपर बडा आश्चर्य और आनद भी हुआ। कितने ही गोरोने तो उन्हे मूर्ख या पागल ही समझ लिया, कितनोके दिलोमे उनकी त्याग-शक्तिके कारण उनके प्रति आदर बढ गया। कैलनबेकने अपने त्यागपर न तो कभी पश्चाताप किया और न उन्हे वह दु ख-रूप मालूम हुआ। अपने वैभवसे उन्हे जितना आनन्द प्राप्त हुआ था, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक आनद वह अपने त्यागसे पा रहे थे। सादगीसे होनेवाले सुखोका वर्णन करते-करते वह तल्लीन हो जाते, यहातक कि कई बार तो उनके श्रोताओको भी इस सुखका आस्वाद करनकी इच्छा हो जाती। छोटेसे लेकर बडे तक सबके साथ वह इस तरह प्रेम-पूर्वक हिलमिल जाते कि उनका छोटे-से-छोटा वियोग भी सबके लिए असह्य हो जाता। फल-पौधोका उन्हे बडा शौक था, इसलिए बागवानका काम

उन्होने अपने अधीन रखा था और प्रतिदिन सुवह वालको और वडोसे
उनकी काट-छाट, रक्षा वगैरहका काम लेते। मेहनत पूरी लेते, पर साथ
ही उनका चेहरा इतना हँसमुख और स्वभाव ऐसा आनदमय था कि उनके
साथ काम करते हुए सवको वडा आनद होता था। जव-जव कभी रातके
२ बजेसे उठकर टॉल्स्टॉय फार्मसे कोई टोली जोहान्सवर्गको पैदल जाती
तो कैनलवेक वरावर उसके साथ पाए जाते।

उनके साथ धार्मिक सवाद हमेशा होते रहते थे। मेरे नजदीक
अहिसा, सत्य इत्यादि यमोको छोडकर तो और कौनसी वात हो सकती
थी? सर्पादि जानवरोको मारना भी पाप है, इस विचारसे जिस तरह
दूसरे यूरोपियन मित्रोको आघात पहुचा ठीक उसी तरह पहले-पहल मि०
कैलनवेकको भी पहुचा, पर अतमे तात्विक दृष्टिसे उन्होने इस सिद्धातको
कवूल कर लिया। हम लोगोके साथ सवध होते ही इस वातको तो उन्होने
पहले ही मान लिया था कि जिस वातको वुद्धि स्वीकार करे उसपर अमल
करना भी योग्य और उचित है। इसी कारण वह अपने जीवनमे वडे-से-
वडे परिवर्तन विना किसी प्रकारके सकोचके एक क्षणमे कर
सकते थे।

अव तो, चूकि सर्पादिको मारना अयोग्य पाया गया, इसलिए मि०
कैनलवेकको उनकी मित्रता भी सपादन करनेकी इच्छा होने लगी।
पहलेपहल तो उन्होने भिन्न-भिन्न जातिके सापोकी पहचान जाननेके लिए
सापोसे सवध रखनेवाली कितावें इकट्ठी की। उनसे उनको पता चला
कि सभी सर्प जहरीले नही होते, वल्कि कितने ही तो खेतीकी फसलकी
रक्षा भी करते रहते हैं। हम सवको उन्होने सर्पोकी पहचान वताई
और अतमे एक जवरदस्त अजगरको उन्होने पाला, जो फार्ममे ही उन्हे
मिल गया था। उसे वह रोज अपने हाथोसे खिलाते थे। एक दिन नम्रता-
पूर्वक मैने मि० कैलनवेकसे कहा, "यद्यपि आपका भाव तो शुद्ध है
तथापि अजगर शायद इसे समझ न सकता होगा, क्योकि आपका प्रेम

भयसे मिश्रित है। इसको छोडकर उसके साथ इस तरह क्रीडा करनेकी आपकी मेरी या किसीकी शक्ति नही है, और हम तो उसी हिम्मतको प्राप्त करना चाहते है। इसलिए इस सर्पके पालनमे सद्भाव तो देखता हू, पर अहिंसा नही देख सकता। हमारा कार्य तो ऐसा हो कि जिसे यह अजगर भी पहचान सके। यह तो हमारा हमेशाका अनुभव है कि प्राणिमात्र केवल भय और प्रीति इन दो ही बातोको समझते है। आप इस सर्पको जहरीला तो मानते ही नही। केवल इसका स्वभाव आदि जानने भरके लिए आपने इसे कैद कर रखा है। यह तो स्वच्छद हुआ। मित्रतामे तो इसके लिए भी स्थान नही है।

मि० कैलनबेक मेरी दलीलको समझ गए; पर उनको यह इच्छा नही हुई कि अजगरको जल्दी छोड दे। मैने किसी प्रकारका दबाव तो डाला ही नही। सर्पके बर्तावमे मै भी दिलचस्पी ले रहा था। बच्चोको तो खूब आनद आ रहा था। सबसे कह दिया गया था कि उसे कोई सतावे नही, पर वह कैदी स्वय ही अपनी राह ढूढ रहा था। पिंजडेका दरवाजा खुला रह गया या शायद उसीने उसे किसी तरह खोल लिया—परमात्मा जाने क्या हुआ—दो-चार दिनके अदर ही, एक दिन सुबह जब मि० कैलन-बेक अपने कैदीको देखनेके लिए गए तो उन्होने पिंजडेको खाली पाया। वह और मै दोनो खुश हुए, पर इस प्रयोगके कारण सर्प हमेशाके लिए हमारी बातचीतका विषय हो गया। मि० कैलनबेक एक गरीब जर्मन को हमारे फार्मपर लाए थे। वह गरीब भी था और पगु भी। उसकी जाघ इतनी टेढी हो गई थी कि वह बिना लकडीके चल ही नही सकता था, पर वह बडा हिम्मतवर था। शिक्षित भी था, इसलिए सूक्ष्म बातोमे भी बडी दिलचस्पी लेता था। फार्मपर वह भी भारतीयोका साथी बनकर' सबसे हिलमिलकर रहता था। उसने तो निर्भयतापूर्वक सर्पोके साथ खेलना तक शुरू कर दिया। छोटे-छोटे सर्पोको वह अपने हाथमे ले आता और अपनी हथेलीपर उन्हे खिलाता था। कौन कह सकता है कि फार्म

अधिक दिन तक चला होता तो इस जर्मनके प्रयोगका क्या परिणाम होता। इसका नाम आल्बर्ट था।

इस प्रयोगके कारण यद्यपि सापका डर तो कम हो गया था तथापि कोई यह न समझले कि फार्मके अदर किसीको सापका भय ही नही रहा अथवा सापको मारनेकी सबको मनाई थी। हिंसा-अहिंसा और पापका ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात। जिसके दिलमे सापका डर है और जो प्राण त्याग करनेके लिए तैयार नही है, वह सकटके समयमे सापको कभी नही छोडेगा। मुझे याद है कि ऐसा ही एक किस्सा फार्मपर हुआ था। पाठकोने यह तो स्वय ही अदाजसे जान लिया होगा कि फार्मपर सर्पोका उपद्रव खूब रहा होगा, क्योकि हम लोग वहा गए उससे पहले वहा कोई बस्ती नही थी, बल्कि कितने ही समयसे वह निर्जन ही था। एक दिन मि० केलनबेकके कमरेमे अचानक ऐसी जगह एक साप दिखाई दिया, जहासे उसे भगाना या पकडना भी करीब-करीब असभव था। पहलेपहल फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा—अब क्या करना चाहिए ? उसे मारनेकी आज्ञा भी उसने चाही। वह बिना इजाजत भी सापको मार सकता था, परन्तु साधारणतया क्या विद्यार्थी और क्या दूसरे, मुझसे बिना पूछे ऐसी कोई बात नही करते थे। इस सापको मारनेकी इजाजत देना मैने अपना धर्म समझा और आज्ञा दे भी दी। यह लिखते समय भी मुझे यह नही मालूम होता कि मैने वह आज्ञा देनेमे कोई गलती की। सापको हाथमे पकडने जितनी अथवा अन्य किसी प्रकारमे फार्मवासियोको निर्भय कर देने जितनी शक्ति न तो मुझमे तब थी और न आज तक उसे प्राप्त कर सका हू। (द० अ० स०, १६२५)

• • • • • •

बॉकसरस्टके लोगोने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमे अनेक प्रकारका डर बताया गया था। कितने हीने तो यह कहा था कि यदि

भारतीय ट्रासवालमे प्रवेश करेगे तो हम उनपर गोलिया चला देगे। इस सभामे मि० कैलनवेक गोरोको समझानेके लिए गए थे, पर उनकी वात कोई सुनना ही नही चाहता था। कई तो उन्हे मारनेके लिए उठ खडे हो गये। मि० कैलनवेक स्वय कसरती जवान है। सैडोसे उन्होने कसरत सीखी थी। उनको यो डराना मुश्किल था। एक गोरेने उन्हे द्वद्व युद्धके लिए आह्वान किया। कैलनवेकने कहा, "मैने शाति धर्मको स्वीकार किया है। इसलिए आपकी इच्छाकी पूर्ति करनेमे मै असमर्थ हू। पर मुझपर जिसे प्रहार करना हो, वह सुख-पूर्वक करे। मै तो इस सभामे वोलता ही रहूगा। आपने इसमे सभी गोरोको निमन्त्रित किया है। मै आपको यह सुनानेके लिए आया हू कि आपकी तरह सभी गोरे निर्दोष मनुष्योको मारनेके लिए तैयार नही है। एक ऐसा गोरा है, जो आपसे कह देना चाहता है कि आप भारतीयोपर जिन वातोका आरोप करते है, वे असत्य है। आप जो सोच रहे है वह भारतीय नही चाहते। उन्होने तो आपके राज्यकी आवश्यकता है और न वे आपके साथ लडना चाहते है। वे तो शुद्ध न्यायके लिए पुकार उठा रहे है। ट्रासवालमे हमेशा रहनेके हेतुसे वे प्रवेश नही कर रहे है, वल्कि उनपर जो अन्यायपूर्ण कर लादा गया है उसके खिलाफ सक्रिय पुकार उठानेके उद्देश्यसे वे यह कर रहे है। वे वहादुर है, हुल्लडवाज नही। वे आपके साथ लडेगे नही, पर यदि आप उनपर गोलिया चलावेगे तो उनको सहकर भी वे इसी तरह आगे वढते जावेगे। आपकी वदूको या वल्लमके डरसे वे पीछे पैर नही हटावेगे। वे तो स्वय दु ख सहकर आपके हृदयको पिघला देनेवाले लोग है। वस यही कहनेके लिए मै यहा आया हू। यह कहकर मैने तो आपकी सेवा ही की है। आप सावधान हो जाइए और अन्यायसे वचिए।" इतना कहकर मि० कैलनवेक शात हो गए। गोरे कुछ शरमा गए। वह द्वद्व युद्ध करनेवाला कसरती जवान तो अव उनका मित्र हो गया। (द० अ० स०, १९२५)

हर्मन कैलनब्रेकसे मेरा परिचय युद्धके पहले ही हुआ था। वह जर्मन है और यदि जर्मन-अग्रजोका युद्ध न हुआ होता तो वह आज भारतमे होते। उनका हृदय विशाल है। वह बेहद भोले है। उनकी भावनाए बडी तीव्र है। वह शिल्पका धधा करते है। ऐसा एक भी काम नही कि जिसे करते हुए उन्होने ना की हो। जब मैने जोहान्सवर्गसे अपना घरबार उठा लिया तब हम दोनो एक साथ ही रहते थे। मेरा खर्चा भी वही उठाते थे। घर तो खुद उन्हीका था। खाने वगैरहका खर्च देनेकी बात जब मै उठाता तब वह बहुत चिढ कर कहते कि उन्हे फिजूल-खर्चीसे बचानेवाला तो मै ही था और मुझे मना करते। उनके इस कथनमें कुछ सार अवश्य था। पर गोरोके साथ मेरा जो व्यक्तिगत सबध था, उसका वर्णन यहा नही किया जा सकता। गोखले दक्षिण अफ्रीका आए तब जोहान्सवर्गमे कैलनबेकके बगलेमे ही ठहराए गये थे। गोखले इस मकानसे बडे प्रसन्न हुए। उनको पहुचानेके लिए कैलनब्रेक जजीवार तक मेरे साथ आए थे। पोलकके साथ वह भी गिरफ्तार हो गए थे और जेलकी सैर कर आए थे। अतमे जब दक्षिण अफ्रीका छोडकर गोखलेसे विलायतमे मिलकर मै भारत लौट रहा था तब कैलनबेक भी साथमे थे। पर लडाईके कारण उन्हे भारत आनेकी आज्ञा नही मिली। अन्य जर्मनोके साथ इन्हे भी नजरबद रखा गया था। महायुद्धके समाप्त होते ही वह फिर जोहान्सवर्ग चले गए है और उन्होने अपना धधा शुरू कर दिया है। जोहान्सवर्गमे सत्याग्रही कैदियोके कुटुबोको एक साथ रखनेका विचार जब हुआ तब मि० कैलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत कौमको योही बिना किराया लिए सौप दिया। (द० अ० स०, १९२५)

मेरी उनकी (मि० कैलनबेककी) मुलाकात अनायास हो गई थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अदर गहरा वैराग्यभाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होने उनसे मेरी मुलाकात

कराई। जिन दिनो उनसे मेरा परिचय हुआ उन दिनोके उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मै चौक उठा था, परतु पहली ही मुलाकातमे मुझसे उन्होने धर्मके विपयमे प्रश्न किया। उसमे बुद्ध भगवान्की वात सहज ही निकल पडी। तवसे हमारा सपर्क वढता गया, वह इस हद-तक कि उनके मनमे यह निश्चय हो गया कि जो काम मै करू वह उन्हे भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२००) रुपये मासिक खर्च करते थे। यहासे अतको ठेठ इतनी सादगीपर आ गए कि उनका मासिक खर्च १२०) रुपये हो गया। मेरे घर-वार विखेर देने और जेलसे आनेके वाद तो हम दोनो एकसाथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनो अपना जीवन अपेक्षाकृत वहुत कडाईके साथ विता रहे थे।

दूधके सवधमे जव मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तव हम शामिल रहते थे। एक वार मि० कैलनवेकने कहा, "जव हम दूधमें इतने दोप वताते है तो फिर छोड क्यो न दे ? वह अनिवार्य तो है ही नही।" उनकी इस रायको सुनकर मुझे वडा आनद और आश्चर्य हुआ। मैने तुरत उनकी वातका स्वागत किया और हम दोनोने टाल्स्टाय-फार्ममे उसी क्षण दूधका त्याग कर दिया। यह वात १९१२की है। (आ०, १९२७)

• •

१९१४ ई०मे जव सत्याग्रह-सग्रामका अत हुआ तव गोखलेकी इच्छासे मैने इग्लैड होकर देश आनेका विचार किया था। इसलिए जुलाई महीनेमे कस्तूरवाई, कैलनवेक और मै, तीनो विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह-सग्रामके दिनोमे मैने रेलमे तीसरे दर्जेमे सफर शुरू कर दिया था। इस कारण जहाजमे भी तीसरे दर्जेके ही टिकट खरीदे, परतु इस तीसरे दर्जेमे और हमारे तीसरे दर्जेमे वहुत अतर है। हमारे यहा तो सोने-वैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो वात ही क्या पूछना ! किंतु इसके विपरीत वहाके जहाजोमे जगह काफी रहती थी

और सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था। कपनीने हमारे लिए कुछ और भी सुविधाये कर दी थी। कोई हमको दिक न करने पाए, इस खयालसे एक पाखानेमे ताला लगाकर उसकी ताली हमे सौप दी गई थी, और हम फलाहारी थे इसलिए हमको ताजे और सूखे फल देनेकी आज्ञा भी जहाजके खजाचीको दे दी गई थी। मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोको फल कम ही मिलते है और मेवा तो कतई नही मिलता। पर इस सुविधाकी वदौलत हम लोग समुद्रपर वहुत शातिसे १० दिन विता सके।

इस यात्राके कितने ही सस्मरण जानने योग्य है। मि० कैलनवेकको दूरवीनोका वडा शौक था। दो-एक कीमती दूरवीने उन्होने अपने साथ रक्खी थी। इसके विपयमे रोज हमारी आपसमे वहस होती। मै उन्हे यह जचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे आदर्शके और जिस सादगीको हम पहुचना चाहते है उसके अनुकूल नही है। एक रोज तो हम दोनोमे इस विषयपर गरमागरम वहस हो गई। हम दोनो अपनी कैविनकी खिड़कीके पास खडे थे।

मैने कहा—"आपके और मेरे वीच ऐसे झगडे होनेसे तो क्या यह वेहतर नही है कि इस दूरवीनको समुद्रमे फेक दे और इसकी चर्चा ही न करे?"

मि० कैलनवेकने तुरत उत्तर दिया—"जरूर, इस झगडेकी जडको फेक ही दीजिए।"

मैने कहा—"देखो, मै फेंके देता हू!"

उन्होने वे-रोक उत्तर दिया—"मै सचमुच कहता हू, फेक दीजिए।"

और, मैने दूरवीन फेक दी। उसका दाम कोई सात पौड था, परतु उसकी कीमत उसके दामकी अपेक्षा मि० कैलनवेकके उसके प्रति मोहमे थी। फिर भी मि० कैलनवेकने अपने मनको कभी इस वातका दुख न

होने दिया। उनके मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बाते हुआ करती थी। यह तो उसका एक नमूना पाठकोको दिखाया है। (आ०, १९२७)

कैलनबेक मुझसे कहा करता था कि तुम इतनी तेजीसे आगे बढ रहे हो कि आखिर तुम्हे सब छोड देगे, वे तुम्हारे साथ आगे बढ नही सकेंगे। मैने कहा कि तुम भी छोड दोगे ? तो कहने लगा, "मै कैसे छोड सकता हू। हम तो एक जान दो शरीर जैसे है और मैने तुमको अपनी गरजके लिए ढूढा है, तुमने मुझे नही ढूढा। मै तो तुम्हे कभी नही छोड सकता।" मगर अब तो वह भी छूट गया है। उसके विचार भी मुझसे अलग पड गए है। यहूदियोके बारेमे उसका इतना पक्षपात है कि क्या कहना ! वह मानता है कि जर्मनी यहूदियोका दुश्मन है और जर्मनीसे लडनेवाले अग्रेजोके साथ मै लड रहा हू। उसका वह समर्थन नही कर पाया। जब वह यहा आया था तब मैने उसे बहुत समझाया था कि क्यो मैने यहूदियोको हिसासे भरे हुए कहा है। आज तो वे हिंसाको ही अपने हृदयमे पोषण दे रहे है। मनमे हिंसा रहे तो बाहरकी अहिंसाका कोई अर्थ नही रहता। वह मेरी बात कुछ समझा भी सही। मैने उसे इस आशयका एक खुला पत्र यहूदियोको लिखनेको कहा था। उसने लिखा भी, मगर उसे ऐसा लगता था कि इस बारेमे उसकी कौन सुनेगा। इसलिए अखबारोमे भेजा नही। मैने कहा, "भले न सुने, तुम अपना धर्म पूरा करो। भले ही फिलस्तीनमे जाकर लडो और मर जाओ, यह मै सहन करूगा, मगर आज जैसे यहूदियोका चल रहा है वह असह्य है। हृदयमे हिसा है तो बाहर इससे उल्टा बतानेमे कोई अर्थ नही।" (का० क०, १९४२)

: ३९ :

कोट्स

दूसरे दिन एक वजे मैं मि० वेकरके प्रार्थना-समाजमे गया। वहा कुमारी हैरिस, कुमारी गेव, मि० कोट्स आदिसे परिचय हुआ। सवने घुटने टेककर प्रार्थना की। मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थनामे जिसका जो मन चाहता, ईश्वरसे मागता। दिन शातिके साथ वीते, ईश्वर हमारे हृदयके द्वार खोलो, इत्यादि प्रार्थना होती। उस दिन मेरे लिए भी प्रार्थना की गई। 'हमारे साथ जो यह नया भाई आया है, उसे तू राह दिखाना। तूने जो शाति हमे प्रदान की है, वह इसे भी देना। जिस ईसामसीहने हमे मुक्त किया है, वह इसे भी मुक्त करे। यह सव हम ईसामसीहके नामपर मागते है।' इस प्रार्थनामे भजन-कीर्तन न होते। किसी विशेप वातकी याचना ईश्वरसे करके अपने-अपने घर चले जाते। यह समय सवके दोपहरके भोजनका होता था, इसलिए सव इस तरह प्रार्थना करके भोजन करने चले जाते। प्रार्थनामे पाच मिनटसे अधिक समय न लगता।

कुमारी हैरिस और कुमारी गेवकी अवस्था प्रौढ थी। मि० कोट्स क्वेकर थे। ये दोनो महिलाये साथ रहती। उन्होने मुझे हर रविवारको ४ वजे चाय पीनेके लिए अपने यहा आमन्त्रित किया। मि० कोट्स जव मिलते तव हर रविवारको उन्हे मैं अपना साप्ताहिक धार्मिक रोजनामचा सुनाता। मैंने कौन-कौन-सी पुस्तके पढी, उनका क्या असर मेरे दिलपर हुआ, इसकी चर्चा होती। ये कुमारिकाएँ अपने मीठे अनुभव सुनाती और अपनेको मिली परम-शातिकी वाते करती।

मि० कोट्स एक शुद्ध भाववाले कट्टर युवक क्वेकर थे। उनसे मेरा

घनिष्ठ सवध हो गया। हम बहुत बार साथ घूमने भी जाते। वह मुझे दूसरे भाइयोके यहा ले जाते।

कोट्सने मुझे किताबोसे लाद दिया। ज्यो-ज्यो वह मुझे पहचानते जाते त्यो-त्यो जो पुस्तके उन्हे ठीक मालूम होती, मुझे पढनेके लिए देते। मैंने भी केवल श्रद्धाके वशीभूत होकर उन्हे पढना मजूर किया। इन पुस्तकोपर हम चर्चा भी करते।

ऐसी पुस्तके मैंने १८९३मे बहुत पढी। अब सबके नाम मुझे याद नही रहे है। कुछ ये थी—सिटी टेपलवाले डा० पारकरकी टीका, पियर्सन की 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स', बटलर कृत 'एनेलाजी' इत्यादि। कितनी ही बाते समझमे न आती, कितनी ही पसद आती, कितनी ही न आती। यह सब मैं कोट्ससे कहता। 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स'के मानी है 'बहुतसे दृढ प्रमाण', अर्थात् बाइबिलमे रचयिताने जिस धर्मका अनुभव किया उसके प्रमाण। इस पुस्तकका असर मुझपर बिलकुल न हुआ। पारकरकी टीका नीतिवर्द्धक मानी जा सकती है, परतु वह उन लोगोकी सहायता नही कर सकती जिन्हे ईसाई-धर्मकी प्रचलित धारणाओपर सदेह है। बटलरकी 'एनेलाजी' बहुत क्लिष्ट और गभीर मालूम हुई। उसे पाच-सात बार पढना चाहिए। वह नास्तिकको आस्तिक बनानेके लिए लिखी गई मालूम हुई। उसमे ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए जो युक्तिया दी गई है, उनसे मुझे लाभ न हुआ, क्योकि यह मेरी नास्तिकता-का युग न था। और जो युक्तिया ईसामसीहके अद्वितीय अवतारके सबधमे अथवा उसके मनुष्य और ईश्वरके बीच सधि-कर्त्ता होनेके विषयमे दी गई थी, उनकी भी छाप मेरे दिलपर न पडी।

पर कोट्स पीछे हटनेवाले आदमी न थे। उनके स्नेहकी सीमा न थी। उन्होने मेरे गलेमे वैष्णवकी कठी देखी। उन्हे यह वहम मालूम हुआ और देखकर दु ख हुआ। "यह अध-विश्वास तुम जैसोको शोभा नही देता। लाओ, तोड दू।"

"यह कठी तोडी नही जा सकती। माताजीकी प्रसादी है।"

"पर इसपर तुम्हारा विश्वास है ?"

"मै इसका गूढार्थ नही जानता। यह भी नही भासित होता कि यदि इसे न पहनू तो कोई अनिष्ट हो जायगा, परतु जो माला मुझे माताजीने प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनानेमे उसने मेरा श्रेय माना, उसे मै विना प्रयोजन नही निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जव वह अपने-आप टूट जायगी तव दूसरी मगाकर पहननेका लोभ मुझे न रहेगा, पर इसे नही तोड सकता।"

कोट्स मेरी इस दलीलकी कद्र न कर सके, क्योकि उन्हे तो मेरे धर्मके प्रति ही अनास्था थी। वह तो मुझे अज्ञान-कूपमे उवारनेकी आशा रखते थे। वह मुझे यह वताना चाहते थे कि अन्य धर्मोमे थोडा-वहुत सत्याश भले ही हो, परतु पूर्ण सत्य-रूप ईसाई-धर्मको स्वीकार किए विना मोक्ष नही मिल सकता और ईसामसीहकी मध्यस्थताके विना पाप-प्रक्षालन नही हो सकता तथा पुण्य-कर्म सारे निरर्थक है। कोट्सने जिस प्रकार पुस्तकोसे परिचय कराया उसी प्रकार उन ईसाइयोसे भी कराया, जिन्हे वह कट्टर समझते थे। इनमे एक प्लीमथ व्रदर्सका भी परिवार था।

'प्लीमथ व्रदरन्' नामक एक ईसाई-सप्रदाय है। कोट्सके कराये वहुतेरे परिचय मुझे अच्छे मालूम हुए। ऐसा जान पडा कि वे लोग ईश्वर-भीरु थे, परतु इस परिवारवालोने मेरे सामने यह दलील पेश की—"हमारे धर्मकी खूवी ही तुम नही समझ सकते। तुम्हारी वातोसे हम देखते है कि तुम हमेशा वात-वातमे अपनी भूलोका विचार करते हो, हमेशा उन्हे सुधारना पडता है, न सुधरे तो उनके लिए प्रायश्चित करना पडता है। इस क्रियाकाडसे तुम्हे मुक्ति कव मिल सकती है ? तुमको शाति तो मिल ही नही सकती। हम पापी है, यह तो आप कवूल ही करते है। अव देखो हमारे धर्म-मन्तव्यकी परिपूर्णता। वह कहता है

मनुष्यका प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी उसे मुक्तिकी तो जरूरत है ही। ऐसी दशामे पापका बोझ उसके सिरसे उतरेगा किस तरह ? इसकी तरकीव यह कि हम उसे ईसामसीहपर ढो देते है, क्योकि वह तो ईश्वरका एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो मुझे मानता है वह सब पापोसे छूट जाता है। ईश्वरकी यह अगाध उदारता है। ईसामसीह-की इस मुक्ति-योजनाको हमने स्वीकार किया है, इसलिए हमारे पाप हमे नही लगते। पाप तो मनुष्यसे होते ही है। इस जगत्मे विना पापके कोई कैसे रह सकता है ? इसलिए ईसामसीहने सारे ससारके पापोका प्रायश्चित एकवारगी कर लिया। उसके इस वलिदानपर जिसकी श्रद्धा हो वही शाति प्राप्त कर सकता है। कहा तुम्हारी शाति और कहा हमारी शाति !"

यह दलील मुझे विलकुल न जची। मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि सर्वमान्य ईसाई-धर्म यही हो, जैसा कि आपने वयान किया है, तो इससे मेरा काम नही चल सकता। मै पापके परिणामसे मुक्ति नही चाहता। मै तो पाप-प्रवृत्तिसे, पाप-कर्मसे, मुक्ति चाहता हू। जवतक वह न मिलेगी मेरी अशाति मुझे प्रिय लगेगी।"

प्लीमथ व्रदरने उत्तर दिया—"मै तुमको निश्चयसे कहता हू कि तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। मेरी वातपर फिरसे विचार करना।"

और इन महाशयने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया—जान-बूझकर वुरा काम कर दिखाया।

परतु तमाम ईसाइयोकी मान्यता ऐसी नही होती, यह वात तो मै इनसे परिचय होनेके पहले भी जान चुका था। कोट्स खुद पाप-भीरु थे। उनका हृदय निर्मल था, वह हृदय-शुद्धिकी सभावनापर विश्वास रखते थे। वे वहने भी इसी विचारकी थी। जो-जो पुस्तके मेरे हाथ आई उनमे कितनी ही भक्ति-पूर्ण थी, इसलिए प्लीमथ व्रदर्सके परिचयसे कोट्सको जो चिंता हुई थी उसे मैंने दूर कर दिया और उन्हे विश्वास दिलाया कि प्लीमथ व्रदरकी अनुचित धारणाके आधारपर मै सारे ईसाई-

धर्मके खिलाफ अपनी राय न बना लूगा। मेरी कठिनाइया तो बाइबिल तथा उसके रूढ अर्थके सबधमे थी। (आ०, १९२७)

: ४० :

मणिलाल कोठारी

हरिजन-आदोलन इतनी तेजीसे शुरू हुआ उसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मैं जानता था और जबसे मेरा उनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि उनमे छूतछातकी जरा भी गध नही थी। हरिजनोकी महायता करते हुए जो जोखिम उठानी चाहिए उसे उठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे। अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोके लिए पैसा इकट्ठा करनेकी उनमे अद्वितीय शक्ति थी तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही। उनमे यो तो बहुत-सी शक्तिया थी, किंतु पारमार्थिक कार्योंके लिए धन-सग्रह करनेकी उनमे जो शक्ति थी, उसके लिए तो लोग हमेशा ही उन्हे याद करेंगे। हरिजन-कार्यके लिए उन्होने काफी पैसा इकट्ठा किया था और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मै अच्छा हो जाऊ तो जितना पैसा आपको चाहिए उतना ला दूगा। पैसा इकट्ठा करा देनेके लिए जहा-तहासे उनके पास मागे आती ही रहती थी। मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे। कोई भी पारमार्थिक काम हो, वह उन्हे अपनी तरफ खीच सकता था। सेवा करनेका उनका लोभ उन्हे चाहे जिस जोखिममे उतार सकता था। उनकी कमी उनके कुटुबको तो खटकेगी ही हरिजनोको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवाक्षेत्रोमे उनके अभावकी बहुत समयतक याद रहेगी, इसमे सदेह नही।

ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे। (ह० से०, २३ १० ३७)

: ४१ :

धर्मानन्द कौसंबी

[वौद्ध विद्वान श्रीकौसवीकी मृत्युका समाचार देते हुए गाधोजीने कहा]

शायद आपने उनका नाम नही सुना होगा। इसलिए शायद आप दु ख मानना नही चाहेगे। वैसे किसी मृत्युपर हमे दु ख मानना चाहिए भी नही, लेकिन इन्सानका स्वभाव है कि वह अपने स्नेही या पूज्यके मरनेपर दु ख मनाता ही है। हम लोग ऐसे वने है कि जो अपने कामकी डुग्गी पिटवाता फिरता है और राज्य-कारणमे उछाले भरता है, उसको तो हम आसमानपर चढा देते है, लेकिन मूक काम करनेवालोको नही पूछते।

कौसवीजी ऐसे ही एक मूक कार्यकर्त्ता थे। उनका जन्म गोवामे हुआ था। जन्मसे वह हिदू थे, पर उनको ऐसा विश्वास वैठ गया था कि वौद्ध धर्ममे अहिंसा, शील आदि जितने वढे-चढे है, उतने दूसरे धर्ममे, वेद-धर्ममे भी नही है। इसलिए उन्होने वौद्ध धर्म स्वीकार किया और वौद्ध शास्त्रोके अध्ययनमे लग गए और उसमे इतने वडे विद्वान् हो गए कि शायद ही हिदुस्तानमे उनकी वरावरीका और कोई हो। उन्होने गुजरात विद्यापीठ व काशी विद्यापीठमे पाली भाषा पढाई और अपनी ।व विद्वत्ताका ज्ञान-दान किया था।

उन्होने मेरे पास १०००) भेज दिए, जो किसीने उनको दिए थे। उन्होने मुझको लिखा था कि किसीको पाली पढनेके लिए लका भेज देना। लेकिन मैने उनसे पूछा कि क्या लका जाकर पढनेसे किसीको वौद्ध धर्म प्राप्त हो जायगा? मैने तो दुनियामे वौद्धोसे कहा है कि आपको अगर वौद्ध धर्म जानना है तो आप उसके जन्म-स्थान भारतमे ही उसे

पायेंगे। जहांपर वेद-धर्मसे वह निकला है, वहीं आपको उसे खोजना है और शंकराचार्य-जैसे अद्वितीय विद्वान्, जो प्रच्छन्न बुद्ध कहलाए, उनके ग्रंथोंको भी आप समझेंगे तब बौद्ध धर्मका गूढ़ रहस्य आप जान पायेंगे।

लेकिन कौसंबीजीकी विद्वत्तासे मैं अपनी तुलना नहीं कर सकता। मैं तो इंग्लैंडमें भोज खाकर बना हुआ बैरिस्टर हूं। मेरे पास संस्कृतका ज्ञान जरा-सा है। अगर आज मैं महात्मा बना हूं तो इसलिए नहीं कि अंग्रेजीका बैरिस्टर हूं, पर इसलिए कि मैंने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिंसाके द्वारा की है। इस सत्य और अहिंसाकी पूजामें जो थोड़ी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसीके कारण आज मेरी थोड़ी-बहुत पूछ है।

कौसंबीजीकी समझमें यह समा गया कि अब यह शरीर अधिक काम करनेके योग्य नहीं रहा है तो उन्होंने अनशन करके प्राण-त्याग करनेकी ठानी। टंडनजीके कहनेपर मैंने उनका अनशन उनकी (कौसंबीजीकी) अनिच्छासे तुड़वाया, पर उनका हाजमा बहुत खराब हो चुका था और कुछ भी खुराक ले ही नहीं सकते थे। तब दुबारा सेवाग्राममें चालीस दिनतक केवल जलपर ही रहकर उन्होंने शरीरांत किया। बीमारीमें नाममात्रकी सेवा और औषधि भी नहीं ली। जन्म-स्थान गोवामें जानेका मोह भी उन्होंने तजा और अपने पुत्र आदिको अपने पास न आनेकी आज्ञा दी। मृत्युके बादके लिए कह गए कि 'मेरा कोई स्मारक न बनाया जाय।' शरीरको जलाने या दफनानेमें जो सस्ता पड़े वह किया जाय और इस तरह उन्होंने बुद्धका नाम रटते-रटते अंतिम गहरी निद्रा ली, जो हरेक जन्मनेवालेको कभी-न-कभी लेनी ही है। मृत्यु हरेकका परम मित्र है, वह अपने कर्मके मुताबिक आवेगा ही। भले ही कोई यह बता दे कि अमुकका जन्म अमुक समय होगा, पर मौत कब आवेगी यह कोई भी आजतक नहीं बता पाया है। (प्रा० प्र० ५ ६ ४७)

प्रोफेसर कोसवीजी जो वडे विद्वान थे और पाली भाषामे अग्रगण्य माने जाते थे। वे अभी-अभी सेवाग्राम आश्रममे चल वसे। उनके वारेमें वहाके सचालक वलवतसिहका पत्र है, जिसमे कहा गया है कि ऐसी मृत्यु आजतक मैने नही देखी। यह तो विल्कुल ऐसी हुई जैसी कवीरजीने वताई है

दास कवीर जतन सो ओढी,
ज्यो-की-त्यो धर दीनी चदरिया।

इस तरह हम सभी लोग मृत्युकी मैत्री साध ले तो हिंदुस्तानका भला ही होनेवाला है। (प्रा० प्र०, ८ ६ ४७)

: ४२ :

सरदार खडगसिंह

जेलकी चहारदीवारीसे वाहर अपने वीच सरदार खडगसिहको पुन राष्ट्रीय काम करते हुए देखकर प्रत्येक देशभक्तको आनद होगा। अपने दुर्दमनीय स्वभाव और छुटकारा पानेके लिए अधिकारियोके सामने अपना सिर भुकानेसे इन्कार करनेके कारण अपने देशभाइयोके हृदयमे उन्होने वहुत ऊचा स्थान प्राप्त कर लिया है। परमात्मासे प्रार्थना है कि इस स्वाधीनताके युद्धमे वे वर्षोतक देशकी सेवा करे। (हिं० न०, २३ ६ २७)

: ४३ :

डा० एन० बी० खरे

पिछले सप्ताह डाक्टर खरे और उनकी हरिजन-सेवक-समितिने मेरे प्रवासके कार्यक्रमके सबधमे बडी ही सुदर व्यवस्था की थी। डाक्टर खरेको स्वेच्छासे काम करनेवाले अनेक सुयोग्य साथियोकी सहायता न मिलती तो यह कार्यक्रम पूरा ही नही हो सकता था। डाक्टर साहबने, हृदयकी पुरानी व्याधिसे पीडित होते हुए भी, इन कठिन दिनोमे परिश्रम करनेमे कोई कसर उठा नही रक्खी और अपने साथियोसे भी उन्होने खूब काम लिया। नागपुरकी विराट् सभामे बिजलीकी सैकडो बत्तिया लगाने और ऊचा पक्का मच तैयार करनेमे जो खर्च पडा वह कुछ सज्जनोने आपसमे ही इकट्ठा करके दे दिया था। दानकी थैलियोमेसे इस खर्चके लिए एक पैसा भी नही निकाला गया। उन दिनो श्रीगणपत राव टिकेकरका मकान, जहा मै ठहरा हुआ था, एक तरहसे धर्मशाला बन गया था। टिकेकर-बधुओने हमारे बडे दलको तथा दूसरे कार्योके सबधमे आए हुए अन्य लोगोको आराम और सुविधाए पहुचानेमे परिश्रम तथा खर्चमे जरा भी कमी नही रक्खी। मैने देखा कि नागपुर और आसपासके गावोमे मेरे दौरेको सफल बनानेमे काग्रेसवालो एव दूसरे लोगोने पूरा सहयोग दिया। इसमे सदेह ही नही कि उन सबके सहयोगसे मेरा यह दौरा सफल हुआ। डाक्टर खरे और उनके साथियोने इस अवसरपर जो असीम परिश्रम किया उसके लिए मै उन्हे धन्यवाद देता हू। इस महान् शुद्धि-कार्यमे जो परिश्रम और सावधानी उन्होने दिखाई, वह आवश्यक ही थी।
(ह० से०, २४ ११ ३३)

: ४४ :

नारायण मोरेश्वर खरे

हाल हीमे स्थापित हुए सत्याग्रह-आश्रमके लिए एक अच्छा सगीत-शिक्षक देनेको जब मैंने स्वर्गीय मगनलाल गाधीको प० विष्णु दिगबरके पास भेजा तो पडित विष्णु दिगबरजी समझ गए कि मैं किस तरहका आदमी चाहता हू । पडित खरेका उन्होने जो चुनाव किया वह ठीक ही निकला, क्योकि जिस कामके लिए उन्हे लाया गया उसे उन्होने इतनी अच्छी तरह किया जिससे अच्छी तरह और किसीने न किया होता । उनकी मृत्युसे जो स्थान खाली हुआ है वह शायद खाली ही बना रहेगा, क्योकि जिन्होने कलाको अपनाया है, उनमे ऐसे बहुत कम है जिन्होने उसमे पडकर भी अपने जीवनको शुद्ध और निर्दोष बनाये रक्खा हो। बल्कि हम लोगोमे किसी कदर यह भावना-सी जम गई है कि कलाका व्यक्तिगत जीवनकी शुद्धतासे कोई सरोकार नही है । लेकिन अपने सारे अनुभवके आधारपर मैं कह सकता हू कि इससे असत्य और कोई बात नही हो सकती। ज्यो-ज्यो मैं अपने पार्थिव जीवनके अतपर आ रहा हू, मैं यह कह सकता हू कि जीवनकी शुद्धता ही सबसे ऊची और सच्ची कला है । कृत्रिम आवाजसे सुदर सगीत पैदा करनेकी कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते है, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस सगीतको पैदा करनेकी कला विरले ही प्राप्त करते है । पडित खरे उन्ही बिरले व्यक्तियोमेसे थे, जिन्होने सपूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है । ऐसा कोई अवसर नही हुआ जबकि उनके जीवनकी शुद्धताके बारेमे मुझे जरा-सा भी सदेह हुआ हो ।

पडितजीने सगीतमे गुजरातका जो रस पैदा किया है उसे गुजरातको बराबर जारी रखना चहिए । मै आशा करता हू कि उनके दोनो बच्चे

उन्हींके योग्य साबित होंगे और उनकी वीर पत्नी अपने त्यागमय जीवनके द्वारा भारतीय विधवाका आदर्श उपस्थित करेगी, इसमे मुझे कोई सन्देह नही है । रही पडितजीकी बात, सो यह तो ठीक है कि अपने जीवनके मध्यकालमे ही उनकी मृत्यु हो गई है, लेकिन उनकी मौत ऐसी मौत है कि हरएक उसके लिए ईर्षा करेगा, क्योकि इस पुण्यस्थान मे काम करते हुए उनकी मृत्यु हुई है और अपनी मृत्युका ज्ञान होजानेके कारण राम-नामका उच्चारण करते हुए तथा उसी पवित्र नामकी ध्वनि श्रवण करते हुए उनका अवसान हुआ है। ईश्वर करे कि गुजरात उनके मृदु स्मरणको सुरक्षित रखे ! (ह० से० १६ २ ३८)

तार माना जासकने जैसा नही है । जब तुमने बीमारीकी बात कही थी तब मनमे कुछ खटका हुआ था, लेकिन तुरत ही उसकी उपेक्षा करदी और यह मानकर बैठ गया कि उनका कुछ बिगडेगा नही । दूसरे पडितजीका मिलना अशक्य समझता हू । सगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहा ढूढूगा ? (मृत्युपर दिया गया तार)

: ४५ :

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाके सपर्कमे आनेकी अभिलाषा तो मुझे हमेशा रही है, लेकिन गत वर्षके आखिरी महीनोसे पहले मुझे कभी ऐसा अवसर नही मिला कि मैं कुछ समय तक उनके साथ रहता । परतु हजारीबाग जेलसे छूटनेके बाद, सौभाग्यवश शीघ्र ही, न केवल खान अब्दुल गफ्फार खा, बल्कि उनके भाई डा० खानसाहब भी मेरे पास आ गए । भाग्यकी बात

है कि २७ दिसंबर तक सीमाप्रांतमे उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और कांग्रेसके आदेशके अनुसार वे आज्ञा भग कर नही सकते थे। अत उन्होने वर्धामे सेठ जमनालाल बजाजका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुझे इन भाइयोके घनिष्ट सपर्कमे आनेका मौका मिल गया। जितना-जितना मैं उन्हे जानता गया, उतना ही अधिक मैं उनकी ओर आकर्षित होने लगा। उनकी पारदर्शी सचाई, स्पष्टवादिता और हद दर्जेकी सादगीका मुझपर बहुत प्रभाव पडा। साथ ही मैंने यह भी देखा कि सत्य और अहिसामे केवल नीतिके तौरपर नही, वरन् ध्येयके रूपमे उनका विश्वास हो गया है। छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खा तो मुझे गहरी धार्मिक भावनाओसे ओतप्रोत प्रतीत हुए, परतु उनके विचार सकीर्ण नही है। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पडे। उनमे यदि कुछ राजनीतिकता है तो उसका आधार उनका धर्म है। और डाक्टर साहबकी तो कोई राजनीति है ही नही। ('दो खुदाई खिदमतगार' की भूमिका)

खुदाई खिदमतगार चाहे जैसे हो, या अतमे वे चाहे जैसे साबित हो, पर उनके नेताके बारेमे तो, जिसे वे बादशाह खान कहकर खुश होते है, कोई सदेह नही हो सकता। वह तो असदिग्ध रूपसे ईश्वर-भीरु पुरुष है। उसकी प्रतिक्षणकी अखड उपस्थितिमे उनकी परम श्रद्धा है और वह बखूबी जानते है कि उनका आदोलन तभी प्रगति करेगा जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमे अपनी सारी आत्माको उडेलकर, परिणामकी वह बहुत ज्यादा फिक्र नही करते। उनके लिए तो यह मेहसूस करना ही काफी है कि अहिसाको उसके पूरे रूपमे स्वीकार किए बगैर पठानोकी मुक्ति नही। इस बातमे वह कोई गौरव अनुभव नही करते कि पठान अच्छे लडाका है। वह उनकी बहादुरीकी तो कद्र करते है, लेकिन उनका ऐसा खयाल है कि बहुत ज्यादा प्रशसासे उसे बिगाड दिया गया है। अपने पठानोको वह समाजके गुडोके रूपमे नही देखना चाहते। उनका यह विश्वास

है कि पठानोको अज्ञानमे रखकर उनमे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की गई है। वह पठानोको और अधिक वीर बनाना चाहते है और चाहते है कि उनकी वीरताके साथ सच्चे ज्ञानका भी समावेश होजाय। उनका खयाल है कि ऐसा केवल अहिंसाके द्वारा ही हो सकता है।

और चूकि खानसाहब अहिंसामे विश्वास करते है, इसलिए उन्होने चाहा कि खुदाई खिदमतगारोके बीच जितने अधिक समयतक मै रह सकू उतने अधिक समयतक रहू। मुझे तो वहा आनेके लिए किसी प्रलो-भनकी जरूरत ही नही थी, क्योकि मै तो खुद ही उनमे परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक था और उनके दिलो तक पहुचना चाहता था। अब भी मै ऐसा कर सका हू या नही, यह मै नही जानता। बहरहाल, मैने प्रयत्न तो किया ही है।

लेकिन यह बतानेसे पहले कि यह मैने किस तरह और किस हदतक किया, मुझे एक शब्द खानसाहबकी मेजबानीके बारेमे भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमे उन्हे इस बातकी बडी ही फिक्र रही कि मुझे जितनी भी सुविधा पहुचाई जा सकती हो उतनी पहुचाई जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होने कोई बात उठा नही रक्खी। मेरी सभी जरूरतोका वह पहलेसे ही अदाज लगा लेते थे, और उन्होने जो कुछ किया उसमे कोई दिखावा नही था, बल्कि उनके लिए वह सब बिलकुल स्वाभाविक था। उन्होने जो कुछ किया, सब दिलसे किया। फरेब या बनावट तो उनमे है ही नही। दिखावेसे तो वह बिलकुल दूर है। इसलिए वह जो भी देख-भाल रखते वह न तो अखरती और न उससे मेरे काममे कोई रुकावट ही पडती। यही कारण है कि तक्षशिलामे जब हम एक-दूसरेसे जुदा हुए तो हमारी आखे भर आई। जुदाई मुश्किल थी, और इसी आशामे हम एक-दूसरेसे विदा हुए कि शायद अगले मार्चमे ही हम फिर मिलेगे। सीमाप्रातका मेरे लिए ऐसी जगह बना रहना आवश्यक है, जहा मै

अक्सर जाता रहू, क्योकि शेष भारत सच्ची अहिसाका प्रदर्शन करनेमे चाहे असफल रहे, सीमाप्रातसे यह आशा करनेकी काफी गुजाइश है कि वह इस अग्नि-परीक्षामे खरा उतरेगा। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि बादशाह खानके अनुयायी, जिनकी सख्या एक लाखसे अधिक बतलाई जाती है, उनकी आज्ञाका स्वेच्छापूर्वक पालन करते है। उनके कहनेपर वे चलते है। जहा उन्होने कुछ कहा नही कि तुरत उसपर अमल होता है। पर खुदाई खिदमतगारोकी उनमे जो श्रद्धा है उसके होते हुए भी, खुदाई खिदमतगार रचनात्मक अहिंसाकी परीक्षामे पूरे उतरेगे या नही, यह अभी देखनेकी ही बात है।

खानसाहब और मै यह शुरूमे ही तय कर चुके थे कि विभिन्न केन्द्रोमे तमाम खुदाई खिदमतगारोके सामने भाषण करनेके बजाय मुझे उनके नेताओ तक ही मर्यादा बना लेनी चाहिए। इससे मेरी शक्तिका क्षय नही होगा और उसका अधिक-से-अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होगा। हुआ भी यही। पाच हफ्तेके अदर हम सारे केन्द्रोमे हो आए और हरएक केन्द्रमे कोई एक घटा या उससे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। खानसाहब मेरे बहुत योग्य और विश्वस्त दुभाषिये साबित हुए। मैने जो कुछ कहा उसमे उनका विश्वास था, इसलिए मेरी बातोका उल्था अपनी जबानमे करनेमे उन्होने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वह एक जन्मजात वक्ता है और बडे शानदार और प्रभावकारी ढगसे बोलते है।

(ह० से०, १९ ११ ३८)

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिनके यहा गोलमेज कानफ्रेसके समय ईस्ट-एण्ड (लदन) मे मै ठहरा था और जो यह लिखते समय सीमाप्रातमे है, बादशाह खानसे मिलकर उनके बारेमे इस प्रकार लिखती है

"अब मै खान अब्दुल गफ्फार खाको पहचानने लगी हू। मुझे ऐसा लगता है कि जहांतक अद्भुत व्यक्तियोसे मिलनेका सवाल है, अपने

जीवनमें ऐसा सम्मान और कहीं मिलनेकी कोई सभावना नहीं है । वह तो नये टेस्टामेंटकी सुजनताके साथ पुराने टेस्टामेंटके राजा ही है । कितने ऊचे सत है वह ! आपको धन्यवाद है कि आपके द्वारा हमें उनके परिचयमें आना सभव हुआ।

"कल वह हमें उत्तमंजई ले जा रहे है । मीराको फिरसे देखनेमें बड़ा आनद आयगा।"

मै अगर यह समझता कि यह एक असतुलित मस्तिष्ककी अतिशयोक्ति है तो मै व्यक्तिगत रूपसे की गई इस प्रगसाको कभी प्रकाशित न करता । यह तो सच है कि म्यूरियल लेस्टर जिन लोगोसे मिलती है उनकी अच्छाइयोपर ही झट उनका ध्यान जाता है । लेकिन यह कोई बुरी बात नही, बल्कि एक सद्गुण है । बुराइयोसे खाली तो कोई नही है, यहातक कि ईश्वरसे डरकर चलनेवाले सत पुरुप भी नही बचे है । वे सत इसलिए नही है कि उनमे कोई बुराई नही है, बल्कि इसलिए है कि वे अपनी बुराइयोको जानते है, उनसे बचना चाहते है, उन्हे छिपाते नही और उनस मुक्त होकर अच्छे बननेके लिए हमेशा तैयार रहते है । ऐसे ही खानसाहब है, जो खुदाई खिदमतगार कहलानेमे ही फख्र समझते है । वह एक श्रद्धालु मुसलमान है, जो रोजे व नमाजमे कभी नही चूकते । कुरानकी उनकी व्याख्या इतनी उदार है कि उससे उदार व्याख्या मै और नही जानता । खुदाई खिदमतगारोमे कताई वगैरह जारी करनेके लिए मैने उन्हे अपना एक आदमी देनेके लिए कहा था, जिसका उन्हे चुनाव करना था । इसके लिए उन्होने जानबूझकर मीराबेनको चुना । अभी हालतक वह उन्हीके मकानमे रहती भी थी और अब उनके घरसे लगे हुए मकानमे रह रही है, जहा वह अपना कताई-वर्ग चलाती है । वह मुझे प्राय रोज पत्र लिखती है । मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जिन लोगोसे वह प्रेम करती है उनकी आलोचना करनेसे कभी नही चूकती । फिर भी उनके पत्रोमे इस श्रेष्ठ फकीरके बारेमे ऐसे ही

भाव प्रदर्शित किए गए थे, जैसे म्यूरियल लेस्टरने अपनी पहली मुलाकातमे व्यस्त किए है। इतनेपर भी अग्रेज अधिकारी उनका कोई उपयोग नही करते। वे तो उनसे डरते है और उनमे अविश्वास करते है। इस अविश्वाससे अगर प्रगतिमे कोई रुकावट न पडती और भारत तथा इग्लैड और इसलिए सारे ससार को हानि न होती तो मै इस अविश्वासकी कोई परवा न करता (ह० से०, २८ १ ३९)

जहा हर तरफ 'शुद्ध अहिसा' की होली जल रही है, वहा खानसाहबकी जीती-जागती अहिसा कायम है। यह बात हमारे लिए चिराग जैसी रोशन है। खानसाहबका निवेदन[1] मनन करनेके काबिल है। खानसाहबको शोभा भी यही देता है। खानसाहब पठान है। पठान तो तलवार-बदूक साथ लेकर पैदा हुए है, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमे जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तब खानसाहबने उनके हथियार छुडवा दिए। सरकारके साथ तो लडना ही था, लेकिन खानसाहबने अहिसाका सच्चा तजुरबा दूसरी जगह पाया। पठानोमे बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खान्दानमे खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढी-दर-पीढी खूनका बदला खूनसे लेनेका कही अत ही नही आता था। यह भी हिसाकी हद और हिसाका दिवाला था, क्योकि इस तरह खूनका बदला लेते-लेते खान्दान बरबाद हो जाते थे। खानसाहबने पठानोकी ऐसी बरबादी देखी और अहिसामे उनकी बेहतरी पाई। उन्होने सोचा कि अगर मै पठान लोगोको समझा सकू कि हमको न सिर्फ

---

[1]द्वितीय महायुद्धमें सहयोगके प्रश्नको लेकर खानसाहब काग्रेससे अलग हो गए थे। —सपादक

खूनका वदला नही लेना है, वल्कि खूनको भूल जाना है तो एक दूसरेसे वदला वद हो जाएगा, हम जीवित रह सकेगे और जीवनको सफल भी वना मकेगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोने उसपर अमल किया। अव ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते है, जो खूनका वदला लेना भूल गए है। यह शक्तिशालीकी अहिसा या सच्ची अहिसा कही जा सकती है।

अगर खानसाहव काग्रेसमे रहते तो उनकी जिदगीका काम खाकमे मिल जाता। वह पठानोंसे किस मुहसे कहते कि 'तुम लडाईमे भरती हो जाओ? वह वदला न लेने का कानून अव रद हुआ समझो!' ऐसी भाषा पठान समझ ही नही सकते। वह तो तुरत यही जवाव देते कि जर्मनी अपना वदला ले रहा है, इगलैड मुकाविला कर रहा है, यह हार जाएगा तो खुद लडाईकी तैयारी करेगा। इसलिए इस लडाईमे और हमारे खूनका वदला खूनसे लेनेमे रत्तीभर भी फर्क नही। ऐसी दलीलोके सामने खान-साहवकी जवान वन्द हो जाती। इसलिए उन्होने अपना ही काम जारी रखना पसद करके काग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खानसाहवको अहिसाका सदेश पहुचानेमे कहातक सफलता हुई है, वह मै नही जानता। इतना ही जानता हू कि खानसाहवकी श्रद्धा दिमागी नही, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिए वह हमेशा कायम है। अव कवतक उनके चेले उनकी तालीममे लगे रहेगे, यह खुद खानसाहव भी नही कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। परिणाम खुदापर छोड दिया है। उनकी अहिसाका आधार कुरान शरीफ है। खानसाहव पक्के मुसलमान है। वह मेरे साथ लगभग एक सालतक रहे। वावजूद वीमार होनेके, उन्होने न कभी नमाज कजा की, न रोजा। खानसाहवके दिलमे दूसरे मजहबोके प्रति पूरा आदर है। उन्होने गीताका भी थोडा अभ्यास किया है। वह हमेशा वहुत कम पढते है, लेकिन जो पढते या सुनते है वह अगर अमलमे लानेके योग्य हो तो उसपर अमल करनेमे उन्हे देर नही लगती। वह लवी-चौडी दलीलोमे नही पडते।

जरा समझा और तुरत 'हां' या 'ना' कह सकते है। अगर खानसाहबको स्पष्ट सफलता हासिल हुई तो उससे बहुत सारी उलझने सुलझ सकती है। आज तो कुछ नही कहा जा सकता। चाकपर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

(ह० से०, २० ७ ४०)

'एसोसिएटेड प्रेस' ने बादशाह खानके विषयमे नीचे लिखा सवाद प्रचारित किया है

"सीमाप्रातकी प्रातीय काग्रेस-कमिटीने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है --

'देशके कई समाचार-पत्रोमें पठानोके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खाके विरुद्ध और खुदाई खिदमतगार आदोलनके विरुद्ध, जो प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते है। कुछ इस ढगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रातके कार्यकर्त्ताओके बीच फूट पड गई है और दलबदियोने उनके बीच अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू की है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नही दिया है। ये सब खान अब्दुल गफ्फार खाके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी नाई सगठित है। उनके दरमियान दलबदीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल है। फूटकी ये सब दतकथाए कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्तियोके दिमागकी उपज है, जो समझते है कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही, परतु सीमाप्रातकी जनतामे इन लोगोका कोई साथी नही है। वहाका हरएक राष्ट्रवादी बखूबी समझता है कि पदग्रहणकी बात तो दूर रही, आज भारतमें अग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके अन्य भागोमें पार्लमेंटरी कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रातमें तो उसके लिए कतई स्थान नही।

'खान अब्दुल गफ्फार खाने देहातोमें आतरिक सुव्यवस्था और अन्न-वस्त्रके स्वावलवनके वारेमें जो शात, पारमार्थिक रचनात्मक कार्य किया है, उसने वहाकी जनतामें और खास तौरपर गरीब जनतामें उनकी लोकप्रियता और भी वढा दी है। वे सरहदके आसपासवाले कवीलोमें सुलह और शातिके सदेशको पहुचानेका स्वप्न देख रहे है।

'आनेवाले सकटके समयमें जनताकी सच्ची सेवा करनेवाली एक शात और अहिसक सेनाको तैयार करनेमें उन्होने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। करोडो रुपये खर्च करके जो काम करनेमें सरकार असफल रही है, उसे वे जनताकी शुद्ध ऐच्छिक सहायता द्वारा करनेका प्रयत्न कर सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी है। हम आशा करते है कि सीमा-प्रातकी जनता उनके आह्वानका ठीक-ठीक जवाब देगी और देशके सब सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वाग्रहोको छोडकर उनके इस कार्यमें रस लेंगे।' "

सीमाप्रान्तीय समितिने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमे इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है, परतु वादशाह खानकी कीर्ति सीमाप्रातकी प्रातीय समितिके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कही अधिक सवल आधारपर अवलवित है। उनकी कीर्तिका आधार चौथाई सदीसे भी अधिक कालतककी हुई उनकी नि स्वार्थ जनसेवा और उसके फल-स्वरूप प्राप्त उनकी लोकप्रियता है। अपने निदकोकी सब कुचेष्टाओके वावजूद खानसाहव अवतककी सभी अग्नि-परीक्षाओमे उत्तीर्ण हुए है। मुझे इसमे जरा भी शक नही कि आगे चलकर जब फिर परीक्षाका समय आवेगा तो वे पहलेकी भाति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देगे।

(ह० से०, ५ ७ ८२)

बादशाह खान मेरे दोस्त है। मौलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोडकर मेरी झोपडीमे आकर टिकते है। यहा गोश्त नही मागते।

मेरे साथ ही रोटी-फल लेते है। वे पूरे फकीर है। उनके भाई डा० खान साहब बिना उनकी मददके काम नही चला सकते। हम उन्हे सीमात गाधी कहते है, पर वहा गाधीको ही कोई नही जानता तो सीमात गाधीको कौन जाने? वहा तो यह बादशाह कहलाते है और जिस झोपडीमे जाइए, वहा पठान अपने इस बादशाहपर खुश हो जाते है।

ऐसे बादशाहके इलाकेमे जनमत-सग्रह करनेकी बात तय कर दी गई है और वह भी तब जब पठानका खून अभी ठडा नही हुआ है, जिसका कि खून सदा गरम ही रहता आया है और बादशाहने अपनी जिदगी उस खूनको ठडा करनेमे खपा रखी है। (प्रा० प्र०, ११ ६ ४७)

पठान तलवारबाज होता है। कोई पठान ऐसा नही होता जो तलवार और बदूक चलाना न जानता हो। पीढी-दर-पीढी पठान खूनका बदला लेता रहा है। पर बादशाह खानने देखा कि हथियारोकी बहादुरीसे भी ज्यादा बुलदी, मरकर स्वरक्षा करनेमे है। बादशाह खानका खयाल था कि पठान लोग यह ऊची बहादुरी अपना ले और एक होकर सबकी खिदमत करे, पर यह ख्वाब पूरा होनेसे पहले वहा यह जनमत-सग्रहका झगडा फैल गया।

कुछ कहेगे कि हम पाकिस्तानके साथ रहेगे, कोई कहेगे कि काग्रेसके साथ रहेगे, और काग्रेस तो आज बदनाम है कि वह हिदुओकी हो गई। इस बातपर पठान अलग-अलग होगे और ऐसी यादवस्थली मचेगी कि जिसका दबाना दुश्वार होगा। वे आपसमे कट मरेगे। बादशाह खान चाहते है कि किसी तरहसे जनमतसग्रहकी बलासे छूटकर पठान आजाद रहे। वे खुद अपने कानून बनावे और एक रहे, फिर चाहे वे पाकिस्तानमे रहे चाहे हिंदुस्तानमे मिले। वे कहते है कि हमारे पास पैसा नही है। हम तो मिस्कीन आदमी है। हम अपना स्वतन्त्र राष्ट्र

बनाना नही चाहते, पर किसमे मिलेगे इसके बारेमे आपसी झगडा मिट जानेके बाद ही हम निश्चय करेगे। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

लोगोकी आखे आज सरहदी सूबेमे होनेवाले जन-मतकी तरफ लगी हुई है, क्योंकि सरहदी सूबा कानूनन कांग्रेसका रहा है और आज भी है। बादशाह खान और उनके साथियोसे कहा जाता है कि पाकिस्तान या हिंदुस्तान, दोमेसे किसी एकको चुनो। हिंदुस्तानका आज गलत अर्थ हो गया है—हिंदुस्तानका हिंदू और पाकिस्तानका मुसलमान। बादशाह खान इस कठिनाईमेसे कैसे निकले? कांग्रेसने वचन दिया है कि डा० खानसाहबकी सीधी देख-रेखके नीचे सरहदी सूबेमे जनमत लिया जायगा। वह तो नियत तारीखपर ही होगा। खुदाई खिदमतगार मत नही देगे। सो मुस्लिम लीगको सीधी जीत मिलेगी और खुदाई खिदमतगारोको अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ काम नही करना पडेगा, बशर्तेकि उनकी आत्माकी आवाज है, ऐसा माना जाय। ऐसा करनेमे क्या जन-मतकी शर्तोका भग होता है? वही खुदाई खिदमतगार जिन्होने बहादुरीसे ब्रिटिश सरकारका सामना किया, अब हारसे डरनेवाले नही है। हार होगी, यह पक्की तरह जानते हुए अलग-अलग दल रोज चुनावमे हिस्सा लेते है। जब एक दल चुनावमे हिस्सा नही लेता तब भी तो हार निश्चित ही होती है।

पठानिस्तानकी नई माग पेश करनेके लिए बादशाह खानको ताना दिया जाता है। कांग्रेसकी वजारत बननेसे पहले भी, जहातक मै जानता हू, बादशाह खानके सिरपर यही धुन सवार थी कि अपने घरमे पठानोको पूरी आजादी हो। बादशाह खान एक अलग स्टेट बनाना नही चाहते। अगर वह अपने घरमे अपना विधान बना सके तो वह खुशीसे दोमेसे एक संघको कबूल कर लेगे। मुझे तो समझमे नही आता कि पठानिस्तानकी इस मागके सामने किसीको क्या उज्र हो सकता है।

हा, पठानोको पाठ सिखाना हो और उन्हे किसी-न-किसी तरह झुकाना ही हो तो बात अलग है। बादशाह खानपर एक बडा इल्जाम यह लगाया जा रहा है कि वह अफगानिस्तानके हाथोमे खेल रहे है। मै समझता हू कि वह कभी किसी तरहकी धोखेबाजी कर ही नही सकते। वह सरहदी सूबेको अफगानिस्तानमे जज्ब होने नही देगे।

उनके दोस्त होनेके नाते मै मानता हू कि उनमे एक ही कमी है। वे बहुत ही शक्की है, खासकर अग्रेजोके काम और नीयतपर वह हमेशा शुबहा करते है। मै सबसे कहूगा कि वे उनकी इस कमजोरीको, जो कि खास उन्हीमे नही है, नजरअदाज कर दे। यह जरूर है कि इतने बडे नेताके लिए यह शोभा नही देता। अगर्चे मैने उसको एक कमजोरी कहा है और जो एक तरहसे ठीक ही है, मगर दूसरी प्रकारसे इसको एक खूबी मानना चाहिए, क्योकि वे चाहे भी तो अपने विचारोको छिपा नही सकते। (प्रा० प्र०, ३० ६ ४७)

: ४६ :

आदमजी मियां खान

यदि मै देश जाऊ तो फिर काग्रेसका और शिक्षा-मडलके कामका कौन जिम्मा ले? दो साथियोपर नजर गई आदमजी मिया खान और पारसी रुस्तमजी। व्यापारी-वर्गमेसे बहुतेरे काम करनेवाले ऊपर उठ आए थे, पर उनमे प्रथम पक्तिमे आने योग्य यही दो सज्जन ऐसे थे जो मत्रीका काम नियमित रूपसे कर सकते थे और जो दक्षिण अफ्रीकामे जन्मे भारतवासियोका मन हरण कर सकते थे। मत्रीके लिए मामूली अग्रेजी जानना तो आवश्यक था ही। मैने इनमेसे स्वर्गीय आदमजी

मिया खानको मत्री-पद देनेकी सिफारिश की और वह स्वीकृत हुई। अनुभवसे यह पसदगी वहुत ही अच्छी सावित हुई। अपनी उद्योगशीलता, उदारता, मिठास और विवेकके द्वारा सेठ आदमजी मिया खानने अपना काम सतोषजनक रीतिसे किया और सवको विश्वास हो गया कि मत्रीका काम करनेके लिए वकील वैरिस्टरकी अथवा पदवीधारी वडे अग्रेजीदाकी जरूरत न थी। (आ० १९२७)

: ४७ :

गंगाबहन

हम कह सकते है कि गगावहनने जीकर आश्रमको सुशोभित किया और मरकर भी आश्रमको सुशोभित किया। (वडो गगावहनको भेजा पत्र)

गगावहनकी मृत्युके समाचार जानकर हम सवको दु ख हुआ। मुझे खुशी है कि उन्होने अमर श्रद्धाके साथ जीना जाना और मरना जाना। तोतारामजी आनदमे है, इसमे आश्चर्य नही। (आश्रमको दिया गया तार)

देखो, इस निरक्षर स्त्रीको! इसकी मौत कैसा है! दोनोने आश्रमको सुशोभित किया। तोतारामजी गिरमिटिया थे। वहा फीजीके किसी गिरमिटियेकी लडकीसे शादी की होगी, इसलिए दोनो गिरमिटिये ही कहलायेगे। मगर दोनोने कैसी जिंदगी गुजारी!

(म० डा०, ६ ५ ३२)

• •

गगादेवीका चेहरा अव भी मेरी आखोके सामने फिरा करता है, उनकी

वोलीकी भनक मेरे कानोमे पडती है। उनके स्मरणोकी याद करते अव भी मैं थका नही। उनके जीवनसे हम सवको और वहनोको खासतौरसे वहुत सवक सीखने है। वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थी। हवा, पानी वदलनेके लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छासे जानेसे अततक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थी। जो वच्चे उन्हे मिले, उनकी सम्हाल उन्होने अपने वच्चे मानकर की। उन्होने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हो, इसकी जानकारी मुझे नही है। उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था। उन्होने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया। उन्होने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी। जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है।

(य० म०, ३० ५ ३२)

: ४८ :

लाला गंगाराम

एक मित्रके पत्रसे मुझे स्यालकोटके लाला गगारामके स्वर्गवासकी खवर मिली है। वे ६० वर्षकी अवस्थामे गत ४ नववरको एकाएक दिलकी धडकन वद होनेसे परलोक सिधार गए। सन् १९१९मे लाहौरमें स्वर्गीय रामभजदत्त चौधरीके मकान पर उनसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे एक हरिजन-कार्यकर्त्ता थे। हरिजन-सेवाके अर्थ उन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। उन्होने हरिजनोकी नई वस्तिया वसवाई थी। हरिजन-कार्यको निश्चय ही उनके निधनसे हानि पहुची है। स्वर्गीय लाला गगारामके कुटुव तथा उनके प्यारे हरिजनोके प्रति मै समवेदना प्रकट करता हू। (ह० से०, ८ १२ ३३)

: ४६ :

सर गंगाराम

मृत्युने सर श्रीगगारामको क्या उठाया, हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यवहारदक्ष खेतीशास्त्रके जानकारको, एक महान दाताको और विधवाओके बधुको, उठा लिया। सर गगाराम यो तो वयोवृद्ध थे, किंतु उनमे उत्साह युवकोका-सा था। उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारोका आग्रह। इधर मुझे उनसे निकटका सबध प्राप्त करनेका सुअवसर मिला था और यद्यपि हम अनेक बातोमे एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्त्ता थे। और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमानके कारण मैंने उनके विचारोसे बार-बार आदरपूर्वक, किंतु दृढ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामे कलका युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढता ही जाता था। साथ-ही-साथ भारतकी दरिद्रताके विषयमे उनके कुछ विचित्र विचारोसे मेरा विरोध भी। वे मेरे साथ लबे वाद-विवाद करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोका कायल कर देनेकी उन्हे इतनी दृढ आशा थी कि उन्होने उनके अपने खर्चसे मुझे इगलैड चलनेतकके लिए आग्रह किया और मेरे दिमागमे सब पागलपनकी बातोको निकाल देनेका विश्वास दिलाया। यद्यपि मै उनकी इस बातको कबूल नही कर सका और यद्यपि उन्होने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इगलैड जानेसे पहले उनसे मिलकर उन्हे चरखेका, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देनेका मैने वचन दिया था। अत पाठक अनुमान कर सकते है कि उनकी अकस्मात मृत्युकी यह वार्ता सुनकर मुझे कितना दु ख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेगे,

क्योकि वे इगलैड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नही गए थे, बल्कि ऐसे कार्यके लिए गए थे, जिसे वे अपना अत्यन्त जरूरी कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य क्षेत्रहीमे मर गए। भारतको हर तरहसे इस बातका अभिमान है कि सर गगारामके समान पुरुष उसके विख्यात सपूतोमेसे एक है। दिवगत सुधारकके कुटुबी जनोको मै अपने धन्यवाद और सम-वेदना साथ-साथ भेजता हू। (हि० न०, २१ ७ २७)

: ५० :

कस्तूरबा गांधी

मै जानता था कि बहनोको जेल[1] भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समे रहनेवाली अधिकतर बहने मेरी रिश्तेदार थी, वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करे और फिर ऐन मौकेपर घबराकर या जेलमे जानेके बाद उकताकर माफी वगैरह माग ले तो मुझे सदमा पहुचे। साथ ही, इसकी वजहसे लडाईके एकदम कमजोर पड जानेका डर भी था। मैने तय किया था कि मै अपनी पत्नीको तो हरगिज नही ललचाऊगा। वह इन्कार भी नही कर सकती थी और 'हा' कह दे तो उस 'हा'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मै कह नही सकता था। ऐसे जोखिमके काममे स्त्री स्वय जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमे तनिक भी दुखी नही होना चाहिए, इतना मै समझता था। इसलिए मैने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा कर रक्खा था। दूसरी बहनोसे मैने चर्चा की। वे

---

[1] दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके सबधमे।

जेल-यात्राके लिए तैयार हुई । उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेगी । मेरी पत्नीने भी इन सब बातोका सार जान लिया और मुझसे कहा,

"मुझसे इस बातकी चर्चा नही करते, इसका मुझे दुख है । मुझमे ऐसी क्या खामी है कि मै जेल नही जा सकती । मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे है ।"

मैने कहा, "मै तुम्हे दुख पहुचा ही नही सकता । इसमे अविश्वासकी भी कोई बात नही । मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी, लेकिन तुम मेरे कहनेपर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नही लगेगा । ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए । मै कहू और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ और बादमे अदालत के सामने खडी होते ही काप उठो और हार जाओ या जेलके दुखसे ऊब उठो तो इसे मै अपना दोष तो नही मानूगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा । मै तुमको किस तरह रख सकूगा और दुनियाके सामने किस तरह खडा रह सकूगा । बस, इस भयके कारण ही मैने तुम्हें ललचाया नही ।"

मुझे जवाब मिला, "मै हारकर छूट आऊ तो मुझे मत रखना । मेरे बच्चेतक सह सके, आप सब सहन कर सके और अकेली मै ही न सह सकू, ऐसा आप सोचते कैसे है ? मुझे इस लडाईमे शामिल होना ही होगा ।"

मैने जवाब दिया, "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा । मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो । मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो । अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भलीभाति सोचनेके बाद तुम्हे यह लगे कि शामिल नही होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो । साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमे अभी शरमकी कोई बात नही है ।"

मुझे जवाब मिला, "मुझे विचार-विचार कुछ नही करना है। मेरा निश्चय ही है।" (द० अ० स०, १९२५)

• • •

जिन दिनो मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबध—पैसे-पैसे या पाई-पाईके, सो याद नही पडता—छपा करते। इनमे दापत्य प्रेम, मितव्ययता, वाल-विवाह इत्यादि विषयोकी चर्चा रहा करती। इनमेसे कोई-कोई निबध मेरे हाथ पडता और उसे मै पढ जाता। शुरूसे यह मेरी आदत रही कि जो वात पढनेमे अच्छी नही लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढा कि एक-पत्नी-व्रतका पालन करना पतिका धर्म है। वस, यह मेरे हृदयमे अकित हो गया। सत्यकी लगन तो थी ही। इसलिए पत्नीको धोखा या भुलावा देनेका तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्रीसे सबध जोडना पाप है। फिर कोमल वयमे एक-पत्नी-व्रतके भग होनेकी सभावना भी कम रहती है।

परतु इन सद्विचारोका एक बुरा परिणाम निकला। 'यदि मै एक-पत्नी-व्रतका पालन करता हू तो मेरी पत्नीको भी एक-पति-व्रतका पालन करना चाहिए।' इस विचारसे मै असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए'मेसे 'पालन करवाना चाहिए' इस विचारतक जा पहुचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नीकी चोकीदारी करनी चाहिए। पत्नीकी पवित्रतापर तो सदेह करनेका कोई कारण न था, परतु ईर्ष्या कही कारण देखने जाती है? मैने कहा—"पत्नी हमेशा कहा-कहा जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कही नही जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दु खद झगडेका मूल बन बैठा। बिना इजाजतके कही न जा पाना तो एक तरहकी कैद ही हो गई, परतु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टीकी न बनी थी, जो ऐसी कैदको बर्दाश्त करती। जहा जी चाहे, मुझसे बिना पूछे

जरूर चली जाती। ज्यो-ज्यो मै उन्हे दवाता त्यो-त्यो वह अधिक आजादी लेती और त्यो-ही-त्यो मै और विगडता। इस कारण हम वाल-दपतीमे अवोला रहना एक मामूली वात हो गई। कस्तूरवाई जो आजादी लिया करती उसे मै विलकुल निर्दोष मानता हू। एक वालिका, जिसके मनमे कोई वात नही है, देव-दर्शनको जानेके लिए अथवा किसीसे मिलने जानेके लिए क्यो ऐसा दवाव सहन करने लगी? 'यदि मै उसपर दवाव रखू तो फिर वह मुझपर क्यो न रखे?' पर यह वात तो अव समझमे आती है। उस समय तो मुझे पतिदेवकी सत्ता सिद्ध करनी थी।

इससे पाठक यह न समझे कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवनमे कही मिठास थी ही नही। मेरी इस वक्रताका मूल था प्रेम--मै अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री वनाना चाहता था। मेरे मनमे एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मै सीखू सो सीखे, मै पढू सो पढे और हम दोनो एक-मन दो-तन वनकर रहे।

मुझे खयाल नही पडता कि कस्तूरवाईके भी मनमे ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थी। स्वभाव उनका सरल और स्वतत्र था। वह परिश्रमी भी थी, पर मेरे साथ कम वोला करती। अपने अज्ञानपर उन्हे असतोष न था। अपने वचपनमे मैने कभी उनकी ऐसी इच्छा नही देखी कि 'वह पढते है तो मै भी पढू।' इससे मै मानता हू कि मेरी भावना इकतरफा थी। मेरा विषय-सुख एक ही स्त्रीपर अवलवित था और मै उस सुखकी प्रतिध्वनिकी आशा लगाये रहता था। अस्तु, प्रेम यदि एक-पक्षीय भी हो तो वह सर्वाशमे दु ख नही हो सकता।

मुझे कहना चाहिए कि मै अपनी पत्नीसे जहातक सवध है, विषयासक्त था। स्कूलमे भी उसका ध्यान आता और यह विचार मनमे चला ही करता था कि कव रात हो और कव हम मिले। वियोग असह्य हो जाता था। कितनी ही ऊट-पटाग वाते कह-कहकर मै कस्तूरवाईको देरतक सोने न देता। इस आसक्तिके साथ ही यदि मुझमे कर्त्तव्यपरायणता न

होती तो, मै समझता हू, या तो किसी बुरी बीमारीमे फसकर अकाल ही कालकवलित हो जाता अथवा अपने और दुनियाके लिए भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता। 'सुबह होते ही नित्यकर्म तो हर हालतमें करने चाहिए' झूठ तो बोल ही नही सकते', आदि अपने इन विचारोकी बदौलत मै अपने जीवनमे कई सकटोसे बच गया हू।

मै ऊपर कह आया हू कि कस्तूरबाई निरक्षर थी। उन्हे पढानेकी मुझे बडी चाह थी। पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढाने देती ? एक तो मुझे उनकी मर्जीके खिलाफ पढाना था, फिर रातमे ही ऐसा मौका मिल सकता था। बुजुर्गोंके सामने तो पत्नीकी तरफ देखतक नही सकते, बात करना तो दूर रहा ! उस समय काठियावाडमे घूघट निकालनेका निरर्थक और जगली रिवाज था, आज भी थोडा-बहुत बाकी है। इस कारण पढानेके अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे। इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्थामे पढानेकी जितनी कोशिशे मैने की वे सब प्राय बेकार गई और जब मै विषय-निद्रासे जगा तब तो सार्वजनिक जीवनमे पड चुका था। इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नही रह गई थी। शिक्षक रखकर पढानेके मेरे यत्न भी विफल हुए। इसके फलस्वरूप आज कस्तूरबाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढनेसे अधिक साक्षर न होने पाई। यदि मेरा प्रेम विषयसे दूषित न हुआ होता तो, मै मानता हू, आज वह विदुषी हो गई होती। उनके पढनेके आलस्यपर मै विजय प्राप्त कर पाता, क्योकि मै जानता हू कि शुद्ध प्रेमके लिए दुनियामे कोई बात असभव नही।

इस तरह अपनी पत्नीके साथ विषय-रत रहते हुए भी मै कैसे बहुत कुछ बच गया, इसका एक कारण मैने ऊपर बताया। इस सिलसिलेमें एक और बात कहने जैसी है। सैकडो अनुभवोसे मैने यह निचोड निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है, उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है। हिंदू-ससारमे जहा बाल-विवाहकी घातक प्रथा है वहा उसके साथ ही

उसमेसे कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। वालक वर-वधूको मा-वाप वहुत समयतक एक साथ नही रहने देते। वाल-पत्नीका आधेसे ज्यादा समय मायकेमे जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात् हम १३ और १८ सालकी उम्रके दरमियान थोडा-थोडा करके तीन सालसे अधिक साथ न रह सके होगे। छ-आठ महीने रहना हुआ नही कि पत्नीके मा-वापका वुलावा आया नही। उस समय तो वे वुलावे वडे नागवार मालूम होते, परतु सच पूछिए तो उन्हीकी वदौलत हम दोनो वहुत वच गए। फिर १८ सालकी अवस्थामे मै विलायत गया, लवे और सुदर वियोगका अवसर आया। विलायतसे लौटनेपर भी हम एक साथ तो छ महीने मुश्किलसे रहे होगे, क्योकि मुझे राजकोट-ववई वार-वार आना-जाना पडता था। फिर इतनेमे ही दक्षिण अफ्रीकाका निमत्रण आ पहुचा, और इस वीच तो मेरी आखे वहुत-कुछ खुल भी चुकी थी।

विलायत जाते समय जो वियोग-दु ख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ, क्योकि माताजी तो चल वसी थी और मुझे दुनियाका और सफरका अनुभव भी वहुत-कुछ हो गया था। राजकोट और ववई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अवकी वार सिर्फ पत्नीका ही वियोग दु खद था। विलायतसे आनेके वाद दूसरे एक वालकका जन्म हो गया था। हम दपतीके प्रेममे अभी विषय-भोगका अग तो था ही। फिर भी उसमे निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौटनेके वाद हम वहुत थोडा समय एक साथ रहे थे और मै ऐसा-वैसा ही क्यो न हो, उसका शिक्षक वन चुका था। इधर पत्नीकी वहुतेरी वातोमे वहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हे कायम रखनेके लिए भी साथ रहनेकी आवश्यकता हम दोनोको मालूम होती थी। परतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोगको सहन करनेकी शक्ति दे दी थी। 'एक सालके वाद तो हम मिलेगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैने राजकोट छोडा और ववई पहुचा।

लड़ाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामे नही, बल्कि देशमे है। दक्षिण अफ्रीकामे बैठे-बैठे मैं कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परतु मैने देखा कि यहा कही मेरा मुख्य काम धन कमाना ही न हो जाय।

देशसे मित्र लोग भी देश लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमे मि० खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैंने साथियोसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बडी मुश्किलसे उन्होने एक शर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अदर लोगोको मेरी जरूरत मालूम हो तो मै फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊगा। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परतु मै तो प्रेम-पाशमे बधा हुआ था।

काचे रे तातणे मने हरजीए बाधी
जेम ताणे तेम तेमरी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।[1]

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अशमे मुझपर घटित होती थी। पच भी परमेश्वर ही है। मित्रोकी बातको टाल नही सकता था। मैंने वचन दिया। इजाजत मिली।

इस समय मेरा निकट-सबध प्राय नेटालके ही साथ था। नेटालके हिंदुस्तानियोने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनदन पत्र दिए गए और हरएक जगहसे कीमती चीजे नजर की गई।

१८९६मे जब मै देश आया था तब भी भेटे मिली थीं, पर इस बारकी भेटो और सभाओंके दृश्योसे मै घबराया। भेटमे सोने-चादीकी चीजे तो थी ही, पर हीरेकी चीजे भी थी।

---

[1] प्रभुजीने मुझे कच्चे सूतके प्रेम-धागेसे बांध लिया है। ज्यो-ज्यो वह उसे तानते है त्यो-त्यो मै उनकी होती जाती हू।

इन सब चीजोको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मै इन्हे मजूर कर लू तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हू कि मै पैसा लेकर लोगोकी सेवा नही करता था ? मेरे मवक्किलोकी कुछ रकमोको छोडकर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवाके ही उपलक्ष्यमे दी गई थी । पर मेरे मनमे तो मवक्किल और दूसरे साथियोमे कुछ भेद न था । मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममे भी सहायता देते थे ।

फिर उन भेंटोमे एक पचास गिनीका हार कस्तूरबाईके लिए था । मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवाके उपलक्ष्यमे । अतएव उसे पृथक् नही मान सकते थे ।

जिस शामको इनमेंसे मुख्य-मुख्य भेटें मिली, वह रात मैने एक पागल की तरह जागकर काटी । कमरेमे यहा-से-वहा टहलता रहा, परतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी । सैकडो रुपयोकी भेटे न लेना भारी पड रहा था, पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था ।

मै चाहे इन भेंटोको पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हे तालीम तो सेवाकी मिल रही थी । सेवाका दाम नही लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था । घरमे कीमती जेवर आदि मै नही रखता था । सादगी बढती जाती थी । ऐसी अवस्थामे सोनेकी घडिया कौन रखेगा ? सोनेकी कठी और हीरेकी अगूठिया कौन पहनेगा ? गहनोका मोह छोडनेके लिए मै उस समय भी औरोसे कहता रहता था । अब इन गहनो और जवाहरातको लेकर मै क्या करूगा ?

मै इस निर्णयपर पहुचा कि वे चीजें मै हरगिज नही रख सकता । पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया ।

मै जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल पडेगा । मुझे

विश्वास था कि वालकोको समझानेमे जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी। अत उन्हे वकील बनानेका विचार किया।

वच्चे तो तुरत समझ गए। वे बोले, "हमे इन गहनोसे कुछ मतलब नही। ये सब चीजे हमे लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नही बना सकेगे ?"

मै प्रसन्न हुआ। "तो तुम बाको समझाओगे न ?" मैने पूछा।

"जरूर-जरूर। वह कहा इन गहनोको पहनने चली है! वह रखना चाहेगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमे ही इनकी जरूरत नही है तब फिर वह क्यो जिद करने लगी ?"

परतु काम अदाजसे ज्यादा मुश्किल सावित हुआ।

"तुम्हे चाहे जरूरत न हो और लडकोको भी न हो। बच्चोका क्या ? जैसा समझा दे समझ जाते है। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओको तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजे लोगोने इतने प्रेमसे दी है उन्हे वापस लौटाना ठीक नही।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लडके दृढ रहे और मै भला क्यो डिगने लगा ?

मैने धीरेसे कहा—"पहले लड़कोकी शादी तो हो लेने दो। हम बचपनमे तो इनके विवाह करना चाहते ही नही है। बडे होनेपर जो इनका जी चाहे सो करे। फिर हमे क्या गहनो-कपडोकी शौकीन बहुए खोजनी है ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मै कहा चला गया हू ?"

"हा, जानती हू तुमको। वही न हो, जिन्होने मेरे भी गहने उतरवा लिए है! जब मुझे ही नही पहनने देते हो तो मेरी बहुओको जरूर ला दोगे! लडकोको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो! इन गहनोको मै वापस नही देने दूगी और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक है ?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवाकी खातिर मिला है या मेरी ?" मैने पूछा।

"जैसा भी हो तुम्हारी सेवामे क्या मेरी सेवा नही है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नही है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरोको घरमे रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नही ?"

ये सव वाण तीखे थे। कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे। पर गहने वापस लौटानेका मै निश्चय कर चुका था। अतको वहुतेरी वातोमें मै जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका। १८९६ और १९०१मे मिली भेटे लौटाई। उनका ट्रस्ट वनाया गया और लोक-सेवाके लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम वैकमे रखी गई। इन चीजोको वेचनेके निमित्तसे मै वहुत वार रुपया एकत्र कर सका हू। आपत्ति-कोपके रूपमे वह रकम आज भी मौजूद है और उसमे वृद्धि होती जाती है।

इस वातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नही हुआ। आगे चलकर कस्तूरवाईको भी उसका औचित्य जचने लगा। इस तरह हम अपने जीवनमे वहुतेरे लालचोसे वच गए है।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है लोक-सेवकको जो भेट मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नही हो सकती।

मेरे जीवनमे ऐसी अनेक घटनाए होती रही है, जिनके कारण मै विविध धर्मो तथा जातियोके निकट परिचयमे आ सका हू। इन सव अनुभवोपर यह कह सकते है कि मैने घरके या वाहरके, देशी या विदेशी हिंदू या मुसलमान तथा ईसाई, पारसी या यहूदियोसे भेद-भावका खयाल तक नही किया। मै कह सकता हू कि मेरा हृदय इस प्रकारके भेद-भावको जानता ही नही। इसको मै अपना एक गुण नही मानता हू, क्योकि जिस प्रकार अहिसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमोके अभ्यासका

तथा उनके लिए अब भी प्रयत्न करते रहनेका पूर्ण ज्ञान मुझे है उसी प्रकार इस अ-भेद-भावको बढानेके लिए मैने कोई खास प्रयत्न किया है, ऐसा याद नही पडता।

जिस समय डरबनमे मैं वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे। वे हिंदू और ईसाई होते थे, अथवा प्रातोके हिसाबसे कहे तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नही आता कि कभी उनके विषयमे मेरे मनमे भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हे बिलकुल घरके ही जैसा समझता और उसमे मेरी धर्मपत्नीकी ओरसे यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लडता था। मेरा एक कारकुन ईसाई था। उसके मा-बाप पचम जातिके थे। हमारे घरकी बनावट पश्चिमी ढगकी थी। इस कारण कमरेमे मोरी नही होती थी—और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है। इस कारण कमरोमे मोरियोकी जगह पेशावके लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे उठाकर रखनेका काम हम दोनो—दपतीका था, नौकरोका नही। हा, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुबी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पचम जातिमे जन्मा यह कारकुन नया था। उसका बर्तन हमे ही उठाकर साफ करना चाहिए था, दूसरे बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाईका बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इससे हम दोनोमे झगडा मचा। यदि मैं उठाता हू तो उसे अच्छा नही मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था। फिर भी आँखोसे मोतीकी बूदे टपक रही है, एक हाथ मे बर्तन लिये अपनी लाल-लाल आखोसे उलहना देती हुई कस्तूरबाई सीढियोसे उतर रही है। वह चित्र मैं आज भी ज्यो-का-त्यो खीच सकता हू।

परतु मैं जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था। मैं अपनेको उसका शिक्षक मानता था। इससे अपने अधप्रेमके अधीन हो मैं उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बर्तन उठा

ले जाने-भरसे मुझे सतोप न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डाटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह वखेडा मेरे घरमे नही चल सकेगा।"

मेरा यह वोल कस्तूरवाईको तीरकी तरह लगा। उसने धधकते दिलसे कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर! मै चली!"

उस समय मै ईश्वरको भूल गया था। दयाका लेशमात्र मेरे हृदयमे न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकडा। सीढीके सामने ही वाहर जानेका दरवाजा था। मै उस दीन अवलाका हाथ पकडकर दरवाजेतक खीचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आखोमे गगा-जमुना वहाती हुई कस्तूरवाई वोली, "तुम्हे तो कुछ शरम है नही, पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मै वाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहा? मा-वाप भी यहा नही कि उनके पास चली जाऊँ। मै ठहरी स्त्री-जाति! इसलिए मुझे तुम्हारी धास सहनी ही पडेगी। अव जरा शरम करो और दरवाजा वद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनोकी फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख वनाये रखा, पर मनमे शरमा जरूर गया। दरवाजा वद कर दिया। जवकि पत्नी मुझे छोड नही सकती थी तव मै भी उसे छोडकर कहा जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमे लडाई-झगडे कई वार हुए है, परतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमे पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलताके द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की है।

ये घटनाए हमारे पूर्व-युगकी है, इसलिए उनका वर्णन मै आज अलिप्त-भावसे करता हू। आज मै तवकी तरह मोहाध पति नही हू, न उसका शिक्षक ही हू। यदि चाहे तो कस्तूरवाई आज मुझे धमका सकती है। हम आज एक-दूसरेके भुक्त-भोगी मित्र है, एक-दूसरेके प्रति

निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे है । कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गई है, जो मेरी बीमारियोमे बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती है ।

यह घटना १८९८की है । उस समय मुझे ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमे कुछ ज्ञान न था । वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बातका स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दु खकी साथिन है । मै यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-भोगकी भाजन है, उसका जन्म पतिकी हर तरहकी आज्ञाओका पालन करनेके लिए हुआ है ।

किंतु १९०० ई०से मेरे इन विचारोमे गहरा परिवर्तन हुआ । १९०६मे उसका परिणाम प्रकट हुआ, परतु इसका वर्णन आगे प्रसग आनेपर होगा । यहा तो सिर्फ इतना बताना काफी है कि ज्यो-ज्यो मै निर्विकार होता गया त्यो-त्यो मेरा घर-ससार शात, निर्मल और सुखी होता गया और अब भी होता जाता है ।

इस पुण्य-स्मरणसे कोई यह न समझ ले कि हम आदर्श दपती है, अथवा मेरी धर्म-पत्नीमे किसी किस्मका दोष नही है, अथवा हमारे आदर्श व एक हो गए है । कस्तूरबाई अपना स्वतत्र आदर्श रखती है या नही, यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होगी । बहुत सभव है कि मेरे आचरणकी बहुतेरी बाते उसे अब भी पसद न आती हो, परतु अब हम उनके बारेमे एक-दूसरेसे चर्चा नही करते, करनेमे कुछ सार भी नही है । उसे न तो उसके मा-बापने शिक्षा दी है, न मै ही, जब समय था, शिक्षा दे सका, परतु उसमे एक गुण बहुत बडे परिमाण मे है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियोमे थोडी-बहुत मात्रामे पाया जाता है । मनसे हो या बे-मनसे, जानमे हो या अनजानमे, मेरे पीछे-पीछे चलनेमे उसने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बितानेके मेरे प्रयत्नमे उसने कभी बाधा नही डाली । इस कारण यद्यपि हम दोनोकी बुद्धि-

शक्तिमे बहुत अतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन सतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरबाईपर तीन घाते हुई और तीनोमे वह महज घरेलू इलाजसे बच गई। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-सग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्तर लगवानेकी सलाह दी थी। बडी आनाकानीके बाद वह नश्तरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था, पर जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहन किया उसे देखकर मै दातो तले अगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरबाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चित होकर जोहान्सबर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मै चला भी गया, पर थोडे ही दिनमे समाचार मिले कि कस्तूरबाईका शरीर बिलकुल सिमटता नही है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नही सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थी। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको शराब या मास—दवामे अथवा भोजनमे—नही दिया जा सकता था। सो उन्होने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नीको मै मासका शोरबा और 'बीफ टी' देनेकी जरूरत समझता हू। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैने जवाब दिया, "मै तो इजाजत नही दे सकता। परतु कस्तूरबाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमारसे मै ऐसी बाते नही पूछना चाहता। आप खुद यहा आ जाइए। जो चीजे मै बताता हू उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दे तो मै आपकी पत्नीकी जिदगीके लिए जिम्मेदार नही हू।"

यह सुनकर मै उसी दिन डरबन रवाना हुआ। डाक्टरसे मिलनेपर उन्होने कहा—"मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा—"डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मै दगा-वगा कुछ नही समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमारको व उसके रिश्तेदारोको धोखा देना पुण्य समझते है। हमारा धर्म तो है जिस तरह हो सके रोगीको बचाना।" डाक्टरने दृढता-पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बडा दुःख हुआ, पर मैंने शाति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझपर बडा अहसान था। पर मै उनके इस व्यवहारको बरदाश्त करनेके लिए तैयार न था।

"डाक्टर, अब साफ-साफ बाते कर लीजिए। बताइए, आप क्या करना चाहते है? अपनी पत्नीको बिना उसकी इच्छाके मास नही देने दूगा। उसके न लेनेसे यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मै तैयार हू।"

डाक्टर बोले, "आपका यह सिद्धात मेरे घर नही चल सकता। मै तो आपसे कहता हू कि आपकी पत्नी जबतक मेरे यहा है तबतक मै मास, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूगा, जरूर दूगा। अगर आपको यह मजूर नही है तो आप अपनी पत्नीको यहासे ले जाइए। अपने ही घरमे मै इस तरह उन्हे नही मरने दूगा।"

"तो क्या आपका यह मतलब है कि मै पत्नीको अभी ले जाऊ?"

"मै कहा कहता हू कि ले जाओ? मै तो यह कहता हू कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनोसे इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेगे और आप सो जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझमे न आती हो तो मुझे मजबूरीसे कहना होगा कि आप अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि मेरा लडका उस समय मेरे साथ था। उससे

मैने पूछा तो उसने कहा—"हा, आपका कहना ठीक है। वाको मास कैसे दे सकते है?"

फिर मै कस्तूरबाईके पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था। पर अपना धर्म समझकर मैने ऊपरकी बातचीत उसे थोडेमे समझा दी। उसने दृढतापूर्वक जवाब दिया—"मै मासका शोरवा नही लूगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नही मिला करती। आपकी गोदीमे मै मर जाऊ तो परवाह नही, पर अपनी देहको मै भ्रष्ट नही होने दूगी।"

मैने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारोके अनुसार चलनेके लिए बाध्य नही हो। मैने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवाके लिए शराब और मास लेनेमे परहेज नही करते। पर वह अपनी बातसे बिलकुल न डिगी और मुझसे कहा—"मुझे यहासे ले चलो।"

यह देखकर मै बडा खुश हुआ, किन्तु ले जाते हुए बडी चिंता हुई। पर मैने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टरको भी पत्नीका निश्चय सुना दिया।

वह बिगडकर बोले, "आप तो बडे घातक पति मालूम होते है। ऐसी नाजुक हालतमे उस बेचारीसे ऐसी बात करते हुए आपको शरम नही मालूम हुई? मै कहता हू कि आपकी पत्नीकी हालत यहासे ले जाने लायक नही है। उनके शरीरकी हालत ऐसी नही है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते हीमे दम निकल जाय तो ताज्जुब नही! फिर भी आप हठ-धर्मीसे न माने तो आप जाने! यदि शोरवा न देने दे तो एक रात भी उन्हे अपने घरमे रखनेकी जोखिम मै नही लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। स्टेशन दूर न था। डर-बनसे फिनिक्सतक रेलके रास्ते और फिनिक्ससे लगभग ढाई मीलतक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था। पर मैने यही सोच लिया कि

ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्समे हमारे यहां एक हैमक था। हैमक कहते है जालीदार कपडेकी झोली अथवा पालनेको। उसके सिरोको बाससे बाध देनेपर बीमार उसमे आरामसे झूला करता है। मैंने वेस्टको कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छ आदमियोको लेकर फिनिक्स स्टेशनपर आ जाय।

जब दूसरी ट्रेन चलनेका समय हुआ तब मैंने रिक्शा मगाई और उस भयकर स्थितिमे पत्नीको लेकर चल दिया।

पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे जरूरत न पडी, उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, "मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करे।"

इस ठठरीमे वजन तो कुछ रही नही गया था। खाना पेटमे जाता ही न था। ट्रेनके डब्बेतक पहुचनेके लिए स्टेशनके लबे-चौडे प्लेटफार्मपर दूरतक चलकर जाना था, क्योकि रिक्शा वहातक पहुच नही सकती थी। मै सहारा देकर डब्बेतक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी। उसमे हम रोगीको आरामसे घरतक ले गए। वहा केवल पानीके उपचारसे धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुचनेके दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहा पधारे। जब हमारी हठ-धर्मीकी कथा उन्होने सुनी तो हमपर उनको बडा तरस आया और वह हम दोनोको समझाने लगे।

मुझे जहातक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे। स्वामीजीने मासाहारकी निर्दोषतापर एक व्याख्यान झाडा, मनुस्मृतिके श्लोक सुनाए। पत्नीके सामने जो इसकी बहस उन्होने छेड़ी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ, परतु शिष्टाचारकी खातिर मैने उसमे दखल न दिया। मुझे मासाहारके समर्थनमे मनुस्मृतिके प्रमाणोकी आवश्यकता न थी। उनका पता मुझे था। मै यह भी जानता था कि ऐसे लोग

भी है जो उन्हे प्रक्षिप्त समझते है। यदि वे प्रक्षिप्त न हो तो भी अन्नाहार-सबधी मेरे विचार स्वतत्र-रूपसे बन चुके थे। पर कस्तूरबाईकी तो श्रद्धा ही काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रोके प्रमाणोको क्या जानती? उसके नजदीक तो परपरागत रूढि ही धर्म था। लडकोको अपने पिताके धर्मपर विश्वास था, इससे वे स्वामीजीके साथ विनोद करते जाते थे। अतको कस्तूरबाईने यह कहकर इस बहसको बद कर दिया, "स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मै मासका शोरबा खाकर चगी होना नही चाहती। अब बडी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावे। मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया। अब और बाते रह गई हो तो आप इन लडकोके बापसे जाकर कीजिएगा।"

नश्तर लगानेके बाद यद्यपि कस्तूरबाईका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बद हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया। अबकी वह किसी तरह मिटाये न मिटा। पानीके इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारोपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करनेका भी उसे आग्रह न था। इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोमे सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड दो। मैंने उसे समझानेकी हद कर दी, अपनी बातके समर्थनमे कुछ साहित्य भी पढकर सुनाया, पर वह नही मानती थी। अतको उसने झुझलाकर कहा—"दाल और नमक छोडनेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोडेगे।"

इस जवाबको सुनकर, एक ओर जहा मुझे दु ख हुआ वहा दूसरी ओर हर्ष भी हुआ, क्योकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला। उस हर्षसे मैंने तुरत कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है, मै यदि बीमार होऊ और मुझे यदि वैद्य इन चीजोको छोडने के लिए कहे तो जरूर छोड दू। पर ऐसा क्यो? लो, तुम्हारे लिए मै आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोडे देता हूँ। तुम छोडो या न छोडो, मैंने तो छोड दिया।"

यह देखकर पत्नीको वडा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह वात मेरे मुहसे निकल गई। अव मै तो दाल और नमक न खाऊगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैने कहा, "तुम दाल ओर नमक छोड दो तो वहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हे लाभ ही होगा, परतु मै जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नही टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस वातपर जोर न दो, क्याकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोडनेका निश्चय किया है, उसपर दृढ रहनेमे भी तुम्हे मदद मिलेगी।" इतना कहनेके वाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नही गई थी।

"आप तो वडे हठी है, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नही।" यह कहकर वह आसू वहाती हुई चुप हो रही।

इसको मै पाठकोके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हू और मै कहना चाहता हू कि मै इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोमे गिनता हू।

इसके वाद तो कस्तूरवाईका स्वास्थ्य खूव सम्हलने लगा। अव यह नमक और दालके त्यागका फल है, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-वडे परिवर्तनोका फल था, या उसके वाद दूसरे नियमोका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मै नही कह सकता, परतु यह वात जरूर हुई कि कस्तूरवाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव वद हो गया और 'वैद्यराज' के नामसे मेरी साख कुछ वढ गई (आ०, १९२७)

कल एक आदमीने भूलसे उन्हे (वाको) मेरी मा समझ लिया था।

यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, बल्कि तारीफकी बात है, क्योंकि बहुत वर्षोंसे वह हम दोनोंकी सलाहसे मेरी पत्नी नही रह गई है। चालीस साल हुए मै बेमा-बापका हो गया और तीस वर्षोंसे वह मेरी माका काम कर रही है। वह मेरी मा, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सबेरे आपके दिए सम्मानमे हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुखकी कोई परवाह नही करता। इसलिए हमने आपसमे यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिले और सभी मिहनत उसे करनी पडे। मै आपको विश्वास दिलाता हू कि उसके बारेमे जो-जो अच्छी-अच्छी बाते आपने कही है व सब मेरे कोई साथी उससे कह देगे और उसकी गैरहाजिरीके लिए आप मेरा जवाब मजूर कर लेगे। (हि० न०, १ १२ २७)

आज (३१-३-३२) 'लीडर' की 'लदनकी चिट्ठी' अच्छी थी। आम तौरपर पोलक नरम शब्दोंमें ही लिखते है, मगर इस बार हिंदुस्तानकी घटनाओंपर उन्होंने काफी गरम होकर लिखा है। बाको 'सी' क्लास मिला, बादमें 'ए' मिला और कराचीकी एक ८० वर्षकी महिलाको पकडा गया, इन बातोपर उन्होंने अच्छा लिखा है। 'बा' तो गाधीकी पत्नी थीं, इसलिए उन्हें 'सी'से बदलकर 'ए'में रख दिया, नहीं तो ६० वर्षकी दूसरी कोई औरत होती तो 'सी'में ही रहती न ? यह उनकी दलील अच्छी है। मगर सबसे बढिया तो यह है। सेम्युअल होर के लिए वे लिखते हैं कि हिंदुस्तानमें जब यह सबकुछ हो रहा है तब सेम्युअल 'स्केट' करता है ! कारवा और उसपर भोकनेवाले कुत्तोका इसका रूपक उलटा इसीपर चाहे लागू न हो, मगर यह देखना कि कहीं यहाका कारवा इतना आगे न बढ जाय कि फिर कुछ सुधारनेकी गुजायश ही न रहे और सिर्फ कुत्ते ही भोकते रह जाय—यह कहकर उन्होने होरको 'सावधान' कहा है।

बापू—"बस, यह तो फिरोजशाह मेहता जैसी बात हुई। उन्हे

दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईकी कोई परवाह नही थी, मगर जब बाको पकडनेकी खबर सुनी तो उन्हे आग लग गई और उन्होने टाउन हालका प्रसिद्ध भाषण दिया। पोलकसे बा वाली बात बर्दाश्त नही हुई, इसलिए यह लिखा है।"

वल्लभभाई—"बाकी बात ऐसी है, जो किसीको भी चुभेगी। बा तो अहिंसाकी मूर्ति है। ऐसी अहिंसाकी छाप मैंने और किसी स्त्रीके चेहरेपर नही देखी। उनकी अपार नम्रता, उनकी सरलता किसीको भी हैरतमें डालनेवाली है।"

बापू—"सही बात है, वल्लभभाई। मगर मुझे बाका सबसे बडा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है। वह जिद करे, क्रोध करे, ईर्ष्या करे, मगर यह सब जाननेके बाद आखिर दक्षिण अफ्रीकासे आजतककी उसकी कारगुजारी देखे तो उसकी बहादुरी बाकी रहती है।" (म० डा०, भाग १, ३१ ३ ३२)

बापूकी थकान अभी चल रही है। बाका स्मरण उन्हें उसी तरह व्यथित करता रहता है। आज फिर कह रहे थे,

"बाकी मृत्यु भव्य थी। मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दुख है वह तो अपने स्वार्थके लिए। ६२ वर्षके साथके बाद उसका साथ छटना चुभता है। कितनी ही कोशिश करू, अभी मै उन स्मरणोको मनसे नही निकाल सकता। (का० क०, २७ २ ४४)

शामको घूमते समय बापू कुछ थके-से लगे। पूछनेपर कहने लगे,

"एक तो मेरे पत्रोके सरकारी जवाब नही आते है, इसलिए मनपर बोझ है। दूसरे, बाके जानेका धक्का अभीतक दूर नही हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु बा के लिए हो नही सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि बा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नही।

मेरे हाथोमे ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे, क्योकि बा मुझमे समा गई थी। मैं शोकमे पडा रहता हूँ, ऐसा भी नही है। बाका विचार करता रहता हू, वह भी नही। क्या है, उसका मैं वर्णन नही कर सकता।" (का० क०, २३ ३.४४)

बाका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं उसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पनासे अधिक एक नई बात लगी। मैं अब सोचता हू कि बाके बिना मै अपने जीवनको ठीक-ठीक बैठा ही नही सकता हू। (का० क०, २ ३ ४४)

शामको बापू घूमते समय कनुसे बात कर रहे थे कि बाके स्मारकके लिए पैसा इकट्ठा करना है। बापूकी अगली जयतीपर ७५ लाख रुपया इकट्ठा करनेकी बात पहलेसे ही चल रही थी। कनु बापूसे इस विषयपर पूछ रहा था। बापूने कहा,

"दोनो फड साथ मिला दो। बा मुझमे समा गई थी। कौन है ऐसी स्त्री, जो इस तरह अपने पतिकी गोदमे प्राण दे? अतिम समयमे उसने मुझे बुलाया। तब मैं नही जानता था कि वह जा रही है, और मैं घूमने नही चला गया था, वह भी ईश्वरका ही काम था। पेनिसिलीनके कारण ही मैं रुका। मृत्यु-शय्यापर पडी हुई को इन्जेक्शन क्या देना था? मगर जब बा के पास बैठा तो समझ गया कि बा अब जाती है। बा के नामसे विश्व-विद्यालय खोलना मै एक निकम्मी बात समझता हू। उसे विश्वविद्यालयमे रस कहा था? चर्खा इत्यादिमे तो वह रस लेती थी। यह फड हम दोनोके निमित्त इकट्ठा हो तो लोगोपर बोझ नही पडेगा। बाका हिस्सा मेरी जयन्तीमे हमेशा रहा है। इस फडका उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योगके लिए होगा। नारायणदासको उसके कारभारमे पूरी मेहनत और जिम्मे-दारी लेनी होगी।" (का० क०, ४ ३ ४४)

बाका जबरदस्त गुण महज अपनी इच्छासे मुझमे समा जानेका था। यह कुछ मेरे आग्रहसे नही हुआ था। लेकिन समय पाकर वाके अदर ही इस गुणका विकास हो गया था। मै नही जानता था कि वामे यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार वा बहुत हठीली थी। मेरे दवाव डालनेपर भी वह अपना चाहा ही करती। इसके कारण हमारे बीच थोडे समय की या लबी कडुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे वा खिलती गई और पुख्ता विचारोके साथ मुझमे यानी मेरे काममे समाती गईं। जैसे दिन बीतते गए, मुझमे और मेरे काममे—सेवामे—भेद न रह गया। वा धीमे-धीमे उसमे तदाकार होने लगी। शायद हिंदुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो वाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है।

वामे यह गुण पराकाष्ठाको पहुचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा वाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरूमें वाको इसका कोई ज्ञान भी न था। मैंने विचार किया और वाने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा सबध सच्चे मित्रका बना। मेरे साथ रहनेमे वाके लिए सन् १९०६ से, असलमे सन् १९०१ से, मेरे काममे शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नही गया था। वह अलग रह नही सकती थी। अलग रहनेमे उन्हे कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होने मित्र बननेपर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममे समा जानेमे ही अपना धर्म माना। इसमे वाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उन्होने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोडा ही नही।

अगर मै अपनी पत्नीके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकू तो हिंदूधर्मके बारेमे अपने प्रेम और अपनी भावनाओको

मैं प्रकट कर सकता हू। दुनियाकी दूसरी किसी भी स्त्रीके मुकाबिलेमे मेरी पत्नी मुझपर ज्यादा असर डालती है।

पहले तो अपनी पत्नीके मृत्युके बारेमे आपकी ममताभरी समवेदनाके लिए मैं आपका और लेडी वेवेलका आभार मानता हू। यद्यपि अपनी मृत्युके कारण वह सतत वेदनासे छूट गई है, इसलिए उनकी दृष्टिसे मैने उनकी मौतका स्वागत किया है, तो भी इस क्षतिमे मुझको जितना दु ख होनेकी कल्पना मैने की थी, उससे अधिक दु ख हुआ है। हम असाधारण दपती थे। १९०६ मे एक दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके बाद हमने आत्म-सयमके नियमको निश्चित रूपमे स्वीकार किया था। इसके परिणामस्वरूप हमारी गाठ पहलेसे कही ज्यादा मजबूत बनी और मुझे उससे बहुत आनद हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नही रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा नही थी, तो भी उन्होने मुझमे लीन होना पसद किया। फलत वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनी। वह हमेशासे बहुत दृढ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थी, जिनको अपनी नवविवाहित दशामे मैं भूलसे हठीली माना करता था, लेकिन अपनी दृढ इच्छा-शक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कलाके आचरणमे मेरी गुरु बन गई। आचरणका आरभ मेरे अपने परिवारसे ही किया। १९०६ मे जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमे दाखिल किया तब उसका अधिक विशाल और विशेष रूपसे योजित 'सत्याग्रह' नाम पडा। दक्षिण अफ्रीकामे जब हिंदुस्तानियोकी जेल-यात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोमे एक थी। मेरे मुकाबिले शारीरिक पीडा उनको ज्यादा हुई। वह कई बार जेल जा चुकी थी, फिर भी इस बारके इस कैदखानेमे, जिसमे सभी तरहकी सहूलियते मौजूद थी, उनको अच्छा नही लगा। दूसरे बहुतोके साथ मेरी और फिर तुरत ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उससे उन्हे जोरका आघात पहुचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरी गिरफ्तारीके लिए बिलकुल तैयार नही थी। मैने उन्हे विश्वास दिलाया था कि सरकार-

को मेरी अहिंसापर भरोसा है और जबतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकडेगी नही। सचमुच उनके ज्ञानतंतुओंको इतने जोरका धक्का बैठा कि उनकी गिरफ्तारीके बाद उन्हे दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही पकडी गई थी, उनका इलाज न किया होता तो मुझसे इस जेलमे आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाजिरीसे उन्हें आश्वासन मिला और बिना किसी खास इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमे चिडचिडापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ। ('हमारी बा', पृ० २२)

• • •

बा राजकोटकी लडाईमे शामिल हुई, इसपर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उस लडाईमे शामिल होनेपर जो थोडी निष्ठुर टीकाएं हुई है, वे खुलासा चाहती है। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि बाको इस लडाईमे शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरहकी मुसीबतोके लिए वे बहुत बूढी हो चुकी थी। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यो न मालूम हो, टीकाकारोको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे बा अनपढ थी, फिर भी कई सालोसे उन्हे इस बातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वे जो करना चाहे, करे। क्या दक्षिण अफ्रीकामे और क्या हिंदुस्तानमे, जब-जब भी वे किसी लडाईमे शरीक हुई है, अपने आप, अपनी आतरिक भावनासे ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होने मणिबहनकी गिरफ्तारीकी बात सुनी तो उनसे न रहा गया और उन्होने मुझसे लडाईमे शामिल होनेकी इजाजत मागी। मैंने कहा, "तुम अभी बहुत ही कमजोर हो।" दिल्लीमे कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरेमे बेहोश हो गई थी। उस वक्त देवदासने हाजिरखयालीमे काम न लिया होता तो वे उसी समय

स्वर्गधाम पहुच गई होती। लेकिन वाने जवाव दिया, "शरीरकी मुझे परवाह नही।" इसपर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाजत देनेके लिए विलकुल तैयार न थे।

लेकिन फिर तो वे पसीजे। रेजीडेटकी सूचनासे ठाकुरसाहवने जो वचन भग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे। कस्तूवाई राजकोटकी वेटी ठहरी। इसलिए उन्होने अतरकी आवाज सुनी। उन्होने महसूस किया कि जव राजकोटकी वेटिया राज्यके पुरुषो और स्त्रियोकी आजादीके लिए जूझ रही हो तव वे चुप वैठ ही नही सकती।

उनमे एक गुण वहुत वडा था। हरएक हिंदू पत्नीमे वह कमोवेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिन्होपर चलनेमे धन्यता अनुभव करती थी। .

अगरचे मै चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हे छुटकारा मिले और जल्दी ही उनकी देहका अत हो जाय तो भी आज उनकी कमीको जितना मैने माना था, उससे कही अधिक मै महसूस कर रहा हू। हम असाधारण दपती थे—अनोखे। हमारा जीवन सतोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था। ('हमारी वा', १८ २ ४५)

: ५१ :

नारणदास गांधी

पास ही नारणदास जैसा साधु पुरुष है। नारणदासकी दृढता, सहन-शीलता, हिम्मत, त्यागशक्ति और विवेकवुद्धि वगैरह पर मुझ जैसेको भी ईर्ष्या करनेकी इच्छा होती है। इसने मुझे आश्रमकी तरफसे विलकुल निश्चित कर दिया है।

हम अदर रहकर ताप नही सह रहे है, तुम आतरिक और बाह्य दोनो तपश्चर्या कर रहे हो। (म० डा०, भाग १, २७ ५ ३२)

•

यहा बैठे-बैठे आश्रममे फेरबदल कराया करता हू। नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढता, उसका उद्यम और कार्यदक्षता सबका लाभ ले रहा हू।

•

नारणदासके बारेमे मेरा पूरा विश्वास है। वह कहे कि मुझे शाति है तो मै अशाति माननेको तैयार नही हू। मैने उसे खूब चेता दिया है। दूर बैठा हुआ अब उसे तग नही करूगा। नारणदासमे अनासक्तिके साथ काम करनेकी बडी शक्ति है। अनासक्त हमेशा आसक्तसे बहुत ज्यादा काम करता है और फुर्सतमे हो, ऐसा दीखता है। वह सबसे बादमे थकता है। सच पूछो तो उसे थकावट मालूम ही नही होनी चाहिए। मगर यह तो हुआ आदर्श। तुम वहा मौजूद हो, इसलिए अगर तुम्हे अशाति दिखाई दे और यह लगे कि नारणदास अपने आपको धोखा देता है तो तुम्हारा धर्म मुझसे अलग होगा। तुम्हे तो नारणदासको सावधान करना ही चाहिए। मै भी वहा होऊ और वह प्रत्यक्ष जो कहे उससे दूसरी ही बात देखू तो जरूर उसे चेतावनी दू। तुम्हारी चेतावनीके बावजूद वह तुम्हारा विरोध करे तो तुम्हे उसका कहना मानना चाहिए, जबतक तुम उसे सत्याग्रही मानती हो तबतक। कई बार हमे अपनी आखे भी धोखा दे देती है। मुझे तुम्हारे चेहरेपर उदासी दीखे, परतु तुम इन्कार करो तो मुझे तुम्हारी बात मान ही लेनी चाहिए। मुझे यह भय हो या शक हो कि मुझसे तुम छिपाती हो तो दूसरी बात है। फिर तो तुमसे पूछनेकी बात नही रह जाती। जाननेके लिए मुझे दूसरे साधन पैदा करने चाहिए। मगर आश्रमजीवन तो इसी तरह चलता है। उसकी बुनियाद

सचाईपर ही है। वहा अच्छे हेतुमे भी धोखा नही दिया जा सकता। (म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

नारायणदाससे वढकर कोई आदमी इतना ही दृट, विवेकी, समझदार और कर्तव्य-परायण मुझको मिलनेकी कोई उम्मीद नही है, और नारायणदास मिला है इसको मै ईश्वरका अनुग्रह मानता हू।

तुम्हे मेरा आशीर्वाद अजलिया भर-भरकर है। क्यो न भेजू! मेरी सारी आशाए तुम सफल कर रहे हो और अपनी अनन्य और ज्ञान-मय सेवासे हम तीनोको ही आश्चर्य-चकित कर रहे हो। सारी अग्नि-परीक्षाओमेसे पार उतरनेकी शक्ति ईश्वरने तुम्हे वख्शी मालूम होती है। खूब जिओ और अहिसा-देवीके जरिए सत्यनाराणका साक्षात्कार करो और दूसरोके करनेमे सहायक वनो। (म० डा०, भाग २,११ ६ ३२)

नारणदास गाधी लिखते है कि मै पाठकोको यह याद दिला दू कि 'चर्खा-जयती' के निमित्त जो लोग कताई-यज्ञमे भाग लेना चाहते हो उन्हें अपने नाम तुरत भेज देने चाहिए। गत ११ अक्तूवरसे यह यज्ञ आरभ हुआ है। जिन लोगोने अपने नाम अभीतक नही भेजे है, वे पिछड तो गए ही है, लेकिन कभी न करनेसे देरसे करना फिर भी अच्छा है। जो पीछे रह गए है वे निश्चित परिमाणसे अधिक कातकर साथ हो सकते है। नारणदास गाधी इस किस्मके खादी-कार्यके अच्छे विशेपज्ञ है। आकडोमे वे खूब रस लेते है और इस कामको तेजीसे करत है। यज्ञार्थ कातनेवालोके नाम और पतोका ठीक-ठीक हिसाव रखने और उनके सूतको रजिस्टरपर चढानेके कामसे वे कभी थकते ही नही, वल्कि उलटे इस काममे उन्हे आनद आता है। वे मानते है कि काम कोई भी हो नियमसे

होना चाहिए। उनका खयाल है कि इस तरह कामका ठीक-ठीक हिसाब रखनेसे ही नियमितता आती है और काम करनेवालोको प्रोत्साहन मिलता है। यदि खासी वडी तादादमे लोग यज्ञार्थ काते तो वे खादीकी कीमतमे जरूर कमी कर सकते है। इस योजनामे वहुत सभावनाए है। इसलिए मै आशा करता हू कि यज्ञार्थ कताईकी इस सुदर योजनापर समुचित ध्यान दिया जायगा। (ह० से०, २५ ११ ३९)

: ५२ :

मगनलाल खुशालचन्द गान्धी

मेरे साथ मेरे जो-जो रिश्तेदार आदि वहा गए और व्यापार आदिमे लग गए थे उन्हे अपने मतमे मिलानेका और फिनिक्समे दाखिल करनेका प्रयत्न मैने शुरू किया। वे सब तो धन जमा करनेकी उमगसे दक्षिण अफ्रीका आए थे। उनको राजी कर लेना वडा कठिन काम था, परतु कितने ही लोगोको मेरी वात जच गई। इन सबमेसे आज तो मगनलाल गाधीका नाम मै चुनकर पाठकोके सामने रखता हू, क्योकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोडे-बहुत समय फिनिक्समे रहकर फिर धन-सचयके फेरमे पड गए। मगनलाल गाधी तो अपना काम छोडकर जो मेरे साथ आए, सो अवतक रह रहे है और अपने बुद्धि-बलसे, त्यागसे, शक्तिसे एव अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आतरिक प्रयोगोमे मेरा साथ देते है एव मेरे मूल साथियोमे आज उनका स्थान सबमे प्रधान है। फिर एक स्वय-शिक्षित कारीगरके रूपमे तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमे अद्वितीय है।

शातिनिकेतनमें मेरे मडलको अलग स्थानमें ठहराया गया था। वहा मगनलाल गाधी उस मडलकी देख-भाल कर रहे थे और फिनिक्स आश्रमके तमाम नियमोका बारीकीसे पालन कराते थे। मैने देखा कि उन्होने शातिनिकेतनमे अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग-शीलताके कारण अपनी सुगध फैला रखी थी (आ०, १९२७)

जिसे मैने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नही रहा। मेरे चाचाके पोते मगनलाल खुशालचद गाधी मेरे कामोमे मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे। मगनलालके पिताने अपने सभी पुत्रोको देशके काममे दे दिया है। वे इस महीनेके शुरूमें सेठ जमनालालजी तथा दूसरे मित्रोके साथ बगाल गए थे, वहासे बिहार आए। वहीपर अपने कर्त्तव्यके पालनमे ही उन्हे कठिन ज्वर हो आया। नौ दिनकी बीमारीके बाद प्रेम और डाक्टरी ज्ञानसे जितनी सेवा सभव है, सभी कुछ होने पर भी वे बृजकिशोरप्रसाद-जीकी गोदमे से चले गए।

कुछ धन कमा सकनेकी आशासे मगनलाल गाधी मेरे साथ सन् १९०३ मे दक्षिण अफ्रीका गए थे। मगर उन्हे दूकान करते पूरा साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीबीकी मेरी अचानक पुकारको सुनकर वे फिनिक्स आश्रममे आ शामिल हुए और तबसे एक बार भी वे डिगे नही, मेरी आशाए पूरी करनेमे असमर्थ न हुए। यदि उन्होने स्वदेश-सेवामे अपनेको होम दिया तो अपनी योग्यताओ और अपने अध्यवसायके बलपर, जिनके बारेमें कोई सदेह हो ही नही सकता, वे आज व्यापारियोके सिरताज होते। छापाखानेमे डाल दिए जानेपर उन्होने तुरत ही मुद्रण-कलाके सभी भेदोको जान लिया। यद्यपि पहले उन्होने कभी कोई यत्र हाथमे नही लिया था तो भी इजिन-घरमे, कलोके बीच तथा कपोजीटरोके टेबल पर सभी जगह अत्यत कुशलता दिखलाई। 'इडियन ओपीनियन' के गुजराती अशका सपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था।

फिनिक्स आश्रममे खेतीका काम भी शामिल था और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गए। मेरा खयाल है कि आश्रममे वे सर्वोत्तम बागवान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबादसे 'यग इडिया' का जो पहला अक निकला उसमे भी उस सकटकालमे उनके हाथकी कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था, किंतु जिस काममे उन्होने अपनेको उत्सर्ग किया, उसकी उन्नतिमे उस शरीरको गला दिया था। उन्होने बडी सावधानीसे मेरे आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन किया था। जबकि मैने विवाहित स्त्री-पुरुषोके लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवनका नियम है' का सिद्धात अपने सहकारियोके सामने पेश किया था तब उन्होने पहले-पहल उसका सौदर्य तथा उसके पालनकी आवश्यकता समझी और यद्यपि उसके लिए, जैसा कि मै जानता हू, उन्हे बडा कठोर प्रयत्न करना पड़ा था तो भी उन्होने इसे सफल कर दिखलाया। इसमे वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नीको भी धीरतापूर्वक समझा-बुझाकर ले गए, उसपर अपने विचार जबरन डालकर नही।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीका-के युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मै ढूढ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकनेसे मैने लाचार उसे निष्क्रिय प्रतिरोध-का नाम दिया था, गोकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी है। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यत सुदर पत्र होता जिसमे उन्होने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यो कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। उनका पत्र पढनेपर इस युद्धके सभी सिद्धातोपर एक-एक करके विचार करते हुए अतमे पाठकको इसी नामपर आना ही पडता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यत ही छोटा और केवल आवश्यक विषयपर ही था, जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्धके समय वे काससे कभी थके नही, किसी कामसे देह नही चुराई

और अपनी वीरतासे वे अपने आसपासमें सभी किसीके दिल उत्साह और आशासे भर देते थे। जबकि सब कोई जेल गए, जब फिनिक्समें जेल जाना ही मानों इनाम जीतना था तब भी, मेरी आज्ञासे, जेलसे भारी काम उठानेके लिए वे पीछे ठहर गए। उन्होंने स्त्रियोंके दलमे अपनी पत्नीको भेजा।

हिंदुस्तान लौटनेपर भी उन्हींकी बदौलत आश्रम, जिस सयम-नियम-की बुनियादपर बना है, खुल सका था। यहा उन्हे नया और अधिक मुश्किल काम करना पडा। मगर उन्होने अपनेको उसके लायक साबित किया। उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी। सिर्फ एक लहमे भरके लिए ऐसा जान पडा, मानो उनका दिल डोल गया हो। मगर यह तो एक सेकडकी बात थी। उन्होने देख लिया कि प्रेमकी सीमा नही बाधी जा सकती, और कुछ नही तो महज इसीलिए कि अछूतोके लिए ऊची जातिवाले जिम्मेवार है, हमे उन्हींके जैसे रहना चाहिए।

आश्रमका औद्योगिक विभाग फिनिक्सके ही कारखानेके ढगका नही था। यहा हमे बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था। फिर मै मगनलालकी ओर झुका। गोकि कल्पना मेरी थी, किंतु उसे काममे लानेवाले हाथ तो उनके थे। उन्होने बुनना और कपासके खादी बनने तककी और दूसरी सभी क्रियाए सीखी। वे तो जन्मसे ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे।

जब आश्रममें गोशालाका काम शुरू हुआ तब वे इस काममे उत्साह-से लग गए, गोशाला-सबधी साहित्य पढा और आश्रमकी सभी गायोका नामकरण किया और सभी गोरुओंसे मित्रता पैदा कर ली।

जब चर्मालय खुला तब भी वे वैसे ही दृढ थे। जरा दम लेनेकी फुर्सत मिलते ही वे चमडेकी कमाईके सिद्धात भी सीखनेवाले थे। राज-कोटके हाईस्कूलकी शिक्षाके अलावा और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होने वह सब स्वानुभवकी कठिन पाठशालामे सीखा था।

उन्होने देहाती बढई, देहाती बुनकर, किसान, चरवाहो और ऐसे ही मामूली लोगोसे सीखा था।

वे चर्खा-सघके शिक्षण विभागके व्यवस्थापक थे। श्री वल्लभभाईने बाढके जमानेमे उन्हे विट्ठलपुरका नया गाव बनानेका भार दिया था।

वे आदर्श पिता थे। उन्होने अपने बच्चोको, दो लडकियो और एक लडकेको, जो अबतक अविवाहित है, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमे वे देशके लिए उपहार बननेके लिए योग्य हो। उनका पुत्र केशव यत्र-विद्यामे बडी कुशलता दिखला रहा है। उसने भी अपने पिताके ही समान यह सब मामूली लुहार-बढइयोको काम करते देखकर सीखा है। उनकी सबसे बडी लडकी राधाने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मर्त्य विहारमे स्त्रियोकी स्वाधीनताके सबधमे एक मुश्किल और नाजुक काम उठाया था। सच ही तो, वे यह पूरा-पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए और वे शिक्षकोको प्राय इस विषयपर गभीर और विचारपूर्वक चर्चामे लगाया करते थे।

पाठक यह न समझे कि उन्हें राजनीतिका कुछ ज्ञान ही नही था। उन्हे ज्ञान जरूर था, किंतु उन्होने आत्मत्यागका रचनात्मक और शात पथ चुना था।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आखे। दुनियाको क्या पता कि मै जो इतना बडा आदमी कहा जाता हू, वह बडप्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओके अविरल परिश्रम, और सेवापर कितना निर्भर है, और उन सबमे मेरे लिए मगनलाल सबसे बडे, सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मै सुन रहा हू। मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मै ही हो गया हू। अगर ईश्वरमे मेरा जीवन्त विश्वास न होता तो उसकी मृत्युपर, जो कि मुझे अपने सगे पुत्रोसे

भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आगाए न तोडी, जो अध्यवसायकी मूर्त्ति था, जो आश्रमके भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अगोका सच्चा चौकीदार था, मै विक्षिप्त हो जाता। उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होने अपने ही जीवनमे मुझे एक-दो दिनोमे नही, कुछ महीनोमे नही, वल्कि पूरे चौवीस वर्षो तक की वडी अवधिमें—हाय, जो अव वडी भरका समय जान पडता है—यह सावित कर दिखलाया कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थके द्योतक है।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामोमे वे जीवित है, जिनकी छाप आश्रमकी धूलमेंसे दौडकर निकल जानेवाले भी देख सकते है।

(हि० न० जी०, २६ ४ २८)

•

गाधीजीका मौनवार था। अकल्पित सयोगोमें किसीको सेवा करनेका प्रसग उपस्थित हो और वोले बिना न चले तभी वोलनेका प्रसग शायद ही कभी आता हो। गाधीजी तुरत ही मगनलालभाईके घर जाकर वालकोको गोद ले वैठे। सारा आश्रम खवर पाते ही विह्वल हो उठा। किंतु आज्ञा हुई कि सवके एकत्र होनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते है उन्हें वद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। दृढव्रती, कर्मवीरके अवसानका शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न! वणाटशाला, शाला आदि वद करनेका मन वहुतोका हुआ, मगर हिम्मत किसे हो!

मगनलालभाईकी धर्मपत्नी श्री सतोकवहनने जैसे-तैसे किसी तरह अपना शोक दवाया। वापू घरमें वैठे हो तो शोकका प्रदर्शन कैसे किया जाय। और वापू वरावर यही कहते रहे, "मगनलाल होते तो ऐसे प्रसगमें क्या करते।" मगनलालभाईके पुत्रने तो मुझ-जैसे वडोसे भी अधिक साहस दिखलाया। सायकालमें हमेशाके मुताविक प्रार्थनाके

समय सभी कोई इकट्ठे हुए। पडितजीने धीरे गभीर स्वरमें गाया :

"अब हम अमर भये न मरेंगे।"

उज्ज्वल यशसे यशस्वी मगनलालभाईके बारेमें यह भजन अतिशय उचित था; किंतु उनके बिना हम जो अपग लगते थे, हमें कोन आश्वासन दे। कुलका दीपक-रूप बडा लडका जब मर जाता है तब दूसरे लडकोको गोदमें बिठाकर अपनी छाती वज्रकी बनाकर, जिस भाति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गाधीजीने प्रार्थनाके बाद आश्वासन दिया। चौबीस वर्षका सबध क्रूर कालने तोड़ दिया। जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी। मगर तो भी छाती कठिन करके, मानो वियोग-वेदना हलकी करनेके लिए ही गाधीजीने कितने-एक उद्‌गार निकाले। ये उद्‌गार ऐसे नही है जो यहा दिये जा सकें। उनमें ऐसे-ऐसे वाक्य थे

"आश्रमके प्राण मगनलाल थे, मै नही।" "इनके तेजसे मै प्रकाशित हुआ।" "तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे। मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मै अपने सरदारकी नही कर सकता। उनका जीवन सपूर्ण था। आश्रमके वे प्राण थे। मै तो केवल घूमता फिरा और आश्रमके प्रति बेवफा रहा। और उन्होने आश्रमकी सेवामे अपना शरीर गला दिया था।" "मै मीराबाईके समान जहरका प्याला पी सकता हू, मेरे गलेमे कोई सापोकी माला डाल दे तो उसे सहन कर सकता हू, किंतु यह वियोग उन दोनोसे भी अधिक कठिन है। तोभी छाती कठिन करके, उनका गुण-कीर्तन करते हुए मैने अपने हृदयमे उनकी मूर्त्ति स्थापित की है।"

(हि० न० जी०, ३.५ २८)

. . . .

निकटसे और दूर-दूरसे मित्रोने अपने मीठे सदेशोसे मेरे लिए मेरी सबसे कडी परीक्षाके अवसरपर मुझे अत्यत अनुगृहीत किया है। मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैने कभी यह सोचा ही नही था कि मगनलाल मुझसे

पहले मरेगे । व्यक्तियो, सस्थाओ और काग्रेस-सभाओके तारो और पत्रोमे मुझे वहुत आश्वासन मिला है । मै उन्हे विश्वास दिलाता हू कि उन्होने मुझपर जिस प्रेमकी वर्षा की है उसके तथा मगनलालने मेरे साथ जिन आदर्शोको माना और जिनके लिए शातिपूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मै उनके योग्य वननेकी कोशिश करूगा। (हि० न० जी०, ३ ५ २८)

तुम शायद नही जानते होगे कि रुखीवहन विलकुल वच्ची थी, तवसे सतोकके जीतेजी भी मगनलालके हाथो पली थी । इसके जीनेकी शायद ही आशा थी । मुश्किलसे सास ले सकती थी । इस लडकीको मगनलाल नहलाते, वाल सवारते और पास वैठकर खिलाते थे और अपने दूसरे वच्चोकी भी देखभाल करते थे। फिर भी नौकरीमे सवसे ज्यादा काम करते थे । सुदर-से-सुदर वाडी उन्होने वनाई थी । फिनिक्समे पहला गुलावका फूल उन्होने उगाया था । फिनिक्सकी कितनी ही सख्त जमीनमे जव उनकी कुदालीकी चोट पडती थी तव धरती कापती मालूम होती थी । जो मगनलाल कर सके वह सव तुम कर सकते हो । इसमे मैने कही भी मगनलालकी वडी कला-शक्ति या उनके पढे-लिखेपनकी वात नही कही है । मगनलालमे आत्म-विश्वास था । अपने कामके वारेमे श्रद्धा थी और भगवानने उन्हे वलवान शरीर दिया था । यह शरीर अतमे आश्रमके वोझसे और उनकी तपश्चर्यासे कमजोर हो गया था । लेकिन मै यह मानता हू कि मगनलालने अपने छोटे-से जीवनमे सौ वर्षके वरावर या सैकडो वरस जितना काम किया । मगनलालकी मिसाल तुम्हारे सामने इसलिए रखी है कि तुम मगनलालको जानते थे और उनके प्रेम-भावके कारण तुम्हारा आश्रमसे सवध हुआ था । मगनलालको याद करके भी भूल जाओ कि तुम अपग हो या अधेरेमे हो । मै मानता हू कि जो सुविधाए तुम्हे सहज ही मिली हुई है, वे इस देशमे लाखोमे एकको भी प्राप्त न होगी ।" (म० डा०, भाग १, ८ ७ ३२)

मगनलालके विषयमे क्या कहू ? उन्होने आश्रमके लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्निमे तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमे तपे और कसौटीपर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गए। आश्रममे जो कोई भी है वह मगनलालकी सेवाकी गवाही देता है। (य० म०, ३० ५ ३२)

मेरी रायमें स्वर्गीय मगनलाल गाधी इस तरहके एक आदर्श खादी-सेवक थे। उनसे जितनी आशाए मैने रक्खी थी, उससे कही ज्यादा उन्होने करके दिखाया। कडी-से-कडी कठिनाइयोका सामना करके भी वह अपने कामकी चीज, जहा-कही भी वह मिल जाती थी, सीख लिया करते थे। कठिनाइयोसे वह न कभी घवराते थे, न थकते थे। अतिम समयतक वह अपने खादी-सवधी ज्ञानको वढाने हीमे लगे रहे। मै चाहता हू कि आप मगनलाल गाधीके इस आदर्शका अपने जीवनमे अनुकरण करे। (ह० से०, १५ ५ ४२)

ऐसा ही यह भजन है—'अजहु न निकसे प्राण कठोर'। वह कहता है कि अवतक ईश्वरके दर्शन न हुए तो अवतक प्राण क्यो न निकले ? हमेशा तो इस भजनको गणेश शास्त्री गाते थे, लेकिन वाज दफा जब वह हाजिर न होता या वीमार पड जाता तो मगनलाल उसको गाता था। वह सगीत-शास्त्री तो नही था, लेकिन उसका कठ अच्छा था। उसका वह भजन अव भी मेरे कानोमे गूजता है। वह तो आश्रमका स्तभ था। आश्रमको चलानेमे वह पहाड-सा था, वहुत मजबूत। कुदाली अपने आप चलाता था तो सवसे आगे चला जाता था। दक्षिण अफ्रीकामे तो उसका शरीर बहुत मजवूत था। यहा उसको कोई वीमारी तो नही थी, लेकिन शरीर क्षीण हो गया था, क्योकि, उसपर सारा वोझ तो वहापर भी था, लेकिन यहा तो एक अनोखी चीज यह है कि करोडो आदमियोमे

काम करना पडता था। रचनात्मक कामका भी वोझ उसपर पडता था। रचनात्मक कामके विना हम रह भी कैसे सकते है ! उसके वगैर स्वराज चीज हो भी क्या सकती है ? आज स्वराज तो मिला, लेकिन उसकी कितनी कीमत है ? मिला तो भी क्या, आज हम सिद्ध करते है कि अगर हम रचनात्मक काम उस वक्त कर लेते तो हमे यह वक्त नही देखना पडता, जो हम आज प्रत्यक्षमे देख रहे है । स्वराज्यकी जो कल्पना हमने की थी और वह कल्पना वढ भी गई थी, क्या वह यही है ? अगर उस वक्त हम इतना कर लेते तो आज हिंदुस्तानका इतिहास अनोखा होनेवाला था, इसमे मुझे कोई शक नही। मगनलालका जो भगवान था वह तो स्वराज्यमे ही था । उसका स्वराज्य तो राम-राज्य था।

(प्रा० प्र०, १९ १० ४७)

: ५३ :

हरिलाल गांधी

हरिलालके जीवनमे वहुतेरी ऐसी वाते है जिन्हे मै नापसद करता हू। वह उन्हे जानता है , पर उसके इन दोषोके रहते हुए भी मै उसे प्यार करता हू। पिताका हृदय है । ज्योही वह उसमें प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा। फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार वद रक्खा है । अभी उसे और जगल-झाडीमे भटकना है । मानवी पिताके सरक्षणकी भी एक निश्चित मर्यादा होती है , पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है । वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा। (हि० न० जी०, १८ ६ २५)

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है और भीख मागता है। वली और मनुको धमकाता है। इसमे भी नीयत रुपया ऐठनेकी दीखती है। मुझे भी वडी उद्धत धमकियोके पत्र लिखे है। मनुपर अधिकार करनेके लिए वलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुःख नही होता, दया आती है। हसी भी आती है। ऐसे और वहुत लोग है, उनका क्या होगा ? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न ? वे सव भी स्वभाव नियत कर्म करते है। क्या करे ? हमारा वरताव सीधा होगा तो वह अतमे ठिकाने आ जायगा। हरिलाल जैसा है वैसा वननेमे मै अपना हाथ कम नही मानता। उसका वीज वोया तव मै मूढ दशामे था। जव उसका पालन हुआ, वह समय शृगारका कहा जा सकता है। मै शरावका नशा नही करता था। यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मै एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नही। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। वह वीरवहूटीकी गतिसे हो रही है। (म० डा०, भाग १, २३ ६ ३२)

• •

मै जव विलकुल साहव था, हरिलाल उस समयका है। उसे क्या पता था कि साहव होते हुए भी मेरा दिल साहवीमे जरा भी नही था ? उसने मेरा वाह्यरूप देखा और वैसी ही मौज-शौक करनेकी उसमे इच्छा हो गई। उसने मुझसे कहा—मुझे वैरिस्टर वना दीजिए। फिर देखिए, मै क्या-क्या करता हू। इतना त्याग करता हू या नही ? (म० डा०, भाग २, ११ १० ३२)

तूने हरिलालके वारेमे पूछा है। वह पाडेचेरी गया था। वहा भी पैसोकी भीख मागकर खूव शराव पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आज-कल कहा है, पता नही। उसका योही चलेगा। ईश्वर जव उसे सुवुद्धि

दे तव सही। इसमें हमारे पाप-पुन्य भी तो काम करते ही हैं न ? हरि-लालके गर्भके समय मैं कितना मूढ था ? जैसा मैंने और तूने किया होगा, वैसा ही हमे भरना होगा। इस तरह बच्चोंके आचरणके लिए मा-बाप जिम्मेदार हैं ही। अब तो हम यही कर सकते है कि हम शुद्ध बने। सो वैसी कोशिश हम दोनों कर रहे हैं और उससे हम सतोष माने। हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलालपर पडता ही होगा। ('हमारी बा,' १३ २ ३४)

: ५४ :

डा० गिल्डर

महान् पारसी कौमने शराबबदीके बुरी तरह विरुद्ध होते हुए भी जो सयम रक्खा उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है। स्पष्ट ही उन्होने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन हुआ मालूम नही पडता। मेरी यह आशा ठीक ही सिद्ध हुई मालूम पडती है कि पारसी कौमकी उदारताने उसके विरोध-भावको दबा दिया। शराबबदीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोंके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई बहुत बडी बात है ? उन्हे यह याद रखना चाहिए कि बम्बईके इस प्रयत्नका असर न केवल सारे प्रातपर, बल्कि समस्त भारतवर्षपर पडेगा। मैं तो यह कहनेका भी साहस करता हू कि अभी तो यद्यपि उन्हे ऐसा लगता है कि उनके साथ बेजा व्यवहार हुआ है, लेकिन पारसियोंकी भावी सतति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हे दुआए देगी। जैसे भारतको इस बातका गर्व है, उसी तरह पारसियोंको भी सचमुच इस बातका फख्र होना चाहिए कि उन्होंने डॉ० गिल्डर-जैसा

आदमी पैदा किया जो कि महाभयकर विरोध, यहातक कि बहिष्कार आदिकी बुरी-से-बुरी धमकियोके बावजूद चट्टानकी तरह दृढ रहा। (ह० से०, १२ ८ ३९)

आज अखबारमें बापू और वर्किंग कमेटीके साथवालोको छोडकर बाकी कैदियोको महीनेमें एक मुलाकात मिलनेकी खबर थी। डा० गिल्डर-के लिए अवश्य ही एक समस्या खड़ी हो गई। मुलाकातकी इजाजतसे लाभ उठाना हो तो उनको वापस यरवदा जानेके लिए सरकारके साथ झगड़ा करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है? यरवदा जाकर एक तो जेलकी जेल, दूसरे खर्च और तीसरे बापूका साथ छोडना। वैसे भी यहाका वातावरण उन्हें अनुकूल है। यह सब छोड़ना या मुलाकात छोडना? मैने कहा, "खर्चकी उन्हें क्या परवाह है?" बापू कहने लगे

"ऐसा नही, कौन जाने कबतक यहा रहना है। वे प्रतिष्ठावाले आदमी है। अब काग्रेसको कभी छोडेगे नही। यह भी जानते है कि मै लोगोको भिखारी बनानेवाला हू। सो जो धन है उसे सभालकर रखेगे ताकि वह उनकी लडकीको मिल सके।" (का० क०, २९४३)

: ५५ :

सतीशचन्द्र दास गुप्ता

बगालमे शुद्ध त्यागके दृष्टात देखकर मै तो आनद रसके घूट पीने लगा। एक जमीदारका सारा कुटुब खादीमय है। तमाम स्त्रिया कातती है। समस्त स्त्री-पुरुष खादी पहनते है। उन्होने अपनी जमीन और अपना घर खादी प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिया है। प्रति-ष्ठानके प्राण सतीशबाबूका त्याग ऐसा-वैसा नही। डा० रायके रसायनके

कारखानेमे हर माह १५००) की उनकी आमदनी थी। वहा रहनेके लिए वगला भी था। अधिक मागनेसे और भी मिल सकता था। वहा रहकर भी वे खादीका काम तो करते ही थे, परतु इससे उन्हे सतोप न हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोके विगड जानेकी सभावना है। रसायनके कारखानेके तो वे प्राण ही थे। यदि उसके लिए पूरा समय न दे तो जरूर धक्का पहुचे, और इधर खादीके द्वारा गरीवोकी सेवा होती है। फुरसतके समयमे इस कामको करना भी उन्हे अच्छा न मालूम हुआ। एक पुरुपका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक पुरुपका दो कामोको अपना प्राण वनाना भी अनर्थ-कर है। फिर खादीके लिए जितना त्याग किया, उतना कम ही है। ऐसी दलीले अपने मनके साथ करके खुद जिस कारखानेको जमाया था उसीको उन्होने एक क्षणमे छोड दिया और अपने पास जो कुछ थोडा द्रव्य रहा है उसीकी आमदनीमे अपना घर-खर्च चलाते है और चौवीसो घटे खादी-कार्यमे ही लगाते है। अपने कामकी अवतक वे ११ जगह शाखाए खोल चुके है। इनमे पाँच है खादी पैदा करनेवाली, अभी और भी खोलनेका इरादा कर रहे है। उनके द्वारा ५,०६० चरखे चल रहे है। शुद्ध खादीके करघे ५६७ चलते है।

उनके इस कार्यमे उनकी धर्मपत्नी भी उनका साथ देती है। जहा रुपयेकी कमी न थी तहा आज तगीसे काम चलाना पडता है, यह उस वाई-को खलता तो होगा, जहा रहनेके लिए अलहदा वगला था तहा आज एक छोटे-से मकानकी एक छोटी-सी मजिलपर सतोष मानना कठिन तो पडता होगा, किंतु ये वाई इन तमाम तकलीफोको प्रफुल्ल वदन हो कर सह रही है। (हि० न० जी०, २८ ५ २५)

• •

वह (सतीश वावू) तो कुदन जैसा है। और कुदनके क्या कभी जेवर वने है ? सोनेके गहने वनते है, क्योकि सोनेमे थोडी कुधातु मिली हुई

होती है। इस तरह काम देनेके लिए थोडी कुधातुकी जरूरत पडती है, मगर सुधातु होना तो अपने आप ही शोभा देता है। (म० डा०, भाग २ २ १२ ३२)

• • •

खादी प्रतिष्ठानके श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्ता भारत-रक्षा कानूनकी २६ (१) धाराके अनुसार जारी किए गए हुक्मको न माननेके लिए गिरफ्तार किए गए है और उन्हे दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होने सकटग्रस्त लोगोको तवतक अपने घर वगैरह न छोडनेकी सलाह दी, जवतक कि खाली किए गए घरो आदिके वदलेमे वैसा ही दूसरा प्रवध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाय। इस सवधमे 'हरिजन' मे मैने जो लेख लिखे है और हाल ही काग्रेसकी कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया है, श्रीसतीशवावूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमे कोई शक नही कि श्रीसतीशवावूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट ही यह मालूम होगा कि उन्होने यह अनादर मानवताके खातिर, उसके तकाजेसे, किया। उस प्रदेशमे श्रीसतीशवावू और उनके आदमी वरसोसे काम कर रहे है और उन्होने उधरके कतवैयो व जुलाहोमे हजारो रुपये वतौर मजूरीके वाटे है। सतीश-वावूके पत्रसे साफ ही यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत विलकुल सच्ची है। जिस महान् युद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-शरीरकी मुक्तिके लिए लडा जा रहा है, वह उन लोगोका दमन करके कभी जीता नही जा सकता, जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग चाहा जाता है और चाहने योग्य है। इसमे कोई शक नही कि हिन्दुस्तान-की आम जनता अज्ञानमे डूबी हुई है। वह स्वभावसे गरीव है और इति-हासकारोने उसे दुनियामे अधिक-से-अधिक भली और नम्र माना है। उनका पथ-प्रदर्शन आसानीसे किया जा सकता है। वह अपने नेताओके

बताए रास्तेपर चलती है। इसलिए उससे काम लेनेकी उचित रीति यह है कि उसके नेताओसे काम लिया जाय, उनसे वातचीत की जाय।

नेता दो तरहके होते है एक वे, जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्व द्वारा जनताका शोषण करते है, उसकी आडमे अपना मतलब गाठते है, और दूसरे वे, जो अपनी सेवाके बल जनताके नेता बनते है। वे विश्वासपात्र होते है और जनता उन्हे मानती है। इन दोनो प्रकारोको पहचानना बहुत आसान है। इन दूसरे प्रकारके नेताओको जनतासे अलग करना अनुचित है।

श्रीसतीशबाबू दूसरे प्रकारकी श्रेणीमे आते है। गोकि वे राजनीति जानते है, पर राजनैतिक पुरुष नही है। वे व्यवसायी है और उन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाव्रती आचार्य पी० सी० रायके प्रिय शिष्योमे से है, जिन्होने अपने लिए कभी एक पाई भी नही कमाई। सुप्रसिद्ध बगाल केमीकल वर्क्स, आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोमे एक कृति है और श्रीसतीशबाबू उसके निर्माताओमे है। वे इस केमीकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहा ऊचा वेतन पाते थे। उन्होने वह काम छोड दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीबोकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामे वे उनके सुख-दुखकी साथिन बनी। उनके भाई और होनहार लडकोने भी यही किया। उनमेसे एकका सेवा करते-करते ही देहात हो गया। श्रीसतीशबाबूके भाई श्री क्षितीशचद्र दास गुप्ता भी एक केमिस्ट (रसायन-शास्त्री) है और उन्होने अपने आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामे खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी पालने, हाथका कागज बनाने और इसी तरहके दूसरे गृह-उद्योगोमे लगा रहे है। श्रीसतीशबाबूने अपने लडकोको उस उच्च शिक्षासे वचित रक्खा, जो स्वय उन्होने प्राप्त की थी। अपने नए कार्यमे वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गए कि खादी कार्यके विशेपज्ञ बन गए। उन्होने खादी-

प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो कि उधर लोकसेवाकी प्रवृत्तियोका एक महान् केन्द्र बन गया है। श्रीसतीशबाबू उन सच्चे-से-सच्चे और नम्र-से-नम्र लोगोमे है, जिनके साथ मुझे काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते है। इन दोनोको उन्होने राजनैतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नही, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनो द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियो द्वारा होता तो जरूरतके वक्त श्रीसतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोकी सरकारी अधिकारियोको बडी आवश्यकता रहती, और यह समय तो बहुत ही बडी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका जो अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकते है, सो यही है कि उन्हे उनके उन कानूनोका अनादर करनेके लिए सजा दे, जो समूचे राष्ट्रकी इच्छाको नही, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते है, जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। श्रीसतीशबाबूने वह जोत जलाई है, जो कभी बुझेगी नही। कानून झूठा है, जनताके सेवक सतीशबाबू सच्चे है। (ह० से० २८४२)

: ५६ :

गोपालकृष्ण गोखले

उनका जन्म सन् १८६६ मे कोल्हापुरमे एक गरीब मराठा ब्राह्मण-कुटुबमे हुआ था। वहीके कालेजमे पढकर उन्होने एफ० ए० परीक्षा पास की। इसके बाद वे बबईके एलफिन्स्टन कालेजमे भरती हुए और

वहा मे सन् १८८४ मे उन्होने बी० ए० परीक्षा पास की।

बी०ए० होने के बाद उन्हे किसी काम-धधेमे लगनेका विचार करना पडा और उन्होने शिक्षकका धधा ही पसद किया। उस समय 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी' अच्छा काम कर रही थी। श्रीगोखले इस सस्थामें सम्मिलित हो गये। इस सस्थाने अपनी देख-रेखमे पूनामें चलनेवाले फर्ग्यूसन कालेजमे सत्तर रुपये मासिक पर उन्हे अर्थ-शास्त्र और इतिहासका अध्यापक नियुक्त किया। श्रीगोखलेने यहा बीस वर्षोतक पढानेकी शपथ ली। इस प्रतिज्ञाका उन्होने पालन किया। इस प्रकारके सेवा-वृत्तिपरायण लोग जब शिक्षाके लिए अपना जीवन अर्पण करते है तभी शिक्षा फलदायी निकलती है और बालकोंके संस्कार तभी गढे जाते है। श्रीगोखलेने फर्ग्यूसन कालेजमें बीस वर्ष बिताए। उस बीच यद्यपि सभाओ और समाचारपत्रो द्वारा उनके दर्शन अधिक नही हुए, तथापि बहुतसे युवकोको अपने मनका विकास करने और अपने आचरणको दृढ करनेके लिए आगेका पोषण उन्ही वर्षोंमे उन्हीसे प्राप्त हुआ।

श्रीगोखले जब फर्ग्यूसन कालेजमे थे तब शिक्षाके कामके सिवा अन्य कार्यमे भी ध्यान दे रहे थे। जिस समय वे कालेजमे दाखिल हुए, उस समय स्वर्गीय श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके सपर्कमे आए थे और विशेषकर उन्हीकी देख-रेखमे उनका चारित्र्य गढा गया था। न्यायमूर्ति रानडेके प्रवीण हाथके नीचे बारह वर्षो या इससे भी अधिक समय तक श्रीगोखलेने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन किया था। परिणाम-स्वरूप श्रीगोखले उन थोडे-से लोगोमे से है, जिनके शब्द हिन्दुस्तानमें आर्थिक प्रश्नोपर आधार-भूत माने जाते है। श्रीगोखलेका स्वर्गीय श्रीरानडेके प्रति बहुत ही पूज्य भाव है और वे उन्हें गुरुके रूपमे मानते है। १८८७ मे श्रीरानडेकी इच्छा-से पूना सार्वजनिक सभाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'क्वार्टर्ली जरनल' का सचालकत्व उन्होने स्वीकार कर लिया। इसके बाद शीघ्रही वे डेकन

सभाके अवैतनिक मत्री नियुक्त किये गए। पूनाके अग्रेजी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' के भी वे सचालक थे। ववईकी प्रातीय कान्फ्रेन्सके वे चार साल तक मत्री थे। १८९५ मे पूनामे हुई काग्रेसके भी वे मत्री नियुक्त किये गए थे। सार्वजनिक कार्योमे उनकी रुचि और उत्कठाने इतनी अधिक रयाति प्राप्त की कि उन्हे 'दक्षिणके उदीयमान् तारे' की उपमा दी जाती। उनकी प्रसिद्धि इतनी फैली कि भारतके खर्चके सवधमे विचार करनेके लिए विलायतमे नियुक्त किये गए वेल्वी-कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये ववईकी जनताने श्री वाच्छाके साथ उन्हे भी चुना था। वहा उन्होने कीमती वयान दिया था।

जिस समय वे इगलैडमे थे, उस समय उन्होने हिदुस्तानके मामलेके वारेमे कई भाषण दिए थे। प्लेगके सवधमे ववई सरकार जिस ढगसे काम कर रही थी और कामपर रोके गए सैनिकोने जो थर्रा देनेवाले काम किए थे, उनकी कडी टीका छपवाकर उन्होने वहा निकाली थी। इसके कुछ समय वाद वे ववईकी धारासभाके सदस्य चुने गए। १९०२ मे २५) की पेन्शन लेकर वे फर्ग्यूसन कालेजसे पृथक् हुए। उसी समय ववईके प्रतिनिधि सर फीरोजशा मेहताकी वीमारीके कारण केन्द्रीय धारासभामे उनकी जगह श्रीगोखले चुने गए। यह काम उन्होने इतनी सुदरतासे किया कि उस समयसे लेकर अवतक उस जगहके लिए वे वार-वार चुने जाते रहे है।

वडी धारासभामे चुने जानेके वादसे उनकी कार्य-कुशलताका नया प्रकरण आरभ हुआ। स्वदेश-सेवामे उनकी भारी-से-भारी जीतके इतिहास-रूपमे वह वना हुआ है। वजटके समयका उनका पहला ही भाषण प्रेरणाप्रद माना जाता है। उस समयसे बजटके अवसरपर उनके भाषणोके वारेमे सव लोगोको वडी आतुरता रहती है। साल-दरसाल वे वताते रहे है कि साल-भरके हिसाबमे जो रकम शेष वताई जाती है, वह कितनी गलत होती है और उसमे जनसख्या कितनी अप्रामाणिक हो जाती है।

साल-दरसाल वे यह माग करते रहे है कि सरकारी विभागोमे अधिक परिमाणमे भारतीयोको नौकरी दी जाय। साल-दरसाल फोजी खर्च घटानेकी वे हिमायत करते रहे है। साल-दरसाल नमक-कर रद्द करने और कृषि तथा उद्योग-धधोकी शिक्षाके प्रसारकी वे माग करते रहे है और नि शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा जारी करने एव इसी प्रकारके अन्य सुधार करनेका वे साल-दरसाल आग्रह करते रहे है। नमक-करमे जो कमी हुई है, वह अधिकाशत उनकी हिमायतमे ही हुई है।

हिंदुस्तानके अनेक उच्च-से-उच्च पदाधिकारियोकी उनसे मित्रता है और मिजाज के तेज वाइसराय लार्ड कर्जन भी उन्हे अपने बराबरीके प्रतिस्पर्द्धीके रूपमे मानते थे। उन्होने कहा था कि श्रीगोखलेके साथ पटाना एक आनददायक बात है। उन्हे यह भी कहते सुना गया है कि उनके सपर्कमे आये मनुष्योमे श्रीगोखले सबसे बलवान है। यद्यपि श्रीगोखले कौन्सिलमे लार्ड कर्जनके ऐसे विरोधी थे जो कभी उन्हे ढील न देते थे, तथापि उनकी योग्यता और सुदर व्यवहारके प्रति सम्मानके प्रतीक-स्वरूप उन्हे सी० आई० ई० का खिताब दिया था और खिताब दिए जानेके अवसरपर उन्हे बधाईका एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था।

श्रीगोखले काग्रेसकी गति-विधिमे शुरूसे ही शामिल थे। काग्रेस-की बहुत-सी सभाओमे वे उपस्थित रहे है और उन्होने भाषण दिए है। उनका सबसे अधिक उल्लेखनीय भाषण बबईकी काग्रेसके अदर हिंदुस्तानके कोषकी सिलकके बारेमे दिया गया भाषण था। सर हेनरी काटनके कथनानुसार वह भाषण आम सभा (हाउस आव कामन्स) मे सुने गए सुदर-से-सुदर भाषणकी बराबरी करनेवाला था।

हिंदुस्तानकी राजनैतिक स्थितिसे विलायतकी जनताको अवगत करनेके लिए बबईकी जनताने एक प्रतिनिधिके रूपमे उन्हे १९०५ मे वहा भेजा था। वह काम उन्होने बहुत सतोषजनक रूपमे पूरा किया

था। पचास दिनोमे कुछ नही तो पैंतालीस भाषण दिए। हिदुस्तानके ब्रिटिश राज्यके विषयमे लोकमत प्रकट करनेकी उनकी खूबीसे बहुतसे चालाक अग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गए थे। वे इगलैंडसे रवाना हुए, उसके पहले ही बनारसकी पुण्य-भूमिमे होनेवाली काग्रेसके अध्यक्ष चुने जा चुके थे। बनारसमे काग्रेसमे अध्यक्षपदसे दिया गया उनका भाषण अत्यन्त स्पष्ट और प्रवीणताका नमूना था। बनारस काग्रेसके बाद शीघ्र ही वे फिर विलायत गए और इस बार लार्ड मार्लेके साथ उनकी बहुत बार मुलाकाते हुई। लार्ड मिन्टोकी नए सुधारोकी योजनाके सबधमे १९०९ मे वे फिर विलायत गए थे।

श्रीगोखलेने बार-बार जोर देकर कहा है कि इस बातकी अत्यत आवश्यकता है कि राजनैतिक कामके लिए शरीर अर्पण कर देनेवाले थोड़े-बहुत लोग हर प्रातमेसे निकल पडे। सच तो यह है कि ऐसे राजनैतिक सन्यासियोका मार्ग रचनेकी उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा थी जिनका ध्येय ही स्वदेश-सेवा हो। यह अभिलाषा हालमे ही प्रकट हुई है। 'भारत-सेवक-समिति' से हिंदुस्तानकी जनता वाकिफ हो गई है। इस समिति हेतु बहुत अच्छे हैं और हम सबकी कामना है कि भविष्यमे इस देशकी बडी-से-बडी सेवा करनेमे वह अधिक-से-अधिक शक्तिमान होती जाय।

श्रीगोखलेकी भाषण देनेकी पद्धतिके बारेमे दो शब्द कह दू। वे कोई वक्ता नही है। श्रोताओकी भावनाओको उभाडनेकी ओर उनका विशेष लक्ष्य नही रहता। अपनी बात सामनेवालेके मनमे पूरी तरह उतारना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे शीघ्रतासे बोलते है। भरपूर आकडे और विवरण उनका सरजाम है। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत तीक्ष्ण और उत्साहपूर्ण है। उनका बोलनेका ढग सादा, किंतु स्पष्ट और जोरदार है।

श्रीगोखले बहुत उत्साही सुधारक है। वे पूनासे प्रकाशित होने वाले

मराठी दैनिक 'ज्ञानप्रकाश' को भी चलाते है और उसके द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारोका प्रचार करते है। ऐसा कहा जा सकता है कि उनका रहन-सहन अत्यत सादा और उग्र तपवाला है। सच कहे तो, जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार श्री नेविन्सनने कहा है, एक सच्चे ब्राह्मणके रूपमे उन्होने अपना जीवन गरीबी और ज्ञानमे होम दिया है। अत्यत प्राचीन भारतीय रीति, सादा जीवन और उच्च विचारका इससे अच्छा नमूना दूसरा नही मिल सकता।

श्रीगोखलेके अतिम बडे कार्योमे शिक्षाका बिल और भारतीय मजदूरोकी अनिवार्य गुलामीको बद करनेका प्रयास है। शिक्षाका बिल वाइसरायकी धारासभाके सामने पेश किया गया था। अन्य प्रजाकीय बिलोकी जो दशा होती है, वही दशा श्रीगोखलेके बिलकी हुई है, फिर भी उन्हे हिंदके सभी भागो और सभी जातियोकी ओरसे इतना अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है कि उस एकत्र बलके सामने सरकार ज्यादा दिनो तक टिक नही सकेगी।

इस देशमे 'गिरमिट'[1] बद हो गया, इसके लिए हम श्रीगोखलेके बहुत आभारी है। स्वय अनेक कार्योमे फसे रहने और बीमार रहनेपर भी इस प्रश्नका उन्होने कितना गहरा अध्ययन किया है, यह जाननेके लिए हिंदकी धारासभामे दिया गया उनका भाषण आईनेकी तरह है।

गिरमिटके प्रश्नके उपरात हमारी तकलीफोकी ओर उन्होने हार्दिकतासे नजर रखी है और सत्याग्रहकी लडाईमे कीमती मदद दी है। हमारे प्रति उनकी सहानुभूति बढकर इस सीमातक पहुच गई है कि उन्होने इस देशमे (दक्षिण अफ्रीकामे) आकर हमारी स्थितिको जाननेका निश्चय किया है।

---

[1] मजदूरीके लिए विदेश जानेवाले भारतीयोसे करवाया जानेवाला इकरार।

मातृभूमिकी सेवामे अपनी पूरी जिंदगी अर्पण करनेवाले माननीय गोखले जैसा बुद्धिमान और तेजस्वी बनना हमारे बसकी बात नही, किंतु उनकी भाति अपने काममे एकरस हो जाना हममेसे प्रत्येकके बसकी बात है। श्रीगोखले स्वय जो कुछ मानते है, उसमे एकरस है, इसीलिए सारा देश और मित्र और सब लोग समान रूपसे उनका सम्मान करते है।... वे दीर्घायु हो और हम कामना करेगे कि उनकी छाप हमारे हृदयमे कभी मदी न पडे। (इं० ओ०, १९१२)

. . . . .

श्रीगोखलेके उद्देश्यको मै पवित्र मानता हू। किंबरलीमे प्रमुख-से-प्रमुख गोरे और भारतीय मिलकर भोजन करने एक मेजपर बैठे इस प्रसगमे श्रीगोखले कारणरूप बने, यह मेरे मनमे गर्वका विषय है। टाल्स्टायके जीवन और शिक्षणके एक नम्र अभ्यासीके रूपमे मुझे ऐसा भी लगता है कि ऐसे समारोह अनावश्यक है और अनेक बार इससे बहुतसे नुकसान—कुछ नही तो पाचन-क्रियामे खलल डालनेका नुकसान—होने लगता है, किंतु मै टाल्स्टायके जीवनका अभ्यासी हू, फिर भी यदि इससे एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहचाननेका अवसर मिलता हो तो इसमे खामी निकालनेके लिए मै तैयार नही। इस प्रसगपर मुझे एक सुदर अग्रेजी भजन—वी शैल नो ईचअदर व्हेन दि मिस्ट्स हैव् रोल्ड अवे (We shall know each other when the mists have rolled away)—याद आता है। हममेसे अज्ञान दूर हो जाय, हम एक-दूसरेके बीच मतभेद होनेपर भी एक-दूसरेके भाव अधिक समझ सके। मेरे प्रख्यात देशी भाई यहा जो आए है, सो इस अज्ञानकी आधीको दूर करनेके लिए ही आए है। कीमती-से-कीमती जवाहरके रूपमे, हिंद जिसे यहा भेज सकता था, वे यहा आए है। मै जानता हू कि जब श्रीगोखलेके कार्योके बारेमे मै कुछ कहता हू तो उनकी भावनाओको ठेस पहुचती है, फिर भी मुझे कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। हिंदुस्तानमे श्रीगोखलेने राजनैतिक

क्षेत्रमे जो कीर्त्ति प्राप्त की है, उसके विपयमे यहा मेरे वरावर और कोई कह सके, ऐसा नही है । हिंदुस्तानके वाइसराय तो सिर्फ पाच वरसतक ही हिंदुस्तानकी सल्तनतका वोझ अपने सिरपर उठाते है (कभी-कभी लार्ड कर्जन-जैसे सात वरस तक उठाते है) और सो भी अनगिनत अफसरोकी मददसे, किंतु ये मेरे एक विख्यात देशी भाई इस प्रकार की किसी भी सहायताके विना, नौकरोके विना और मान-पदके विना, सल्तनतका वोझ अकेले उठाए हुए है । यह सही है कि इनके पास सी० आई० ई० का खिताव है, किंतु मेरे मतसे उससे वहुत अधिक वडे-वडे पदोके वे पात्र है । श्रीगोखले जिस पदको चाहते है, वह उनके देशी भाइयोके प्रति प्रेम और अपनी अतरात्माकी सम्मति है । पश्चिमकी शिक्षा पाए हुए भारतीयोके लिए वे नम्रता और भलमनसाहतके उदाहरण-स्वरूप है ।*

माननीय गोखलेजीकी 'गिरमिट'-सबधी प्रवृत्ति उनकी तन्मयताकी जैसी झाकी कराती है, वैसी दूसरी कोई प्रवृत्ति नही कराती । उनका दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास और उसके वाद हिंदमे की जानेवाली उनकी गतिविधि, अपने कार्यमे ओतप्रोत हो जानेकी उनकी शक्तिका हमे अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और उनकी इस शक्तिके कारण ही अनेक वार मैने कहा है कि उनके कार्योमे हम छिपी हुई धर्मवृत्तिको देख सकते थे ।

अव हम उनके दक्षिण अफ्रीकाके कार्यको जरा देखे । जव उन्होने दक्षिण अफ्रीका जानेके विषयमे अपना मत प्रकट किया तव हिंदुस्तानकी सरकारके अफसरोमे खलवली मच गई । दक्षिण अफ्रीकामे गोखलेजी-जैसे मनुष्यका अपमान हो तो उसे क्या कहा जायगा ? दक्षिण अफ्रीका

---

* महात्मा गोखलेका सम्मान करनेके लिए किंवरलीके मेयरके सभापतित्वमें नवबर १९१२में हुए भारी समारोहके अवसरपर गाधीजी द्वारा दिए गए भाषणका अश ।

जानेका विचार यदि वे छोड दे तो कितना अच्छा हो ? किंतु उनसे इस बारेमे कहनेकी कौन हिम्मत करे ? दक्षिण अफ्रीका जाना क्या है, इसका अनुभव गोखलेजीको इग्लैडमे ही हुआ। उन्होने अपने लिए टिकट मगवाया, किंतु यूनियन केसल कपनीके अधिकारियोने कुछ भी ध्यान न दिया। यह खबर इडिया आफिसमे पहुची। इडिया आफिसने सर ओवन टयूडरको, जो यूनियन केसल कपनीके मैनेजर थे, सख्त ताकीद की कि कपनीको गोखलेजीका उनके पदके योग्य सम्मान करना चाहिए। परिणाम यह निकला कि गोखलेजी एक सम्मानित अतिथिके रूपमे स्टीमरमें प्रवास कर सके। इस प्रसगका वर्णन करते हुए उन्होने मुझसे कहा, "मुझे अपने व्यक्तिगत सम्मानकी आवश्यकता नही, किंतु अपने देशका सम्मान मेरे लिए प्राणके समान है और इस समय मै एक प्रमुख व्यक्तिके रूपमे आ रहा था, इसलिए मेरा अपमान हुआ तो वह हिदका अपमान होनेके समान है, यह मानकर मैंने स्टीमरमे अपने मानके योग्य सुविधा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया।" उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप इडिया आफिसने कोलोनियल आफिसके मार्फत ऐसी तजवीज की थी कि दक्षिण अफ्रीकामे भी गोखलेजीका पूरा-पूरा सत्कार हो। इसलिए यूनियन सरकारने पहलेसे ही उनके सत्कारकी व्यवस्था कर रक्खी थी। उनके लिए एक सैलून तैयार करवा रक्खा था और यात्राके समय रसोइये आदि रखनेका भी इतजाम किया था। उनकी सार-सभालके लिए एक अफसर तैनात किया गया था। भारतीय जनताने तो स्थान-स्थानपर ऐसा सम्मान करनेकी तजवीज कर रक्खी थी, जो बादशाहको भी न मिल सके। गोखलेजीने यूनियन सरकारका आतिथ्य केवल यूनियनकी एक राजधानी प्रिटोरियामे ही स्वीकार किया। शेष सभी स्थानोपर वे भारतीयोके अतिथि रहे। केपटाउनमे दाखिल हुए कि तुरत उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका विशेष अध्ययन शुरू कर दिया। इस विषयका जो सामान्य ज्ञान लेकर

वे केपटाउनमे उतरे थे, वह भी ऐसा-वैसा नही था, किंतु उनके हिसावने वह पर्याप्त न था। दक्षिण अफ्रीकाके अपने चार सप्ताहके प्रवासमे उन्होने वहाके भारतीयोकी समस्याका इतना गहरा अध्ययन किया कि जो लोग भी उनसे मिलते, वे उनके ज्ञानसे आश्चर्यचकित हो जाते। जव जनरल वोथा और जनरल स्मट्समे मिलनेका समय आया तव उन्होने इतने अधिक विवरण तैयार करवाये कि मुझे लगा कि इतना परिश्रम वे किस लिए कर रहे है। उनकी तवीयत वरावर वहुत खराव थी, अत्यत सार-सभाल रखनेकी जरूरत थी। लेकिन ऐसी तवीयत रहनेपर भी रातके वारह-वारह वजे तक काम करते और फिर दो वजे या चार वजे उठ जाते और कासिदको वुलाने लगते। परिणाम-स्वरूप जनरल वोथा और जनरल स्मट्मसे हुई उनकी मुलाकातमेसे गिरमिटके तीन पौडके वार्षिक करकी सत्याग्रहकी लडाई पैदा हुई। यह कर १८९३ से गिरमिट-मुक्त पुरुपो, उनकी स्त्रियो और उनके लडके-लडकियोपर लगाया जाता था। यदि गिरमिट मुक्त-व्यक्ति कर न देना चाहता तो कानून द्वारा उसका भारत वापस जाना अनिवार्य वना रक्खा था। इसलिए गिरमिटमे, वास्तवमे, गुलामीमे पडे हुए भारतीयोकी दशा वहुत ही सकटपूर्ण वनी हुई थी। सर्वस्व त्यागकर वाल-वच्चोतकके साथ दक्षिण अफ्रीका आया हुआ भारतीय हिंदुस्तान वापस जाकर क्या करे? यहा तो उसके भाग्यमे भुखमरी ही रही। जीवन-पर्यंत गिरमिटमे भी कैसे रहा जा सके? उसके आस-पासके स्वतत्र मनुष्य हर महीने चार पौड, पाच पौड, १० पौड कमाते हो तो स्वय १४ से १५ शिलिंग मासिक लेकर कैसे सतुष्ट रह सके? और अलग होना चाहता हो तो मान लीजिए कि उसके एक लडका और एक लडकी हो तो स्त्री-सहित सव मिलाकर उसे हर साल १२ पौडका कर देना चाहिए। यह भारी कर वह किस प्रकार दे? जवसे यह कर चालू हुआ तवसे भारतीय कौम उसके विरुद्ध भारी लडाई चला रही थी। हिंदुस्तानमे भी

उसकी प्रतिक्रिया हुई थी, किंतु अभी तक यह कर समाप्त न हो सका था। गोखलेजीको बहुत-सी मागोमे इस करको उठानेकी भी माग करनी थी। वे इस प्रकार व्यथित हो उठे थे, जैसे अपने गरीब भाइयो-के ऊपरका यह बोझ स्वय उन्ही पर हो। जनरल बोथाके सामने उन्होने अपने आत्माकी सपूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। उनके बोलनेका प्रभाव जनरल बोथा और जनरल स्मट्सपर ऐसा पडा कि वे पिघल गए और उन्होने वचन दिया कि आगामी यूनियन पार्लमेटमे यह कर रद कर दिया जायगा। गोखलेजीने यह खुशखबरी बहुत हर्ष-पूर्वक मुझे दी। इन अधिकारियोने और भी वचन दिए थे, किंतु अभी हम गिरमिटके विषयपर ही विचार कर रहे है, अत यूनियन सरकारके साथके उनके मिलापका इतना ही अश मै यहा देता हू। पार्लमेट बैठी। गोखलेजी तो दक्षिण अफ्रीकामे थे नही और दक्षिण अफ्रीकामे बसे भारतीयोको मालूम हुआ कि तीन पौडका कर तो नही उठाया जा सकता। जनरल स्मट्सने नेटालके सदस्योको समझानेका थोडा-बहुत प्रयत्न किया था। मेरे हिसाबसे यह काफी न था। भारतीय कौमने यूनियन सरकारको लिखा कि तीन पौड वाला कर, चाहे जैसे हो, उठानेको यूनियन सरकार गोखलेजीके साथ वचनबद्ध थी। अत यदि उसने यह कर नही उठाया तो जो सत्याग्रह १९०६ से चल रहा था, उसके अदर इस करकी बात भी दाखिल हो जायगी। दूसरी तरफ तारसे गोखलेजीको खबर दी गई। उन्होने यह कदम पसद किया। यूनियन सरकारने भारतीय कौमकी चेतावनीपर ध्यान नही दिया। उसका परिणाम सब लोग जानते है। गिरमिटमे रहनेवाले ४० हजार भारतीय सत्याग्रहकी लडाईमे शामिल हुए। उन्होने हडताल की, असह्य दु ख सहन किए, बहुत-से मारे गए, किंतु अत मे गोखलेजीको दिए गए वचनका पालन किया गया और वह कर उठा लिया गया। ('धर्मात्मा गोखले', पृष्ठ २४)

आप लोगोंने मुझे गोखले पुस्तकालयके उद्घाटन और उनके चित्रके अनावरणके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और उतना ही गंभीर भी है।

. . . गोखले नामके भूखे तो न थे। इतना ही नही, वरन् उन्हे यह भी अच्छा न लगता था कि उनका मान हो। अनेक वार मान मिलते समय वे नीचे देखने लगते। यदि ऐसा माना जाता हो कि गोखलेके चित्रके अनावरणसे ही उनकी आत्माको शाति मिलेगी तो यह धारणा सच्ची नही। मरते समय उस महात्माने अपना आदर्श कह सुनाया था, और वह यह कि मेरे बाद मेरा जीवनचरित लिखा जायगा या मेरे लिए स्मारक बनेगा और शोक-प्रदर्शक सभाए होगी, किंतु उससे मेरी आत्माको शाति मिलनेवाली नही है। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जीवन ही समस्त हिंदका जीवन बने और भारत-सेवक-समिति की प्रगति हो। इस वसीयतनामेको जो लोग मजूर करते हो, उन्हे गोखले-का चित्र रखनेका अधिकार है।

गोखलेके जीवनका विस्तार विशाल है। उनके जीवनके कुछ कौटु-बिक प्रसग आज यहा आई हुई बहनोको सुनाऊगा। यह बात बहनोंके याद रखने लायक है कि गोखलेने अपने कुटुबकी सेवा अच्छी तरह की है। उनका आचरण ऐसा न था कि जिससे कुटुबके लोगोका जी दुखे। जैसा कि आज हिंदू-ससारमे गुडियाके विवाहकी भाति लडकीको आठ वरसकी करके उसे दरियामे धकेल दिया जाता है, वैसा गोखलेने नही किया। उनकी लडकी अभी कुमारी है। उसे ऐसा रखनेमे उन्होने बहुत सहन-शीलता दिखाई है। इसके सिवा भरी जवानीमे उनकी पत्नी चल बसी थी। फिरसे उन्हे पत्नी मिल सकती थी, किंतु उन्होने ऐसा नही किया। कुटुब-सेवा तो उन्होने अनेक प्रकारसे की है और सामान्य रूपमे तो सभी लोग कुटुब-सेवा करते होगे, किंतु स्वार्थ-दृष्टिसे और स्वदेश-हितकी वृत्तिसे, दो प्रकारसे कुटुब-सेवा होती है। गोखले ने स्वार्थवृत्तिको तिला-

जलि दे दी थी। कुटुबके प्रति, उसके बाद ग्रामके प्रति और अनतर देशके प्रति, इस प्रकार जिस समय जो प्रसग आया, वैसे ही कर्त्तव्य-का पालन उन्होने सपूर्ण साहस, लगन और श्रमसे किया।

गोखलेके मनमे हिंदू-मुसलमानका भेद-भाव न था। वे सभीको समदृष्टिसे और स्नेह-भावसे देखते थे। कभी-कभी वे गुस्सा भी हो जाते थे, कितु उनका वह क्रोध स्वदेश-हितसे सबध रखनेवाला और सामनेवालेके मनपर अच्छा ही असर डालनेवाला सिद्ध होता था। वह गुस्सा ऐसा था कि उसके असरसे बहुत-से यूरोपियन भी, जो शत्रुता प्रकट करते थे, घनिष्ट मित्र-जैसे बन गए थे।

गोखलेके समग्र जीवनपर दृष्टि डालनेवालेको मालूम होगा कि उन्होने अपना सारा जीवन स्वदेश-सेवामय बना दिया था। पचास वर्षके अदरकी उम्रमे ही वे इस नश्वर जगत्को छोडकर चले गये। इसका कारण यही है कि वे दिनके चौबीसो घटे मानसिक और शारीरिक शक्ति बहुत श्रम-पूर्वक स्वदेश-सेवामे खर्च करते थे। उनके मनमे ऐसी सकुचित भावना न थी कि मै स्वहित या स्वकुटुबके लिए क्या करके जा रहा हू, किन्तु देशके लिए क्या करके जा रहा हू, ऐसी ही उनकी भावना थी।

हमारे हिंदके एक समर्थ बलरूप अंत्यजवर्गके उद्धारका प्रश्न भी महात्मा गोखलेको रोज खटकता था और उनकी उन्नतिके लिए बहुत-से कार्य उन्होने किये थे। कोई उनके वैसा करनेपर आपत्ति करता तो वे स्पष्ट शब्दोमे कह देते कि हमारे भाई अंत्यजको छूनेसे हम भ्रष्ट नही होते, किंतु न छूनेकी दुष्ट भावनासे ही घोर पापमे गिरते है।...

उमरेठके नेताओका कर्त्तव्य है कि अपने देशी उद्योगोको पनपावे और उन्हे उत्तेजन दे। यदि ऐसी भावना न हो तो उन्हे गोखले-जैसे परमार्थी सतका चित्र रखनेका हक नही। महात्मा गोखलेके प्रति वे

सद्भाव प्रदर्शित करते हैं और उनके कर्त्तव्यको उमरेठ जान गया है, यह सतोषकी वात है।*

उन्हीं दिनो स्वर्गीय गोखले दक्षिण अफ्रीका आए। तव हम फार्मपर ही रहते थे। उस प्रवासके वर्णनके लिए एक स्वतत्र अध्याय की जरूरत है। अभी तो एक कडवा-मीठा सस्मरण है, उसीको यहा लिख देता हू। फार्ममे खाटके जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। पर गोखलेजीके लिए हम एक खाट मागकर लाए। वहापर ऐसा एक भी कमरा नही था, जिसमे रहकर उन्हे पूरा एकात मिल सके। वठनेके लिए पाठशालाके वेच थे। पर इस स्थितिमे भी कोमल शरीरवाले गोखलेजीको फार्मपर विना लाए हम कैसे रह सकते थे? और वह भी उसे विना देखे क्योकर रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातभरके लिए कष्ट उठा सकेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक करीब डेढ मील पैदल भी चल सकेगे। मैने उन्हे पहले हीसे पूछ रक्खा था। अपनी सरलताके कारण उन्होने विना विचारे मुझपर विश्वास रख सव व्यवस्थाको कवूल भी कर लिया था। सयोगसे उसी दिन वारिश आगई। ऐन वक्तपर एकाएक मै भी कोई फेरफार नही कर पाया। इस तरह अज्ञानमय प्रेमके कारण मैने उनको उस दिन जो कष्ट दिया, वह कभी नही भुलाया जा सकता। वह भारी परिवर्त्तनको तो कदापि नहीं सह सकते थे। उन्हे खूव जाडा लगा। खाना खानेके लिए पाकशालामे भी उन्हे नही ले जा सके। मि० कैलनवेकके कमरेमे उन्हे रक्खा गया था। वहा पहुचते-पहुचते तो सव खाना ठडा हो जाता। उनके लिए खुद मै 'सूप' वना रहा था और भाई कोतवालने रोटिया वनाई। पर यह सव गरम कैसे रहे? ज्यो-त्यो करके भोजना-

---

*नववर १९१७ में उमरेठके भारतीयो द्वारा महात्मा गोखलेके नाम पर स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन-भाषण)

ध्याय समाप्त हुआ। पर उन्होने मुझे एक शब्द भी नही कहा। हा, उनके चेहरेपरसे मै सबकुछ और अपनी मूर्खताको भी जान गया। जब देखा कि हम सब जमीनपर सोते थे तब तो उन्होने भी खाटको अलग कर दिया और अपना बिस्तर जमीनपर ही लगवा लिया। रातभर मै पडा-पडा पश्चात्ताप करता रहा। गोखलेजीको एक आदत थी, जिसे मै कुटेव कहता था, वह केवल नौकरसे ही काम लेते थे। ऐसे लबे प्रवासोमे वह नौकरोको साथ नही रखते थे। मि० कैलनबेकने और मैने कई बार उनके पैर दबा देनेके लिए प्रार्थना की, पर वह टस-से-मस नही हुए। अपने पैरोको हमे स्पर्शतक नही करने दिया। उल्टा कुछ गुस्सेमे और कुछ हँसीमे कहा--"मालूम होता है, आप सब लोगोने समझ रक्खा कि दु ख और कष्ट उठानेके लिए केवल आप ही पैदा हुए है और मुझ-जैसे आपको केवल कष्ट देनेके लिए। लो, भुगतो अब अपनी 'अति' की सजा। मै तुम्हे अपने शरीरको स्पर्श तक नही करने दूगा। आप सब लोग तो नित्य-क्रियाके लिए मैदानमे जावेगे और मेरे लिए कमोड रख छोडा है। क्यो? खैर, परवाह नहीं। आज तो मै जरूर आपका गर्व दूर करूगा, चाहे इसके लिए कितना ही कष्ट हो।" यह वचन तो वज्रके समान थे। कैलनबेक और मै दोनो उदास हो गए। पर उनके चेहरे पर कुछ-कुछ हँसी भी थी। बस यही हमे आश्वासन दे रही थी। अर्जुनने अज्ञानवश श्रीकृष्णको कितना ही कष्ट क्यो न दिया हो, पर क्या यह सब श्रीकृष्णने याद रक्खा होगा? गोखलेजीने तो केवल सेवाको ही याद रक्खा और खूबी यह कि सेवा तो करने भी न दी। मोबासासे लिखा हुआ उनका वह प्रेम-भरा पत्र मेरे हृदयपर अकित है। उन्होने आप कष्ट उठा लिया, पर हम उनकी जो सेवा कर सकते थे, वह भी उन्होने नही करने दी। हमारा बनाया भोजन तो खैर खाना ही पड़ा, नही तो और करते ही क्या!

दूसरे दिन सुबह न तो उन्होने खुद ही आराम लिया, न हमे लेने दिया। उनके भाषणोको, जिन्हे हम पुस्तक रूपमे छपानेवाले थे, उन्होने दुरुस्त

किया। उन्हे कुछ भी लिखना होता तो पहले वह यहासे वहातक टहलते-टहलते विचार कर लेते। उन्हे एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा ख़याल था कि वह फौरन लिख डालेगे, पर नही। मैने टीका की, इसलिए मुझे व्याख्यान सुनना पड़ा। "मेरा जीवन तुम क्या जानो! मै छोटी-से-छोटी बातमें भी जल्दी नही करता। उसपर विचार करता हू। उसके मध्यबिदुपर ध्यान देता हू, विषयोचित भाषा गढ़ता हू और फिर कही लिखता हू। इस तरह यदि सभी करे तो कितना समय बच जाय और समाजका कितना लाभ हो। आज समाजको जो इन अपरिपक्व विचारोके कारण हानि उठानी पड़ती है उससे वह बच जाय।" (द० अ० स०, १६२५)

गोखलेजी तथा अन्य नेताओसे मै प्रार्थना कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका आकर यहाके भारतीयोकी स्थितिका अध्ययन करे। इस बातमे पूरा-पूरा सदेह था कि कोई आवेगा भी या नही। मि० रिच भी किसी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे। पर ऐसे समयमे वहा आनेकी हिम्मत कौन कर सकता था जब लड़ाई बिलकुल मद हो गई हो? सन् १६११ मे गोखले इग्लैडमे थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका अध्ययन तो उन्होने अवश्य ही कर लिया था, बल्कि धारासभाओमे चर्चा भी की थी। गिरमिटियाओको नेटाल भेजना बद करनेका प्रस्ताव उन्होने धारासभामे पेश किया था, जो स्वीकृत भी हो गया था। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। भारत-सचिवके साथ वह इस विषयमे कुछ मशविरा कर रहे थे और उन्होने दक्षिण अफ्रीका जाकर उस प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रकट की थी। भारत-सचिवने उनके इस विचारको पसद भी किया था। गोखलेजीने छ सप्ताहके प्रवासकी योजना और कार्यक्रम बनानेके लिए मुझे लिख भेजा और साथ ही वह अतिम तारीख भी लिख भेजी, जब वह दक्षिण अफ्रीकासे विदा होना चाहते थे। उनके

शुभागमनकी वार्त्ता पढकर हमे तो इतना आनद हुआ कि जिसकी हद नही। आजतक किसी नेताने दक्षिण अफ्रीकाका सफर नही किया था। दक्षिण अफ्रीकाकी तो ठीक, पर प्रवासी भारतवासियोकी दशाका अवलोकन और ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे भी किसी विदेशी रियासतकी यात्रा तक नही की थी। इसलिए गोखले-जैसे महान् नेताके शुभागमनके महत्त्वको हम सब पूरी तरह समझ गए। हमने यह निश्चय किया कि गोखलेजीका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा अब तक बादशाहका भी न हुआ हो। यह भी तय हुआ कि दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य शहरोमे भी उन्हे ले जाना चाहिए। सत्याग्रही और दूसरे भी उनके स्वागतकी तैयारियो मे बडे उत्साहपूर्वक काम करने लगे। गोरोको भी इस स्वागतमे भाग लेनेके लिए निमन्त्रित किया गया था और लगभग सभी जगह वे शामिल भी हुए थे। यह भी निश्चय किया गया कि जहा-जहा सार्वजनिक सभाएँ हो, उन-उन शहरोके मेयरोको, यदि वे स्वीकार करे तो, अध्यक्ष-स्थान दिया जाय। साथ ही जहातक हो सके, कोशिश करके प्रत्येक शहरमे सभा-स्थानके लिए वहाके टाउन हॉलका ही उपयोग किया जाय। हमने यह निश्चय कर लिया कि रेलवे-विभागकी इजाजत प्राप्त करके मुख्य-मुख्य स्टेशनोको भी सजाया जाय। तदनुसार कितने ही स्टेशनोको सजानेकी इजाजत भी हमे मिल गई। यद्यपि सामान्यतया ऐसी इजाजत नही दी जाती, पर हमारी स्वागतकी तैयारियोका असर सत्ताधिकारियो-पर भी पडा। इसलिए उन्होने भी जितनी उनसे बन पडी, सहानुभूति दिखाई। मसलन केवल जोहान्सबर्गके स्टेशनको सजानेमे ही हमे लगभग १५ दिन लग गये। वहा हम लोगोने एक सुदर प्रवेश-द्वार बनाया था।

दक्षिण अफ्रीकाके विषयमे बहुत कुछ जानकारी तो उन्हे इग्लैंडमे ही मिल चुकी थी। भारत-सचिवने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखले-का दरजा, साम्राज्यमे उनका स्थान, इत्यादि पहले ही बता दिया था।

किंतु स्टीमर कपनीमे टिकट तथा व्यवस्था आदि करनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती थी ? गोखलेजीकी तबियत नाजुक थी। इसलिए उनको अच्छी कैबिन और एकातकी बडी आवश्यकता रहती, पर उन्हे तो साफ उत्तर मिल गया कि ऐसी कैबिन है ही नही। मुझे ठीक-ठीक पता नही है कि स्वय गोखलेजीने या उनके और किसी मित्रने इडिया आफिस-में इस बातकी इत्तिला की। पर कपनीके डायरेक्टरके नाम इडिया आफिसकी तरफसे पत्र पहुचा। और जहा कोई कैबिन ही नही थी वही उनके लिए एक बढिया कैबिन तैयार हो गई। उस प्रारभिक कटुताका अत इस मधुरताके साथ हुआ। स्टीमरके कैप्टनको भी गोखलेजीका बढिया स्वागत करनेके लिए सूचना पहुची थी। इसलिए उनके इस सफर-के दिन बडी शाति और आनदके साथ बीते। गोखले उतने ही आनद और विनोदशील भी थे, जितने वह गभीर थे। स्टीमरके खेल वगैरहमे वह खूब भाग लेते थे। इसलिए स्टीमरके मुसाफिरोमे वह बडे प्रिय हो गए। गोखलेजीको यूनियन सरकारका यह विनय-सदेश भी पहुचा कि वह यूनियन सरकारके महमान हो और रेलवेके स्टेट सेलूनमे ही सफर करे, किंतु स्टेट सेलूनका तथा प्रिटोरियामे सरकारी महमान होना स्वीकार करनेका निश्चय उन्होने मेरे साथ मशविरा करनेके बाद किया।

जहाजसे वह केपटाउनमे उतरनेवाले थे। उनका मिजाज तो मेरी अपेक्षासे भी अधिक नाजुक साबित हुआ। वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकते थे। अधिक परिश्रम भी नही उठा सकते थे। निश्चित कार्य-क्रम भी उनके लिए असह्य हो गया। जहा तक हो सका उसमे परि-वर्तन किया गया। जहा कही परिवर्तन नही हो सका, वहा स्वास्थ्य बिग-डनेकी आशका होते हुए भी उन्होने उसे कबूल कर लिया। मुझे इस बातका बडा पश्चात्ताप हुआ कि उनसे बिना पूछे ही मैंने इतना सख्त कार्य-क्रम क्यो तैयार कर डाला ! कार्य-क्रममे कितनी ही जगह परिवर्तन किया गया, पर अधिकाश तो ज्यो-का-त्यो ही रखना पडा। यह बात मेरे खयालमे

नही आई थी कि उन्हे एकातकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। अत एकात स्थानका प्रबध करनेमे मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कठिनाई हुई। पर साथ ही नम्रता-पूर्वक मुझे यह तो सत्यके लिए जरूर कहना पडेगा कि बीमार और बुजुर्गोकी सेवा करनेका मुझे खास अभ्यास और शौक भी था। इसलिए अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद मै उसमे इतना सुधार कर सका था कि उन्हे बहुत काफी एकात और शाति भी मिल सकी। प्रवासमे शुरूसे आखिर तक उनके मत्रीका काम स्वय मैने ही किया। स्वय-सेवक भी ऐसे थे जो साथ-साथ करती अधेरी रातमे भी चिट्ठीका उत्तर ला सकते थे। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्हे सेवकोके अभावके कारण कोई कष्ट नही उठाना पडा होगा। कैलनबेक भी इन स्वयसेवकोमे थे।

यह तो प्रकट ही था कि केपटाउनमे बढिया-से-बढिया सभा होनी चाहिए। श्राइनर कुटुबके डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की गई। हमारी प्रार्थनाको उन्होने मजूर कर लिया। विशाल सभा हुई। भारतीय और गोरे भी अच्छी तादादमे आए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोमे गोखलेजीका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीका-के भारतीयोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेजीका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोसे भरा हुआ और दृढ था, किंतु विनयपूर्ण भी ऐसा था कि जिसने भारतीयोको प्रसन्न कर दिया और गोरोका दिल भी चुरा लिया। गोखलेजीने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिपर पैर रक्खा उसी दिन वहाकी पचरगी प्रजाके हृदयमे उन्होने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलसे दो दिनका प्रवास था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केपटाउनसे आते समय राहमे हमे ट्रान्स-वालके बडे सरहदी स्टेशन क्लार्कस्डार्पपर से गुजरना पडता था। खास क्लार्कस्डार्प तथा राहमे आनेवाले अन्य शहरोमे भी ठहरकर हमे सभाओमे जाना था। इसलिए क्लार्कस्डार्पसे एक स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की गई।

दोनो शहरोमे वहाके मेयर ही अध्यक्ष थे। किसी भी शहरको एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया था। ट्रेन जोहान्सवर्ग बिलकुल ठीक समय पर पहुची। एक मिनटका भी फर्क नही पडने पाया। स्टेशनपर खासे कालीन वगैरह बिछाए गए थे। एक मच भी बनाया गया था। जोहान्स-वर्गके मेयर और दूसरे अनेक गोरे भी हाजिर थे। गोखलेजी जितने दिन जोहान्सवर्गमे रहे, उतने दिन तक उनके उपयोगके लिए मेयरने उन्हे अपनी मोटर दे दी थी। स्टेशनपर ही उन्हे मानपत्र भी दिया गया। प्रत्येक स्थानपर मान-पत्र तो दिए ही जाते थे। जोहान्सवर्गका मानपत्र बडा सुदर था। दक्षिण अफ्रीकाकी लकडीपर जडी हुई सोनेकी हृदया-कार तख्तीपर खुदा हुआ था—तख्तीका सोना भी जोहान्सवर्गकी खान का ही था। लकडीपर भारतके कितने ही दृश्योके सुदर चित्र खुदे हुए थे। गोखलेजीका परिचय, मानपत्रको पढना और उसका उत्तर दिया जाना तथा अन्य मानपत्रोका लेना यह सब काम २२ मिनिटके अदर कर लिए गए थे। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमे पाच मिनटसे अधिक समय नही लगा होगा। गोखलेजीका उत्तर भी पाच ही मिनिटका था। स्वयसेवकोका इतजाम इतना बढिया था कि पूर्व निश्चित मनुष्योके सिवा एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आ सका। शोर-गुल जरा भी नही था। बाहर लोगोकी खूब भीड थी। फिर भी किसीके आने-जानेमे कोई कठिनाई नही हुई।

उनके ठहरनेकी व्यवस्था मि० कैलनबेकके एक छोटे-से सुदर बगलेमें की गई थी, जो जोहन्सवर्गसे पाच मीलकी दूरी पर एक टेकडीपर था। वहाका दृश्य ऐसा भव्य था, वहाकी शाति ऐसी आनददायक थी और बगला सादा होते हुए भी कलासे इतना परिपूर्ण था कि गोखलेजी खुश हो गए। मिलने-जुलनेकी व्यवस्था सबके लिए शहरमे ही की गई थी। उसके लिए एक खास आफिस किरायेपर ले लिया गया था। उनमे एक कमरा केवल उनके आराम करनेके लिए रक्खा गया था, दूसरा मिलने-

जुलनेके लिए और तीसरा कमरा मिलने आने वाले सज्जनोके बैठनेके लिए। जोहान्सबर्गके कितने ही प्रसिद्ध गृहस्थोसे खानगी मुलाकात करनेके लिए भी गोखलेजीको ले गए थे। गण्यमान्य गोरोकी भी एक खानगी सभा की गई थी, जिससे गोखलेजीको उनके दृष्टि-बिंदुका पूरी तरह खयाल हो जाय। इसके अलावा जोहान्सबर्गमे उनके सम्मानार्थ एक विशाल भोज भी दिया गया था, जिसमे कोई ४०० आदमियोंको निमन्त्रित किया गया था। उनमे लगभग १५० गोरे थे। भारतीय टिकिट लेकर आ सकते थे। टिकटकी कीमत एक गिनी रक्खी गई थी। टिकटोकी आयमेसे उस भोजका खर्च निकल आया। भोज केवल निरामिष और मद्यपान-रहित था। खाना भी केवल स्वयसेवको द्वारा ही बनाया गया था। इसका वर्णन यहा करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोमे हिंदू-मुसलमान, छूत-अछूत आदिका कोई खयाल ही नही होता। सव एकसाथ बैठकर खा लेते है। निरामिप आहार करनेवाले भारतीय भी अपने नियमका पालन करते है। भारतीयोमे कितने ही क्षत्रिय भी थे। दूसरोकी तरह उनसे भी मेरा तो गाढ परिचय था। उनमेसे अधिकाश गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा ही होते है। कई होटलोमे खाना पकाने और परोसनेका काम करते है। इन्ही लोगोकी ह ता।से इतने मनुष्योकी रसोईकी व्यवस्था हो सकी। तरह-तरहके कोई पद्रह व्यजन थे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके लिए यह एक नवीन और अजीब अनुभव था। इतने भारतीयोके साथ एक पक्तिमे खानेके लिए वैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान विना काम चलाना ये तीनो अनुभव उनमेसे कइयोके लिए नवीन थे। दो तो अवश्य ही सवके लिए नवीन थे।

इस सम्मेलनमे गोखलेजीका वडे-से-व्डा और महत्वपूर्ण भाषण हुआ। पूरे ४५ मिनट वह वोले। इस भाषणकी तैयारीके लिए उन्होने हमारा खूब समय लिया था। पहले उन्होने अपना जीवनभरका यह निश्चय

सुनाया कि एक तो स्थानीय मनुष्योके दृष्टि-बिदुकी अवगणना नही होनी चाहिए। दूसरे, जहातक उनसे मिलकर रहा जाय, हम मिलकर रहनेकी कोशिश करे। इन दो बातोको ध्यानमे रखकर मै उनसे जो कहलाना चाहू वह उन्हे बता दू, पर यह मुझे उन्हे लिखकर देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी शर्त थी कि इनमेसे एक भी वाक्य या विचारका वह उपयोग न करे तो मुझे बुरा न मानना चाहिए। लेख न लबा होना चाहिए और न छोटा। कोई महत्वपूर्ण बात भी छूटने न पावे। इन सब बातोका खयाल रखते हुए मुझे उनके लिए स्मरणार्थ टिप्पणिया लिखनी पडती थी। यह तो मै सबसे पहले कह देता हू कि उन्होने मेरी भाषाका तो जरा भी उपयोग नही किया। वह तो अग्रेजीके पारगत विद्वान् थे। फिर मै यह आशा भी क्यो करु कि वह मेरी भाषाका उपयोग करे। पर मै यह भी नही कह सकता कि उन्होने मेरे विचारोका भी उपयोग किया। हा, मेरे विचारोकी उपयुक्तताको उन्होने जरूर स्वीकार किया। इसलिए मैने अपने दिलको समझा लिया कि आखिर उन्होने मेरे विचारोका भी किसी तरह उपयोग किया होगा, क्योकि उनकी विचार-शैली ऐसी अजीब थी कि उससे हमे यही पता नही चलता था कि उन्होने हमारे विचारोको कहा स्थान दिया है, अथवा दिया भी है, या नही। गोखलेजीके सभी भाषणोके समय मै हाजिर था, पर मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही कि जिसमे मुझे यह इच्छा हुई हो कि अमुक विशेषण या अमुक विचारका उपयोग वह न करते तो अच्छा होता। उनके विचारोकी स्पष्टता, दृढता, विनय, इत्यादि उनके अथक परिश्रम और सत्यपरायणताके फल-स्वरूप थे।

जोहान्सबर्गमे केवल भारतीयोकी एक विराट सभा भी तो हो जाना जरूरी था। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही चला आ रहा है कि भाषण मातृभाषा ही मे अथवा राष्ट्र-भाषा हिंदुस्तानीमे ही होना चाहिए। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके साथ मेरा अधिक सरल और निकट

का सबध हो गया। इसलिए मै चाहता था कि भारतीयोकी सभामे गोखले-जी भी हिंदुस्तानीमे भाषण दे तो बडा अच्छा हो, किंतु इस विषयमे उनके विचार मै जानता था। टूटी-फूटी हिंदीसे काम चलाना तो उन्हे पसदही नही था। अर्थात् वह या तो मराठीमे भाषण दे सकते थे या अग्रेजीमे। मराठीमे भाषण देना उन्हे कृत्रिम मालूम हुआ। यदि मराठीमे बोलते भी तो गुजरातियो तथा उत्तर हिंदुस्तानके निवासी भारतीयोके लिए उसका अनुवाद करना अनिवार्य था। यदि ऐसा था तो फिर अग्रेजीमे ही क्यो न बोला जाय? पर मेरे पास एक ऐसी दलील थी, जिसको गोखले-जी स्वीकार कर सकते थे। जोहान्सबर्गमे कोकणके कई मुसलमान भी बसते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिंदू भी थे। ये सब गोखलेजीका मराठी भाषण सुननेके लिए बडे लालायित थे और उन लोगोने मुझे यह भी कह रक्खा था कि मै गोखलेजीसे मराठीमे भाषण देनेके लिए अनुरोध करू। इसलिए मैने गोखलेजीसे कहा, "यदि आप मराठीमे भाषण देगे तो इन लोगोको बडा आनद होगा। आप जो कुछ कहेगे उसका मै हिंदुस्तानी मे अनुवाद करके सुना दूगा।" यह सुनकर वह जोरसे खिलखिलाकर हँस पडे। "तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैने अच्छी तरह जाच लिया, वह तुम्हींको मुबारक हो! पर याद रक्खो अब तुम्हे मराठीसे अनुवाद करना होगा। भला बताओ तो सही कि इतनी अच्छी मराठी तुम कहासे सीख गए?" मैने कहा—"जो हाल मेरी हिंदुस्तानीका है वही मराठीके विषयमे भी समझिए। मराठीमे एक अक्षर भी मै नही बोल सकता। पर आप जिस विषयपर आज कुछ कहेगे उसका भावार्थ मै जरूर कह दूगा। आप देखिएगा कि मै लोगोके सामने उसका उलट-सुलट अर्थ तो हरगिज नही करूगा। भाषणका अनुवाद करके सुनानेके लिए मै ऐसे लोग तो आपको अवश्य ही दे सकता हू, जो अच्छी तरह मराठी जानते है। पर शायद आप इस प्रस्तावको मजूर नही करेगे। इसलिए मुझीको निबाह लीजिए, पर बोलिएगा मराठीमे। कोकणी भाइयोके साथ-साथ मुझे भी आपकी मराठी

सुननेकी वडी अभिलाषा है।" "भाई, अपनी ही टेक रक्खो। अब यहा तुम्हारे ही तो पाले पडा हुआ हू न ? अब कही यो थोडे छुट्टी मिल सकती है।" यह कहकर उन्होने मुझे खुश कर दिया। इसके वाद जजीवार तक इस तरहकी प्रत्येक सभामे वह मराठी हीमे वोले और मै खास उन्हीका नियुक्त किया हुआ अनुवादक रहा। मेरा खयाल है कि प्रत्येक भारतीयको यथा-सभव अपनी मातृ-भाषामे अथवा व्याकरण-शुद्ध अग्रेजीकी वनिस्वत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिंदीहीमे भाषण देना चाहिए। मै कह नही सकता कि यह वात मै उनको कहा तक समझा सका, किंतु इतना तो मै जरूर कहूगा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिए उन्होने दक्षिण अफ्रीकामे तो मराठी हीमे भाषण दिए। मै यह भी जान सका कि अपने भाषणके वाद उसके प्रभावसे वह खुश भी हुए। दक्षिण अफ्रीकामे अनेक प्रसगोपर किए हुए अपने वर्तावसे गोखलेजीने यह वता दिया कि सिद्धातकी कठिनाई न हो तो मनुष्यको अपने सेवकोको जरूर राजी रखना चाहिए। यह भी एक गुण है। (द० अ० स०, १९२५)

जोहान्सवर्गसे हमे प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामे गोखलेजीको यूनियन सरकारका निमत्रण था। तदनुसार होटलमें उनके लिए सुरक्षित जगहमे ही हम ठहरे। यहापर उन्हे यूनियन सरकारके मन्त्रिमडलसे, जिसमे जनरल वोथा और जनरल स्मट्स भी थे, मिलना था। जैसा कि ऊपर लिख चुका हू, मैने उनका कार्यक्रम ऐसा वनाया था कि उन्हे हमेशा करने योग्य कामोकी सूचना मै प्रतिदिन सुवह कर दिया करता था। यदि वह चाहते तो अगली रातको भी वता देता। मन्त्रि-मडलसे मिलनेका काम उत्तरदायित्व-पूर्ण था। हम दोनोने निश्चय कर लिया था कि मुझे उनके साथ नही जाना चाहिए, जानेकी आज्ञा भी नही मागनी चाहिए। मेरी उपस्थितिके कारण मन्त्रि-मडल और गोखलेजीके वीचमे जरूर ही एक हद तक पर्दा पड जानेकी सभावना थी। मन्त्रिगण उन्हें न तो पेट-

भर स्थानीय भारतीयोकी और न मेरी ही ऐसी बाते बता सकते जिनको वे गलत समझते थे। और यदि वे कुछ कहना चाहते तो उसे भी खुले दिलसे नही कह सकते थे, किंतु इसमे एक असुविधा भी थी। गोखलेजीकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी। यदि किसी बातको वह भूल जाय, या मत्रि-मडलकी तरफसे कोई ऐसी बात कही जाय जिसका उत्तर उनके पास न हो, तो क्या किया जाय? अथवा भारतीयोकी तरफसे किसी बातको कबूल करना हो तब क्या किया जाय? येदोनो बाते बिना मेरी या दक्षिण अफ्रीकाके किसी जिम्मेदार नेताकी उपस्थितिके कैसे तय हो सकती थी? पर इसका निर्णय स्वय गोखलेजीने ही फौरन कर डाला। यही कि मै उनके लिए शुरूसे आखिर तक सक्षेपमे भारतीयोकी स्थितिका वृत्तात लिख दू। उसमे यह भी हो कि भारतीय अपनी मागोमे कहातक कम-ज्यादा करनेको तैयार है। इसके बाहरकी कोई बात उपस्थित हो तो उसमे गोखलेजी अपना अज्ञान कुबूल कर ले। इस निश्चयके साथ ही वह निश्चित भी हो गए। अब रहा यह कि मै ऐसा एक कागज तैयार करलू और वे उसे पढ ले। पर पढने इतना समय तो मैने रक्खा ही नही था। कितना ही सक्षेपमे लिखू तो भी १८-२० वर्षका, चार रियासतोकी भारतीय जनताकी स्थितिका इतिहास मै १०-२० सफेसे कममे कैसे दे सकता था? फिर उसके पढ लेनेपर उनको कुछ सवाल तो अवश्य ही सूझते। पर उनकी स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, उतनी ही उनकी मेहनत करनेकी शक्ति भी अगाध थी। रातभर जागते रहे। पोलकको और मुझे भी सोने नही दिया। प्रत्येक बातकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। उलट-सुलट रीतिसे सवाल करके इस बातकी जाच भी कर ली कि वह स्थितिको बराबर समझ गए या नही। अपने विचार मेरे सामने कह सुनाये। अत मे उन्हे पूरा सतोष हो गया। मै तो निर्भय ही था।

लगभग दो घटे मत्रि-मडलके पास वह बैठे और वहासे आनेपर

मुझसे कहा, "तुम्हें एक सालके अंदर भारतवर्ष आना है। सब बातोंका फैसला हो गया है। खूनी कानून रद होगा, इमिग्रेशन कानूनसे वर्ण-भेद निकाल दिया जायगा और तीन पौंडका कर भी रद होगा।" मैंने कहा, "इसमे मुझे पूरा सदेह है। मन्त्रि-मडलको जितना मै जानता हू, उतना आप नही जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि स्वय मै भी आशावादी हू। पर अनेक बातोमे धोखा खानेपर अब मै इस विषयमे आपके इतनी आशा नही रख सकता। पर मुझे भय भी नही है। आप वचन ले आए, यही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो केवल यही है कि आवश्यकता उपस्थित होने पर युद्ध ठान दू और यह सिद्ध कर दू कि वह न्याय है। इसकी सिद्धिमे आपको दिया गया वचन हमारे लिए बडा फायदेमद होगा। और यदि लडना ही पडा तो वह हमे दूनी शक्ति देगा। पर मुझे न तो इस बातका विश्वास होता है कि बिना अधिक तादादमे भारतीयोके जेल गए इसका निबटारा हो सकता है और न इस बातका भी कि एक सालके अदर मै भारतवर्ष जा सकूगा।" तब वह बोले, "मै तुम्हे जो कुछ कहता हू इसमे कभी फर्क नही हो सकता। जनरल बोथाने मुझे वचन दिया है कि खूनी कानून और वह तीन पौंडवाला कर भी रद होगा। तुम्हे एक सालके अदर भारत लौटना ही होगा। मै अब इस विषयमें तुम्हारी एक भी दलील नही सुनूगा।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी मुलाकातके बाद हुआ था।

ट्रान्सवालसे डरबन, मैरित्सबर्ग आदि स्थानोको गए। वहा कई गोरोसे काम पडा। कैम्बरलीकी हीरोकी खान देखी। कैम्बरली और डरबनके स्वागत-मडलोने भी जोहान्सबर्गके जैसे भोज दिए थे। उनमें अनेक अग्रेज भी आए थे। इस तरह भारतीयो और गोरोका दिल चुरा कर गोखलेजीने दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोडा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर कैलनबेक और मै उन्हे जजीबार तक छोडनेके लिए गए थे। स्टीमरमे उनके लिए ऐसे भोजनकी व्यवस्था कर दी गई जो उनको

मुआफिक हो। रास्तेमे डेलागोआ बे, इन्हामबेन, जजीबार, आदि बदरगाहोपर भी उनका बडा सम्मान किया गया।

रास्तेमे हमारे बीच जो बाते होती उनका विषय भारतवर्ष और उसके प्रति हमारा धर्म ही रहता। प्रत्येक बातमे उनका कोमल भाव, सत्यपरायणता, स्वदेशाभिमान चमकता था। मैने देखा कि स्टीमरमे वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलोकी बनिस्बत भारतवर्षकी सेवाका भाव, ही विशेष रहता। भला उनके खेलमे भी सपूर्णता क्यो न हो!

स्टीमरमे शातिके साथ बाते करनेके लिए हमें समय मिल ही गया। उसमे उन्होने मुझे भारतवर्षके लिए तैयार किया। भारतवर्षके प्रत्येक नेताका पृथक्करण करके दिखाया। वे वर्णन इतने हूबहू थे कि मुझे बादमे उन नेताओका जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उसमे और उसके चरित्र-चित्रणमे शायद ही कोई फर्क दिखाई दिया।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासमे उनके साथ मेरा जो सबध रहा, उसके ऐसे कितने ही पवित्र संस्मरण है, जिनको मै यहा दे सकता हू, किंतु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका कोई सबध नही है। इसलिए मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलमको रोकना पडता है। जजीबारमे हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनोके लिए बडा दुखदायी था, किंतु यह सोचकर कि देह-धारियोके घनिष्ट-से-घनिष्ट सबध भी अतमे टूटते ही है, कैलनबेकने और मैने अपना समाधान किया। हम दोनोने यह आशा की कि गोखलेजीकी वाणी सत्य हो और हम दोनो एक सालके अदर ही भारतवर्ष जा सके, पर यह असभव सिद्ध हुआ।

इतना होते हुए भी गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासने हमे अधिक दृढ बना दिया। युद्धका जब अधिक रग चढा तब इस मुलाकातका रहस्य और आवश्यकता हम और भी अच्छी तरह समझे। यदि गोखलेजी दक्षिण अफ्रीका नही आते, मत्रि-मडलसे नही मिलते तो हम तीन पौडवाले करको अपने युद्धका विषय ही नही बना सकते थे। यदि खूनी

कानून रद होते ही सत्याग्रह वद कर दिया जाता तो तीन पौंडके करके लिए हमे नया सत्याग्रह शुरू करना पडता और उसमे असन्य कष्ट उठाने पडते। इतना ही नही, वल्कि इस वातमें भी भारी सदेह था कि लोग उसके लिए शीघ्र तैयार होते भी या नही। इस करको रद कराना स्वतत्र भारतीयोका कर्त्तव्य था। उसको रद करानेके लिए अर्जिया वगैरह सव उपाय काममे लाये जा चुके थे। सन् १८९५ के सालसे कर दिया जा रहा था। चाहे कितना ही घोर दु ख क्यो न हो, किंतु यदि वह दीर्घ-कालीन हो जाता है तो लोग उसके आदी हो जाते है। फिर उन्हे यह समझाना महा कठिन होता कि उन्हें उसका प्रतिकार करना चाहिए। गोखलेजीको जो वचन दिया गया उसने सत्याग्रहियोके मार्गको वडा सरल वना दिया। या तो सरकारको अपने वचनके अनुसार उस करको रद कर देना चाहिए था, या नही तो स्वय वह वचन-भग ही सत्याग्रहके लिए एक काफी वलवान कारण हो जाता, और हुआ भी ठीक यही। सरकारने एक सालके अदर उस करको रद नही किया। यही नही, वल्कि यह भी साफ-साफ कह दिया कि वह कर रद नही किया जा सकता।

इसलिए गोखलेजीके प्रवाससे हमे तीन पौंडवाले करको सत्याग्रहके द्वारा रद करानेमे वडी सहायता मिली। दूसरे, उनके उस प्रवासके कारण वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके एक विशेषज्ञ समझे जाने लगे। दक्षिण अफ्रीका सवधी अव उनके कथनका वजन भी कही अधिक वढ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोकी स्थितिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेके कारण वह इस वातको अधिक अच्छी तरह समझ सके कि भारतवर्षको उन लोगोके लिए क्या करना चाहिए, और उसे यह वात समझानेमे उनकी शक्ति तथा अधिकार भी वहुत वढ गया। फलत अव की वार जव युद्ध चेता तो भारतसे धनकी वर्षा होने लग गई। लॉर्ड हार्डिज तकने सत्याग्रहियोके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर उन्हे

उत्साहित किया। भारतसे मि० एण्ड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आए। यह सब बिना गोखलेजीके प्रवासके नही हो सकता था। (द० अ० स०, १९२५)

मैं गोखलेजीके पास गया। वह फर्ग्यूसन कालेजमे थे। बडे प्रेमसे मुझसे मिले और मुझे अपना बना लिया। उनका भी यह ही प्रथम परिचय था, पर ऐसा मालूम हुआ मानो हमे पहले मिल चुके हो। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखलेजी गगाकी तरह। उसमे मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढना मुश्किल है, समुद्रमे डूबनेका भय रहता है, पर गगाकी गोदीमे खेल सकते है, उसमे डोंगीपर चढकर तैर सकते है। गोखलेजीने खोद-खोदकर बाते पूछी, जैसी कि मदरसेमे भरती होते समय विद्यार्थीसे पूछी जाती है। किस-किससे मिलू और किस प्रकार मिलू, यह बताया और मेरा भाषण देखनेके लिए मागा। मुझे अपने कालेजकी व्यवस्था दिखाई। कहा, "जब मिलना हो, खुशीसे मिलना और डाक्टर भाडारकरका उत्तर मुझे जताना।" फिर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्रमे गोखलेजीने जीते-जी जैसा आसन मेरे हृदयमे जमाया और जो उनके देहातके बाद अब भी जमा हुआ है वैसा फिर कोई न जमा सका। (आ०, १९२७)

• •

पहले ही दिन गोखलेजीने मुझे मेहमान न समझने दिया, मुझे अपने छोटे भाईकी तरह रक्खा। मेरी तमाम जरूरते मालूम कर ली और उनका प्रबध कर दिया। खुश-किस्मतीसे मेरी जरूरते बहुत कम थी। सब काम खुद कर लेनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए औरोसे मुझे बहुत ही कम काम कराना पडता था। स्वावलबनकी मेरी इस आदतकी, उस समयके मेरे कपडे-लत्तेकी सुघडताकी, मेरी उद्योगशीलता और

नियमितताकी वडी गहरी छाप उनपर पडी और वे उसकी इतनी स्तुति करने लगे कि मै परेशान हो जाता।

मुझे यह न मालूम हुआ कि उनकी कोई वात मुझसे गुप्त थी। जो कोई वडे आदमी उनसे मिलने आते उनका परिचय वह मुझसे कराते थे। इन परिचयोमे जो आज सवने प्रधानरूपमे मेरी नजरोके सामने खडे हो जाते है वह है डा० प्रफुल्लचद्र राय। वह गोखलेके मकानके पास ही रहते थे और प्राय हमेशा आया करते थे।

"यह है प्रोफेसर राय, जो ८००) मासिक पाते है, पर अपने खर्चके लिए सिर्फ ४०) लेकर वाकी सव लोक-सेवामे लगा देते है। इन्होने शादी नही की, न करना ही चाहते है।" इन शब्दोमे गोखलेने मुझे उनका परिचय कराया।

आजके डा० रायमे और उस समयके प्रो० रायमे मुझे थोडा ही भेद दिखाई देता है। जैसे कपडे उस समय पहनते थे आज भी लगभग वैसे ही पहनते है। हा, अव खादी आ गई है। उस समय खादी तो थी ही नही। स्वदेशी मिलोके कपडे होगे। गोखले और प्रो० रायकी वाते सुनते हुए मै न अघाता था, क्योकि उनकी वाते या तो देश-हितके सवधमे होती या होती ज्ञान-चर्चा। कितनी ही वाते दुखद भी होती, क्योकि उनमे नेताओकी आलोचना भी होती थी। जिन्हे मै महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छोटे दिखाई देने लगे।

गोखलेकी काम करनेकी पद्धतिसे मुझे जितना आनद हुआ उतना ही वहुत कुछ सीखा भी। वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। मैने देखा कि उनके तमाम सवध देश-कार्यके ही लिए होते थे। वाते भी तमाम देश-कार्यके ही निमित्त होती थी। वातोमे कही भी मलिनता, दभ या असत्य न दिखाई दिया। हिंदुस्तानकी गरीवी और पराधीनता उन्हे प्रतिक्षण चुभती थी। अनेक लोग उन्हे अनेक वातोमें दिलचस्पी कराने आते। वे उन्हे एक ही उत्तर देते, "आप इस कामको कीजिए,

मुझे अपना काम करने दीजिए। मुझे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी बाते सूझेगी। अभी तो इस कामसे मुझे एक क्षण-की भी फुरसत नही रहती।"

रानडेके प्रति उनका पूज्य भाव बात-बातमे टपका पडता था। 'रानडे ऐसा कहते थे'—यह तो उनकी बातचीतका मानो 'सूत-उवाच' ही था। मेरे वहा रहते हुए रानडेकी जयती (या पुण्यतिथि, अब ठीक याद नही है) पडती थी। ऐसा जान पडा, मानो गोखले सर्वदा उसको मनाते हो। उस समय मेरे अलावा उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे तथा दूसरे एक सज्जन थे। उन्हे उन्होने जयती मनानेके लिए निमन्त्रित किया और उस अवसरपर उन्होने हमे रानडेके कितने ही सस्मरण कह सुनाये। रानडे, तैलग और माडलिककी तुलना की। ऐसा याद पडता है कि तैलगकी भाषाकी स्तुति की थी। माडलिककी सुधारकके रूपमे प्रशसा की थी। अपने मवक्किलोकी वह कितनी चिंता रखते थे, इसका एक उदाहरण दिया। एक बार गाडी चूक गई तो माडलिक स्पेशल ट्रेन करके गये। यह घटना कह सुनाई। रानडेकी सर्वाङ्गीण शक्तिका वर्णन करके बताया कि वह तत्कालीन अग्रणियोमे सर्वोपरि थे। रानडे अकेले न्यायमूर्ति न थे। वह इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे। सरकारी जज होते हुए भी काग्रेसमे प्रेक्षकके रूपमे निर्भय होकर आते। फिर उनकी समझ-दारीपर लोगोका इतना विश्वास था कि सब उनके निर्णयोको मानते थे। इन बातोका वर्णन करते हुए गोखलेके हर्षका ठिकाना न रहता था।

गोखले घोडा-गाडी रक्खे हुए थे। मैने उनसे इसकी शिकायत की। मै उनकी कठिनाइयोको न समझ सका था। "क्या आप सब जगह ट्राममे नही जा सकते? क्या इससे नेताओकी प्रतिष्ठा कम हो जायगी?"

कुछ दु खित होकर उन्होने उत्तर दिया, "क्या तुम भी मुझे नही पह-चान सके? बडी धारा-सभासे जो कुछ मुझे मिलता है उसे मै अपने काममे नही लेता। तुम्हारी ट्रामके सफरपर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मै ऐसा

नही कर सकता। जब तुमको मेरे जितने लोग पहचानने लग जायँगे तब तुम्हे भी ट्राममे बैठना असभव नही तो मुश्किल हो जायगा। नेता लोग जो कुछ करते है, केवल आमोद-प्रमोदके ही लिए करते है, यह माननेका कोई कारण नही। तुम्हारी सादगी मुझे पसद है। मै भरसक सादगीसे रहता हू, पर यह बात निश्चित समझना कि कुछ खर्च तो मुझ-जैसोके लिए अनिवार्य हो जाता है।"

इस तरह मेरी एक शिकायत तो ठीक तरहसे रद हो गई, पर मुझे एक दूसरी शिकायत भी थी और उसका वह सतोप-जनक उत्तर न दे सके।

"पर आप घूमने भी तो पूरे नही जाते। ऐसी हालतमे आप बीमार क्यो न रहे? क्या देश-कार्यसे व्यायामके लिए फुरसत नही मिल सकती?" मैने कहा।

"मुझे तुम कब फुरसतमे देखते हो कि जिस समय मै घूमने जाता?" उत्तर मिला।

गोखलेके प्रति मेरे मनमे इतना आदर-भाव था कि मै उनकी बातोका जवाब न देता था। इस उत्तरसे मुझे सतोप न हुआ, पर मै चुप रहा। मै मानता था और अब भी मानता हू कि जिस तरह हम भोजन-पानेके लिए समय निकालते है उसी तरह व्यायामके लिए भी निकालना चाहिए। मेरी यह नम्र सम्मति है कि उससे देश-सेवा कम नही, अधिक होती है।

(आ०, १९२७)

ब्रह्मदेशसे लौटकर मैने गोखलेसे विदा मागी। उनका वियोग मेरे लिए दु सह था, परतु मेरा बगालका, अथवा सच पूछिए तो यहा कल-कत्तेका, काम समाप्त हो गया था।

मेरा विचार था कि काममे लगनेसे पहले मै थोडा-बहुत सफर तीसरे दर्जेमे करू, जिससे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोकी हालत मै जान लू और

दुखोको समझ लू। गोखलेके सामने मैने अपना यह विचार रक्खा। पहले तो उन्होने इसे हँसीमे टाल दिया, पर जब मैने यह बताया कि इसमे मैने क्या-क्या बाते सोच रक्खी है तब उन्होने खुशीसे मेरी योजना-को स्वीकार किया। सबसे पहले मैने काशी जाकर विदुषी ऐनी बेसेटके दर्शन करना तै किया। वह उस समय बीमार थी।

तीसरे दर्जेकी यात्राके लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतलका एक डिब्बा गोखलेने खुद ही दिया और उसमे मेरे लिए मगदके लड्डू और पूरी रखवा दी। बारह आनेका एक केनवासका बैग खरीदा। छाया (पोरबदरके नजदीकके एक गाव) के ऊनका एक लबा कोट बनवाया था। बैगमे यह कोट, तौलिया, कुरते और धोती रक्खे। ओढनेके लिए एक कबल साथ लिया। इसके अलावा एक लोटा भी साथ रक्खा। इतना सामान लेकर मै रवाना हुआ।

गोखले और डा० राय मुझे स्टेशन पहुचाने आये। मैने दोनोसे अनुरोध किया था कि वे न आवे, पर उन्होने एक न सुनी। "तुम यदि पहले दर्जेमे सफर करते तो मै नही आता, पर अब तो जरूर चलूगा।"—गोखले बोले।

प्लेटफार्मपर जाते हुए गोखलेको तो किसी ने न रोका। उन्होने सिरपर अपनी रेशमी पगडी बाध रक्खी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डा० राय बगाली लिबासमे थे। इसलिए टिकटबाबूने अदर आते हुए पहले तो रोका, पर गोखलेने कहा—"मेरे मित्र है।" तब डा० राय भी अदर आ सके। इस तरह दोनोने मुझे विदा दी। (आ०, १९२७)

•

विलायतमे मुझे पसलीके वरमकी शिकायत हो गई थी। इस बीमारी-के वक्त गोखले विलायतमे आ पहुचे थे। उनके पास मै व कैलनबेक हमेशा जाया करते। उनसे अधिकाशमे युद्धकी ही बाते हुआ करती। जर्मनीका भूगोल कैलनबेककी जबानपर था, यूरोपकी यात्रा भी उन्होने

बहुत की थी। इसलिए वह नक्शा फैलाकर गोखलेको लडाईकी छावनिया दिखाते।

जब मै बीमार हुआ था तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गई थी। मेरे भोजनके प्रयोग तो उस समय भी चल ही रहे थे। उस समय मै मूगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर, अगूर इत्यादि चीजे खाता था। दूध, अनाज, दाल, वगैरह चीजें बिलकुल न लेता था। मेरी देखभाल जीवराज मेहता करते थे। उन्होने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बडा जोर दिया। इसकी शिकायत ठेठ गोखलेतक पहुची। फलाहार-सबधी मेरी दलीलोके वह बहुत कायल न थे। तदुरुस्तीकी हिफाजतके लिए डाक्टर जो-जो बतावे वह लेना चाहिए, यही उनका मत था।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी। जब उन्होने बहुत ही जोर दिया तब मैने उनसे २४ घटेतक विचार करनेकी इजाजत मागी। कैलनबेक और मै घर आए। रास्तेमे मैने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है। मेरे प्रयोगमे वह मेरे साथ थे। उन्हे यह प्रयोग पसद भी था। परतु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मै इस प्रयोगको छोड दू तो ठीक होगा। इसलिए अब अपनी अतरात्माकी आवाजका फैसला लेना ही बाकी रह गया था।

सारी रात मै विचारमे डूबा रहा। अब यदि मै अपना सारा प्रयोग छोड दू तो मेरे सारे विचार और मतव्य धूलमे मिल जाते थे। फिर उन विचारोमे मुझे कही भी भूल न मालूम होती थी। इसलिए प्रश्न यह था कि किस अशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, अथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड देने चाहिए। अतको मैने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अश आवश्यक है उतना रक्खा जाय और शेष बातोमे डाक्टरोकी आज्ञाका पालन किया

जाय। मेरे दूध त्यागनेमे धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तेमे गाय-भैसका दूध जिन घातक विधियो द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य मेरी आखोके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मासकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नही हो सकता। इसलिए दूध-त्यागका दृढ निश्चय करके मै सुवह उठा। इस निश्चयसे मेरा दिल वहुत हलका हो गया था, किंतु फिर भी गोखलेका भय तो था ही, किंतु साथ ही मुझे यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको उलटनेका उद्योग न करेगे।

शामको 'नेशनल लिबरल क्लव' मे हम उनसे मिलने गए। उन्होने तुरत पूछा, "क्यो डाक्टरकी सलाहके अनुसार चलनेका निश्चय किया है न?"

मैने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बात मान लूगा, परतु आप एक वातपर जोर न दीजिएगा। दूध और दूधकी वनी चीजे और मास, इतनी चीजे मै न लूगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मै समझता हू उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"आपने यह अतिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मै समझता हू कि इसके सिवा मै आपको दूसरा उत्तर नही दे सकता। मै जानता हू कि इससे आपको दु ख होगा, परतु मुझे क्षम. कीजिएगा।" मैने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दु खसे, परतु वडे ही प्रेमसे कहा "आपका यह निश्चय मुझे पसद नही। मुझे इसमे धर्मकी कोई बात नही दिखाई देती। पर अब मै इस बातपर जोर न दूगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर मुखातिव होकर उन्होने कहा—"अब गाधीजीको ज्यादा दिक न करो। उन्होने जो मर्यादा बाध ली है उसके अदर उन्हे जो-जो चीजे दी जा सकती है, वही देनी चाहिए।"

डाक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, पर वह लाचार थे। मुझे

मूगका पानी लेनेकी सलाह दी। कहा, "उसमे हीगका वघार दे लेना।" मैंने इसे मजूर कर लिया। एक-दो दिन मैंने वह पानी लिया भी, परन्तु इससे उलटे मेरा दर्द वढ गया। मुझे वह मुआफिक नही हुआ। इससे मै फिर फलाहारपर आ गया। ऊपरके इलाज तो डाक्टरने जो मुनासिव समझे किए ही। उससे अलवत्ता कुछ आराम था। परन्तु मेरी इन मर्यादाओपर वह वहुत विगडते। इसी वीच गोखले भारतको रवाना हुए, क्योकि वह लदनका अक्तूवर-नववरका कोहरा सहन नही कर सके। (आ० १९२७)

मेरे ववई पहुचते ही गोखलेने मुझे तुरत खवर दी कि ववईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते है और पूना आनेके पहले आप उनसे मिल आवे तो अच्छा होगा। इसलिए मै उनसे मिलने गया।

× × ×

अव मै पूना पहुचा। वहाके तमाम सस्मरण लिखना मेरे सामर्थ्यके वाहर है। गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योने मुझे प्रेमसे पाग दिया। जहातक मुझे याद है, उन्होने तमाम सदस्योको पूना वुलाया था। सवके साथ दिल खोलकर मेरी वाते हुई। गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मै भी समितिमे आजाऊ। इधर मेरी तो इच्छा थी ही, परन्तु उसके सदस्योकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी। इसलिए वे दुविधामे थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए या नही। गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी उतनी ही दूसरोके आदर्शकी रक्षा करने और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था। उन्होने कहा, "परन्तु हमारे साथी आपके दूसरोको निभा लेनेके इस गुणको नही पहचान पाए है। वे अपने आदर्शपर दृढ रहनेवाले स्वतत्र और निश्चित विचारके लोग है। मै आशा तो यही रखता हू कि वे आपको सदस्य वनाना मजूर

कर लेगे, परतु यदि न भी करे तो आप इससे यह तो हरगिज न समझेगे कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखडित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते है, परतु आप समितिके बाकायदा सदस्य हो, या न हो, मै तो आपको सदस्य मानकर ही चलूगा।"

मैने अपना सकल्प उनपर प्रकट कर दिया था। समितिका सदस्य बनू या न बनू, एक आश्रमकी स्थापना करके फिनिक्सके साथियोको उसमे रखकर मै बैठ जाना चाहता था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूजी मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमे ही कही स्थिर होनेकी इच्छा थी। गोखलेको यह विचार पसद आया और उन्होने कहा—"जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योके साथ जो बातचीत हुई है उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परतु आपको आश्रमके लिए धन तो मुझ ही से लेना है। उसे मै अपना ही आश्रम समझूगा।"

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चदा मागनेकी झझटसे बचा, यह समझकर बडी खुशी हुई और इस विचारसे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पडेगा, बल्कि हरेक उलझनके समय मेरे लिए एक पथ-दर्शक यहा है। ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने स्वर्गीय डाक्टर देवको बुलाकर कह दिया, "गाधीका खाता अपनी समितिमे डाल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोके लिए जो कुछ रुपया चाहिए, वह देते जाना।"

अब मै पूना छोडकर शातिनिकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अतिम रातको गोखलेने खास मित्रोकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमे वही चीजे अर्थात् फल और मेवे मगाए थे, जो मै खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरपर थी। उनकी

हालत ऐसी न थी कि वे वहातक भी आ सकते, परतु उनका प्रेम उन्हे कैसे रुकने देता ! वह जिद करके आए थे, परन्तु उनको गश आ गया और वापस लौट जाना पडा । ऐसा गश उन्हे वार-वार आ जाया करता था, इसलिए उन्होने कहलाया कि पार्टीमें किसी प्रकारकी गडबड न होनी चाहिए। पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममे अतिथि-घरके पासके मैदानमे जाजम विछाकर हम लोग वैठ गये थे और मूगफली, खजूर वगैरह खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एव एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका उद्योग करते थे ।

किंतु उनकी यह मूर्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नही था। (आ० १९२७)

राजनैतिक क्षेत्रमे मैने अपने आपको उस महात्माका शिष्य कहा है और मै उसे राजनैतिक वातोमे अपना गुरु मानता हू और यह वात मै भारतवासियोकी ओरसे कहता हू । सन् १८९६ मे मैने अपने शिष्य होनेकी वात कही थी और मुझे अपनी इस पसदके लिए कभी दुख नही हुआ ।

मि० गोखलेने मुझे इस वातकी शिक्षा दी थी कि प्रत्येक भारतवासीको, जो अपने देशके प्रेमका दम भरता हो, सदा राजनैतिक क्षेत्रमे कार्य करनेका ध्यान रखना चाहिए । उसे केवल जवानी जमा-खर्च ही नही करना चाहिए, वल्कि उसे देशके राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक सस्थाओको आध्यात्मिक वनाना चाहिए। उन्होने मेरे जीवनमे उत्तेजना उत्पन्न की तथा वे अव भी उत्तेजना उत्पन्न कर रहे है। उस उत्तेजनामे मै अपने आपको पवित्र करना चाहता हू तथा अपने आपको आध्यात्मिक वनाना चाहता हू । मैने उस आदर्शके लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है । मुझे इसमे विफलता हो सकती है और जिस सीमा तक मुझे उसमे विफलता होगी उस सीमातक मै अपने आपको अपने गुरुका अयोग्य शिष्य समझूगा ।

मैं उस महात्मा राजनीतिज्ञके समीप उनके जीवनके अत समय तक रहा और मैंने उनमे कभी अहभाव नही पाया। जातीय-सेवा-सभाके आप सभासदोसे मैं प्रश्न करता हू कि आप लोगोमे किसी प्रकारका अहभाव तो नही है ? यदि महात्मा गोखलेने कीर्त्तिशाली होना चाहा तो केवल देशके राजनैतिक क्षेत्रमे कीर्त्तिशाली होना चाहा। उनकी यह इच्छा इसलिए नही थी कि सर्वसाधारण मेरी प्रसशा करे, वलिक यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देशका लाभ—मेरे देशका कल्याण—हो। उन्होने सर्वसाधारणकी प्रशसाकी कभी कामना नही की थी, पर स्वय सर्वसाधारण ही उन पर प्रशसाकी वर्षा करते थे, वे जबरदस्ती उनकी तारीफे करते थे। वे चाहते थे कि मेरे देशका लाभ हो और यही उनका वहुत वडा दैवी वल था।

आज आप लोग मुझसे इस चित्रको उद्घाटित करनेके लिए कहते है। मै यह काम पूरी ईमानदारी, हृदयकी पूरी सत्यता और शुद्धताके साथ करूगा और यही ईमानदारी या हृदयकी शुद्धता जीवनका अतिम उद्देश्य होना चाहिए।* ('महात्मा गाधी'—रामचद्र वर्मा, पृष्ठ ४१)

• •

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गस्थ महात्माके भाषणो तथा लेखोका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करनेका विचार पहलेपहल मेरे ही मनमे उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसके पहले भागकी प्रस्तावना अधिकाशमे मुझको ही लिखना उचित था। हम लोगोने नियम किया है कि हरसाल गोखलेकी पुण्यतिथि मनावेगे। भजन, कीर्त्तन, व्याख्यान और तदनतर सभाका विसर्जन—यह हर साल ही होता है। इससे कालक्षेप तो बहुत होता है, पर उससे कोई वास्तविक लाभ नही होता। अत

---

*बंगलौरमें गोखलेकी मूर्ति-अनावरणके समय प्रकट किये गए उद्गार।

भापणोकी अपेक्षा कार्यको अविक महत्व देने तथा ऐसे उत्सवोको सर्व-सावारणके लिए सचमुच लाभदायक वनानेके लिए गत वर्ष पुण्य-तिथिके प्रवन्ध-कर्त्ताओने इस अवसर पर मातृभापामे कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करना निश्चित किया था। पुस्तक चुननेमे भी देर नही लगी। स्वभावत ही पहली पुस्तक स्वर्गीय गोखले के भापणोका सग्रह पसन्दकी गई।

स्व० गोखलेके विपयमे दो-चार शब्द लिखना ही सच्ची प्रस्तावना हो सकता है, परतु गुरुके विपयमे शिष्य क्या लिखे और कैसे लिखे? उसका लिखना एक प्रकारकी धृष्टतामात्र है। सच्चा शिष्य वही है- जो गुरुमे अपनेको लीन कर दे, अर्थात् वह टीकाकार हो ही नही सकता। जो भक्ति दोप देखती हो वह सच्ची भक्ति नही और दोषगुणके पृथक्करणमे असमर्थ लेखक द्वारा की हुई गुरु-स्तुतिको यदि सर्वसावारण अगीकार न करे तो इसपर उसे नाराज होनेका अधिकार नही हो सकता। शिष्यके आचरणो हीसे गुरुकी टीका होती है। गोखले राजनैतिक विपयोमे मेरे गुरु थे, इस वातको मै अनेक वार कह चुका हू। इस कारण उनके विपयमे कुछ लिखनेमे मै अपनेको असमर्थ समझता हू। मै चाहे जितना लिख जाऊ, मुझे थोडा ही मालूम होगा। मेरे विचारसे गुरु-शिष्यका सवव शुद्ध आध्यात्मिक सवध है। वह अकशास्त्रके नियमानुसार नही होता। कभी-कभी वह हमारे विना जाने भी हो जाता है। उसके होनेमे एक क्षणसे अविक नही लगता, पर एक वार होकर वह फिर टूटना जानता ही नही।

१८९६ ई० में पहले-पहल हम दोनो व्यक्तियोमे यह सवध हुआ। उस समय न मुझे उनका ख्याल था और न उन्हे मेरा। उसी समय मुझे गुरुजीके भी गुरु लोकमान्य तिलक, सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस वदरुद्दीन तैयवजी, डा० भाडारकर तथा वगाल और मद्रास प्रातके और भी अनेक नेताओके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मै उस समय विल्कुल

नवयुवक था, मुझपर सबने प्रेम-वृष्टि की। सबके एकत्र दर्शनका वह प्रसग मुझे कभी न भूलेगा, परतु गोखलेसे मिलकर मेरा हृदय जितना शीतल हुआ उतना औरोसे मिलनेसे नही हुआ। मुझे याद नही आता कि गोखलेने मुझपर औरोकी अपेक्षा अधिक प्रेम-वृष्टि की थी। तुलना करनेसे मै कह सकता हू कि डा० भाडारकर ने मुझपर जितना अनुराग प्रकट किया उतना और किसीने नही किया। उन्होने कहा--यद्यपि मै आजकल सार्वजनिक कार्योमे अलग रहता हू, पर फिर भी केवल तुम्हारी खातिर मै उस सभाका अध्यक्ष बनना स्वीकार करता हू, जो तुम्हारे प्रश्नपर विचार करनेके लिए होनेवाली है। यह सब होते हुए भी केवल गोखले हीने मुझे अपने प्रेम-पाशमे आबद्ध किया। उस समय मुझे० इस बातका बिलकुल ज्ञान नही हुआ। पर सन् १६०२ वाली कलकत्तेकी कांग्रेसमे मुझे अपने शिष्य-भावका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। उपर्युक्त नेताओमेसे अनेकके दर्शनोका उस समय मुझे फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। कितु मैने देखा कि गोखलेको मेरी याद बनी हुई थी। देखते ही उन्होने मेरा हाथ पकड लिया। वे मुझे अपने घर खीच ले गए। मुझे भय था कि विषय-निर्वाचिनी-समितिमे मेरी बात न सुनी जायगी। प्रस्तावोकी चर्चा शुरू हुई और खतम भी हो गई, पर मुझे अततक यह कहनेका साहस न हुआ कि मेरे मनमे भी दक्षिण अफ्रीका सबधी एक प्रश्न है। मेरे लिए रातको कौन बैठा रहता! नेतागण कामको जल्दी निपटानेके लिए आतुर हो गए। उनके उठ जानेके डरसे मै कापने लगा। मुझे गोखलेको याद दिलानेका भी साहस न हुआ। इतनेमे वे स्वय ही बोले--मि० गाधी भी दक्षिण अफ्रीकाके हिदुस्तानियोकी दशाके सबधमे एक प्रस्ताव करना चाहते है। उस पर अवश्य विचार किया जाय। मेरे आनदकी सीमा न रही। राष्ट्रसभाके सबधमे मेरा यह पहला ही अनुभव था। इसलिए उससे स्वीकृत होनेवाले प्रस्तावोका मै बडा महत्व समझता था। इसके बाद भी उनके दर्शनके कितने ही अवसर उपस्थित हुए और वे सभी पवित्र है। पर इस समय जिस बातको मै उनका महामत्र

मानता हू, उसका उल्लेखकर, इस प्रस्तावनाको पूर्ण करना उत्तम होगा।

इस कठिन कलिकालमे किसी विरले ही मनुष्यमे शुद्ध धर्मभाव देख पड़ता है। ऋषि, मुनि, साधु आदि नाम धारणकर भटकते फिरने-वालोको इस भावकी प्राप्ति शायद ही कभी होती है। आजकल उनका धर्म-रक्षक पदसे च्युत हो जाना सभी लोग देख रहे है। यदि एक ही सुदर वाक्यमें धर्मकी पूरी व्याख्या कही है तो वह भक्त-शिरोमणि गुजराती कवि नरसिंह मेहताके इस वाक्यमे है

"ज्या लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं, त्या लगी साधना सर्व जूठी।"

अर्थात्—जबतक आत्मतत्वकी पहचान न हो तबतक सभी साधनाए निरर्थक है। यह वचन उसके अनुभव-सागरके मथनसे निकला हुआ रत्न है। इससे ज्ञात होता है कि महातपस्वी तथा योगी जनोमे भी (सच्चा) धर्मभाव होना अनिवार्य नही है। गोखलेको आत्मतत्वका उत्तम ज्ञान था, इसमे मुझे तनिक भी सदेह नही। यद्यपि वे सदा ही धार्मिक आडबरसे दूर रहे, फिर भी उनका सपूर्ण जीवन धर्ममय था। भिन्न-भिन्न युगोमे मोक्ष-मार्ग पर लगानेवाली प्रवृत्तिया देखी गई है। जब-जब धर्मबधन ढीला पड़ता है तब-तब कोई एक विशेप प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमे विशेप उपयोगी होती है। यह विशेप प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोमें अवनत देखते है। एकागी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पडेगा कि राज-नैतिक सुधारसे ही अन्य बातोमें हम उन्नति कर सकेगे। यह बात एक प्रकारसे सच भी है। राजनैतिक अवस्थाके सुधारके बिना उन्नति होना सभव नही। पर राजनैतिक स्थितिमें परिवर्तन होने हीसे उन्नति न होगी। परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा घृणित हुए तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिकतर सभावना है। जो परिवर्तन शुद्ध और पवित्र साधनोसे किया जाता है वही हमे उच्च मार्गपर ले जा सकता है।

सार्वजनिक कामोमे पडते ही गोखलेको इस तत्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होने कार्यमे भी परिणत किया। यह वात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होने अपने भारत-सेवक-समिति तथा सपूर्ण जन-समुदायके सम्मुख रक्खा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा तो यही मोक्ष-मार्गपर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होने साफ कह दिया कि जवतक हमारे राजनैतिक कार्योको धर्मभावकी सहायता न मिलेगी तव-तक वे सूखे, रसहीन, ही बने रहेगे। उनकी मृत्युपर 'टाइम्स ग्राव इडिया' मे जो लेख प्रकाशित हुआ था उसके लेखकने इस वातका स्पष्ट उल्लेख किया था और राजनैतिक सन्यासी उत्पन्न करनेके उनके प्रयत्नकी सफलता पर अविश्वास प्रकट करते हुए, उनकी यादगार 'भारत-सेवक-समिति' का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया था। वर्त्तमान कालमे राजनैतिक सन्यासी ही सन्यासाश्रमकी गौरववृद्धि कर सकते है। अन्य गेरुवा वस्त्र-धारी सन्यासी उसकी अपकीर्त्तिके ही कारण है। शुद्धधर्म मार्गमे चलने-वाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोसे परे रहना कठिन है। उसी वातको मै दूसरी तरह अगीकार किए विना रह ही नही सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमे हम इस तरह फस गए है कि राजनीतिसे अलग रहते हुए, लोक-सेवा करना सर्वथा असभव ही है। पूर्व समयमे जो किसान इस वातको जाने विना भी कि जिस देशमे हम बसते है उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवन-यात्रा भलीभाति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नही कर सकता। ऐसी दशामे उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्वको स्वीकार कर ले तो जहा देखिए वही भारत-सेवक-समितिया ही दिखाई देने लगे और भारतमे धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोको अरुचिकर होती है वही उन्हे पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे, फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग

करने लगे। भारतका बधन एक क्षणमें दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आखोके सामने आ जाय, जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमरवाणीमें इस प्रकार किया है—फौलादसे तल-वार बनानेका नही बल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिंह और बकरे साथ-साथ विचरण करेंगे। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मत्र थी। यही उनका सदेश है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करनेपर उनके भाषणोके प्रत्येक शब्दमे यह मत्र लक्षित होगा।*

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोसे सूचित होता है कि उन्होने उसका पालन भी किया है। यह सर्वमान्य बात है कि उन्होने जो-जो किया, जिस-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थ त्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होने भारत-माताके चरणोमे अर्पण कर दिया।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देश-बधुओ-के प्रति क्या सदेश है? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अतिम समयमे उनके पास उपस्थित थे, उन्हे उन्होने निम्नलिखित वाक्य कहे थे

"(तुम लोग) मेरा जीवन-चरित्र लिखने न बैठना, मेरी मूर्ति बन-वानेमें भी अपना समय मत लगाना। तुम लोग भारतके सच्चे सेवक

*स्वर्गीय गोखलेकी गत पुण्य-तिथिके उपलक्षमें उनके भाषणो तथा लेखोके गुजराती सग्रहकी भूमिका।

होगे तो अपने सिद्धातके अनुसार आचरण करने अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमे अपनी आयु व्यतीत करोगे ।"

सेवाके सबधमे उनके आतरिक विचार हमे मालूम है । राष्ट्रीय सभाका कार्य सचालन, भाषण तथा लेख द्वारा जनताको देशकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराना, प्रत्येक भारतवासीको साक्षर बनानेका प्रयत्न कराना, ये सब काम सेवा ही है । पर किस उद्देश्य और किस प्रणालीसे यह सेवा की जाय ? इस प्रश्नका वे जो उत्तर देते वह उनके इस वाक्यसे प्रकट होता है । अपनी सस्था ('भारत-सेवक-समिति') की नियमावली बनाते हुए उन्होने लिखा है "सेवकोका कर्त्तव्य भारतके राजनैतिक जीवनको धार्मिक बनाना है ।" इसी एक वाक्यमे सब-कुछ भरा हुआ है । उनका जीवन धार्मिक था । मेरा विवेक इस बातका साक्षी है कि उन्होने जो-जो काम किए, सब धर्मभाव हीकी प्रेरणासे किए । बीस साल पहले उनका कोई-कोई उद्गार या कथन नास्तिकोका-सा होता था । एक बार उन्होने कहा था—"क्या ही अच्छा होता यदि मुझमे भी वही श्रद्धा होती, जो रानडेमे थी ।" पर उस समय भी उनके कार्योके मूलमे उनकी धर्म-बुद्धि अवश्य रहती थी । जिस पुरुषका आचरण साधुओके सदृश्य है, जिसकी वृत्ति निर्मल है, जो सत्यकी मूर्त्ति है, जो नम्र है, जिसने सर्वथा अहकारका परित्याग कर दिया है, वह निस्सदेह धर्मात्मा है । गोखले इसी कोटिके महात्मा थे । यह बात मै उनके लगभग २० वर्षोकी सगतिके अनुभवसे कह सकता हू ।

१८९६ मे मैने नेटालकी शर्त्तबदीकी मजदूरीपर भारतमे वाद-विवाद आरभ किया । उस समय कलकत्ता, बबई, पूना, मद्रास आदि स्थानोके नेताओसे मेरा पहले-पहल सबध हुआ । उस समय सब लोग जानते थे कि महात्मा गोखले रानडेके शिष्य है । फर्ग्यूसन कालेजको वे अपना जीवन भी अर्पण कर चुके थे, और मै उस समय एक निरा अनुभव-हीन युवक था । मै पहले-पहल पूनेमे उनसे मिला । इस पहली ही भेटमे हम

लोगोमे जितना घनिष्ट सबंध हो गया उतना और किसी नेतासे नही हुआ। महात्मा गोखलेके विषयमें जो बाते मैंने सुनी थी वे सब प्रत्यक्ष देखनेमे आई। उनकी वह प्रेम-युक्त और हास्यमय मूर्त्ति मुझे कभी न भूलेगी। मुझे उस समय मालूम हुआ कि मानो वे साक्षात् धर्म की ही मूर्त्ति है। उस समय मुझे रानडेके भी दर्शन हुए थे। पर उनके हृदयमे मैं स्थान न पा सका। मैं उनके विषयमें केवल इतना ही जान सका कि वे गोखलेके गुरु है। अवस्था और अनुभवमे वे मुझसे बहुत अधिक बडे थे, इस कारण अथवा और किसी कारणसे मैं रानडेको उतना न जान सका, जितना कि गोखलको मैंने जाना।

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ। उसी समयमे उन्होने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमे निवास किया। उन्होने सार्वजनिक सभा (पूना) की त्रैमासिक पुस्तकका संपादन किया। उन्होने फर्ग्यूसन-कालेजमे अध्यापन कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुचाया। उन्होने वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया, उनकी बुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जनपर—उन लार्ड कर्जनपर जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे—बैठी और वे उनसे शंकित रहने लगे।

उन्होने बडे-बडे काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया। पब्लिक-सर्विस-कमीशनका काम करते समय उन्होने अपने जीने-मरने तककी परवा न की। उनके इन तथा अन्य कार्योका दूसरे व्यक्तियोने उत्तम रीतिसे वर्णन किया है।

× × ×

जनरल बोथा तथा स्मट्ससे जब उन्होने दक्षिण अफ्रीकाकी राजधानी प्रिटोरियामे मुलाकात की थी उस समय इस मुलाकातके लिए तैयार होनेमे उन्होने जितना परिश्रम किया था वह मुझे इस जन्ममें नही भूल

सकता। मुलाकातके पहले दिन उन्होने मेरी और मि० कैलनवेककी परीक्षा ली। वे स्वय रातके तीन ही बजे जाग पडे और हम लोगोको भी उन्होने जगाया। उन्हे जो पुस्तके दी गई थी उनको उन्होने अच्छी तरह पढ लिया था। अब हम लोगोसे जिरह करके वे इस बातका निश्चय करना चाहते थे कि उनकी तैयारी पूरी हुई या अभी उसमे कसर है। मैने उनसे विनयपूर्वक कहा कि इतना परिश्रम अनावश्यक है। हम लोगोको तो कुछ मिले या न मिले, लडना ही होगा, पर अपने आरामके लिए मै आपका बलिदान नही करना चाहता। पर जिस पुरुषने सर्वदा काममे लगे रहनेकी आदत ही बना रक्खी थी, वह मेरी बातोपर कब ध्यान देता। उनकी जिरहोका मै क्या वर्णन करू। उनकी चिंताशीलताकी कितनी प्रशसा करू। इतने परिश्रमका एक ही परिणाम होना चाहिए था। मत्रि-मडलने वचन दिया कि आगामी बैठकमे सत्याग्रहियोकी आकाक्षाओको स्वीकार करनेवाला कानून पास किया जायगा और मजदूरोको ४५ रुपयोका जो कर देना पडता है वह माफ कर दिया जायगा।

पर इस वचनका पालन नही किया गया। तो क्या गोखले निश्चेष्ट हो बैठ रहे? एक क्षणके लिए भी नही। मेरा विश्वास है कि १९१३ई० मे उक्त वचनको पूरा करानेके लिए उन्होने जो अविराम श्रम किया, उससे उनके जीवनके दस वर्ष अवश्य छीजे होगे। उनके डाक्टरकी भी यही राय है। उस वर्ष भारतमे जागृति उत्पन्न करने और द्रव्य एकत्र करनेके लिए उन्होने जितने कष्ट सहे, उनका अनुमान कठिन है। यह महात्मा गोखलेका ही प्रताप था कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर भारतवर्ष हिल उठा। लार्ड हार्डिजने मद्रासमे इतिहासमे यादगार होने योग्य जो भाषण दिया वह भी उन्हीका प्रताप था। उनसे घनिष्ट परिचय रखने-वालोका कहना है कि दक्षिण अफ्रीकाके मामलेकी चिताने उन्हे चारपाईपर डाल दिया, फिर भी अततक उन्होने विश्राम करना स्वीकार न किया।

दक्षिण अफ्रीकामे आधीरातको आनेवाले पत्र-सरीखे लबे-चौडे तारोको उसी क्षण पढना, जवाब तैयार करना, लार्ड हार्डिजके नाम पर तार भेजना, समाचार-पत्रोमे प्रकाशित कराए जानेवाले लेखका मसविदा तैयार करना और इन कामोकी भीडमे खाने और सोने तककी याद न रहना, रात-दिन एक कर डालना, ऐसी अनन्य निस्स्वार्थ भक्ति वही करेगा जो धर्मात्मा हो।

हिंदू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिसे ही देखते थे। एक बार अपनेको हिंदू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच है और हिंदू उच्च। महात्मा गोखलेको अपने जालमे फसते न देख उसने उन्हे दोष देते हुए कहा कि तुममे हिंदुत्वका तनिक भी अभिमान नही। महात्मा गोखलेने भवे चढाकर हृदय-भेदी स्वरमे उत्तर दिया—"यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने हीमे हिंदुत्व है तो मै हिंदू नही। तुम अपना रास्ता पकडो।"

महात्मा गोखलेमे निर्भयताका गुण बहुत अधिक था। धर्मनिष्ठामे इस गुणका स्थान प्राय सर्वोच्च है। लेफ्टिनेंट रैंडकी हत्याके पश्चात् पूनामे हलचल मच गई थी। गोखले उस समय इग्लैंडमे थे। पूनावालोकी तरफसे वहा उन्होने जो व्याख्यान दिए वे सारे जगतमे प्रसिद्ध है। उनमें वे कुछ ऐसी बाते कह गए थे, जिनका पीछे वे सबूत न दे सकते थे। थोडे ही दिनो बाद वे भारत लौटे। अपने भाषणोमें उन्होने अग्रेज सिपाहियोपर जो इलजाम लगाया था उसके लिए उन्होने माफी माग ली। इस माफी मागनेके कारण यहाके बहुतसे लोग उनसे नाराज भी हो गए। महात्माको कितने ही लोगोने सार्वजनिक कामोसे अलग हो जानेकी सलाह दी। कितने ही नासमझोने उनपर भीरुताका आरोप करनेमे भी आगापीछा न किया। इन सबका उन्होने अत्यत गभीर और मधुर भाषामे यही उत्तर दिया—"देश-सेवाका कार्य मैने किसीकी आज्ञासे अगीकार नही किया है और किसीकी आज्ञासे

उसे मै छोड भी नही सकता। अपना कर्त्तव्य करते हुए यदि मै लोकपक्षके साथ रहनेके योग्य समझा जाऊ तो अच्छा ही है, पर यदि मेरे भाग्य वैसे न हो तो भी मै उसे अच्छा ही समझूगा।" काम करना उन्होने अपना धर्म माना था। जहातक मेरा अनुभव है, उन्होने कभी स्वार्थ-दृष्टिसे इस वातका विचार नही किया कि मेरे कार्योका जनतापर क्या प्रभाव पडेगा। मेरा विश्वास है कि उनमे वह शक्ति थी जिससे यदि देशके लिए उन्हे फासी पर चढाना होता तो भी वे अविचलित चित्तसे हँसते हुए फासी पर चढ जाते। मै जानता हू कि अनेक वार उन्हे जिन अवस्थाओ मे रहना पडा है उनमे रहनेकी अपेक्षा फासीपर चढना कही सहज था। ऐसी विकट परिस्थितियोका उन्हे अनेक वार सामना करना पडा, पर उन्होने कभी पाव पीछे न हटाया।

इन सव वातोसे तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इस महान् देशभक्तके चरित्रका कोई अश हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है। उसीका अनुकरण करना हमे उचित है। हम सव लोग वडी व्यवस्थापिका सभाके सदस्य नही हो सकते। हम यह भी नही देखते कि उसके सदस्य होनेसे देश-सेवा हो ही जाती है। हम सव लोग पव्लिक-सर्विस-कमीशनमे नही बैठ सकते। यह वात भी नही है कि उसमे के सव बैठनेवाले देशभक्त ही होते है। हम सव लोग उनकी वरावरीके विद्वान् नही हो सकते और विद्वानमात्रके देश-सेवक होनेका भी हमे अनुभव नही है। परतु निर्भयता, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायशीलता, सरलता और व्यवस्था आदि गुणोका विकास कर उन्हे देशके लिए अर्पण करना सवके लिए साध्य है, यही धर्मभाव है। राजनैतिक जीवनको धर्ममय करनेका यही अर्थ है। उक्त वचनके अनुसार आचरण करनेवालेको अपना पथ सदा ही सूझता रहेगा। महात्मा गोखलेकी सपत्तिका भी वह उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकारकी निष्ठासे काम करनेवालेको और भी जिन-जिन विभूतियोकी आवश्यकता होगी वे सव प्राप्त होगी। यह ईश्वरका

वचन है और महात्मा गोखलेका चरित्र इसका ज्वलत प्रमाण है ।*
('महात्मा गाधी'—रामचद्र वर्मा)

मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया है । उसमे मेरी प्रशसा करते हुए लेखकने लिखा है, "आपने जिस कामको उठाया है वह लोकमान्यको अतिशय प्रिय था । मालूम होता है, उनकी आत्मा आपमे विराजती है । आपको साहस नही छोडना चाहिए । काम करते जाइए, स्वराज्य आपका है । पर आपने अपनेको गोखलेका शिष्य किस तरह माना है ? यह लिखकर आपने अपनी अप्रतिष्ठा की है ।"

अच्छा हो यदि लेखक गुमनाम पत्र लिखनेकी बुरी आदत छोड दे । यदि हम लोग स्वराज्यके लिए वाकई तत्पर है तो हमे उचित ही है कि भीरुता त्यागकर साहसीकी भाति अपना मत प्रकट करे । चूकि पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है इसलिए इसका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है । मै लोकमान्यका अनुयायी नही हू । उनके करोडो देशवासियोकी तरह मै उनके दृढ साहस, असीम पाडित्य और अगाध देश-प्रेम की हृदयसे प्रशसा करता हू । सबसे अधिक आदर मै उनके पवित्र और नि स्वार्थ जीवनकी करता हू । वर्तमान समाजके मनुष्योमे उन्होने जनताकी दृष्टि अपनी ओर सबसे अधिक आकृष्ट की है । उन्होने हम लोगोके हृदयमें स्वराज्यका बीजारोपण किया । वर्तमान शासनकी बुराइयोको जितना अधिक लोकमान्यने समझा था उतना अधिक और किसीने नही, और मै उनके सदेशको भारतकी झोपडियोतक उसी तरह पहुचाना चाहता हू और फैलानेका यत्न कर रहा हू जिस तरह कि उनका अच्छे-से-अच्छा शागिर्द । पर मेरे और उनके तरीकेमे भेद है । यही कारण है कि अभीतक

---

* बबईकी 'भगिनी-समाज' नामक सस्थासे स्त्रियोके लिए प्रकाशित एक सामयिक पुस्तिका से ।

चद महाराष्ट्र-नेता मेरे साथ एकमत नही हो सके है। पर मेरा यह भी दृढ मत है कि लोकमान्यको मेरे तरीकेपर अविश्वास नही था। मेरे ऊपर उनका दृढ विश्वास था। अपनी मृत्युके कोई दस दिन पहले अपने अनेक मित्रोके सामने उन्होने कहा था कि आपका तरीका सबसे अच्छा है, यदि जनताको समझाकर आप अपने साथ कर सके। लेकिन उन्हे इस बातका सदेह था कि जनता मेरे तरीकेको समझ सकेगी। पर मै दूसरा तरीका जानता ही नही। मै यही चाहता हू कि परीक्षाके समय देश अपनी योग्यता दिखलावे कि उसने अहिसात्मक असहयोगके तत्वको समझ लिया है। मै अपनी अन्य अयोग्यताओको भी जानता हू। मै पाडित्यका दावा नही करता। मुझमे उनके समान सगठन-शक्ति भी नही है। मेरे कार्य-सचालनके लिए शागिर्द भी नही है और साथ ही बीस वर्षतक विदेशोमे रहनेके कारण भारतका मुझे अनुभव भी उतना नही है जितना लोकमान्यको था। हम लोगोमे दो बातोमे समता थी देशप्रेम तथा स्वराज्य। यह दोनोके हृदयमे एक भावसे विद्यमान थे। इसलिए मै इस गुमनाम पत्रके लेखकको बतला देना चाहता हू कि लोकमान्यकी स्मृतिके लिए मेरे हृदयमे किसीसे कम आदर या मान नही है और स्वराज्यके प्रतिपादनमे मै उनके उत्तम-से-उत्तम शिष्यके साथ आगे बढता रहूगा। मै जानता हू कि उनकी सबसे सच्ची उपासना यही है कि भारतको जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य मिल जाय। केवलमात्र इसीसे उनकी आत्माको शाति मिल सकती है।

शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है। मैने १८८८ ई० मे दादाभाईके चरणोमे अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मै उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नही हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे, दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। १८९६ ई० मे दक्षिण अफ्रीकाके सबधमे भारतके सभी प्रधान नेताओसे मिला। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान

करनेका भी साहस नही होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी तरह प्रतीत हुए। उन्होने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे संरक्षक बन गए। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। उन्होने मुझसे कहा, "२६ सितबरको सार्वजनिक सभामे तुम्हे भाषण देना होगा।" मैने सहर्ष स्वीकार कर लिया। २५ सितबरको मुझे उनसे मिलना था। मैं उनके पास गया। उन्होने मुझसे पूछा, "क्या तुमने अपना भाषण लिखकर तैयार कर डाला है?" मैने उत्तर दिया, "जी, नही।"

उन्होने कहा, "इस तरह काम नही चलेगा। क्या आज रातभरमें लिखकर तैयार कर सकते हो?" इतना कहकर उन्होने अपने मुशीसे कहा, "तुम मिस्टर गाधीके साथ जाओ और व्याख्यान लिखवाकर ले आओ और इसे तुरत छपवा डालो और फौरन एक प्रति मेरे पास भेज दो।" इतना कहनेके बाद उन्होने मुझसे कहा, "लबा-चौडा भाषण मत लिखना। बबईके नागरिक देरतक नही ठहर सकते।" मैने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

बबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होने मुझे अपना शागिर्द नही बनाया। उन्होने आजमाइश भी नही की।

वहासे मैं पूना गया। मैं एकदम अजनबी था। जिनके यहा मैं टिका था वे मुझे पहले-पहल लोकमान्य तिलकके पास ले गए। जिस समय मैं उनसे मिला, वे अपने साथियोसे घिरे बैठे थे। उन्होने मेरी बाते सुनी और कहा, "आपका भाषण सार्वजनिक सभामे होना जरूरी है। पर आप जानते है कि यहा दलबदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भाडारकर से मिले तो उत्तम हो।" मैने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भावका प्रदर्शन करके उन्होने मेरी घबराहट

दूर की, नही तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। वहासे मै श्रीयुत गोखलेके पास गया और तब डाक्टर भाडारकरके पास गया। डाक्टर भाडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया, जिस तरह गुरु शिष्यका करता है।

मिलते ही उन्होने मुझसे कहा, "आप बडे उत्साही और तत्पर कार्य-कर्त्ता प्रतीत होते है, नही तो इतनी गर्मीमे मुझसे कोई भी मिलने नही आता। मैने सार्वजनिक सभाओमे इधर जाना छोड दिया है। पर आपने जिन दयनीय शब्दोमे अफ्रीकाकी दशाका वर्णन किया है, उससे मुझे लाचार होकर यह पद स्वीकार करना पडता है।

उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमे श्रद्धाका ज्वार उमड आया, पर गुरुभक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजाकी पदवी तक कोई न पहुच सका।

पर जिस समय मै श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बाते एकदम बदल गई। मै नही कह सकता कि इसका क्या कारण था। मै उनके घरपर मिलने गया। यह मिलन ठीक उसी प्रकार था जैसा दो चिर विछोही मित्रो या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शात हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे सबधमे उन्होने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैने अपने दिलमे कहा, "बस मेरे मनका आदमी मिल गया।" उसी समयसे श्रीयुत गोखले मेरे हृदयसे अलग न हो सके। १९०१ मे दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ हो गई। उन्होने अपने हाथमे मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया, "किस तरह रहते हो ? क्या कपडा पहनते हो ? भोजन कैसा होता है ?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नही थी। मेरे और उनके बीच कोई अतर नही था। यह चक्षु-राग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमे प्रगाढ प्रेमका अकुर जम गया

था। १९१३ मे इसे कडी परीक्षामे उतरना पडा। उस समय मुझे मालूम हुआ कि उनमे सभी गुण वर्तमान है। चाहे इसके पहले उनमे वे सब गुण न रहे हो, पर इसकी मुझे कोई परवाह नही। मेरे लिए इतना ही काफी था कि मुझे उनमे कोई दोष नही दिखलाई दिए। राजनैतिक क्षेत्रमे वे मुझे सबसे उत्तम व्यक्ति प्रतीत हुए। पर इसमे यह न समझना चाहिए कि उनमे और मुझमें मतभेद नही था। सामाजिक नियमोमे मेरा उनका १९०१ तक मतभेद रहा। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावपर भी हम लोगोका मतभेद था। अहिंसापर मेरा जो अटल विश्वास था उसमे भी उनका मतभेद था। पर इसमे हम लोगोमे किसी तरहका अतर नही आ सका। ये सब बाते किसी तरहका मतभेद नही उपस्थित कर सकी। यदि आज वे जीते रहते तो क्या होता, यह कहना व्यर्थ है। मै जानता हू कि मै उनकी आज्ञाका पालन करता होता। मैने इसे इसलिए लिखा है कि उस गुमनाम पत्रमे शागिर्दी-सबधी बातोमे मुझे हार्दिक पीडा हुई। क्या मुझपर इस बातका दोषारोपण किया जा सकता है कि मैने इस सबधको स्वीकार करनेमे देर की ? इस समय जबकि लोग यह कह रहे है कि मै स्वर्गीय गोखलेके दलसे एकदम विरुद्ध हो गया हू तो मेरे लिए उस पवित्र सबधको व्यक्त कर देना नितात आवश्यक था। (य० इ०, पृष्ठ ९०५)

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमे कई नवयुवकोने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोके, जिनसे हिंदू-समाज पीडित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी है। ये सारी बुराइया उन्हीकी बदौलत विद्यमान है। स्व० गोखलेके १९ वे पुण्य-वर्षके दिन मै यह लेख लिख रहा हू। इसलिए स्वभावत ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यताके कलकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोडकर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नही आता। वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमे किसी प्रकारकी असमानताकी कल्पना भी नही कर सकते थे। उनकी दृष्टिमे तो मनुष्यमात्र समान थे।

एक बार दक्षिण अफ्रीकामे एक सज्जन उन्हे एक साप्रदायिक सभामे लिवा ले जानेके लिए उनके पास आए, पर उन्होने इन्कार कर दिया। तव उनके हिंदू-धर्मके प्रति अपील की गई। इसपर वह विगड उठे। उन्होने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पडकर उक्त सज्जनसे वोले, "अगर यही हिंदू-धर्म है तो मै हिंदू नही हू।" लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या सप्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नही कर सकते थे। विश्वबधुत्वकी भावना उन्होने स्वय अपने जीवनमे चरितार्थ करके दिखा दी, इस वातको उनके साथी खूब जानते है। पारिया (अत्यज) कहे जानेवाले भाइयोसे वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह वात उनमे नही थी कि वह किसी पर कृपा या अहसान कर रहे है। उनके हृदयमे तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नही, वल्कि सेवक है। उनकी दृष्टिमे सवसे वडा सेवक ही सवसे वडा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अध्यापक भी थे। उनसे जव कोई 'प्रोफेसर' कहता तो वडे प्रसन्न होते थे। विनम्रता-की तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होने तो स्वेच्छासे गरीवीका ही वाना पसद किया। गोखले जैसे जन-सेवक पर क्या इन ब्राह्मण-निदकों-को गर्व नही होगा? और यह वात नही कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमे समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोकी एक खासी लवी सूची वनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वय निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार है, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वी-कार कर रहे है। उन लोगोको किसीके प्रशसा-पत्र की जरुरत नही है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसरपर लिखा था कि 'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमे नही ली जाती, वह

किसी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नही जा सकती । इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमे ही ग्रहण करे, फिर चाहे जिस कुलमे वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति या उसका रग चाहे जो हो । अस्पृश्यता-निवारणके इस आदोलनमे हमे किसीकी सेवाकी चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नही करनी चाहिए, जहातक कि उसमे सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपा की । (ह० से० ६ ३ ३४)

(सरोजिनी नायडूकी बात करते-करते गोखलेकी बात बताने लगे । गोखलेका उनके बारेमें मत बताने लगे । कहने लगे,)

"मै तुझसे बहुत सी बाते कर लेता हू जो किसीसे नही करता । करनेकी है भी नही । ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब बाते कर लिया करते थे । उनके मित्र तो बहुत थे, मगर ऐसा कोई नही था कि जिसके सामने नि सकोच अपने मनकी सारी बाते वे कह सके । मुझे उन्होने विश्वास-पात्र समझा और एक-एक आदमीका पृथक्करण करके बता दिया ।" (का० क०, २४ ८ ४२)

: ५७ :

घोषाल

काग्रेसके अधिवेशनको एक-दो दिनकी देर थी । मैने निश्चय किया था कि काग्रेसके दफ्तरमे यदि मेरी सेवा स्वीकार हो तो कुछ सेवा करके अनुभव प्राप्त करू ।

जिस दिन हम आए उसी दिन नहा-धोकर काग्रेसके दफ्तरमे गया ।

श्रीभूपेन्द्रनाथ वसु और श्रीघोपाल मत्री थे। भूपेनवावूके पास पहुचकर कोई काम मागा। उन्होने मेरी ओर देखकर कहा, "मेरे पास तो कोई काम नही है, पर शायद मि० घोषाल तुमको कुछ वतावेगे। उनसे मिलो।"

मै घोपालवावूके पास गया। उन्होने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराए और वोले, "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे ?"

मैने उत्तर दिया, "जरूर करूगा। अपने वस भर सवकुछ करनेके लिए मै आपके पास आया हू।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते है।"

कुछ स्वय-सेवक उनके पास खडे थे। उनकी ओर मुखातिव होकर कहा, "देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा ?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो, यह चिट्ठियोका ढेर, और यह मेरे सामने पडी है कुरसी। उसे ले लो। देखते हो न, सैकडो आदमी मुझसे मिलने आया करते है। अव मै उनसे मिलू या जो लोग फालतू चिट्ठिया लिखा करते है उन्हे उत्तर दू ? मेरे पास ऐसे कारकुन नही कि जिनसे मै यह काम करा सकू। इन चिट्ठियोमे वहुतेरी तो फिजूल होगी, पर तुम सवको पढ जाना। जिनकी पहुच लिखना जरूरी हो उनकी पहुच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे वडी खुशी हुई।

श्रीघोषाल मुझे पहचानते न थे। नाम-ठाम तो मेरा उन्होने वादको जाना। चिट्ठियोके जवाव आदिका काम आसान था। सारे ढेरको मैने तुरत निपटा दिया। घोषालवावू खुश हुए। उन्हे वात करनेकी आदत वहुत थी। मै देखता था कि वह वातोमे वहुत समय लगाया करते थे। मेरा इतिहास जाननेके वाद तो कारकूनका काम देनेमे उन्हे जरा शर्म मालूम हुई, पर मैने उन्हे निश्चित कर दिया।

"कहा मैं और कहां आप ! आप कांग्रेसके पुराने सेवक, मेरे नजदीक तो आप मेरे बुजुर्ग हैं। मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक ! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है, क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है। उसके काम-काजको समझनेका अलभ्य अवसर आपने मुझे दिया है।"

"सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है। परंतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते। पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूं। उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था।" घोषालबाबू बोले।

हम दोनोंमें खासा संबंध हो गया। दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते। घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता। यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गए तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुंह पिचकारकर मुझसे कहते, "देखो न, कांग्रेसके सेवकको बटन लगाने तककी फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं।" इस भोलेपनपर मुझे मनमें हँसी तो आई, परंतु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई। उससे जो लाभ मुझे हुआ उसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। (आ०, १९२७)

: ५८ :

चकैया

वह (चकैया) सेवाग्रामका आश्रमवासी था। नई तालीमके तरीकेपर सीखा था। बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था। झूठ, फरेब, क्रोध-जैसे दोष

उसमे नही थे। दैववश उसके दिमागमे कुछ रोग पैदा हो गया। खुद निसर्गोपचारमे ही विश्वास करता था, पर दोस्तोने और डाक्टरोने उसका आपरेशन करनेका आग्रह किया। इस रोगसे उसकी आखोका तेज जाता रहा था। फिर भी उसने आपरेशन-मेजपर जानेसे पहले मुझे बडी कोशिश-से पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशनका प्रयोग करानेके लिए भी मै तैयार हू और मौत आएगी तो राम-नाम लेता हुआ मरुगा। आखिर बबईके अस्पतालमे आपरेशन किया गया और आपरेशन-मेजपर ही उसके प्राण छूट गए।

उसके जानेपर रोना आता है, पर मै रो नही सकता, क्योकि मै रोऊ तो किसके लिए रोऊ और किसके लिए न रोऊ? भारतमाताको अगर बच्चे चाहिए तो वकील तुलसीदासजी, ऐसे ही चाहिए, जो या तो दाता हो, या शूर। चकैया दाता था, क्योकि वह नि स्वार्थ सेवक और परम सतोषी था और शूर भी था, क्योकि उसने अपने हाथसे मृत्युको अपना लिया। वह हरिजन था, पर उसके दिलमे हरिजन-सवर्ण, हिदू-मुसलमान-जैसे भेद न थे। वह सबको इसान मानता था और स्वय सच्चा इसान था। (प्रा० प्र०, ३१ ५ ४७)

: ५६ :

विन्स्टन चर्चिल

मेरे पास एक बुलद चीज है और वह है लोकमत। लोकमतमे बडी प्रचड शक्ति है। अभी हमारे यहा इस शब्दका अर्थ पूरे जोरसे प्रकट नही हुआ है, पर अग्रेजीमे उस शब्दका अर्थ बडा जोरदार है। अग्रेजीमे इसे 'पब्लिक ओपिनियन' कहते है और उसके सामने बादशाह भी कुछ

नही कर सकता। चर्चिल जो इतना वडा वहादुर है और जो ऊचे खानदान-का, वडा भारी वक्ता, वहुत ही विद्वान—मेरे जैसा अनजान विलकुल नही है—यह सवकुछ होते हुए भी अपनी गद्दी न सभाल सका। इसका मतलव यह है कि वहाका लोकमत वहुत जाग्रत है। इसलिए उसके सामने किसीकी नही चल सकती। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

आज सुवहके अखवारोमे रायटरद्वारा तारसे भेजा हुआ मि० चर्चिलके भाषणका जो सार छपा है, उसे मै हिंदुस्तानीमे आपको समझाता हू। वह सार इस तरह है

"आज रातको यहा अपने एक भाषणमें मि० चर्चिलने कहा, 'हिंदुस्तानमे भयकर खूरेजी चल रही है, उससे मुझे कोई अचरज नही होता। अभी तो इन वेरहमीभरी हत्याओ और भयकर जुल्मोकी शुरूआत ही है। यह राक्षसी खूरेजी वे जातिया कर रही है, ये जुल्म एक-दूसरी पर वे जातिया ढा रही है, जिनमे ऊची-से-ऊची सस्कृति और सभ्यताको जन्म देनेकी शक्ति है और जो ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश पार्लमेंटके रवादार और गैर-तरफदार शासनमे पीढ़ियोतक साथ-साथ पूरी शातिसे रही है। मुझे डर है कि दुनियाका जो हिस्सा पिछले ६० या ७० वरससे सवसे ज्यादा शात रहा है, उसकी आवादी भविष्यमे सव जगह वहुत ज्यादा घटनेवाली है, और आवादीके घटावके साथ ही उस विशाल देशमे सभ्यताका जो पतन होगा, वह एशियाकी सवसे वडी निराशापूर्ण और दु खभरी वात होगी।"

आप सव जानते है कि मि० चर्चिल खुद एक वडे आदमी है। वे इग्लैडके ऊचे कुलमे पैदा हुए है। मार्लवरो-परिवार इग्लैडके इतिहास-मे मशहूर है। दूसरे विश्व-युद्धके शुरू होनेपर जव ग्रेट ब्रिटेन खतरेमे था तव मि० चर्चिलने उसकी हुकूमतकी वागडोर सभाली थी। वेशक उन्होने उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यको खतरेसे वचा लिया। यह दलील

गलत होगी कि अमेरिका या दूसरे मित्र-राष्ट्रोकी मदद के बिना ग्रेट ब्रिटेन लडाई नही जीत सकता था। मि० चर्चिलकी तेज सियासी बुद्धिके सिवा मित्र-राष्ट्रोको एक साथ कौन मिला सकता था ? मि० चर्चिलने जिस महान् राष्ट्रकी लडाईके दिनोमे इतनी शानसे नुमाइदगी की, उसने उनकी सेवाओकी कदर की। लेकिन लडाई जीत लेनेके बाद उस राष्ट्रने ब्रिटिश द्वीपोको, जिन्होने लडाईमे जन-धनका भारी नुकसान उठाया था, नया जीवन देनेके लिए चर्चिलकी सरकारकी जगह मजदूर-सरकारको तरजीह देनेमे कोई हिचकिचाहट नही दिखाई। अग्रेजोने समयको पहचान कर अपनी इच्छासे साम्राज्यको तोड देने और उसकी जगह बाहरसे न दिखाई देनेवाला दिलोका ज्यादा मशहूर साम्राज्य कायम करनेका फैसला कर लिया। हिदुस्तान दो हिस्सोमे बट गया है, फिर भी दोनो हिस्सोने अपनी मरजीसे ब्रिटिश कामनवेल्थके सदस्य बननेका ऐलान किया है। हिंदुस्तानको आजाद करनेका गौरव-भरा कदम पूरे ब्रिटिश राष्ट्रकी सारी पार्टियोने उठाया था। इस कामके करनेमे मि० चर्चिल और उनकी पार्टीके लोग शरीक थे। भविष्य अग्रेजोद्वारा उठाए गए इस कदमको सही साबित करेगा या नही, यह अलग बात है। और इसका मेरी इस बातसे कोई ताल्लुक नही है कि चूकि मि० चर्चिल सत्ताके फेरबदलके काममे शरीक रहे है, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे ऐसी कोई बात नही कहे या करे, जिससे इस कामकी कीमत कम हो। यकीनन आधुनिक इतिहासमे तो ऐसी कोई मिसाल नही मिलती, जिसकी अग्रेजोके सत्ता छोडनेके कामसे तुलना की जा सके। मुझे प्रियदर्शी अशोकके त्यागकी बात याद आती है। मगर अशोक बेमिसाल है और साथ ही वे आधुनिक इतिहासके व्यक्ति नही है। इसलिए जब मैने रायटरद्वारा प्रकाशित किया हुआ मि० चर्चिल-के भाषणका सार पढा तो मुझे दु ख हुआ। मै मान लेता हू कि खबरे देनेवाली इस मशहूर सस्थाने मि० चर्चिलके भाषणको गलत तरीकेसे बयान नही किया होगा। अपने इस भाषणसे मि० चर्चिलने उस देशको

हानि पहुचाई है, जिसके वे एक बहुत बडे सेवक है। अगर वे यह जानते थे कि अग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद होनेके बाद हिंदुस्तानकी यह दुर्गति होगी तो क्या उन्होने एक मिनटके लिए भी यह सोचनेकी तकलीफ उठाई कि उसका सारा दोष साम्राज्य बनानेवालोके सिरपर है, उन 'जातियो' पर नही जिनमे चर्चिल साहबकी रायमे 'ऊची-से-ऊची स्कृतिको जन्म देनेकी ताकत है।' मेरी रायमे मि० चर्चिलने अपने भाषणमे सारे हिंदुस्तानको एक साथ समेट लेनेमे बेहद जल्दबाजी की है। हिंदुस्तानमे करोडोकी तादादमे लोग रहते है। उनमेसे कुछ लाखने जगलीपन अख्तियार किया है, जिनकी कि कोई गिनती नही है। मै मि० चर्चिलको हिंदुस्तान आने और यहाकी हालतका खुद अध्ययन करनेकी हिम्मतके साथ दावत देता हू। मगर वे पहलेसे ही किसी विषयमे निश्चित मत रखनेवाले एक पार्टीके आदमीकी हैसियतसे नही, बल्कि एक गैरतरफदार अग्रेजकी तरह आए, जो अपने देशकी इज्जतका किसी पार्टीसे पहले खयाल रखता है और जो अग्रेज सरकारको अपने इस काममे शानदार सफलता दिलानेका पूरा इरादा रखता है। ग्रेट ब्रिटेनके इस अनोखे कामकी जाच उसके परिणामोमे होगी। हिंदुस्तानके विभाजनने बेजाने उसके दो हिस्सोको आपसमे लडनेका न्यौता दिया। दोनो हिस्सोको अलग-अलग स्वराज देना आजादीके इस दानपर धब्बे-जैसा मालूम होता है। यह कहनेसे कोई फायदा नही कि दोनोमेसे कोई भी उपनिवेश ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग होनेके लिए आजाद है। ऐसा करनेसे कहना सरल है। मै इस पर और ज्यादा कुछ नही कहना चाहता। मेरा इतना कहना यह बतलानेके लिए काफी होगा कि मि० चर्चिलको इस विषयपर ज्यादा सावधानीसे बोलनेकी जरूरत क्यो थी। परिस्थितिकी खुद जाच करनेके पहले ही उन्होने अपने साथियोके कामकी निंदा की है।

आप लोगोमेसे बहुतोने मि० चर्चिलको ऐसा कहनेका मौका दिया है। अभी भी आपके लिए अपने तरीकोको सुधारने और मि० चर्चिलकी

भविष्यवाणीको झूठ साबित करनेके लिए काफी वक्त है। मै जानता हू कि मेरी वात आज कोई नही सुनता। अगर ऐसा नही होता और लोग उसी तरह मेरी वातोको मानते होते, जिस तरह आजादीकी चर्चा शुरू होनेसे पहले मानते थे तो मै जानता हू कि जिस जगलीपनका मि० चर्चिलने वडा रस लेते हुए वढा-चढाकर वयान किया है, वह कभी नही हो पाता और आप लोग अपनी माली और दूसरी घरेलू मुश्किलोको सुलझानेके ठीक रास्तेपर होते। (प्रा० प्र०, २८ ९ ४७)

: ६० :

सी० वाई० चिन्तामरिए

(आज सुवह निर्णयपर वातें हुई। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोपर चर्चा हुई। वापू कहने लगे)

यह आशा रख सकते है कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—वहुत आशा रखने जैसी वात नही है।

वापू—आशा इसलिए रख सकते है कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चितामणिने इस वार अच्छी तरह शोभा वढाई।

वापू—क्योकि चितामणि हिदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चितामणि समझते है कि इस निर्णयमे ही वहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन वातोकी चिता ही नही (म० डा०, २१ ८ ३२)

: ६१ :

जगदीशन्

जगदीशन्को खुद भी कोढ हो गया था। वे मद्रासके रहनेवाले है। वे बडे सज्जन और विद्वान पुरुष है। वे श्रीनिवास शास्त्रीजीके भक्त थे। तो उन्होने अपना जीवन इस काममे लगा दिया है। (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

जिनको कुष्ट रोग रहता है उनके बारेमे मैने कल एक बात कही थी। जगदीशन्का भी नाम लिया था। वे बडे विद्वान् आदमी है। उनको यह रोग था। वह बिलकुल नाबूद तो नही हुआ है, लेकिन काफी अकुशमे आ गया है। वे इसमे काफी काम करते है, काफी दिलचस्पी लेते है, उनसे मिलते-जुलते है। मेहनती तो जबरदस्त है ही। वे मद्रासमे रहते है, वर्धामे नही, लेकिन कई दिनोसे वर्धामे है। उन्होने इस बारेमे मुझसे खतो-किताबत की थी। उनका पत्र मिले कई दिन हो गए। उसको आज मैने पढ लिया। मैने उसमे एक बात देखी है, जिसे मै यहा साफ कर देना चाहता हू। वे कहते है कि जिसको कुष्ट रोग हो गया है उसको कोढी मत कहो। लोग उससे बुरा अर्थ निकाल लेते है। उसको वे अछूतसे भी बदतर मान लेते है। अछूत बदी थोडा करता है। उनको छूनेसे हम पतित हो जाते है, ऐसा हम मान लेते है। मै कह चुका हू कि सच्चा कोढ तो मनकी मलिनता है। अपने भाइयोसे घृणा करना, किसी जाति या वर्गके लोगोको बुरा कहना, रोगी मनका चिह्न है और वह कोढसे भी बुरा है। ऐसे लोग उससे भी बदतर है। तो फिर ऐसा नाम क्यो लेना चाहिए? कुष्ट रोगसे पीडित कहो, लेकिन कोढी मत कहो। अगर बुरा कहनेसे बुरा बन जाय तो नही कहना चाहिए। गुलाबके पुष्पको आप चाहे किसी भी

नामसे कहे, लेकिन उसमे जो सुवास या सुगध भरी है उसको वह कभी नही छोडेगा, बुरे-से-बुरा नाम दो तो भी नही। यदि यह जगदीशन् ऐसा कहता है, ठीक है, पर जो छूतकी बीमारी है वह कोई एक तो है नही। किसीको खुजली हो जाती है, उसको जो स्पर्श करेगा उसको खुजली हो जायगी। सर्दी है, हैजा है, प्लेग है, इसी तरहसे कुष्ट रोग है। फिर उसके प्रति घृणा क्या करनी ? एक आदमी जब सचमुच कुष्ट रोगी बन जाता है तो लोग उसका तिरस्कार करते है। वे कहते है कि वह तो कमजात है। कमजात तो वे हुए जो तिरस्कार करते है। यह घृणा करनेका जो कोढ है वह निकल जाना चाहिए। (प्रा० प्र०, २४ १०.४७)

: ६२ :

हीरजी जयराम

चलालाके पडचा खादी-कार्यालयके श्री नागरदासभाई लिखते है

"श्री हीरजीभाई जयराम मिस्त्री, जिन्होने हमें थानामें श्री स्वामी आनदके आश्रमवाली जमीन दी थी, गुजर गए है।

"जब चर्खा-सघने और श्री रामजीभाई हंसराजने काठियावाडमें खादीका काम बद किया तो हीरजीभाईने ही उस कामको टिकाये रक्खा था। सन् १९३७के अतमें जब मै यहा आया तो हीरजीभाई करीब दस चर्खोका काम संभाले हुए थे और उनके लिए वे पीजने भी चलवा रहे थे। उन्होने इस कामको इतना जिदा रक्खा, उसीका यह नतीजा है कि आज काठियावाडमें हर साल करीब एक लाख रुपयेकी व्यापारी खादी पैदा होती है। चलालाके और उसकी शाखाओके कुल मिलाकर २५ केंद्रोमें

इस समय काम हो रहा है। व्यापारी खादीके साथ-साथ स्वावलवी खादीका काम भी वढ रहा है। जिस समय हमने अपने खादी-कामको फैलाया, हीरजीभाई अपने कताई-पिंजाईके कामको जारी रक्खे हुए थे। कपडेके लिहाजसे उनका सारा परिवार स्वावलम्बी था, अपने खेतसे वे अच्छा फूटा हुआ कपास खुद चुन लाते थे और अपने हाथो उसे ओटते थे। वे नियमसे रोज दो गुडी सूत तो कातते ही थे।

"काठियावाडके खादी और हरिजन कार्यको उन्होने समय-समयपर सहायता पहुचाई थी। हमें उनका पूरा-पूरा आधार था। मरनेसे पहले उन्होने अपनी वसीयत लिखी है, जिसमें मोरवीमें खादी-कार्य शुरू करनेके लिए एक हजार रुपए की मजूरी दी है। मोरवीमें खादी-कार्य चलानेकी उनकी तीव्र इच्छा थी, परतु वह सफल न हो सकी। मिस्त्रीजीने दो साल पहले अपनी दूसरी पत्नीके देहातके वाद तीसरी वार विवाह किया था। पहली पत्नीसे उनके तीन लडके है।

"वे नीचे लिखे सज्जनोको अपनी वसीयतका ट्रस्टी वना गये हैं .

१. श्री रामजीभाई हसराज
२. श्री जगजीवनभाई मेहता
३. श्री छगनलाल जोशी
४ श्री नागरदास
५. एक स्थानीय व्यापारी

"वसीयतके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है। सव मिलाकर स्थावर, जगम और नकद मिल्कियत ५२ हजारकी है।"

मुझे तो भाई हीरजीके इस वसीयतनामेकी कोई खवर ही न थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा मूक थी। थानेके नजदीकवाली जमीन भी उन्होने सकुचाते-सकुचाते ही दी थी। उनकी सेवामें तनिक भी आडवर न था। वे साधारण स्थितिके मामूली पढे-लिखे आदमी थे, परतु उनकी सव सेवाए ठोस थीं। नाम या यशका उन्हे कभी लोभ न रहा, उनकी सेवा ही उनका इनाम और प्रमाण-पत्र था। ऐसी आत्मा सदा ही अमर होती है। (ह० से०, १२-४-४२)

: ६३ :

श्रीकृष्णदास जाजू

नए अध्यक्षके रूपमे सघको पूर्व अध्यक्षकी भाति ही एक सुपरीक्षित और धर्मबुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नही है, वह लेखक भी नही है, किंतु वह अधिक व्यवहारदक्ष है। वह अखिल भारतीय चर्खा सघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे है । उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है। (ह० से०, २ ३ ४०)

: ६४ :

मोहम्मद अली जिन्ना

जिन्नासाहवने जिस मुक्ति-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलवर्गाके मुसलमानोकी तरफसे यह तार मिला---"नजात-दिवसका मुवारकवाद, काइदे-आजम जिन्ना जिंदावाद ।" मैंने समझा कि यह सदेश मुझे चिढानेके उद्देश्यसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जाने कि इस तारका उद्देश्य पूरा नही हुआ। जव मुझे वह मिला तो मै भी मन-ही-मन भेजनेवालोकी इस प्रार्थनामे शामिल होगया---"काइदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जिए।"काइदे-आजम हमारे पुरानी साथी है। आज कुछ वातोमे हमारे-उनके विचार नही मिलते तो इससे क्या हुआ ? उनके लिए मेरे सद्भावमे कोई अतर नही आ सकता।

मगर काइदे-आजमकी तरफसे एक विशेष कारण उन्हे वधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर उन्होने जो वढिया भाषण दिया था उसपर वधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी।

अब वे और भी मुबारकबादके हकदार हो गए है, क्योकि वे काग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोके साथ करारनामे कर रहे है। इस तरह वे मुस्लिम-लीगको साम्प्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे है। मै उनके इस कदमको पूरी तरह उचित समझता हू। मै देखता हू कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अबेडकरका दल जिन्नासाहबसे पहले ही मिल चुका है। अखबारोमे खबर है कि हिंदू महासभाके प्रधान श्रीसावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले है। जिन्नासाहबने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-काग्रेसी हिंदुओने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है। ऐसा होना मै पूरी तरह लाभदायक समझता हू। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमे दो ही बडे-बडे दल रह जाय, एक काग्रेसियोका और दूसरा-गैरकाग्रेसियोका या काग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसद हो तो, काग्रेस-विरोधियोका। जिन्नासाहबकी कृपासे कम तादादवाली जाति शब्द का नया और अच्छा अर्थ हो रहा है। काग्रेसका बहुमत सवर्ण हिंदुओ, अवर्ण हिंदुओ, मुसलमानो, ईसाइयो, पारसियो और यहूदियोके मेलसे बना है। इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमे एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोके लोग शामिल है। जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोका दल है। निर्वाचकोको पसद आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है। इस तरह दलोका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए। अगर काइदे-आजम इस तरहका मेल साध सके तो मै ही नही, सारा हिंदुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा—"काइदे-आजम जिन्ना जुग-जुग जिए", क्योकि वे ऐसी स्थायी और सजीव एकता स्थापित कर देगे, जिसके लिए मुझे विश्वास है कि सारा राष्ट्र तडप रहा है। (ह० से०, २० १ ४०)

: ६५ :

छोटेलाल जैन

साबरमती-सत्याग्रहाश्रमके निवासी और सबधी कुछ इस तरह बिखरे पडे है कि उन्हे एक-दूसरेकी प्रवृत्तिका पता तक नही रहता। खास सबध जोडने या उसे यत्नपूर्वक रखनेकी प्रथा नही डाली गई। सबध केवल सेवा-सबधी रहा है। कहनेका यह आशय नही कि सब ऐसा ही करते है, किंतु मूक सेवामे स्व० मगनलाल गाधीके साथ बराबरी करने-वाले आश्रमवासी श्री छोटेलाल जैन का आत्मघात, इन शब्दोको लिखते हुए अदरसे मुझे काट रहा है। छोटेलालकी मूक सेवाका वर्णन भाषाबद्ध नही हो सकता। ऐसा करना मेरी शक्तिसे बाहर है। छोटेलालका कोई परिचय देता तो वह भागते थे। उनकी मृत्युसे उनके विषयमे उनके सगे-सबधी भी जानना चाहेगे। लेकिन आश्रममे आनेके बाद छोटेलालका कभी किसी दिन अपने सबधियोके पास जानेका या आश्रममे उनके रिश्ते-दारोके आनेका मुझे स्मरण नही आता। उनके नाम व पते-ठिकाने भी नही जानता तो भी उनके पास आश्रमकी खबर पहुचानेका तो मेरा कर्तव्य है ही। उनकी खातिर भी इस टिप्पणीका लिखना उचित है और छोटे-लालकी मृत्युसबधी इस टिप्पणीके साथ भला कौन ईर्ष्या करेगा?

मेरे सौभाग्यसे मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिल है कि उनके बिना मै अपनेको अपग अनुभव करता हू। छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे। उनकी बुद्धि तीव्र थी। उन्हे कोई भी काम सौपते मुझे हिचकिचाहट नही होती थी। वे भाषाशास्त्री भी थे। राजपूताना-निवासी होनेसे उनकी मातृभाषा हिंदी थी। पर वह गुजराती, मराठी, बगाली, तमिल, सस्कृत और अग्रेजी भी जानते थे। नई भाषा या नया काम हाथमे लेनेकी उनकी

जैसी शक्ति मैने और किसीमें नही देखी। आश्रमके स्थापना-कालसे ही छोटेलालने उससे अपना सबध जोड लिया था।

रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, कातना, बुनना, हिसाब-किताब रखना, अनुवाद करना, चिटठी-पत्री लिखना आदि सब कामोको वह स्वाभाविक रीतिसे करते और वे उन्हे शोभते थे। मगनलालके लिखे 'बुनाई-शास्त्र' मे छोटेलालका हिस्सा मगनलालके जितना ही था,.यह कहा जा सकता है। चाहे जैसे जोखमका काम उन्हे सौंपा जाय उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जबतक वह पूरा न हो जाय, उन्हे शाति नही मिलती थी। अविश्रात रीतिसे काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेनेको हमेशा तैयार रहते थे। उनके शब्दकोषमे 'थकान' के लिए स्थान नही था। सेवा करना और दूसरोसे सेवा-कार्य लेना यह उनका मत्र था। ग्राम-उद्योग-सघ स्थापित हुआ तो घानीका काम दाखिल करनेवाले छोटेलाल, धान दलनेवाले छोटेलाल और मधुमक्खिया पालनेवाले भी छोटेलाल। जिस तरह छोटेलालके बगैर मै अपग जैसा हो गया हू ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधुमक्खियोकी भी होगी, क्योंकि यह नोट लिखते समय मुझे पता नही कि उनके इस परिवारकी अब इतनी सार-सभाल कौन रखेगा।

छोटेलाल मधुमक्खियोके पीछे जैसे दीवाने हो गए थे। उनकी शोधमें उन्हे हलके प्रकारके मियादी बुखार (टाइफाइड) ने पकड लिया। यह उनके प्राणोका गाहक निकला। मालूम होता है, उन्हें छ सात दिन-अपनी सेवा कराना भी असह्य लगा। अत ३१ अगस्त, मगलवारकी रात-को ग्यारह और दो बजेके बीचमे सबको सोता हुआ छोडकर वह मगन-वाडीके कुएमे कूद पडे। आज पहली तारीखको शामके चार बजे लाश हाथमे आई। मै सेगावमें बैठा रातके आठ बजे यह लिख रहा हू। छोटलालकी देहका इस समय वर्धामें अग्नि-दाह हो रहा होगा।

इस आत्मघातके लिए छोटेलालको दोष देनेकी मुझमे हिम्मत नही।

छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम १९१५ के दिल्ली-षडयत्र-केस-मे आया था, पर उसमे वह बरी हो गए थे। किसी आफिसरको मार-कर खुद फासीके तख्तेपर चढनेका स्वप्न वह उन दिनो देखते थे। इतनेमे मेरे लेखोके पाशमे आ फसे। दक्षिण अफ्रीकाके मेरे जीवनसे उन्होने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसक वृद्धिको उन्होने वदल दिया और अहिसाके पुजारी वन गए। जिस तरह साप केचुल उतार देता है उसी तरह उन्होने अपने हिंसक जीवनकी खोल उतारकर फेक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मनसे क्रोधको नही जीत सके। उन्हे इस बीमारीमे अपनी सेवा लेना असह्य मालूम दिया और गहरी पैठी हुई हिंसा-को खुद अपनी वलि दे दी। इसके सिवाय, दूसरा अर्थ मै इस आत्मघातका नही लगा सकता।

छोटेलाल मुझे अपना देनदार वनाकर ४५ वर्षकी उम्रमे चल वसे। उनसे मै अनेक आशाए रखता था। उनकी अपूर्णता मै सहन नही कर सकता था, इससे छोटेलालने मेरे वाग्वाण जितने सहन किए उतने तो शायद मैने एक-दो को ही सहन कराये होगे। पर छोटेलालने उन्हे सदैव सहन किया। परतु ऐसे वचन सुनानेका मुझे क्या अधिकार था? मुझे तो उन्हे हिंदू-मुसलमानकी लडाईमे, या हिंदूधर्ममे से अस्पृश्यता-रूपी कचरा निकाल वाहर करनेमे या गोमाताकी सेवामे होमकर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करनेकी शक्ति रखनेवाले साथियोमे छोटेलाल एक ऊचा स्थान रखते थे। मेरे लिए तो ये सब स्वराजकी वेदिया है।

पर छोटेलालकी मृत्युका रोना रोकर अव क्या करू? ऐसे अनेक मूक योद्धाओकी आवश्यकता होगी। रामराज-रूपी स्वराज लेना आसान नही। छोटेलालके जीवनके इस छोटे-से टुकडेका परिचय पाकर दूसरे मूक सेवक आगे आवे। (ह० से०, ११ ९ ३७)

: ६६ :

पुरुषोत्तमदास टंडन

एक भाईने मेरे पास इस आशयका एक बहुत सख्त पत्र भेजा है कि क्या तुम अब भी पागल ही रहोगे ? अब तो थोडे दिनोमे इस दुनियासे चले जाओगे, तब भी कुछ सीखोगे नही ? यदि पुरुषोत्तमदास टंडनने यह कहा कि 'सबको तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना बचाव करना चाहिए' तो तुमको इस बातमे चोट क्यो लगती है ? तुम तो गीताके पढनेवाले हो ? तुम्हे तो इन द्वद्वोमे परे हो जाना चाहिए और बात-बातमे चोट लगा लेने या खुश होनेकी झझट छोड देनी चाहिए। तुम उस कहानीवाले भोले साधु बाबा-जैसी बात करते हो जो पानीमे बहते हुए बिच्छूके डक लगानेपर भी उसे हाथमे पकडकर बचानेकी कोशिश करता था। अगर तुमसे अहिंसाका गीत गाए बिना रहा नही जाता तो कम-से-कम जो दूसरे रास्तेसे जाते है उन्हें तो जाने दो। उनके बीचमे रोडा क्यो बनते हो ?

अगर मै स्थितप्रज्ञ रह सका तो अपनी एक सौ पच्चीस वर्षकी उम्रमें मे एक भी वर्ष कम जिदा नही रहूगा। अगर हम सब स्थितप्रज्ञ बने तो हममेसे एक भी आदमीको १२५ वर्षसे जरा भी कम जीनेका कोई कारण नही है। वैसे भगवान चाहे तो भले मुझे आज ही उठा ले, पर अभी तुरत मै चलनेवाला नही हू। मुझे अभी रहना है और काम करना है। पुरुषोत्तमदास टडन मेरे पुराने साथी है। हम वर्षोतक साथ-साथ काम करते आए है। मेरे जैसे ही ईश्वरके वे भक्त है। जब मैने यह सुना कि वे ऐसी बात कर रहे है तब मुझे दुःख हुआ। मैने कहा कि आज तीस बरससे भी अधिक समयसे जो हमने सीखा है और जिसकी हमने लगनसे साधना की है, वह क्या इस तरह गवा दिया जायगा ? बचावके लिए

तलवार पकडनेकी वात की जाती है, पर आजतक मुझे दुनियामे एक आदमी ऐसा नही मिला है, जिसने वचावसे आगे वढकर प्रहार न किया हो। वचावके पेटमे ही वह पडा है। अव रही मेरे दिलपर चोट लगनेकी वात। अगर मै पूरा स्थितप्रज्ञ वन गया होता तो मुझे चोट न लगती। अव भी चोट न लगे ऐसी कोशिश मै कर रहा हू। कल जहा था वहासे आज कुछ-न-कुछ आगे ही वढता हू। अगर ऐसा नही हो तो रोज-रोज गीता-मे से स्थितप्रज्ञके ये श्लोक वोलनेमे मै दभी ठहरता हू, पर ऐसा नही हो सकता कि इन श्लोकोके वोलने भरसे ही कोई एक ही दिनमे स्थितप्रज्ञ वन जाय। (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

आज सवेरे जव मेरा मौन था तो श्री पुरुषोत्तमदास टडन आए। मैने आपको वताया था कि जव टडनजी ने कहा कि हरेक स्त्री-पुरुषको शस्त्रधारी वनना चाहिए और स्वरक्षा करनी चाहिए तो यह सुनकर मुझे कैसा वुरा लगा था। एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछा था कि गीता पढते रहनेपर भी इस तरह आपको वुरा कैसे लग सकता है ? उस पत्रसे यह भी पता चलता था कि टडनजी 'शठ प्रति शाठ्य' का सिद्धात मानते है। तव टडनजीसे मैने पूछा कि आप क्या मानते है ? इसका खुलासा देते हुए टडनजीने वताया कि मै 'शठ प्रति शाठ्य' के सिद्धातको तो नही मानता हू, लेकिन स्वरक्षाके लिए शस्त्रधारी वनना जरूरी है, ऐसा मै मानता हू। गीताने भी यही सिखाया है।

तव मैने टडनजीसे कहा कि इतना तो आप उस भाईको लिख दीजिए कि आप 'शठ प्रति शाठ्य' के माननेवाले नही है ताकि वे भ्रममे न रहे। और स्वरक्षाके लिए हिसा करनेकी वात गीतामे कही है, यह मै नही मानता। मैने तो गीताका अलग ही अर्थ निकाला है। मेरी समझमे गीता ऐसा नही सिखाती है। गीतामे या दूसरे किसी सस्कृत ग्रथमे अगर ऐसी वात लिखी है तो मै उसे धर्मशास्त्र माननेको तैयार नही हू। महज

संस्कृतमें कुछ लिख देनेसे कोई वाक्य शास्त्र-वाक्य नही बन जाता।

टंडनजीने मुझसे कहा—'तुमने तो उन बदरोको मारनेके लिए भी लिखा था, जो बेहद पीडा पहुचाते है और खेती उजाड देते है।' लेकिन मै तो किसी भी प्राणीको और यहा तक कि चीटीतकको भी मारना पसद नही करता। फिर भी खेती-बाडीका सवाल अलग है और मनुष्य-मनुष्यका अलग है।

तब टंडनजीने कहा कि 'शठ प्रति शाठ्य' यानी एक दातके बदलेमे दो दात निकालनेकी बात हम न करे और एक दातके बदलेमें एक दात तथा एक थप्पडके बदलेमे एक थप्पडकी बात भी नही करेगे, परतु हाथमें शस्त्र नही लेंगे, अपनी शक्ति नही दिखाएगे तो स्वरक्षा किस तरह होगी ?

इसके बारेमे मेरा यह जवाब है कि स्वरक्षा जरूर की जाय, पर मेरी स्वरक्षा कैसे होगी ? कोई मेरे पास आता है और कहता है कि बोल, राम-नाम लेता है या नही ? नही लेगा तो यह तलवार देख ! तब मै कहूगा, यद्यपि मै हरदम राम-नाम लेता हू, लेकिन तलवारके बलपर मै हरगिज न लूगा, चाहे मारा क्यो न जाऊ ? और इस तरह स्वरक्षाके लिए मै मरूगा। वैसे कलमा पढनेमें मेरा कोई धर्म जानेवाला नही है। क्या हो गया, अगर मै ठेठ अरबीमे बोलू कि अल्लाह एक है और उसका रसूल एक ही मुहम्मद पैगबर है। ऐसा बोलनेमे कोई पाप नही और इतने भरसे वे मुझे मुसलमान माननेको तैयार है तो मै अपने लिए फख्र-की बात समझूगा। लेकिन जब तलवारके जोरसे कोई कलमा पढवाने आवेगा तब कभी भी कलमा न पढूगा। अपनी जान देकर मै स्वरक्षा करूगा। इस बहादुरीको सिद्ध करनेके लिए मै जिदा रहना चाहता हू। इसके अलावा और तरीकेसे मै जीना नही चाहता। (प्रा० प्र०, १६ ६ ४७)

: ६७ :

काउंट लियो टाल्स्टाय

टाल्स्टायके लेख तो इतने सरस और इतने सरल है कि चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हे पढकर उनसे लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढकर साधारणत यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा। ('मेरे जेलके अनुभव'—महात्मा गाधी)

• • •

सवाल—काउंट टाल्स्टायको आप किस दृष्टिसे देखते हैं?

जवाब—मैं उनको अत्यत आदरकी दृष्टिसे देखता हू। अपने जीवनकी कितनी ही बातोके लिए मै उनका ऋणी हू। (य० इ०, पृष्ठ २०९)

• •

मेरी वर्त्तमान मानसिक दशा ऐसी नही है कि मै एक भी पर्व पुण्य-तिथि या एक भी उत्सव मनाने के योग्य रहा होऊ। कुछ दिनो पहले 'नव-जीवन' या 'यग इडिया' के किसी पाठकने मुझसे प्रश्न पूछा था, "आप श्राद्धके विषयमे लिखते हुए कह चुके है कि पुरखोका सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्य-तिथिके दिवस उनके गुणोका स्मरण करने से और उन्हे अपने जीवन-मे ओतप्रोत कर लेनेसे हो सकता है। इसीसे मै पूछता हू कि आप खुद अपने पुरखोकी श्राद्धतिथि कैसे मनाते है?" पुरखोकी श्राद्धतिथि जब मै जवान था तब मनाया करता था। परतु मै अभी तुम्हे यह कहनेमे शर्माता नही हू कि मुझे अपने पूज्य पिताजीकी श्राद्धतिथिका स्मरण तक नही है। कई वर्ष व्यतीत हो चुके। एक भी श्राद्धतिथि मनानेकी मुझे याद नही है, यहा तक कि मेरी कठिन स्थिति या कहिए कि सुदर स्थिति है, अथवा जैसेकि कई एक मित्र मानते है, मोहकी स्थिति है, कि ऐसा मेरा

मतव्य है कि जिस कार्यको सिरपर लिया हो उसीमे चौवीस घटे लगे रहना, उसका मनन करना और जहा तक वन पडे उसे सुव्यवस्थित रूपमे करनेमें ही सवकुछ आ जाता है। उसीमे पुरखोकी श्राद्धतिथिका मनाना भी आ जाता है। टाल्स्टाय-जैसोके उत्सव भी आ जाते है। .
तीन महीने पहले एलमर माड एव टाल्स्टायका साहित्य इकट्ठा करनेवाले दूसरे सज्जनोके पत्र आए थे कि इस शताव्दीके अवसरपर मैं भी कुछ लिख भेजू और इस दिन की याद हिंदुस्तानमें दिलाऊ। एलमर माडके पत्रका साराश या सारा पत्र तुमने मेरे अखवारोमें देखा होगा। उसके वाद मै यह वात विलकुल भूल गया था। यह प्रसग मेरे लिए एक शुभ अवसर है।

तीन पुरुषोने मेरे जीवनपर वहुत ही वडा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मै राजचन्द्र कविको देता हू, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खडी हो और दोनोके जीवनके विषयमे मै अधिक वाते जान लू तो नही जानता कि उस हालतमे प्रथम स्थान मै किसे दूगा। परतु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हू। टाल्स्टायके जीवनके विषयमे वहुतेरोने जितना पढा होगा उतना मैने नही पढा है। ऐसा भी कह सकते है कि उनके लिखे हुए ग्रथोका वाचन भी मेरा वहुत कम है। उनकी पुस्तकोमेसे जिस कितावका प्रभाव मुझपर वहुत अधिक पडा उसका नाम है 'Kingdom of Heaven is Within You' उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमे है। उसे वाहर खोजने जाओगे तो वह कही न मिलेगा। इसे मैने चालीस वर्ष पहले पढा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक वातोमे शकाशील थे। कई मर्तवा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मै हिंसक था, हिंसापर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसापर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढनेके वाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैने उनके दूसरे कई एक ग्रथ पढे। उनमे से प्रत्येकका

क्या प्रभाव पडा सो मै नही कह सकता, परत् उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पडा वह तो कह सकता हू ।

उनके जीवनमेसे मै अपने लिए दो बाते भारी समझता हू । वे जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे । उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही । वे अमीर-वर्गके मनुष्य थे । इस जगतके छप्पन भोग उन्होने भोगे थे । धन-दौलतके विषयम मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हे मिला था । फिर भी उन्होने भरी जवानीमे अपना ध्येय बदला । दुनियाके विविध रग देखनेपर भी, उनके स्वाद चखनेपर भी, जब उन्हे प्रतीत हुआ कि इसमे कुछ नही है तो उससे मुह मोड लिया और अत तक अपने विचारोपर पक्के रहे । इसीसे मैने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युगकी सत्यकी मूर्त्ति थे । उन्होने सत्यको जैसा माना वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया । सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नही किया । लोगोको दुख होगा या अच्छा लगेगा कि नही, इसका विचार किए बिना ही उन्हे जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई । टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिसाके बडे भारी प्रवर्तक थे । अहिसाके विषयमे परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहा तक मै जानता हू, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नही लिखा है । उससे भी आगे जाकर कहता हू कि अहिसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टायने किया था और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिदुस्तानमे कोई नही । ऐसे किसी आदमीको मै नही जानता ।

मेरे लिए यह दशा दुखदायक है, मुझे यह भाती नही है । हिदुस्तान कर्मभूमि है । हिदुस्तानमे ऋषि-मुनियोने अहिसाके क्षेत्रमे बडी-से-बडी खोजे की है, परतु हम केवल बुजुर्गोकी ही प्राप्त की हुई पूजीपर नही निभ सकते । उसमे यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते है ।

इस विषयमें न्यायमूर्ति रानडेने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमेंसे या जैन साहित्यमेंसे हम बड़ी-बड़ी बातें चाहे जितनी करते रहें अथवा सिद्धांतोंके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देते रहें और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहें फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसलिए रानडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूजीमें वृद्धि करते जाय। दूसरे धर्म-विचारकोंने जो लिखा हो, उसके साथ मुका-बिला करें,ऐसा करनेमें कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलता हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए, किन्तु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षोंने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और बरतनमें समानता भी नहीं है। प्रजाको अच्छा लगे या नहीं, जिस समाज-में वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगे या बुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहा नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दशा है!

हमारी अहिंसाकी निंदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओंको हर किसी तरहसे निभानेमें ही मानो हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमें तड़पते हो तो उसकी हम परवा नहीं करते, दुःखी होनेमें यदि स्वयं हिस्सा देते हों तो उसकी भी हमें चिंता नहीं। परंतु दुःखी प्राणीको कोई प्राणमुक्त करे अथवा हम उसमें शरीक हों तो उसमें हम घोर पाप मानते हैं। ऐसा मैं लिख चुका हूं कि यह अहिंसा नहीं है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए फिर कहता हूं कि अहिंसाका यह अर्थ नहीं है। अहिंसाके मानी हैं प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी हैं वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिंसामें दृढ़ता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिंदुस्तानमें शिक्षित समाजमें दिखाई नहीं देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होंने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमें भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नहीं। मैं

यह नही मानता कि उन्हे वह हरी छडी (सिद्धि) न मिली हो। 'नही मिली' यह तो उन्होने स्वय कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था, परतु यह मै नही मानता कि उन्हे वह छडी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते है। मै यह मान सकता हू, यदि कोई कहे कि उन्होने सब तरहसे उस अहिसाका पालन नही किया जिसका उन्हे दर्शन हुआ था। इस जगतमे ऐसा पुरुष कौन है कि जो अपने सिद्धातोपर पूरा अमल कर सका हो ? **मेरा मानना है कि देह-धारीके लिए सपूर्ण अहिसाका पालन अशक्य है।** जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ तो अहभाव रहता ही है। जबतक अहभाव है, शरीरको भी तभीतक धारण करना है ही। इसलिए शरीरके साथ हिसा भी रही हुई है। टाल्स्टायने स्वय कहा है कि जो अपनेको आदर्श तक पहुचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय हो समझना चाहिए। बस यहीसे उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यो-ज्यो हम आदर्शके समीप पहुचते है, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमे अग्रसर होते है, यह मालूम होता है कि अभी तो एक मजिल और बाकी है। कोई भी जल्दीसे मजिले तय नही कर सकता, ऐसा माननेमे हीनता नही है, निराशा नही है, किंतु नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नही मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमे अकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढे और उसी वक्त उन्हे वह हरी छडी मिल गई। उस छडीका वे वर्णन नही कर सकते, सिर्फ मिली इतना ही कह सकते है। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टाल्स्टायके जीवनमे जो विरोधाभास दीखता है वह टाल्स्टायका कलक या कमजोरी नही है, किंतु देखनेवालोकी त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोध तो छोटे-से आदमीका पिशाच है। हमारे जीवनमे कभी विरोध

आनेवाला ही नही, अगर यह हम दिखलाना चाहे तो हमे मरा ही समझे। ऐसा करनेमे अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल करना पडे तो कृत्रिम मेलमे असत्याचरण हो सकता है। सीधा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्योंमे दूसरोको विरोध दीखे भी तो उसमे हमे क्या सबब है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नही है, हमारी उन्नति है। उसीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नही है, बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमे कितने प्रयत्न करता होगा राम-रावणके युद्धमे कितनी विजये प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वय नही होता, देखनेवालोका तो हो ही नही सकता। यदि वह कुछ फिसला तो वह जगतकी निगाहमे कुछ भी नही है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदाकी पात्र नही है। इसीसे तो सतोने कहा है कि जगत जब हमारी निदा करे तब हमे आनद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब काप उठना चाहिए। जगत दूसरा नही करता। उसे तो जहा मैल दीखा कि वह उसकी निंदा ही करेगा। परतु महापुरुषके जीवनको देखने बैठे तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमे कितने युद्ध किए होगे और कितनी जीते प्राप्त की होगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। यही निष्फलता और सफलताके चिह्न है।

इतना कहकर मै यह समझाना नही चाहता कि तुम अपने दोषोको छिपाओ या पहाडसे दोषोको तनिकसे गिनो। यह तो मैने दूसरोके विषयमे कहा है। दूसरोके हिमालय-से बडे दोषोको राईके समान समझना चाहिए और अपने राई-से दोषोको हिमालयके समान बडा समझना चाहिए। अपनेमे अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमे ऐसा होना चाहिए कि अब जलमे डूब मरे। दिलमे आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डक तो कुछ नही है, उनका

जहर उतारनेवाले बहुत मिल सकते है, परतु असत्य और हिसाके दशसे बचानेवाला कौन है ? ईश्वर हमे उससे मुक्ति दे सकता है और हममे अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषोके बारेमे हम सचेत रहे। वे जितने बडे देखे जा सके उन्हे हम देखे और अगर जगत हमे दोषित ठहरावे तो हम ऐसा न माने कि जगत कितना कजूस है कि छोटे-से दोषको बडा बतलाता है। टाल्स्टायको कोई उनका दोष बतलाता तो वे उसे बडा भयकर रूप दे देते थे। उनका दोष बतानेका प्रसग दूसरेको शायद ही उपस्थित हुआ हो, क्योकि वे बहुत आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरोके बतानेके पहले ही वे अपने दोष देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चितकी कल्पना उन्होने स्वय की हो वह भी वे कर डाले हुए होते थे। यह साधुताकी निशानी है। इसीसे मै मानता हू कि उन्हे वह छडी मिली थी।

दूसरी एक अद्भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायने लिखकर और उसे अपने जीवनमे ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वय की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-सग्रहमे लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायने जगतके सामने ला रक्खा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमे ले आये। जगतमे जो असमानता दिखाई पडती है, दौलत व कगालियत नजर आती है उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये है। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसर अध्यायके आधारपर मै उसे यज्ञ कहता हू। गीताने कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायने बतलाई है। 'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमे उसे उडा नही देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नही करता उसे खानेका अधिकार नही है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डाले तो जो गरीबी जगतमे दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोको मारता है, क्योकि

उसका काम दूसरेको करना पड़ता है। टाल्स्टायने कहा कि लोग परोपकार करनेके लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं और इलकाब लेते हैं, परन्तु ऐसा न करके थोड़ा-सा ही काम करे अर्थात् दूसरोंके कंधोंपरसे नीचे उतर जाय तो बस यही काफी है। और यही सच्ची बात है। यह नम्रताका वचन है। करे तो परोपकार, किंतु अपने ऐशोआराममेंसे लेशमात्रभी न छोड़े तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्तने कहा है 'निहायकी चोरी और सूईका दान।' ऐसे क्या विमान आ सकता है ?

बात ऐसी नहीं है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोंने नहीं कहा हो, परंतु उनकी भाषामें चमत्कार था, क्योंकि जो कहा उसका उन्होंने पालन किया। गद्दी-तकियोंपर बैठनेवाले, मजदूरीमें जुट गये, आठ घंटे खेती का या दूसरा मजदूरीका काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्यका कुछ काम ही नहीं किया था। जबसे उन्होंने शरीरकी मेहनतका काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होंने अपने पुस्तकोंमें जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है', यह उन्होंने इस यज्ञकालकी मजदूरीमेंसे बचते वक्तमें लिखा था। मजदूरीसे उनका शरीर न घिसा और ऐसा उन्होंने स्वयं मान लिया था कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रंथोंके अभ्यासी कह सकते हैं कि यह बात सच्ची है।

यदि टाल्स्टायके जीवनका उपयोग करना हो तो उनके जीवनसे उल्लिखित तीन बातें जान लेनी चाहिए। युवक-संघके सभ्योंको ये वचन कहते हुए मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं एक स्वेच्छाचारका और दूसरा संयमका। यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था तो तुम देख सकते हो कि दुनियामें सबके लिए और विशेषतः युवकोंके लिए संयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिंदुस्तानमें तो खास तौरपर है ही। देशमें पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाएं, मेरी दृष्टिमें जहरी हवायें, आती हैं। टाल्स्टायके जीवनके समान

सुदर हवा भी आती है सही, परतु वह प्रत्येक स्टीमरमे थोडे ही आती है। प्रत्येक स्टीमरमे कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर वम्वई या कलकत्तेके बदरगाहमे आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमे परदेशी साहित्य भी आता ह। उनके विचार मनुष्य-को चकनाचूर करनेवाले होते है, स्वेच्छाचारकी तरफ लेजानेवाले होते है। . . . तिलक महाराज कह गये है कि हमारे यहा 'कान्श्यन्स' का पर्याय-वाची शब्द नही है। हम यह नही मानते कि प्रत्येक व्यक्तिके 'कान्श्यन्स' होता है। पश्चिममे यह बात मानते है। व्यभिचारीके लिए, लपटके लिए, कान्श्यन्स क्या हो सकता है ? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्श्यन्स' की जड ही उडा दी। हमारे ऋषि-मुनियोने कहा है कि अतर्नाद सुननेके लिए अतर्कर्ण भी चाहिए, अतर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए सयमकी अवश्यकता है। इसलिए पातजल योगदर्शनमे योगाभ्यास करनेवालोके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखने वालोके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय सयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नही है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमे सयमी रहकर बताया। मै चाहता हू, प्रभुसे प्रार्थना करता हू कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सके जैसे कि आखोके आगेका दीया स्पष्ट देखते है और आज एकत्र हुए है तो ऐसा निश्चय करके बिखरे कि टाल्स्टायके जीवनमेसे हम सयमकी साधना करनेवाले है।

निश्चय करलो कि हम सत्यकी आराधना छोडनेवाले नही है। सत्यके लिए दुनियामे सच्ची अहिसा ही धर्म है। अहिसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमे कोई ले सका ही नही। उस प्रेमसागरसे हम सरावोर हो जाय तो हममे ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमे सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते है। यह बात कठिन अवश्य है, किंतु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारभमे प्रार्थनामे सुना कि शकर हो या विष्णु, ब्रह्मा हो

या इन्द्र, बुद्ध हो या सिद्ध, मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो, जिसने कामको जीता हो, जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लगडे प्राणियोको न मारनेमे समाप्त नही होती। उसमें धर्म हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी बहुत आगे बढा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नही हुए वह लूले-लगडे प्राणियोको बचावे तो उससे क्या होना जाना था! ईश्वरके दरबारमे इसकी कीमत बहुत कम कूती जायगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेबर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमे अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोका उपभोग करनेको जीवित रहना नही कहते है। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नही है। तुम कसरत करो, शरीरको मजबूत बनाओ तो इसकी मैं अवगणना नही करता, परतु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमे जो बताया गया है, वह यह नही है। जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगोको कम करता जावेगा। इस आदर्श साधनमे ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किसीने सर्वागमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे, किंतु फरहादने जिस तरह शीरीके लिए पत्थर फोडे उसी तरह हम भी पत्थर तोडे। हमारी यह शीरी अहिंसा है। उसमे हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, बल्कि उसमे तो सभी कुछ समाया है।[1] (हि० न० २० ९ २८)

रस्किनका Fors Clavigera (फोर्स क्लेविजेरा) बापूने बहुत रसके साथ पढना शुरू किया और आज कहने लगे—"यह पुस्तक तो बार-बार

---

[1]गत १० सितबरको महर्षि टाल्स्टायकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर सत्याग्रहाश्रममें दिए गये व्याख्यानका साराश।

पढे तो भी थकान नही मालूम होती। इसमेसे तो नई-नई बाते सूझती है।"

शिक्षाकी बुनियादके बारेमे कुछ विचार बहुत सुन्दर लगनेके कारण इस विषय पर एक छोटा-सा लेख आश्रमको भेजा।[१] मैने (महादेवभाई) रस्किन

---

[१] जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहात १८८०के आसपास हुआ। उसकी एक पुस्तकका मुझपर बहुत ही गहरा असर पडा और उसीके सुझाये हुए रास्तेपर मैने एक क्षणमें जिंदगीमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होगे। उसने सन् १८७१में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोकी तारीफ मैने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामे पढी थी। मगर वे पत्र मै आजतक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आ गयी थी, उसे यहा पढा। उसमें भी उन पत्रोका उल्लेख था। इस परसे मैने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका है। वह बेचारी गरीब, इसलिए ये पुस्तकें कहासे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठे विनयसे मैने उसे आश्रमसे रुपया मगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनेसे ज्यादा समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर'के मालिक है। उनसे मै विलायतमे मिला भी था। उन्होने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोमें छपाये है, सो भेज दिये। इनमेंसे पहला भाग मै पढ रहा हू। इनके विचार उत्तम है और हमारे बहुतसे विचारोसे मिलते-जुलते है—यहातक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैने जो कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते है, वह रस्किनकी इन रचनाओसे चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जो विचार या आचार जिससे लिया हो उसका नाम छिपाकर

और टॉल्स्टॉयके बीच एक समानता सुझाई, "टाल्स्टायने अपना कलानिष्ठ जीवन छोडकर सेवानिष्ठ जीवनकी शुरुआत की और कलाकी पुस्तकोका लिखना बिलकुल त्याग कर ऐसी घरेलू पुस्तकें और कहानिया लिखना शुरू किया, जिनसे ग्राम लोगोकी उन्नति हो। रस्किनके जीवनका पहला हिस्सा भी कलानिष्ठाका था। इस कलानिष्ठाके कालमें उसने मॉडर्न

यह बताया जाय कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमेंसे इस बार तो थोडा ही देना चाहता हू। वह कहता है कि इस कथनमें गभीर भूल है कि बिलकुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और बादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजोकी और तीन गुणोकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मत्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छ चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्य-मात्रको बचपनसे—फिर भले वह लडका हो या लडकी—जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहते है, इन्हें किस तरह रखा जाय और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमडमें फिरते है और आत्मानद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शका रखते है, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिनमें प्रेम नहीं यानी अहिसा नहीं, जो जीवमात्रको अपने कुटुबी नहीं मान सकते, वे जीनेका मत्र कभी नहीं साध सकते।

पेण्टर्स, स्टोन्स ऑव वेनिस आदि पुस्तकें लिखी। बादमें उसे लगा कि सौन्दर्यकी उपासना चीज तो अच्छी है, मगर आसपास दुःख, दारिद्र्य और फूट हो, तो सौन्दर्यका आनद कैसे लूटा जा सकता है ? इसलिए उसने अपनी कलम खून और आँसुओंमें डुबोई और 'अण्टु दिस लास्ट' ('सर्वोदय') लिखा। जो आलोचना टाल्स्टायकी हुई वह रस्किनकी भी हुई।" बापूने कहा—

यह तुलना एक खास हदके बाद नहीं रहती, क्योंकि टाल्स्टायने तो कला-जीवनकी यानी अपने भूतकालकी निंदा की, उससे इन्कार किया, जबकि रस्किनने Unto this Last (अण्टु दिस लास्ट) और Fors (फोर्स) लिखकर अपने कला-जीवन पर कलश चढा दिया।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यह तो फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढगसे दे सकू तो ठीक ही है। आज तो इतनेसे ही सतोष कर लेता हू। साथ ही इतना और कह दू कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ और विकसित भाषामें और अग्रेज जनता समझ सके इस ढगसे पेश किया है। यहा मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे जैसा आदमी मुकाबला नही कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब भाषा-मात्रका प्रेम व्यापक होगा। तब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकल आयेंगे और वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे, जितनी प्रभावशाली अग्रेजी रस्किनने लिखी है।

२८.३.३२

यरवदा मदिर

मैंने कहा—'टाल्स्टाय तो क्रान्तिकारी था, इसलिए उसने जीवनमें भी परिवर्तन किया, और रस्किन विचार देकर बैठा रहा।"

बापू बोले—

यह तो बहुत बड़ा फर्क है न? टाल्स्टायका-सा जीवन-परिवर्तन रस्किनमें नहीं है।

वल्लभभाईने कहा—"लेकिन आज रस्किनका नाम तो विलायतमें सचमुच कोई नहीं लेता न?"

बापू बोले—

हां, नहीं लेता, मगर रस्किन भुलाया नहीं जा सकता। उसका जमाना आ रहा है। ऐसा समय आ रहा है कि जिसने रस्किनको नहीं सुना और उसके बारेमें लापरवाही दिखाई, वह रस्किनकी तरफ मुड़ेगा।
(म० टा०, २८ ३ ३२)

टाल्स्टाय एक बड़ा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नहीं है तब लड़ाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिंसासे पैदा हो सकता है। (प्रा० प्र०, १० ६ ४७)

: ६८ :

अमृतलाल वि० ठक्कर

ठक्करबापा आगामी २७ नवंबरको ७० वर्षके हो जायंगे। बापा हरिजनोंके पिता हैं और आदि-वासियों और उन सबके भी, जो लगभग

हरिजनोकी ही कोटिके है और जिनकी गणना अर्द्धसभ्य जातियोमे की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवास-वासियोकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७० वी जयती मनानेकी है कि जिससे ठक्करबापाके हृदयको सात्विक सतोष प्राप्त हो। ये लोग ठक्करबापाके जन्म-दिवसपर, हरि-जन-कार्यके निमित्त, उन्हे ७०००) की एक विनम्र थैली भेट करना चाहते है। इसके लिए उन्होने मेरा आशीर्वाद मागा है। यह भी चाहते है कि उनके इस शुभ प्रयत्नको मै प्रकाशमे ला दू। पर मैने तो उन्हे झिडका है कि उनमे आत्म-श्रद्धाकी कमी है। ठक्करबापा एक विरल लोकसेवक है। वे विनम्र स्वभावके है। वे प्रशसाके भूखे नही। उनका जीवन-कार्य ही उनका एकमात्र सतोष और विश्राम है। वृद्धावस्था उनके उत्साह-को मद नही कर सकी है। वे स्वय एक सस्था है। एक बार जब मैने उनसे कहा कि वे थोडा आराम ले ले तो तुरत उनका जवाब आया, "जब इतना तमाम काम करनेको पडा है, तब मै आराम कैसे ले सकता हू? मेरा काम ही मेरा आराम है।" अपने जीवन-कार्यमे वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे है, उसे देखकर तो उनके आस-पास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते है। इतने महान् कार्यके लिए और उस जन-सेवकके लिए, जो अपने विशाल वृद्ध कधोपर इतना भारी भार वहन कर रहा है, ७०००) की थैली एक प्रकारका अपमान है। कार्यकर्त्ताओका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिंदुस्तानसे वे ७०,०००) रु० से कम तो किसी हालतमे इकट्ठे नही करेगे। महान् सेवा-प्रवृत्ति और उसके सेवा-रत पिताको देखते हुए, यह ७०,०००) की रकम भी कोई चीज नही है। लेकिन एक महीनेके अदर यह रकम इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है। (ह० से०, २१ १० ३९)

भारत-सेवक-समितिको अपने प्राणोकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र श्रीठक्करबापा-कोषके लिए दस रुपयेका चदा भेजते हुए लिखते है

"श्री ठक्करबापाकी प्रशसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दका मैं समर्थन करता हू । इस सबधमें मेरी एक ही सूचना है और वह यह कि बापा-के पुण्य कार्योका सारा श्रेय भारत-सेवक-समितिको महज इसलिए नही मिलना चाहिए कि बापा उसके एक सदस्य है । समितिने बिना किसी हिचकिचाहटके उनको अपना सदस्य माना है और बापाके द्वारा मानव-जातिकी जो महान सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही गर्व किया है ।"

यह शिकायत बिलकुल ठीक है । दरअसल, बात तो यह है कि बापाकी कई विशेषताओका उल्लेख करते हुए मै उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हू, इसका मुझे खयाल ही न रहा । बात यह है कि भारत-सेवक-समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेसे पहले बापा म्युनि-सिपल कॉरपोरेशन, बबईके रोड-इजीनियरका काम करते थे । हरिजन सेवक-सघको उनकी सेवाए भारत-सेवक-समितिकी ओरसे ही बतौर कर्जके मिली है । मै मानता हू कि मेरी ओरसे समितिको किसी प्रकारके विज्ञा-पनकी जरूरत नही है और चूकि मै अपने आपको इस समितिका एक स्वत नियुक्त और अनियमित सदस्य समझता हू, इसलिए समितिकी प्रशसामे कुछ लिखना मै अपनी ही प्रशसा करनेके समान समझता हू । लेकिन जरूरत पडनेपर मै ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हू । समितिके नामका उल्लेख तो अकस्मात् ही छूट गया था । मुझपर कामका काफी बडा बोझ रहता है । मैने सोचा तो था कि मै बापाका जिक्र करते हुए भारत-सेवक-समितिका भी जिक्र करूगा, लेकिन आखिर जैसा कि जाहिर है, बात ध्यानमे न रही । (ह० स०, ४ ११ ३९)

बापाकी इकहत्तरवी जयती मनानेमे मुझे हाजिर होना चाहिए । लेकिन मै इस लायक नही रहा हू । मेरी तो हार्दिक आशा है कि बापा सौ वर्ष पूरे करे । बापाका जन्म ही दलितोकी सेवाके लिए है, वे भले ही अस्पृश्य हो या भिल्ल या सताल या खासी इत्यादि । उनकी कदर करनेमे

भी हम दलितोकी कुछ-न-कुछ सेवा करते है । बापाकी सेवाने हिंदुस्तानको बढाया है । (ह० से० ६ १२ ३६)

: ६६ :

एस० वी० ठकार

श्री एस० वी० ठकार एक मूक परतु कुशल सेवक है । हरिजनोकी सेवाके उपरात उन्होने और भी कई क्षेत्रोमे काफी काम किया है । उन्होने मुझे एक सविस्तर रिपोर्ट भेजी है । उसमे उन्होने वर्णन दिया है कि कैसे एक जगह भिल्लोके दो पक्षोमे सख्त झगडा पैदा हो गया था, परतु सरकार की मदद लेकर वह बीचमे पडे, उससे फसाद होते-होते रुक गया । भिल्लोके एक अत्यत प्रभावशाली सुधारक स्वर्गस्थ श्रीगुले महाराज थे, वह खुद भिल्ल थे । उनकी सरलता और हृदयकी सच्ची लगनके कारण उनकी गहरी छाप भिल्ल जनतापर पडी थी । उससे प्रेरित होकर उन्होने हजारो-की सख्यामे शराब पीना और दूसरी कई बुराइयोको छोड दिया था । साल पहले उनका देहात होनेपर एक और आदमीने उनकी जगह ली । सुधारक पक्षने, जिन लोगोने बुराइयोको नही छोडा था उनका बहिष्कार किया, इससे काफी वैमनस्य उनमे पैदा हो गया है । एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि अभी मारपीट शुरू होगी । श्रीठकारके ठीक समयपर प्रयत्नसे वह तो रुक गई, परतु उसके साथ सुधारकी प्रवृत्तिको भी धक्का पहुचा है । अभी सुधारकोके विरोधियोका पक्ष प्रबल है और अगर पहलेकी तरह आदोलनमे शुद्ध धार्मिक प्रेरणा फिरसे पैदा न हो सकी तो अदेशा है कि आदोलन बिल्कुल बैठ जायगा । इसमेसे जैसे कि श्री-ठकार लिखते है हमे पाठ तो यह मिलता है कि हमारा हेतु चाहे कितना नेक हो अगर उसमे हिसाका मिश्रण हो तो सब काम बिगड जाता है ।

किसी भी सुधारक प्रवृत्तिकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि स्वेच्छा और ज्ञानपूर्वक उसे जनताका सहकार मिले। बलात्कारसे हम लोगोकी आदतें सुधार नही सकते। (ह० से०, १८ १ ४२)

: ७० :

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

रवीद्रनाथ ठाकुरके बडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'बडे दादा' के नामसे पहचाने जाते है उनका, पिताका जैसा पुत्रके प्रति प्रेम होता है वैसा ही, मुझपर प्रेम है। वे मेरे दोष देखनेके लिए साफ इन्कार करते है। उनके खयालसे तो मैने कोई गलती ही नही की। मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिंदू-मुसलमान ऐक्यकी मेरी कल्पना, अस्पृश्यताका मेरा विरोध सब यथायोग्य है और इसीमे स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है। पुत्रपर मोहित पिता उसके दोष नही देखता है, उसी प्रकार बडे दादा भी मेरे दोष देखना नही चाहते है। उनके मोह और प्रेमका तो भला मै यहापर उल्लेख ही कर सकता हू उसका वर्णन मुझसे हो ही नही सकता। उस प्रेमके योग्य बननेका मै प्रयत्न कर रहा हू। उनकी उम्र ८० से भी ज्यादा है। लेकिन छोटी-से-छोटी बातकी वे खबर रखते है। उन्हें यह भी खबर है कि हिंदुस्तानमे आज क्या चल रहा है। वे दूसरोसे पढाकर सुनते है और यह सब खबर प्राप्त करते है। दोनो भाइयोको वेदादिका गहरा अभ्यास है। दोनो सस्कृत जानते है। दोनोकी बातचीतमे उपनिषद और गीताके मत्र और श्लोक बराबर सुनाई देते है। (हि० न०, ११ ६ २५)

इस बातपर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नही रहे, बडा ही कठिन है। शातिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बडे दादाको चिरशाति प्राप्ति हुई है। उनकी उम्र ९० वर्षके लगभग थी, फिर भी उनमे जो आनद और उत्साह दिखाई देता था उसके कारण उनके पास जानेवालेको कभी यह मालूम ही नही होता था कि उनके भौतिक अस्तित्वके अव थोडे ही दिन बाकी है। प्रतिभासपन्न पुरुषोके उस कुटुवमे बडे दादाका स्थान महत्वका था। वे विद्वान थे, सस्कृत और अग्रेजी दोनो अच्छी तरह जानते थे, लेकिन इसके अलावा वे बडे धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धासे उपनिषदोको ही मानते थे, फिर भी ससारकी दूसरी धर्म-पुस्तकोसे प्रकाश पानेके लिए भी वे स्वतत्र थे। उन्हें अपने देशसे बडा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणोकी विरोधिनी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे, लेकिन इसके साथ यह नही कि वे उसके राजनैतिक महत्वको भी न समझते हो। वे चरखेमे दिलसे विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्थामे भी उन्होने खादी धारण की थी। एक युवकमे जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साहके साथ वे वर्तमान बातोको जाननेके लिए प्रयत्न करते थे। बडे दादाकी मृत्युसे हम लोगोमेसे एक साधु, तत्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मै कवि और शाति-निकेतनवासियोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हू। (हिं० न०, २१ १ २६)

: ७१ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी, पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि ससार भरके महाकवि गिने जा रहे है। यदि अभी नही तो कम-से-कम बहुत जल्द उनका नाम ससारभरके महाकवियोमे गिना जाने लगेगा। दिन-पर दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ रहा है, जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिन-पर-दिन बढती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बडी सेवा यह हुई है कि उन्होने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका सदेश ससारको सुनाया है। इसीसे रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिन्ता है है कि भारतवासी भारत-माताके नामसे कोई झूठा या सारहीन सदेशा ससारको न सुनावे। हमारे देशका नाम न डूबने पावे, इस बातकी चिंता करना रवीन्द्रबाबूके लिए स्वाभाविक ही है। उन्होने लिखा है कि मैंने इस आदोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भरसक कोशिश की, पर मुझे निराश होना पडा। उन्होने यह भी लिखा है कि असहयोग आदोलन-के शोरगुलमे मुझे अपनी हृदय-वीणाके लिए कोई उचित स्वर नही मिल सका। तीन जोरदार पत्रोमें उन्होने इस आदोलनके सबधमे अपना सदेह प्रकट किया है। अतमे वह इस नतीजेपर पहुचे है कि असहयोगका आदो-लन ऐसा गभीर और गौरवपूर्ण नही है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके, जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए है। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धात खडन और निराशाका सिद्धात है। रवीन्द्रबाबूकी समझमें वह सिद्धात भेदभाव और अनुदारतासे भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमे भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिंता है उसके लिए हर हिंदुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी

बात हुई है कि उन्होने अपना सदेह ऐसी सुदर और सरल भाषामें प्रकट कर दिया।

मै रवीन्द्रबाबूके सदेहोका उत्तर बडी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूगा। मै रवीन्द्रबाबू या उन लोगोको जिनके हृदयपर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पडा है शायद विश्वास न दिला सकू, पर मै उनको और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चहता हू कि असहयोगके उद्दे-श्यके सबधमे उनका जो कुछ सदेह है वह बिल्कुल निर्मूल है। मै उन्हे यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धातको स्वी-कार किया है तो इसमे उनके शर्मानेकी कोई बात नही है। अगर यह सिद्धात अमली तौरपर काममे आनेमे असफल हो तो सिद्धातका दोष न कहा जायगा, क्योकि अगर सच्चाईको अमली तौरपर काममे लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखाई पडे तो इसमे सच्चाईका कोई दोष नही है। हा, यह सभव है कि असहयोग-आदोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो। तब हिंदुस्तान और ससार दोनोको उस उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। पर हिंदुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोनोको छोडकर और कोई उपाय नही था। अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनना है तो वह इन्ही दोनोमेसे चुन सकता है।

रवीन्द्रबाबूको इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग-आदोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमे एक बडी भारी दीवार खडी करना चाहता है। इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का मशा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दबावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय। यह आदोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमें हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके। हमारे विरुद्ध दल बाधकर हमे कोई नुकसान न पहुचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके जोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममे लाये जा रहे है वे न लाये जा सके। असहयोग-आदोलन

इस बातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा बिना और हमारे जाने बिना हमसे बुराईमे सहयोग कराया जा रहा है।

रवीन्द्रबाबूको अधिकतर चिंता विद्यार्थियोके बारेमे है। उनका मत यह है कि जबतक दूसरे स्कूल न खुल जाय तबतक उनसे सरकारी स्कूल छोडनेको न कहा जाय। इस बातमे मेरा उनसे पूरा मतभेद है। मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नही समझा है। अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्तीभर भी नही होती। मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्रनिर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई सबध नही है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोने हमें बुजदिल, लाचार और अविश्वासी बना दिया है। उनके सबबसे हमारे हृदयमें असतोष तो उत्पन्न हो गया है, पर उस असतोषको दूर करनेके लिए कोई दवा हमे नही बतलाई गई है, जिससे हमारे हृदयोमे निराशाने घर कर लिया है। सरकारी स्कूलोका उद्देश्य हमे क्लर्क और दुभाषिया बनाना था। वह पूरा हो गया है। किसी सरकारकी धाक तभी कायम रहती है जब प्रजा स्वय अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है। अगर सरकार हमे गुलाम बनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है, तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन सस्थाओसे अपना नाता तोड दे जिनमे हम स्वय अपनी इच्छासे अबतक सहयोग दे रहे है। जातिकी आशा उसके नौजवानोपर निर्भर होती है। मेरा यह मत है कि अगर हमे इस बातका पता लग जाय कि यह सरकार पूरी तरहसे मरी हुई है तो अपने लडकोको उसके स्कूलो और कालेजोमे भेजना हमारे लिए पापका काम होगा।

मैंने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका खडन इस बातसे नही हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली बारका जोश ठडा होते ही अपने स्कूलोमे फिरसे वापस चले गये। उनका अपनी बातोसे टल जाना इस

वातका सबूत नही है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है, बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस कदर नीचे गिर गये है। अनुभवसे यह पता लगा है कि राष्ट्रीय स्कूलोके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमे भरती नही हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे विना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोडा है उन्होने देशकी बहुत बडी सेवा की है।

वास्तवमे रवीन्द्रबाबू जडसे ही असहयोग सिद्धातके विरुद्ध है। ऐसी हालतमे अगर उन्होने स्कूल और कालेजोसे विद्यार्थियोके निकलनेका विरोध किया तो कोई बडी बात नही है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमे ऐसी हरएक वस्तुसे धक्का पहुचता है जिसका उद्देश्य खडन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओके विरोधमे उठ खडी होती है जो हमे किसी वस्तुका खडन करनेके लिए कहती है। मै उनका मत उन्हीके शब्दोमे आपके सामने रख देता हू—"एक महाशयने इस वर्तमान आदोलनके पक्षमे मुझसे अक्सर यह कहा है कि प्रारभमे किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मै यह मानता हू कि वास्तवमे बात ऐसी ही है, पर मै इस बातको सच्ची नही मान सकता। भारतवर्षमे ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है, पर बौद्ध धर्मका उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खडनात्मक पक्षकी ओर खीचता है। इसीलिए बुद्ध भगवानने इस बात पर जोर दिया कि ससार दु खमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस बातपर जोर दिया कि ससार आनदमय है और उस आनदको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।" इन वाक्यो और इसी तरहके दूसरे वाक्योसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते है। मेरी नम्र रायमे किसी बातका खडन या अस्वीकार करना

वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मडन करना। असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना। सब धर्म हमें यही शिक्षा देते हैं कि दो विरोधी शक्तिया हमपर अपना प्रभाव डाल रही है, और मनुष्य जीवनका प्रयत्न इसी बातमे रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्यको अस्वीकार करता रहे। बुराईके साथ असहयोग करना हमारा उतना ही कर्तव्य है जितना भलाईके साथ सहयोग करना। मै साहससे कह सकता हू कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खडनात्मक या अभाव-सूचक दिशा बतलाकर बौद्ध धर्मके साथ बडा अन्याय किया है। हा, मै मानता हू कि उन्होने यह अन्याय जान-बूझकर नही किया। मै साहसके साथ यह भी कह सकता हू कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है, उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है। शरीरके बधनसे छुटकारा पाना या उस बधनका बिलकुल नाश हो जाना, आनद प्राप्त करना है। मै अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खीचना चाहता हू कि उपनिषदोके रचयिताओने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन 'नेति' किया है।

इसलिए मेरी समझमे रवीन्द्रबाबूको असहयोग-आदोलनके अभावात्मक या खडनात्मक रूपपर चौकनेकी कोई जरूरत न थी। हम लोगोने 'नही' कहनेकी शक्ति बिलकुल गवा दी है। सरकारके किसी काममे 'नही' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था। जिस तरहसे कि बोनेके पहले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान-बूझकर पक्के इरादेके साथ असहयोग करना हम लोगोने जरूरी समझा है। खेतीके लिए जितनी बुआई जरूरी है, उतनी ही निराई जरूरी है। वास्तवमे उस समय भी हर रोज निराई जरूरी है जबकि फसले उगती रहती है। इस असहयोग-आदोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमत्रण दिया है कि जिस

तरहसे हरएक जातिका हक और हरएक अच्छी सरकारका धर्म है, उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिए कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग-आदोलन जातिकी ओरसे इस बातका नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोतक दूसरोकी सरक्षकतामे रहकर सतोष न करेगी। हिंदुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धातके स्थानपर असहयोगके निर्दोष प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धातको ग्रहण किया है। अगर हिंदुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रबाबू देख रहे है तो वह सिर्फ शातिपूर्ण असहयोग आदोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहे तो ससारको अपना शातिपूर्ण सदेशा सुनावे और इस बातका भरोसा रखे कि हिंदुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सदेशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे है, उसे असली तौरपर पैदा करनेको ही यह आदोलन किया गया है। हिंदुस्तान जो यूरोपके पैरोके नीचे पडा हुआ है, ससारको कोई आशा नही दिला सकता। स्वतत्र और जाग्रत भारत ही दुखी ससारको शाति और सुखका सदेशा सुना सकता है। असहयोग-आदोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिसमे भारतवर्ष एक ऊचे स्थानसे अपना सदेशा ससारको सुना सके। (य० इ०, १९२१)

• •

टैगोरकी क्या बात! उन्होने क्या नही साधा? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होने छोडा है? और सबमे कमाल एसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहा तो है ही नही, लेकिन दुनियामे भी होगा या नही, इसमे मुझे शक है।

वल्लभभाई बोले—"मगर उनका शातिनिकेतन चलेगा? वे तो बूढे हो गये और उनकी जगह लेनेवाला कोई रहा नहीं।" बापूने कहा—

. . .बात तो जरूर मुश्किल है। मगर यह तो कैसे कहा जा सकता

है। भगवानने इतनी असाधारण प्रतिभावाला आदमी पैदा किया तो उसे यह तो मजूर नही होगा कि उसका काम योही बद हो जाय।

वल्लभभाई कहने लगे—यह तो ठीक है। मगर, उनकी जो असाधारणताए है उन सबको कौन किस क्षेत्रमें ला सकेगा? मैंने (महादेवभाई) कहा—नदलाल बोस, असित हलदार-जैसे उत्तम चित्रकार वहा मौजूद हैं। विधुशेखर शास्त्री भी हैं। वल्लभभाई बोले—चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाए कितनी चल सकती हैं? हमारा तो खादी और चरखा है। उसके लिए बापू थोड़े ही चाहिए! ये तो बापू न होगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होंने कोई ऐसी चीज नहीं दी, जिसे लोग अपने हाथोमें ले सकें और जो अखड रूपमें चलती ही रहे।

मैंने तुरत कहा—टैगोरके बारेमें यह कहा जा सकता है कि आज तक उनके यहा असाधारण प्रतिभावाले लोग खिचकर न आये हो तो शायद अब उनके कामको जारी रखनेके लिए वे आ जाय। शातिनिकेतनको उनके आदर्शके अनुसार ही जारी रखनेके लिए नये आदमी क्यो न शरीक होगे? बापूने कहा—

आज उनकी प्रचड शक्तिसे ज्यादा लोग आकर्षित न हो तो भविष्यमे आकर्षित हो सकते है। आज भी रामानद चटर्जी-जैसे लोग तो है ही और ईश्वर कृपा हो तो और लोग भी आ सकते है। और उनका श्रीनिकेतनका काम तो जारी ही रहेगा। एमहर्स्ट-जैसा आदमी विलायत छोड़कर इसे चलानेके लिए चला आए तो मुझे आश्चर्य नही होगा। (म० डा०)

• •

आप (डा० कागावा) शातिनिकेतन देखे बगैर चले जाये, यह कैसे हो सकता है?

कागावा—मैंने कविके काव्योको पढा है। मुझे वे बहुत प्रिय है।

गाधीजी—किंतु कवि आपको प्रिय है न?

कागावा—मैं रोज 'गीताजली' पढा करता हू तो क्या रोज कविका

सान्निध्य अनुभव नहीं करता ? हो सकता है कि कवि अपने काव्योसे महान् हो।

गाधीजी—कभी-कभी इसका उल्टा सत्य होता है, पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमे यह कहूगा कि अपने महाकाव्योसे भी वे महान् है। अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हू। आपके प्रवासक्रममें पाडिचेरी है या नही ? आप अगर अर्वाचीन भारतवर्षका अध्ययन करना चाहते है, तो शातिनिकेतन और अरविंद-आश्रम आपको देखने ही चाहिए। (ह० से०, २८.१.३९)

• •

शातिनिकेतनमे आगमन मेरे लिए एक तीर्थ-यात्राके समान था। बहुत दिनोसे मेरी इच्छा वहा जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका। मेरे लिए शातिनिकेतन नया नही है। १९१५ मे जब इसकी रूपरेखा बन रही थी तब मै वही था। इसका मतलब यह नही कि अब इसका निर्माण-क्रम रुक गया है। गुरुदेव खुद विकसित हो रहे है। वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई अतर नही पडा है। इसलिए जबतक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके ऊपर है तबतक शातिनिकेतनकी वृद्धि रुक नही सकती। वहा प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योकि वह सहज है। मुझे तो इसने अवश्य ही ऊचा उठाया। कृतज्ञ छात्रो और अध्यापकोने उनको जो उपाधि 'गुरुदेव' की दे रखी है उससे शातिनिकेतनमे उनकी स्थिति ठीक-ठीक व्यक्त होती है। यह स्थिति उनकी इसलिए है कि वह उस स्थान और वहाके समूहमें निमग्न हो गये है, अपनेको भूल गये है। मैने देखा कि वह अपनी प्रियतम कृति 'विश्व-भारती' के लिए जी रहे है। वह चाहते है कि यह फूले-फले और अपने भविष्यके विषयमे निश्चिन्त हो जाये। इसके बारेमे उन्होने मुझसे देरतक बातचीत की। लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नही था, इसलिए जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुवह ही हमारे कार्यके 'विश्व-भारती'-केंद्रका विहगावलोकन किया है। मै नहीं जानता कि आपने इसकी मर्यादाका क्या अदाज लगाया है। आप जानते है कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह सस्था राष्ट्रीय है, तथापि अन्त भावनाको दृष्टि से यह एक सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है और अपने साधनोके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी सस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक वडे गाढे अवसरपर आपने विल्कुल टूटनेसे इसे वचाया और अपने पावपर खडे होनेमें इसकी सहायता की, आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके निकट सदा आभारी है।

और अव शातिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मै आपसे जोरदार अपील करता हू कि यदि आप इसे एक राष्ट्रीय सपत्ति समझते है तो इस सस्थाको अपने सरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। 'विश्वभारती' उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोसे यह विशेष देख-रेख पानेका दावा कर सकती है।

प्रेमपूर्वक

रवींद्रनाथ ठाकुर

इस सस्थाको अपने सरक्षणमे लेनेवाला मै कौन होता हू? चूकि यह एक ईमानदार आत्माकी कृति है, इसलिए ईश्वरका सरक्षण इसके साथ है। वह कोई दिखावेकी चीज नही है। गुरुदेव स्वय सार्वदेशिक—अतर्राष्ट्रीय हैं, क्योकि वह सच्चे रूपमें राष्ट्रीय हैं। इसलिए उनकी सपूर्ण कृतिया सार्वदेशिक है और 'विश्वभारती' उन सवमे श्रेष्ठ है। मुझे इसमे किसी तरहका सदेह नही कि जहातक आर्थिक वोझका सवध है इसके भविष्यके वारेमें गुरुदेवको सपूर्ण चितासे मुक्त कर देना चाहिए।

उनकी हृदयग्राही अपीलके जवाबमे जो कुछ सहायता करने लायक मै हू, करनेका मैने उनको वचन दिया है। (ह० से०, २-३-४०)

• •

"मै यहा आप लोगोके लिए कोई अतिथि या महमान बनकर नही आया हू। शातिनिकेतन तो मेरे लिए घरसे भी अधिक है। जब १६१४ मे मै इगलैडसे लौटनेवाला था तब यही तो मेरे दक्षिण अफ्रिकावाले कुटुबका प्रेमपूर्वक आतिथ्य हुआ था और यहा मुझे भी करीब एक महीनेतक आश्रय मिला था। जब मै आप सब लोगोको अपने सामने एकत्रित देखता हू तो उन दिनोकी याद मेरे हृदयपर छा जाती है। मै कितना चाहता हू कि यहा ज्यादा दिन ठहरू, पर अफसोस कि यह सभव नही। यहा कर्तव्यका प्रश्न है। उस दिन एक मित्रको एक पत्रमे मैने लिखा था कि शातिनिकेतन और मलिकदा की यह यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा है। सचमुच इस बार शातिनिकेतन मेरे लिए 'शाति' का 'निकेतन' सिद्ध हुआ। मै यहा राजनीतिकी सब चिता और झझट छोडकर मात्र गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद लेने आया हू। मैने अक्सर एक कुशल भिक्षुक होनेका दावा किया है। लेकिन आज गुरुदेवका मुझे जो आशीर्वाद मिला है उससे बढकर दान मेरी झोलीमे कभी किसीने नही डाला। मै जानता हू कि उनका आशीर्वाद तो मुझे हमेशा ही है। मगर आज मेरा खास सौभाग्य है कि उन्हीके हाथो रूबरू मुझे आशीर्वाद मिला और इस कारण मेरे हर्षका पार नही। (ह० से०, ३०-३-४०)

•

डा० रवीन्द्रनाथ टैगोरके निधनमे हमने न केवल अपने युगके सबसे बडे कविको ही, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादीको, जो कि मानवताका पुजारी भी था, खो दिया है। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिसपर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पडी हो। शातिनिकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमे उन्होने समस्त राष्ट्रके लिए ही नही,

अपितु समस्त ससारके लिए विरासत छोडी है। प्रभु उस महान् आत्माको शाति दे और शातिनिकेतनके जिन सचालकोपर इसका उत्तरदायित्व आ पडा है, वे उसके योग्य सिद्ध हो (७-८-४१)

...

१७ तारीख गुरुदेवका श्राद्ध-दिवस है। जो लोग श्राद्धको धार्मिक महत्व देते है, वे निसदेह उस दिन निर्जल उपवास करेगे या केवल फलोहार रहेगे और अपना समय प्रार्थनामें बितायेगे। प्रार्थना व्यक्तिगत रूपमें की जा सकती है अथवा सामूहिक रूपमें। प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके निवासी, जिन्होंने उनके उस ऊचा उठानेवाले सदेशको सुना है, जो उन्होने अपनी कृतियोद्वारा दिया तथा जिसे उन्होंने अपने जीवनमें जिया, सुविधानुसार किसी समय एकत्र होगे और उस दिव्यजीवनके बारेमे चिंतन करेगे और अपने आपको देश-सेवाके लिए समर्पित कर देगे।

गुरुदेवका ध्येय शाति और सद्भावना था। वे साम्प्रदायिक बधनो-से अपरचित थे। इसलिए मैं आशा करता हू कि सब वर्ग एक स्वरसे इस पवित्र दिनको मनायेगे और साम्प्रदायिक ऐक्यको बढावा देगे।

मै लोगोको यह भी याद दिलाना चाहूगा कि दीनबधु-स्मारक-कोष-का अधिकाश अभी इकट्ठा किया जाना है। यह कहते दु ख होता है कि यह कोष अब गुरुदेव-स्मारक-कोष भी बन गया है, कारण कि स्मारक-के लिए इकट्ठा किया जानेवाला सब धन केवल शातिनिकेतनके, जिसमे विश्वभारती और श्रीनिकेतन भी सम्मिलित है, सचालन और सवर्द्धन-के लिए व्यय किया जायगा। इससे गुरुदेवके लिए अलग और विशेष स्मारककी आवश्यकता समाप्त नही हो जाती। लेकिन इसपर विचार करना उस समयतक विडम्बनामात्र होगी जबतक कि वह स्मारक पूरा न हो जाय, जिसका बीजारोपण स्वयं गुरुदेवने किया था। (१२-८-४१)

• •

दीनबधु एड्रयूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनो पर्यायवाची शब्द है। गुरुदेवने दीनबधु-स्मारकका आरभ किया था, लेकिन उसकी पूर्त्तिके पहले ही वे दीनबधुके अनुगामी बन गये। इसलिए दीनबधुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान आत्माओ-के अनुरूप ही है। शातिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये तीनो सस्थाए वास्तवमे एक ही है। यह बडे दुख और शर्मकी बात है कि पाच लाखकी यह छोटी-सी रकम धनिको, विद्यार्थियो या मजदूरोकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नही हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेवके और उनकी सस्थाके कारण हिदुस्तानको वह यश और प्रतिष्ठा प्राप्ति हुई है जो किसी व्यक्ति या सस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नही हुई। शातिनिकेतनका ही यह प्रभाव था कि जिससे प्रभावित होकर चीनके सेनाध्यक्ष चागकाई शेक और श्रीमती चागकाई शेकने उसे इतनी बडी रकम भेट की थी। शातिनिकेतनमे जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च न कुछ-सा है। कारण यह है कि जो लोग शुद्ध अवैतनिक काम नही करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर काम कर रहे है। अबतक स्मारक निधिमे कुल करीब एक लाख रुपए इकट्ठे हुए है। मुझे आशा है कि स्मारककी बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायगी और मुझको धन-सग्रहके लिए दौरा करनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। स्मारककी रकमको पूरी करनेके लिए मै वचनबद्ध हू। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्यापर थे, मैने उन्हे अपने आखिरी पत्रमे लिखा था कि अगर ईश्वरकी मर्जी हुई तो मै दीनबधु-स्मारककी पूरी रकम वसूल कर लूगा। दीनबधुको शातिनिकेतनकी आर्थिक स्थितिकी चिता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड गये है। हिदुस्तानके और मानवताके इन दो सेवकोकी इस पुकारकी मै जरा भी उपेक्षा नही कर सकता। जिनके मनमे इन दोनो महापुरुषोकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी सजीव कृतिके मूल्यको समझते है उनसे निवेदन

है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निबाहनेमे मेरी मदद करें।
(ह० से०, २६-४-४२)

•

गुरुदेवकी देह खाकमे मिल चुकी है, लेकिन उनके अदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरजकी तरह था, जो तबतक बना रहेगा जबतक धरतीपर जानदार रहेगे। गुरुदेवने जो रोशनी फैलाई वह आत्माके लिए थी। सूरजकी रोशनी जैसे हमारे शरीरको फायदा पहुचाती है, वैसे गुरुदेवकी फैलाई रोशनीने हमारी आत्माका ऊपर उठाया है। वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणीके साहित्यिक थे। उन्होने अपनी मातृभाषामे लिखा और सारा बगाल उनकी कविताके झरनेसे काव्यरसका गहरा पान कर सका। उनकी रचनाओके अनुवाद बहुत-सी भाषाओमे हो चुके है। वे अग्रेजीके भी बहुत बडे लेखक थे और शायद बिना अग्रेजी जाने ही वे उस जबानके इतने बडे लेखक बन गये थे। मदरसेकी पढाई तो उन्होने की थी, लेकिन युनिवर्सिटीकी कोई डिग्री उन्होने नही ली थी। वे तो बस गुरुदेव ही थे। हमारे एक वाइसरायने उनको एशियाका कवि कहा था। उससे पहले किसीको ऐसी पदवी नही मिली थी। वे समूची दुनियाके भी कवि थे। यही क्यो, वे तो ऋषि थे। हमारे लिए वे अपनी 'गीताजलि' छोड गये है, जिसने उनको सारी दुनियामे मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड गये है। वेदव्यासजीने महाभारतके रूपमे हमारे लिए मानव-जातिका इतिहास छोडा है। ये सब निरे कवि नही थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नही, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है। लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नही थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। बढिया-से-बढिया कलाम जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमे और उनकी चीजोमे थी। नई-नई चीजे पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शातिनिकेतन,

श्रीनिकेतन और विश्वभारती जैसी सस्थाए दी हैं। अपनी इन सस्थाओमें वे भावरूपसे विराजमान है, और ये अकेले बगालको ही नही, वल्कि समूचे हिंदुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली हैं। शातिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमे यात्राका एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन सस्थाओको वह रूप नही दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमीके मनोरथको पूरा करना तो भगवानके हाथमे है। फिर भी ये सस्थाए हमें उनकी कोशिशोकी याद दिलायेगी और हमेशा हमको यह बताती रहेगी कि गुरुदेवके मनमे अपने देशके लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होने उसकी कितनी-कितनी सेवाए की है। उनके रचे कौमी गीतको आप अभी-अभी सुन चुके है। हमारे देशके जीवनमें इस गीतकी अपनी एक जगह बन गई है। हजारो-लाखो लोग एकसाथ इसकी प्रेरणा पहुचानेवाली कडियोको अक्सर गाते रहते हैं। यह सिर्फ गीत ही नही है, वल्कि भक्ति-भावसे भरा भजन भी है। (ह० से०, १६-५-४६)

: ७२ :

जनरल डायर

आर्मी कौसिलने जनरल डायरको समझकी भूलका दोपी ठहराया और परामर्श दिया कि उसे सरकारी सेनामे कही नौकरी न मिले। मि० माटेगूने भी जनरल डायरके आचरणकी कडी आलोचना करनेमे कोई बात उठा नही रखी। इसपर भी किसी कारणवश मुझसे यह कहे विना रहा नही जाता कि जनरल डायर ही सबसे वडा अपराधी नही है। उसकी वर्वरता स्पष्ट है। आर्मी कौसिलके सामने जनरल डायरने अपने बचावकी

जो बाते कही है, उनमेसे हरएकमे उसकी महा नीच तथा असैनिक कायरता-के चिह्न पाये जाते है। निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चोको जो खेल-तमाशा तथा छुट्टी मनानेका ही काम जानते थे, उसने बागी सेना बताया है। जनरल डायरने इसलिए अपनेको पजाबका रक्षक बताया है कि उसने घिरे हुए आदमियोको खरहोकी तरह गोलियोसे मार डाला। ऐसा मनुष्य योद्धा कहलानेके योग्य नही है। उसके कार्यमे कोई वीरता नही पाई जाती। उसने कोई जोखिम नही उठाई। विना छेड-छाडके और विना सूचना दिये ही उसने गोलिया चलाई, यह समझकी भूल नही है। कल्पित विपदके सामने यह उसकी थरथराहट है। इससे बहुत बुरी अयोग्यता तथा कठोर हृदयता ही प्रकट होती है। किंतु जनरल डायर पर जो खर्च किया गया है वह बहुत करके बे-मार्ग हुआ है। इसमे सदेह नही कि जनरल डायरकी गोलीबारी भयकर थी। उसकी करतूतसे जितने निर्दोष आदमी मरे, वह घटना भी बडी शोकजनक थी। किंतु पीछे धीरे-धीरे जो अत्याचार, जो बेइज्जती और जो धरपकड हुई वह बहुत बुरी और आत्माका नाश करनेवाली थी और जिन अफसरोने यह कार्य किया उन्हे जलियावाला बागमे हत्याए करनेवाले जनरल डायरकी अपेक्षा अधिक दोषी समझना चाहिए। जनरल डायरने तो थोडेसे आदमियोको ही मार डाला, पर इसके बाद अत्याचार करने-वाले अफसरोने राष्ट्रके प्राण हर लिये। कर्नल फ्रैंक जानसन बडा भारी अपराधी है, पर कौन आदमी इसका नाम लेता है? इसने निर्दोष लाहौरमे आतक फैला दिया और अपनी निष्ठुर आज्ञासे फौजी कानूनके समस्त अफसरोको कडी कार्रवाई करनेको बाध्य किया। किंतु मुझे इस जान-सनपर भी उतना कहना नही है। पजाब तथा भारतके समस्त मनुष्योका पहला कर्तव्य है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० बास्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मि० मलिक खाको नौकरीसे निकाल बाहर करावें। ये अभी तक सरकारी नौकरीमे बने है। इनका दोष वैसा ही सिद्ध हुआ है जैसा जनरल डायरपर

सिद्ध किया गया है। यदि हम सतुष्ट होकर पंजावके शासनको अन्य अत्याचारियोसे परिष्कृत करना भूल जाय तो हम अपने कर्तव्यमें चूक जायेंगे। यह केवल मच परसे व्याख्यान देने या प्रस्ताव पास करनेसे नही होगा। यदि हम सरकारी कर्मचारियोपर प्रभाव डालकर उन्हे यह दिखाना चाहे कि वे प्रजाके मालिक नही, बल्कि रक्षक और नौकर है जो बुरा आचरण करनेपर अपने पदपर रह नही सकते तो हमें खूब कडे उपायका अवलबन करना चाहिए। (म० गा०—रामचद्र वर्मा पृष्ठ ४०२)

: ७३ :

मिस डिक

टाइप-राइटरोके एजेटसे मेरा कुछ परिचय था। मै उससे मिला और कहा कि यदि कोई टाइपिस्ट (भाई या वहन) ऐसा हो जिसे 'काले' आदमीके यहा काम करनेमे कोई उज्र न हो तो मेरे लिए तलाश कर दे। दक्षिण अफ्रिकामे लघु-लेखन (शॉर्टहैंड) अथवा टाइपिंगका काम करने-वाली अधिकाश स्त्रिया ही होती है। पूर्वोक्त एजेटने मुझे आश्वासन दिया कि मै एक शोर्टहैंड-टाइपिस्ट आपको खोज दूगा। मिस डिक नामक एक स्कॉच कुमारी उसके हाथ लगी। वह हाल ही स्काटलैंडसे आई थी। जहा भी कही प्रामाणिक नौकरी मिल जाय वहा करनेमे उसे कोई आपत्ति न थी। उसे काममे लगनेकी भी जल्दी थी। उस एजेंटने उस कुमा-रिकाको मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी नजर उसपर ठहर गई। मैने उससे पूछा—

"तुमको एक हिंदुस्तानीके यहा काम करनेमे आपत्ति तो नही है?"

उसने दृढताके साथ उत्तर दिया—"बिलकुल नही।"

"क्या वेतन लोगी ?"

"साढे सत्रह पौंड अधिक तो न होंगे ?"

"तुमसे मैं जिस कामकी आशा रखता हू वह ठीक-ठीक कर दोगी तो इतनी रकम बिलकुल ज्यादा नही है। तुम कब कामपर आ सकोगी ?"

"आप चाहें तो अभी।"

इस बहनको पाकर मैं बडा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसे अपने सामने बैठकर चिट्ठिया लिखवाने लगा। इस कुमारीने अकेले मेरे कारकुनका ही नही, बल्कि सगी लडकी या बहनका भी स्थान मेरे नजदीक सहज ही प्राप्त कर लिया। मुझे उसे कभी किसी बातपर डाटना-डपटना नही पडा। शायद ही कभी उसके काममे गलती निकालनी पडी हो। हजारो पौंडके देन-लेनका काम एक बार उसके हाथमे था और उसका हिसाब-किताब भी वह रखती थी। वह हर तरहसे मेरे विश्वासका पात्र हो गई थी। यह तो ठीक, पर मैं उसकी गुह्यतम भावनाओंको जानने योग्य उसका विश्वास प्राप्त कर सका था और यह मेरे नजदीक एक बडी बात थी। अपना जीवन-साथी पसद करनेमे उसने मेरी सलाह ली थी। कन्या-दान करनेका सौभाग्य भी मुझीको प्राप्त हुआ था। मिस डिक जब मिसेज मैकडॉनल्ड हो गई तब उन्हे मुझसे अलग होना आवश्यक था। फिर भी विवाहके बाद भी, जब-जब जरूरत होती मुझे उनसे सहायता मिलती थी। (आ० क०, १९२७)

: ७४ :

रेवरेंड डुड नीडु

एक तीसरे ख्यातनामा पादरी भी थे। उन्होने पादरीपन छोडकर 'फ्रैण्ड' नामक दैनिकके सपादक रेवरेड डुडनीडु है। उन्होने गोरोके पत्रका सपादन ग्रहण किया था। आप ब्लुमफोटीनमे प्रकाशित होनेवाले द्वारा अपमानित होकर भी अपने पत्रमे भारतीयोका पक्ष किया था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओमे उनकी गणना होती थी। (द० अ० स० १९२४)

: ७५ :

श्री जोसेफ डोक

जोसेफ डोक बैप्टिस्ट सप्रदायके पादरी थे। दक्षिण अफ्रीकामे आने-से पहले वे न्यूजीलैंडमे थे। इस घटना[1]के छ महीने पहले की वात है, एक दिन वह मेरे दपतरमे आये और अपना कार्ड भेजा। उसमे 'रेवरेण्ड' विशेषणका उपयोग किया गया था। इसपरसे मैंने झूठमूठ ही यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार अन्य कितने ही पादरी मुझे ईसाई बननेका उप-देश करने या आदोलन वद करनेको कहनेके लिए आते है, उसी प्रकार अथवा वुजुर्ग बनकर मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए वह आय होगे। पर ज्योही मि० डोक अदर आये और वातचीत करने लगे त्योही कुछ

---

[1] दक्षिण अफ्रीकाके पहले समझौतेके अवसर पर मीर आलम द्वारा पिटनेकी घटना।

मिनटोमे ही मैंने अपनी भूलको समझ लिया और दिल हीमे मैंने उनसे क्षमा माग ली। उस दिनसे हम वड़े मित्र वन गए। युद्ध-सवधी तमाम समाचारोसे उन्होने अपनेको परिचित वताया और कहा "इस युद्धमे आप मुझे अपना मित्र समझिए। मुझसे जो कुछ सेवा वनेगी, वह सव मैं अपना धर्म समझकर करनेकी इच्छा रखता हू। ईसाके जीवना-दर्शका चितन-मनन करके मैंने तो यही सीखा है कि आपत्कालमे दीन-दुखियोका साथ देना चाहिए।" यह हमारा पहला परिचय था। इसके वाद दिनोदिन हमारा स्नेह-सवध वढता ही गया। . पर डोक-कुटुवने मेरी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेसे पहले उनका थोडा-वहुत परिचय दे देना भी आवश्यक था। रात हो या दिन, कोई-न-कोई मेरे पास जरूर वैठा रहता था। जवतक मैं उनके घरमे रहा तवतक उनका मकान केवल एक धर्मशाला ही वन गया था। भारतीयोमे फेरीवाले लोग भी थे। उनके कपड़े मजदूरोके-जैसे और मैले भी रहते। उनके साथमे एक गठरी या टोकरी भी अवश्य रहती। जूतोपर सेर भर धूल भी। मि० डोकके मकानपर ऐसे लोगोमे लगाकर अध्यक्ष तकके सभी दरजेके लोगोकी एक भीड लगी रहती। सव मेरा हाल पूछने और डाक्टरकी आज्ञा मिलनेपर मुझसे मिलनेके लिए चले आते। सभीको वे समान भावसे और सम्मान-पूर्वक अपने दीवानखानेमे वैठाते और जवतक मैं उनके यहा रहा, तवतक उनका सारा समय मेरी शुश्रूपामे और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकडो सज्जनोके आदर-सत्कार हीमे जाता। रातको भी दो-तीन वार मि० डोक चुपचाप मेरे कमरेमे आकर जरूर देख जाते। उनके घरपर मुझे एक दिन भी ऐसा खयाल नही हुआ कि यह मेरा घर नही, या मेरे सवधी होते तो इससे अच्छी सेवा करते। पाठक यह भी खयाल न कर ले कि इतने जाहिरा तौरपर भारतीय आदोलनका पक्ष ग्रहण करने तथा मुझे अपने घरमे स्थान देनेके कारण उन्हे कुछ सहना न पडा होगा। वे अपने पथके गोरोके लिए एक गिरजाघर चला रहे थे।

उनकी आजीविका इन पथवालोके हाथोमे थी। सभी लोग तो उदार दिल-के होते नही है। उन लोगोके दिलमे भी भारतीयोके खिलाफ कुछ भाव थे ही। पर डोकने इसकी कोई परवा नही की। हमारे परिचय-के आरभहीमे एक दिन मैंने इस नाजुक विषयपर चर्चा छेडी थी। उनका उत्तर यहा लिख देने योग्य है। उन्होने कहा—

"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको आपने क्या समझ रखा है ? मैं उस पुरुषका अनुयायी हूँ जो अपने धर्मके लिए फासी पर लटक गया और जिसका प्रेम विश्वव्यापी था। जिन गोरोके मुझे छोड देनेका आपको डर है, उनकी आखोमें ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें जरा भी मैं शोभा पाना चाहूँ तो मुझे जाहिरा तौरसे अवश्य ही इस युद्ध-में भाग लेना चाहिए और इसके फलस्वरूप यदि वे मेरा त्याग भी कर दें तो मुझे इसमें जरा भी बुरा न मानना चाहिए। इसमें शक नहीं कि मेरी आजीविकाका आधार उनपर है; पर आप यह कदापि न समझ बैठें कि आजीविकाके लिए मैंने उनसे यह सबध किया है या वे ही मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजीका देनेवाला तो परमात्मा है। ये हैं केवल निमित्तमात्र। मेरा उनका सम्बन्ध होते समय हमारा उनका यह ठहराव हो चुका है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसलिए आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। मैं भारतीयो पर अहसान करनेके लिए इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो रहा हूँ। मैं तो इसे अपना धर्म समझ-कर ही इसमें भाग ले रहा हूँ। पर असल बात यह है कि मैंने हमारे गिरजाके डीनके साथ बातचीत करके भी इस बातका खुलासा कर लिया है। मैंने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया है कि अगर मेरा भारतीयो-से सम्बन्ध रखना आपको पसन्द न हो तो आप खुशीसे मुझे रुखसत दे सकते हैं और दूसरा पादरी तलाश कर सकते हैं। पर उन्होने इस विषयमें मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया है, बल्कि और उत्साहित

किया है। आपको यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी गोरे आपकी तरफ एकसी तिरस्कारकी नजरसे ही देखते हैं। आप नहीं जानते कि अप्रत्यक्ष रूपसे आपके विषयमें वे कितना सद्भाव रखते है। इसे तो मैं ही जान सकता हूं और आपको भी यह कुबूल करना होगा।"

इतनी स्पष्ट वातचीत होनेपर फिर मैने इस नाजुक विषयपर कभी वातचीत नही छेडी। इसके कुछ साल वाद डोक रोडेशियामें अपने धर्म-की सेवा करते हुए स्वर्गवासी हो गये। तव हमारा युद्ध समाप्त नही हुआ था। उनकी मृत्युके समाचार प्राप्त होनेपर उनके पथवालोने अपने गिरजा-घरमें एक सभा निमंत्रित की थी। उसमे काछलिया तथा अन्य भार-तीयोके साथ-साथ मुझे भी वुलाया गया था। मुझे वहा भाषण देना पडा था।

अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें मुझे करीव दस-ग्यारह दिन लगे होगे। ऐसी स्थिति होते ही मैंने इस प्रेमी कुटुंवसे विदा मागी। वह वियोग हम दोनोके लिए वडा दुःखदाई था। (द० अ० स०, १९२५)

: ७६ :

श्रीमती तारावहन

मिस मेरी चेस्ले नामकी एक अग्रेज वहन सन् १९३४में हिंदुस्तानमें थी। उन दिनो ववईमें काग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। जहाजसे उतरते ही वह काग्रेस-कॅम्पमें पहुची और मेरे झोपडेमें आकर उसने मुझसे कहा, "मैं मीरा वहनको जानती हू और मीरा वहनके साथ ही मैं

यहा आनेवाली थी, पर किसी कारणवश उनके एकाध हफ्ते पहले ही मै विलायतसे रवाना हो गई।" गावोमे रहकर भारतकी सेवा करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी बातचीतसे मै कुछ खास प्रभावित नही हुआ और मुझे लगा कि वह हिंदुस्तानमे कुछ ज्यादा महीने ठहरनेकी नही। पर मेरी यह भूल थी। मिस मेरी बार को, जिन्होने बेतूल (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूर खेडी गावमे पहलेसे ही काम करना शुरू कर दिया था, वह वहन जानती थी। मेरी बार मिस चेस्लेको अपने साथ वर्धा ले आईं और कुछ दिन हम सब वहा एक साथ रहे। मिस चेस्लेका निश्चय देखकर तो मै चकित रह गया। मेरी बारके साथ उसने खेडीमे ग्राम-सेवाका कार्य आरभ कर दिया। भारतीय पोशाक पहन ली और अपना नाम ताराबहन रख लिया। खेडीमे उसने इस कदर सख्त परिश्रम-से काम किया कि बेचारी मेरी बार तो देखकर हकबका गईं। वह मिट्टी खोदती और सिरपर टोकरी रखकर ढोती। अपना भोजन उसने इतना सादा बना लिया था कि उसका स्वास्थ्यतक खराब हो गया। कनाडासे काफी पैसा आता था, पर उसमेसे वह सिर्फ दस रुपयेके लगभग ही अपने लिए रखती और बाकी सब ग्राम-उद्योग-सघको या हिंदुस्तानके उन भाई-बहनोको दे देती थी, जिनके सपर्कमे वह आती थी और जो उसे मालूम होते थे कि आगे चलकर वे अच्छे ग्राम-सेवक बन सकते है और जिन्हे रुपये-पैसेकी कुछ जरूरत होती थी। मैने उसे बहुत ही निकटसे देखा। उसकी उदरताकी कोई सीमा नही थी। मानव-प्रकृतिकी अच्छाईमे उसकी बहुत श्रद्धा थी। अपराधको वह भूल जाती थी। वह सच्ची ईसाई थी। क्वेकर सप्रदायकी, पर उसमे कोई सकीर्णता नही थी। दूसरोको अपने धर्ममे मिलानेमे उसका विश्वास नही था। 'लदन-स्कूल आव इकनामिक्स' की वह ग्रेजुएट थी और एक अच्छी शिक्षिका थी। लदनमे कई सालतक उसने एक स्कूल चलाया था। उसने फौरन यह महसूस कर लिया कि हिंदी उसे जरूर सीख लेनी चाहिए और नियमित

रीतिसे वह हिंदीका अभ्यास करने लगी। वोलचालकी हिंदी सीखनेके लिए वह कुछ महीने वर्धाके महिला-आश्रममे आकर रही और वही उसने दो वहनोके साथ गरमियोमे वद्री-केदार जानेका विचार किया। मैने उसे इस खतरनाक यात्रासे आगाह कर दिया था। लेकिन जव वह एक वार निश्चय कर लेती थी तो ऐसे-ऐसे साहसिक कामोसे उसका मन फेरना मुश्किल होता था। वद्री-केदारकी भयानक यात्रा उसे करनी ही थी। अत अपने मित्रोके साथ उस दिन वह रवाना हो गई। १५ मई को कनखलसे मुझे यह सक्षिप्त तार मिला---"तारावहनका शरीरात हो गया।"

हिंदुस्तानके गावोके लिए उसके हृदयमे जो प्रेम था उसमे कोई उससे बाजी नही मार सकता था। हिंदुस्तानकी आजादीके लिए हममेसे अच्छे-से-अच्छे लोगोमे जितना उत्साह है, उससे कम तारावहनमे नही था। दरजेकी छुटाई जहा भी देखती, अधीर हो जाती थी। गरीव स्त्रियो और वच्चोसे वह इतनी आजादीके साथ मिलती थी कि देखते ही वनता था। सेवा करके वह किसीका उपकार कर रही है, यह भावना तो उसमे थी ही नही। किसीसे उसने अपनी सेवा नही कराई, किंतु कोई भी हो, उसकी सेवा वह अत्यत उत्साहके साथ करती थी। उसने अपना अहकार धो डाला था। ऐसी मूक सेविका थी वह कि उसके वाए हाथ-को पता नही लगता था कि दाहिने हाथने क्या काम किया है। ईश्वर उसकी दिवगत आत्माको चिरशाति दे। (ह० से०, २३ ५ ३६)

प्राय हर विलायती डाकमे मेरे पास स्व० तारावहन (मेरी चेस्ली) के सगे-सम्वधियो और मित्रोके पत्र आते रहते है। इनमे उनके अनेक गुणोका वर्णन रहता है। कई सज्जन उनके अनेक प्रकारके उपकारोका वर्णन करते है, जो स्व० तारावहनने उनपर किये। कुछ लिखते है कि उन्होने हमे फला-फला सहायता देनेका वचन दिया था और कुछ तारावहन द्वारा

छोडे गये एक या अनेक विरासतनामोंका भी उल्लेख करते हैं। हालाकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोको अपने थोडे समयमें जितना उनसे बन पडता है ब्यौरेवार जानकारी देनेकी कोशिश करते है फिर भी तमाम सबधित लोगोके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होने मेरे नामपर जो विरासतनामा लिख दिया था, वह कानूनदा मित्रोकी रायमे भारतीय विरासतके कानूनके अनुसार वैध नही मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाय कि वह वैध है तो भी उनके सगे-सबधियो और मित्रोकी अनुमतिके बिना उनकी सपत्तिका उपयोग हिंदुस्तानी ग्रामोद्योगोके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नही है, यद्यपि यह काम इधर उन्हे अत्यत प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमे सदाके लिए सो गई। इस बातकी बहुत ही कम सभावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब सपत्ति मेरे हाथ आ जायगी, जिसका कि वे अपने जीवनकालमे किसी प्रकारका विनियोग नही कर गई है ; पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगानेसे पहले मै उन तमाम वचनो या वादोकी जाच करूगा जो उन्होने पश्चिममे किये और उन्हे पूरा करनेकी कोशिश भी करूगा।

बैकसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पडे हुए है जिनका भुगतान भी नही हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोसे, जिनकी सख्या मै देखता हू, बहुत बडी है, मेरी यह सलाह है कि उनमे जो सबसे नजदीकी हो, राज्यसे इस सबधका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर वह मेरे पास भेजे ताकि मै और कुमारी मेरी बार हमारे पास रखी हुई, ताराबहनकी चीजे उन्हे सौप सके। मेरे पास तो अनभुने चेक पडे हुए है और मेरी बारके पास उनके कुछ छोटे-मोटे जेवर है। हिंदुस्तानमे आनेपर अपनी जरूरते उन्होने इतनी कम कर दी थी कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमें

उन्हे जो कुछ मिला उन्होने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गीय उपकारशीला देवीसे सबध रखनेवाली बातोके विषयमें मेरे पास तो इतनी ही जानकारी है। आशा है, यह उनके तमाम सबधित लोगोके लिए काफी होगी। (ह० से०, २६ ९ ३६)

: ७७ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गगाधर तिलक अब ससारमे नही है। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे ससारसे उठ गये। हम लोगोके समयमे ऐसा दूसरा कोई नही जिसका जनता पर लोकमान्यके-जैसा प्रभाव हो। हजारो देशवासियोकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरश सत्य है कि वे जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारो आदमियोके लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषोमें पुरुष-सिह ससारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।

देशवासियोपर उनका इतना प्रभाव होनेका क्या कारण था? मै समझता हू, इस प्रश्नका उत्तर बडा ही सहज है। उनकी स्वदेशभक्ति ही उनकी इद्रियवृत्ति थी। वे स्वदेशप्रेमके सिवा दूसरा धर्म नही जानते थे।

जन्मसे ही वे प्रजासत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञापर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पडता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वे जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बडी ही प्रबल थी। उनका

जीवन वह ग्रथ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नही, वह खुला हुआ ग्रंथ है। उनका खाना-पीना और पहनावा बिल्कुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत जीवन बडा ही निर्मल और बेदाग है। उन्होंने अपनी आश्चर्य-जनक बुद्धि-शक्तिको स्वदेशको अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभवार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नही किया। इसी कारण स्वदेशवासी उनपर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नही छोडा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवनकालमे मै ही सपूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूगा। यदि वे इसे नही देख सके तो उनका दोष नही है। उन्होने निस्सदेह स्वराज्य-प्राप्तिकी अवधि बहुत कम कर दी है। यह अब हम लोगोके लिए है, जो अभीतक जी रहे है, कि अपने द्विगुणित उद्योगसे उसको जहातक हो शीघ्र सत्य कर दिखावें।

मै अग्रेजोको ऐसी धारणा बनानेसे मना करता हू कि लोकमान्य अग्रेजोके शत्रु थे। या अधिकारी वर्ग या अग्रेजी राज्यसे घृणा करते थे।

कलकत्ता-काग्रेसके समय हिंदीके राष्ट्रभाषा होनेके सबधमे उन्होने जो कहा था, उसे सुननेका अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वे काग्रेस पडालसे तुरत ही लौटे थे। हिंदीके सबधमे उन्होने अपने शात भाषणमे जो कहा उससे बडी तृप्ति हुई। भाषणमे आपने देशी भाषाओपर खयाल रखनेके कारण अग्रेजोकी बडी प्रशसा की थी। विलायत जानेपर, यद्यपि उन्हे अग्रेज जूररोके विषयमे बुरा ही अनुभव हुआ तथापि उनका ब्रिटिश प्रजासत्तामे बडा ही दृढ विश्वास हो गया। उन्होने यहा तक कहा था कि पजाबके अत्याचारोका चित्र 'सिनेमेटोग्राफ' यत्र द्वारा ब्रिटिश प्रजासत्तावादियोको दिखाना चाहिए। मैने यहा इस बातका उल्लेख इसलिए नही किया कि मै भी ब्रिटिश प्रजासत्तापर विश्वास रखता हू

(जो कि मै नही रखता), पर यह दिखानेके लिए कि वे अग्रेज-जातिके प्रति घृणाका भाव नही रखते थे। पर वे भारत और साम्राज्यकी अवस्थाको इस पिछडी अवस्थामे न तो रखना ही चाहते थे और न रख सकते थे।

वे चाहते थे कि शीघ्र ही भारतसे समानताका भाव रक्खा जाय और इसे वे देशका जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। भारतकी स्वतत्रताके लिए उन्होने जो लडाई की उसमे सरकारको छोट नही दिया। स्वतत्रताके इस युद्धमे उन्होने न तो किसीकी मुरव्वतकी और न किसीकी प्रतीक्षा ही की। मुझे आशा है, अग्रेज लोग उस महापुरुषको पहचानेंगे जिनकी भारत पूजा करता था।

भारतकी भावी सततिके हृदयमे भी यही भाव वना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके वनानेवाले थे। वे तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेंगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए ही जन्मा और हमारे लिए ही मरा। ऐसे महापुरुषको मरता कहना ईश्वरकी निंदा करना है। उनका स्थायी तत्व सदाके लिए हम लोगोमे व्याप्त हो गया। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमे उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्य-जनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर वनावे। ईश्वर उनकी आत्माको शाति प्रदान करे।
(य० इ०, ४-८-२०)

लोकमान्य तो एक ही थे। लोगोने तिलक महाराजको जो पदवी, जो उच्च स्थान दिया था वह राजाओके दिये खितावोसे लाख गुना कीमती था। देशने आज यह वात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति नही होगी कि सारी ववई लोकमान्यको पहुचानेके लिए उलट पडी थी।

उनके आखिरी दिनोमे जो दृश्य मैंने अपनी आखोसे देखा वह कभी भुलाया नही जा सकता। लोगोके उस अगाध प्रेमका वर्णन करना असभव है।

फ्रासमे कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरजीव रहे।' यह विच र इंगलैड आदि सारे देशोमे प्रचलित है और जब राजाकी मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नही। राजतत्र एक मिनिट भी बद नही रहता।

उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नही सकते, न मरे ही। बबईकी जनताने यह दिखला दिया कि वे जीते है और बहुत समय तक जीयेगे। उनके सगे-सबधियोको भले ही दुःख हुआ हो, उन्होने भले ही आखोसे मोती टपकाए हो, परतु दूसरे लोग तो उत्सव मनानेके लिए आये थे। बाजे और भजन लोगोको चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नही है। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' ध्वनिसे आकाश गूज उठता था। उस समय लोग इस बातको भूल गए थे कि हम तो तिलक महाराजके देहके दाहकर्मके लिए आये है।

शनिवारकी रातको जब मैने उनके स्वर्गवासकी खबर सुनी तब मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था, पर जयघोष सुनकर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित है। उनका क्षण-भगुर देह छूट गया है, पर उनकी अमर आत्मा तो लाखो लोगोके हृदयमे विराजमान है।

इस जमानेमे किसी भी लोकनायकको ऐसी मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था। दादाभाई गये फिरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारो लोग श्मशान तक गये थे, पर तिलक महाराजने तो हद कर दी। उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवारको बबई बावली हो गई थी।

यह कैसा चमत्कार! ससारमे चमत्कार नामकी कोई वस्तु ही नही। अथवा यो कहे कि जगत स्वय ही एक चमत्कृति है। बिना कारणके कोई काम नही होता। इस सिद्धातमे कोई अपवाद नही हो सकता। लोकमान्यका हिंदुस्तानपर असीम प्रेम था। इसी कारण लोक-

प्रेमकी भी मर्यादा नही रह गई थी। स्वराज्यके मंत्रका जितना जप उन्होंने किया है उतना दूसरा किसीने नही किया। जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हा, अब भारत स्वराज्यके योग्य होगा, उस समय लोकमान्य सच्चे दिलसे मानते थे कि भारत आज ही तैयार है। लोकमान्यकी इस धारणाने लोगोंके मनको हर लिया था। ऐसा मानकर वे बैठे नही रहे, बल्कि जिंदगीभर उसके अनुसार काम किया। उससे जनतामें नवीन चैतन्य नया जोश पैदा हुआ। उन्होंने स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी अधीरताका स्वाद लोगोंको चखाया और ज्यों-ज्यों जनता को उसका स्वाद मालूम होने लगा त्यों-त्यों वह उनकी तरफ खिंचती गई।

उनपर अनेक तरहकी आफतें आईं, तरह-तरहके कष्ट उन्हें सहने पडे, तो भी उन्होंने उस मंत्रका अनुष्ठान नही छोडा। इस तरह वे कठिन परीक्षाओंमे भी पास हुए। इससे जनताने उन्हें अपने हृदयका सम्राट बनाया और उनका वचन उसके लिए कानूनकी तरह मान्य हो गया।

देहके नष्ट होजानेसे ऐसा महान जीवन नष्ट नही होता, बल्कि देह-पातके बाद से तो वह शुरू होता है।

जिसे हम पूजनीय मानते है उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणोंका अनुकरण करना ही है। लोकमान्य अत्यंत सादगीके साथ रहते थे। उनके स्मरणके लिए हमे भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए। हमें उस सीमातक वस्तुओंका त्याग करना चाहिए जिस तकके लिए हमारा मन गवाही देता हो। अपने निश्चित कार्यको करनेसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। वे विचारशील थे। हमे भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए। वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और संस्कृतिपर उनका खूब प्रभुत्व था। हमे भी उनकी तरह विद्वान् होनेका निश्चय करना चाहिए। व्यवहारमे विदेशी भाषाका त्याग करके मातृ-भाषाका काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारोंको

प्रकट करनेका अभ्यास करना चाहिए। हमे सस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रोमे छिपे धर्म-रहस्योको प्रकट करना चाहिए। वे स्वदेशीके प्रेमी थे। हमे भी स्वदेशीका अर्थ समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए। उनके हृदयमे अपने देशके प्रति अथाह प्रेम था। हम भी अपने हृदयमे ऐसा प्रेम उदय करे और दिन-प्रतिदिन देश-सेवामे अधिकाधिक तत्पर हो। इसी रीतिसे उनकी पूजा हो सकती है। जिससे इतना न हो सके वे उनकी यादगारके लिए जितना हो सके धन दे और वह स्वराज्यके कार्यमे खर्च किया जाय।

लोकमान्य वर्त्तमान राज्य-मडलके कट्टर शत्रु थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अग्रेजोसे द्वेष करते थे। जो लोग ऐसा समझते है वे भूल करते है। उन्हीके श्रीमुखसे मैने कई बार अग्रेजोकी प्रशसा सुनी है। वे अग्रेजी-राज्यके सबधको भी अनिष्ट नही मानते थे। वे तो सिर्फ अपने को अग्रेजोके बराबर मनवाना चाहते थे। किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हे पसद न था।

ऐसे प्रौढ देशभक्तके स्वर्गवासका उत्सव हम मना रहे है। ऐसे पुरुषका देह चाहे रहे या न रहे, पर देशकी सेवा तो किया ही करता है, देशको आगे बढाया ही करता है। जिसने अपने कार्यकी रूपरेखा बना रक्खी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षोतक काम किया हो, जिसने अपनी देहको देशसेवाके ही अर्पण कर दिया हो, उसके देहका नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नही होती, उसकी मृत्यु कभी नही होती। अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमे जीवनका मत्र सिखा गये है।
(हि० न०, ६-८-२२)

• • • • •

पहले मै लोकमान्यसे मिला। उन्होने कहा—'सब दलोकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आपके प्रश्नके सबधमे मत-भेद हो नही सकता, परतु आपके कामके लिए किसी तटस्थ

सभापतिकी आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भाडारकरसे मिलिये। यो तो वह आजकल किसी हलचलमे पडते नही है, पर शायद इस कामके लिए 'हा' कर ले। उनसे मिलकर नतीजेकी खबर मुझे कीजिएगा। मै आपको पूरी-पूरी महायता देना चाहता हू। आप प्रोफेसर गोखलेसे भी अवश्य मिलिएगा। मुझसे जब कभी मिलनेकी इच्छा हो जरूर आइयेगा।"

लोकमान्यके यह मुझे पहले दर्शन थे। उनकी लोक-प्रियताका कारण मै तुरत समझ गया। (आ० क०, १९२७)

•

वह मुझे रिपन कालेज ले गया। वहा बहुतेरे प्रतिनिधि ठहरे हुए थे। सौभाग्यसे जिस विभागमे मै ठहरा था, वही लोकमान्य भी ठहराये गए थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन बाद आये थे। जहा लोकमान्य होते, वहा एक छोटा-सा दरबार लगा ही रहता था। यदि मै चितेरा होऊ तो जिस चारपाईपर वह बैठते थे उसका चित्र खीचकर दिखा दू, उस स्थानका और उनकी बैठकका इतना स्पष्ट स्मरण मुझे है। उनसे मिलने आनेवाले असख्य लोगोमे एकका नाम मुझे याद है—'अमृतबाजार पत्रिका' के स्व० मोतीबाबू। इन दोनोका कहकहा लगाना और राजकर्त्ताओंके अन्याय-सबधी उनकी बाते कभी भुलाई नही जा सकती।

• • • • •

इस विशेष[1] अधिवेशनके अवसरपर मुझे लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत ज्यादा खटकी थी। आज भी मेरा यह मत है कि अगर वह जिदा रहते तो अवश्य ही कलकत्तेके प्रसगका स्वागत करते। लेकिन अगर यह नही होता और वह उसका विरोध करते तो भी वह मुझे अच्छा लगता

---

[1] कलकत्ता-अधिवेशन, १९२०

और मैं उससे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण करता। मेरा उनके साथ हमेशा मत-भेद रहा करता, लेकिन यह मत-भेद मधुर होता था। उन्होने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे बीच निकटका सबध है। ये पक्तिया लिखते हुए उनके अवसान का चित्र मेरी आखोके सामने घूम रहा है। आधी रातके समय मेरे साथी पटवर्धनने टेलीफोन द्वारा मुझे उनकी मृत्युकी खबर दी थी। उसी समय मैंने अपने साथियोसे कहा था—"मेरी बडी ढाल मुझसे छिन गई।" इस समय असहयोगका आदोलन पूरे जोर पर था। मुझे उनसे आश्वासन और प्रेरणा पानेकी आशा थी। आखिर जब असहयोग पूरी तरह मूर्तिमान हुआ था तब उनका क्या रुख होता सो तो दैव ही जाने, लेकिन इतना मुझे मालूम है कि देशके इतिहासकी इस नाजुक घडीमे उनका न होना सबको खटकता था। (आ० क०, १९२७)

...   .

आपका यही सवाल है न कि लोग "शठ प्रति शाठ्यम्" को तिलक महाराजका सिद्धात मानते है और हमे उनके जीवनमे इस सिद्धातकी प्रतीति कहा तक होती है ? हम इस प्रश्नमेसे बहुत अधिक सार ग्रहण नही कर सकते। हा, इस बारेमे तिलक महाराजके साथ मेरा कुछ दिनो तक पत्र-व्यवहार हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोके एक पुजारीके नाते मै कह सकता हू कि तिलक महाराजमे विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अग्रेजीमे 'ह्यूमर' शब्द है। अबतक हम इस अर्थमे विनोदका उपयोग नही करने लगे है। इसीसे अग्रेजी शब्द देकर अर्थ समझाना पडता है। अगर लोकमान्यमे यह विनोद-शक्ति न होती तो वह पागल हो जाते—राष्ट्रका इतना बोझ वह उठाते थे। लेकिन अपनी विनोद-प्रियताके कारण वह स्वय अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोको भी विषम स्थितिमेसे बचा लेते थे। दूसरे, मैंने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वह कभी-कभी जान-बूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले-लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके सबधमे मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नही, आप

उसे देख ले। "शठ प्रति शाठ्यम्" तिलक महाराजका जीवन-मन्त्र नही था। अगर ऐसा होता तो वह इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर सकते। मेरी जानमें ससार-भरमें ऐसा एक भी उदाहरण नही है, जिसमे किसी मनुष्यने इस सिद्धातपर अपना जीवन-निर्माण किया हो और फिर भी वह लोकमान्य बन सका हो। यह सच है कि इस बारेमे जितना गहरा मैं पैठता हू, वह नही पैठते थे। हम शठके प्रति शाठ्यका कदापि उपयोग कर ही नही सकते। 'गीता-रहस्य'मे एक-दो स्थानोमे, सिर्फ एक-ही दो स्थानोमे, इस बातका थोडा समर्थन जरूर मिलता है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी शाठ्यमे, दूसरे शब्दोमे 'जैसे को तैसा' सिद्धातसे, काम लेना पडे तो ले सकते है। साथ ही वह यह भी मानते तो थे ही कि शठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य सिद्धात है। मगर इस सबधमे वह कहा करते थे कि साधु लोग ही इस सिद्धातपर अमल कर सकते है। तिलक महाराजकी व्याख्याके मुताबिक साधु लोगोसे अर्थ वैरागियोका नही, बल्कि उन लोगोसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते है, दुनियादारी-के कामोमे भाग नही लेते। इससे यह अर्थ नही निकलता कि अगर कोई दुनियामे रहकर इस सिद्धातका पालन करे तो अनुचित होगा—हा, वह न कर सके यह दूसरी बात है—वह मानते थे कि शाठ्यका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

लेकिन ऐसे महान् पुरुषके जीवनका मूल्य ठहरानेका हमे कोई अधिकार हो तो हम विवादास्पद बातोसे उसका मूल्य न ठहरावे। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए, एक बहुमूल्य विरासत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्यमे निश्चित होगी। इतिहास ही उसकी कीमतका अनुमान लगावेगा, वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उसके समकालीन कभी ठहरा ही नही सकते। उनसे कुछ-न-कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योकि रागद्वेष-पूर्ण लोग ही इस कामके कर्ता भी होते है। सच पूछा जाय तो इतिहासकार भी राग-

द्वेष-रहित नही पाये जाते। गिबन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है, मगर मैं तो उसकी पुस्तकके पृष्ठ-पृष्ठमे पक्षपात अनुभव कर सकता हू। मनुष्य-विशेष या सस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बाते लिखी होगी। समकालीन व्यक्तिमे विशेष पक्षपात होनेकी सभावना रहती है। लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम उनके जीवनके शाश्वत सिद्धातोका सदा स्मरण और अनुकरण करे।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था। साथ ही उनमे तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी। इस गुणका परिचय मुझे अनायास मिला था। १९१७ की कलकत्ता-महासभाके दिनोमे, हिंदी साहित्य सम्मेलनकी सभामे, भी वह आये थे। महासभाके कामसे उन्हे फुर्सत तो कैसे हो सकती थी? फिर भी वह आये और भाषण करके चले गये। मैंने वही देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रति उनमे कितना प्रेम था। मगर इससे भी बढकर जो बात मैने उनमे देखी, वह थी अग्रेजोके प्रतिकी उनकी न्याय-वृत्ति। उन्होने अपना भाषण ही यो शुरू किया था—"मै अग्रेजी शासनकी खूब निंदा करता हू, फिर भी अग्रेज विद्वानोने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नही सकते"। उनका आधा भाषण इन्ही बातोसे भरा था। आखिर उन्होने कहा था कि अगर हमे राष्ट्रभाषाके क्षेत्रको जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमे भी अग्रेज विद्वानोकी भाति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए। अपनी लिपिकी रक्षा और व्याकरणकी व्यवस्था-के लिए हम एक बडी हद तक अग्रेज विद्वानोके आभारी है। जो पादरी आरभमे आये थे, उनमे पर-भाषाके लिए प्रेम था। गुजरातीमे टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नही है। लोकमान्यने इस बातका विचार भी नही किया कि अग्रेजोकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी। लोगोका तो यही विश्वास था कि वह अग्रेजोकी निंदा ही कर सकते है।

तिलक महाराजमे जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवा या हजारवा भाग भी हम अपनेमे नही बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरेमे

न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो खयाल भी नही कर सकता था कि वह किसी महान् पुरुषका निवास-स्थान है। रगरगमे भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करे तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नीकी मृत्युका सवाद पानेपर भी उनकी कलम चलती ही रही। . . क्या हम तिलक महाराजके जीवनका एक भी ऐसा क्षण वतला सकते है जो भोग-विलासमे वीता हो? उनमे जवर्दस्त सहिष्णुता थी। यानी वह चाहे जैसे उद्दड-से-उद्दड आदमीसे भी काम करवा लेते थे। लोकनायकमे यह शक्ति होनी चाहिए। इससे कोई हानि नही होती। अगर हम सकुचित हृदय बन जाय और सोच ले कि फला आदमीसे काम लेगे ही नही, तो या तो हमे जगलमे जाकर वस जाना चाहिए, या घर वैठे-वैठे गृहस्थका जीवन विताना चाहिए। इसमें शर्त यही है कि स्वयं अलिप्त रह सके।

मुहसे तिलक महाराजका वखान करके ही हम चुप न हो वैठे। काम, काम और काम ही हमारा जीवन-सूत्र होना चाहिए। जव कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते है, हमे चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढना वद कर दे, निरर्थक वाते करना छोड दे और अपने जीवन-का एक-एक क्षण स्वराज्यके काममे विताने लगे। आप पूछेगे कि क्या पढाई छोडकर यह काम करे? १९२१ मे भी विद्यार्थियोके साथ मेरा यही झगडा था कि तिलक महाराजने क्या किया था? उन्होने जो वडे-वडे ग्रथ लिखे, वे वाहर रहकर नही, जेलमे रहकर लिखे थे। 'गीता रहस्य' और 'आर्क्टिक होम' वह जेलमे ही लिख सके थे। वडे-वडे मौलिक ग्रथ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होने देशके लिए उसका वलिदान किया था। उन्होने सोचा, "घरके चारो ओर आग भभक उठी है। इसे जितनी वुझा सकू, उतनी तो वुझाऊ।" उन्होने अगर हजार घडे पानीसे वह वुझाई

हो, तो हम एक ही घडा डाले, मगर डाले तो सही। पढाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बाते है। अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हे तिलाजलि देनी चाहिए। इसमे न हमारा नुकसान है और न ससारका।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड गये है। जिनके जीवनमेंसे इतनी सारी बाते ग्रहण करने योग्य हो, जिनकी विरासत इतनी जबर्दस्त हो, उनके सबधमे उक्त प्रश्नके लिए गुजाइश ही नही रहती है। हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है।

आज हमे जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोके करनेसे तो हो नही सकता। स्वराज्यका काम कठिन है। भारतमें आज एक लहर बह रही है। उसमे खिचकर हम भाषण करते है, धीगाधीगी मचाते है, तूफान खडे करते है, मनमाने तौरपर सस्थाओमे घुस जाते है और फिर उन्हे नष्ट करते एव धारासभाओमे जाकर भाषण करते है। तिलक महाराजके जीवनमे ये बाते हमारे देखनेमे भी नही आती। उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय है, सो तो मै ऊपर कह ही चुका हू।[1]

आप लोगोने तिलक महाराजकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-रहस्य' का नाम सुना होगा। उसमे इतना ज्ञान भरा है कि उसके अनेक पारायण करने चाहिए। मैने वह यरवदा जेलमे पढी थी। यह बात सही है कि मै उनकी सभी बातोसे सहमत नही हू, पर इसमे कोई सदेह नही कि तिलक महाराज बहुत बडे विद्वान थे और उन्होने सस्कृत साहित्यका बहुत गहरा अध्ययन किया था। उनकी वह गीता पढे मुझे बहुत समय हो गया, इसलिए उनके ठीक शब्द मुझे याद नही है, पर उनके लिखनेका भावार्थ मै बताऊगा। वह बात मुझे बहुत ठीक लगती है।

---

[1] लोकमान्यकी पुण्य तिथिपर गुजरात विद्यापीठमें दिया गया भाषण।

उन्होने एक जगह कहा है कि अग्रेजी भाषामे अतरात्माके लिए 'कान्शस' शब्द अच्छा है, पर जब यह कहा जाता है कि हम अपने 'कान्शस'के मुताबिक चलते है तब इसका सही अर्थ यह नही होता कि हम अतरात्माके कहनेपर चलते है। हमारे वैदिक धर्मके मुताबिक 'कान्शस' सभीमें (जड-चेतनमे) होता है। पर बहुतोका 'कान्शस' सोया हुआ रहता है, अर्थात् उनकी अतरात्मा मूढ अवस्थामे होती है। तो उस अवस्थामे उसे 'कान्शस' कैसे कहा जाय? हमारे धर्मके अनुसार मनुष्यकी अतरात्मा तब जाग्रत होती है जब यम-नियमादिका पालन और दूसरी भी बहुत-सी चेष्टा आदि करें। तिलक महाराजकी इस बातको मैने पचा लिया है। शास्त्रकी जो चीज हम पचा सकें वही सार्थक है। जैसे वही आहार हमारे लिए सार्थक बनता है जिसका हम रक्त बनाए। तो तिलक महाराजकी इस बातको मैने पचा लिया है, जिसके जरिये कौन-सी आवाज अतरात्माकी है और कौन-सी नही, उसकी परख मै कर लेता हू। (प्रा प्र., १.६ ४७)

: ७८ :

अब्बास तैयबजी

सबसे पहले सन् १९१५ मे मै अब्बास तैयबजीसे मिला था। जहा कही मैं गया, तैयबजी-परिवारका कोई-न-कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला। ऐसा मालूम पडता है, मानो इस महान और चारो तरफ फैले हुए परिवारने यह नियम ही बना लिया था। हमारे बीच इस अटूट सबधका खास कारण क्या था, यह सिवा इसके मुझे और कुछ मालूम नही कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह वश प्रसिद्ध है उससे सन् १८९० मे मेरी मित्रता हो गई थी, जब कि मै दक्षिण अफ्रीकासे हिंदुस्तान

वापस आया था और बिल्कुल अनजान व्यक्ति था। कुछ लोगोके विचार-मे तो मै सभवत एक दु साहसी आदमी था, लेकिन वदरुद्दीन तैयवजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका यह खयाल नही था।

मगर मुझे तो वडौदाके अब्बास मियाके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिलते और मै उनके मुहकी ओर देखता तो मुझे स्व० जस्टिस वदरुद्दीन तैयवजीका स्मरण हो आता था। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्मभरके लिए मित्रताकी गाठ बध गई। मैने उन्हे हरिजनोका मित्र ही नही, बल्कि उन्हीमे का एक पाया। बहुत दिन पहले गोधरामें, शामको हरिजनोकी बस्तीमे होनेवाले एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनमें जब मैने उन्हे बुलाया तो दर्शकोको वडा आश्चर्य हुआ, लेकिन अब्बास मियाने हरिजनोके काममे उसी उत्साहसे भाग लिया, जैसे कोई कट्टर हिंदू ले सकता है। इतनेपर भी वह कोई साधारण मुसलमान नही थे। इस्लामके लिए उन्होने मुक्तहस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम सस्थाओको वह सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोको मुसलमान बनाने जैसा कोई विचार उनके मनमे नही था। उनके इस्लाममे भूमडलके तमाम महान् धर्मोके लिए गुजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी-आदोलन-मे वह हिंदुओकी ही तरह उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे, और मै जानता हू कि जबतक वह जिदा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होने आधे मन से कभी कोई काम नही किया। अब्बास तैयवजी अपने मनमे कोई बात छिपाकर नही रखते थे। पजाब-की पुकारका उन्होने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमे कभी कोई मुसीबत नही झेली, जेलोकी सख्तिया वर्दाश्त करना कोई मजाक नही था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरएक कठिनाईको विजय कर लिया। हँसते-हँसाते खेडाके किसानोकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हीका-सा खाना खाते और सब

मौसमोमें उन्हीकी रद्दी-सद्दी गाडियोमें सफर करनेकी क्षमतासे अनेक नौजवनोको उनके सामने शर्मिन्दा होना पडा । ऐसी असुविधाओके बारेमे, जिन्हे कि बचाया जा सकता हो, मैने उनको कभी शिकायत करते हुए नही सुना । 'क्यो ?' का प्रश्न करना उनका काम नही था, वह तो काम करने और अपनेको झोक देनेकी बात जानते थे । हालाकि एक समय चीफ जज-की हैसियतसे उन्हे किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञा-पालन करानेकी सत्ता प्राप्त थी, फिर भी बिना किसी उज्रके अनुशासन पालन करनेकी आश्चर्यजनक क्षमता उन्होने प्रदर्शित की । वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोमेसे थे । भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे । ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमे मानते थे । उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोके बीच ही रहता है । अब्बास मियाका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमे विश्राम कर रहा है, पर वह मरे नही है । उनका जीवन हम सबके लिए एक स्फूर्ति है, एक प्रेरणा है । (ह० से०, २०-८-३६)

: ७६ :

बदरुद्दीन तैयबजी

मै श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दगा जिन्होने अपनी कानूनी लियाकत बिल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी बडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की । आप शायद मुझे ताना देगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमे बडी लबी-लबी फीस लेते थे । मै इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा

और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नही है। मैंने उनको बडे सतोषसे दीनता-पूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२-११-३१)

: ८० :

डॉक्टर दत्त

फोरमन क्रिश्चियन कालेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहातसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चियन उठ गया है। दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद तुरत ही उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनबधु एण्ड्रूजके एक अतरग मित्र थे। उन्होने अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय करा दिया था और तभी उन्हे सतोष हो पाया था। सन् १९२४ मे एकता परिषद्के उन चिंताजनक दिनोमे, जब मैं दिल्लीमे २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होने रात-दिन लगकर काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषदके समय भी मैंने उन्हे उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक अवसरपर उनका देहात दुगुना कष्टदायक होगा। मैं श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हू। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमे उनके साथ है। (ह० से०, २८-६-४२)

: ८१ :

गोपबन्धुदास

प० गोपबधुदास, जो पहले एम० एल० सी०, वकील इत्यादि थे, अति त्यागी नेता है। उनसे मुझे विदित हुआ है कि ये और उनका दल केवल भात-दालपर गुजारा करते हैं, घी उन्हे शायद ही मिलता है। असहयोग करनेके अनतर कार्यकर्ताओने अपनी आवश्यकताए एकबारगी कम कर दी है, यहातक कि दस रुपये जैसी छोटी रकमपर ये अपना निर्वाह कर लेते है। मुझे तनिक भी सदेह नही कि ऐसे अदम्य उत्साही कार्यकर्ताओके द्वारा स्वराज्य इसी वर्षमे प्राप्त हो सकता है। पडित गोपबधुदासकी एक पाठशाला साखी-गोपालमे पुरीसे १२ मील पर है। यह एक कुज पाठशाला है। यह देखने योग्य है। मैंने उसके छात्रो और शिक्षकोके बीच एक दिन बडे आनदसे काटा। यह खुले मैदानमे शिक्षापद्धतिकी बडी अच्छी परीक्षा है। वहाके कुछ छात्र जबर्दस्त कुश्तीबाज है। (य० इ० ३४२१)

: ८२ :

देशबन्धु चित्तरंजन दास

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको ये सस्मरण मै लिख रहा हू। देशबधुदासके पुराने महलकी छतपर बैठा हुआ हू। बगालमें आये आज मुझे चार रोज हुए है, परतु इस महलमे मेरे दिलपर पहलेपहल जो चोट लगी है वह अभीतक मुझे छोड नही रही है। मैं

जानता था कि यह मकान देशबधुने सार्वजनिक कामके लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिरपर कर्ज था, पर उसके साथ ही मुझे इस बातका भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करे तो थोडे समयमे यह कर्ज अदा करके अपने महलपर कब्जा कर सकते है। पर उन्हे वकालत तो करनी थी नही, या यो कहे कि वे तो बिना फीस लिये देशकी वकालत करना चाहते थे। इसलिए महलके सदृश मकानको दे डालनेका ही निश्चय उन्होने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियोको दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रामे मै कलकत्तेमे तो उन्हीके इसी पुराने मकानपर ठहरू। इसीसे यहा आ कर रहा हू।

परतु जानना एक बात है और देखना दूसरी। घरमे प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आखे छलछला उठी। इस महलके मालिकके बिना और उनकी मालिकीके बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमे रहना मुश्किल हो गया और अभी तक इस भावका प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

मै जानता हू कि यह मोह है। मकानका कब्जा देकर देशबन्धुने अपने सिरसे एक बोझ कम किया है। उस मकानसे, जिसमे ये दपतो न जाने कहा खो जाय, उन्हे क्या लाभ? यदि वे मनमे लावे तो झोपडीको राजमहल बना सकते है। दोनोने स्वेच्छासे उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम शुरू करना पडे।

परतु देहाध्यास कही जाता है? ससार कही दासकी तरह करता है? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुषने उसका त्याग कर दिया। धन्य है उसे! मेरे आसू प्रेमके है। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यो न हो? यदि देशबधुके साथ मेरा कुछ भी सबध न होता तो यह आघात न पहुचता। बहुतेरे महल देखे है, जिनके मालिक उन्हे छोडकर दुनियासे ही चले गये है। परतु उनमे प्रवेश करते

हुए आखोसे आसू नही गिरे। इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है। चित्तरजन दासने महलका परित्याग भले ही किया हो, पर उनकी सेवाकी कीमत वढ गई है।

परिषद्मे देशवधुका शरीर वहुत ही दुर्वल दिखाई दिया। आवाज वैठ गई है। कमजोरी खूव है। सच कहे तो अभी तवीयत ऐसे कामोके योग्य नही हो पाई है। अभी तो डाक्टरोने उन्हे सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए या तो यूरोप या दार्जिलिंग जावे, पर वहा तो वे मजवूरीकी अवस्थामे ही जाना चाहते है।

देशवधुका भाषण सक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी ध्वनि थी। उन्होने उस भाषणमे साफ तौरपर वताया कि हिंदुस्तानका उद्धार अहिंसामय सग्रामसे ही हो सकता है। इस भाषणके नीचे यदि कोई मुझसे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द वदलनेकी जरूरत हो।

उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोका होना स्वाभाविक था। इसमे विषय-समितिमे खासा झगडा भी हुआ। अतमे देशवधुको त्याग-पत्र देना कहने तककी नौवत आगई थी। लेकिन आखिर उनके प्रभावकी जय हुई और परिषद्के महत्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए।

जव हृदय चोटसे व्यथित होता है तव कलमकी गति कुठित हो जाती है। मै यहा इस तरह शोकमय वायुमडलमे हू कि तार द्वारा पाठकोके के लिए अधिक कुछ भेजनेमे असमर्थ हू। अभी दार्जिलिंगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा। उसने हम एक दूसरेको पहलेसे अधिक एक-दूसरेके नजदीक कर दिया। मैने केवल यही अनुभव नही किया कि देशवन्धु कितने महान् थे, वल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे। भारतका एक लाल चला गया। हमे चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त करके उसे पुन प्राप्त करे। (हि० न०, १८ ६ २५)

• • • • •

आप लोगोने आचार्य रायसे सुन लिया कि हम लोगोपर कैसा भीषण प्रहार हुआ है। परतु मै जानता हू कि अगर हम सच्चे देशसेवक है तो कितना ही वडा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिलको नही तोड सकता। आज सवेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाडी मिले उसीसे मै कलकत्ते चला जाता; पर मेरा यह भी कर्त्तव्य था कि आपके निर्द्धारित कार्यक्रमको पूरा करू। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा की कि यहाका कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मै दूर-दूरसे आये हुए लोगोसे मिलनेके लिए ठहर गया हू तथापि उनके सामने महासभाके कार्यकी विवेचना न करके स्वर्गीय देशवधुका ही स्मरण करूगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ता दौड जानेकी अपेक्षा यहाका काम पूरा करनेसे उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशवन्धु दास एक महान् पुरुष थे।[1] मै गत छ वर्षोसे उन्हे जानता हू। कुछ ही दिन पहले जव मै दार्जिलिगसे उनसे विदा हुआ था तव मैने एक मित्रसे कहा था कि जितनी ही घनिष्टता उनसे वढती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम वढता जाता है। मैने दार्जिलिगमे देखा कि उनके मनमे भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी वातचीत करते थे, और कुछ नही। दार्जिलिगसे विदा होते समय भी उन्होने मुझसे कहा था कि आप विछुडे हुए दलोको एक करनेके लिए वगालमे अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सव लोगोकी शक्ति एक कार्यके लिए युक्त हो जाय। मेरी वगाल-यात्रामें उनसे मतभेद रखनेवालोने भी विना हिचकिचाहटके इस वातको स्वीकार किया है कि वगालमे ऐसा कोई मनुष्य नही है जो उनका स्थान ले सके।

---

[1] इतना कहते-कहते गाधीजीकी आखोमें आसू आगये और एक-दो मिनट तक कुछ बोल न सके।

वे निर्भीक थे, वीर थे। बगालमे नवयुवकोके प्रति उनका निस्सीम स्नेह था। किसी नवयुवकने मुझे ऐसा नही कहा कि देशबधुसे सहायता मागने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई। उन्होने लाखो रुपया पैदा किया और लाखो रुपया बगालके नवयुवकोमें बाट दिया। उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताकी बात मै क्या कह सकता हू! दार्जिलिगमे उन्होने मुझसे अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिंसा और सत्यपर निर्भर है।

भारतके हिंदुओ और मुसलमानोको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिंदू और मुसलमानका भेद नही जानता था। मै भारतके मत्र अग्रेजोसे कहता हू कि उनके प्रति उनके मनमे बुरा भाव न था। उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—"मै जीऊगा तो स्वराज्यके लिए और मरूगा तो स्वराज्यके लिए।" हम उनकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए क्या करे? आसू बहाना सहज है, परतु आसू हमारी या उनके स्वजनो-परिजनोकी सहायता नही कर सकता। अगर हममेसे हर कोई हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करे जिसमे वे रहते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया। हम सब ईश्वरको मानते है। हमे जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। देशबधुका शरीर नष्ट हो गया, परतु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी। न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी—जिन्होने इतनी बडी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढा उनके आदर्शपर जरा भी चलेगा वह उनकी यादगार बनाये रखनेमे मदद देगा। हम सबमे उनके जैसी बुद्धिमत्ता नही है, पर हम उस भावको अपनेमे ला सकते है जिससे वे देशकी सेवा करते थे।

देशबधुने पटना और दार्जिलिगमे चरखा कातनेकी कोशिश की थी। मैने उनको चरखाका पाठ पढाया था और उन्होने मुझसे वादा किया था कि मै कातना सीखनेकी कोशिश करूगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक

कातूगा। उन्होने अपने दार्जिलिंगके निवास-स्थानको 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वायदा किया कि बीमारीकी हालत छोडकर मै रोज आध घटे तक स्वय चरखा चलाऊगी और उनकी लडकी, वहन और वहनकी लडकी तो बराबर ही चरखा कातती थी।

देशबधु मुझसे अक्सर कहा करते—"मै समझता हू कि धारासभामें जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, वल्कि विना चरखेके धारासभाके कामको कारगर बनाना असभव है।" उन्होने जबसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरनेके दिनतक पहनते आए।

मेरे लिए यह कहनेकी बात नही है कि उन्होने हिंदू-मुसलमानोमे मेल करनेके लिए कितना वडा काम किया था। अछूतोसे वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषयमे सिर्फ वही एक बात कहूगा जो मैने वारीसालमे कल रातको एक नाम-शूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा—"मुझे पहली आर्थिक सहायता देशबधुने दी और पीछे डाक्टर रायने।" आप सब लोग धारासभाओमे नही जा सकते। परतु उन तीन कामोको कर सकते है जो उनको प्रिय थे। मै अपनेको भारतका भक्तिपूर्वक सेवा करनेवाला मानता हू। मै घोषणा करता हू कि मै अपने सिद्धातपर अटल रहकर, आगेसे सभव हुआ तो, देशबधु दासके अनुयायियोको उनके धारासभाके कार्यमे पहलेसे अधिक सहायता दूगा। मै ईश्वरसे प्रार्थना करता हू कि वह उनके कामको हानि पहुचानेवाला काम करनेसे मुझे बचाये रक्खे। हमारा धारासभा-सबधी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनोमे सदा मतभेद बना रहेगा। परतु उसके कारण हम लोगोको एक-दूसरेसे अलग न हो जाना चाहिए, या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देशके काममे बाधक

नही हो सकता। साधन-सबधी मतभेद नही, बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिगमे रहते समय मै देखता था कि देशबधुके दिलमें अपने राजनैतिक विरोधियोके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढती जाती थी। मै उन पवित्र बातोका वर्णन यहा न करूगा। देशबधु देश-सेवकोमे एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड था। ईश्वर करे, उनकी याद हमे सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योगमे सार्थक हो। हमारा मार्ग लबा और दुर्गम है। हमको उसमे आत्मनिर्भरताके सिवा और कोई सहारा नही देगा। स्वावलबन ही देशबधुका मुख्य सूत्र था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शाति दे[1]। (हि० न०, २५ ६ २५)

मनुष्योमे से एक दिग्गज पुरुष उठ गया। बगाल आज एक विधवा-की तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबधुकी समालोचना करने-वाले एक सज्जनने कहा था, "यद्यपि मै उनके दोष बताता हू, फिर भी यह सच है, मै आपके सामने मानता हू कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई व्यक्ति नही है।" जबकि मैने खुलनाकी सभामे, जहा कि मैने पहले-पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वार्ता सुनी, इस प्रसगका जिक्र किया—आचार्य रायने छूटते ही कहा—"यह बिलकुल सच है। यदि मै यह कह सकू कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूगा कि देशबधुके बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बगालमे कोई आदमी ऐसा नही है जो देशबधुके समीप भी कही पहुच पाता हो।" वे कई लडा-इयोके विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोषकी सीमातक बढी हुई थी। वकालतमे उन्होने लाखो रुपये पैदा किये, पर उन्हे जोडकर वे कभी

---

[1]देशबधुके अवसानका शोक-समाचार मिलनेके बाद खुलनामें दिया गया भाषण।

धनी नही बने, यहा तक कि उन्होने अपना पैतृक महल भी दे डाला।

१६१६ मे, पजाब महासभा जाच समितिके सिलसिलेमें, उनसे पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। मै उनके प्रति सशय और भयके भाव लेकर उनसे मिलने गया था। दूरसे ही मैंने उनकी धुआधार वकालत और उससे भी अधिक धुआधार वक्तृत्वका हाल सुना था। वे अपनी मोटर-कार लेकर सपत्नीक, सपरिवार आये थे और एक राजाकी शान-वान-के साथ रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम हटर-कमिटीकी तहकीकातमे गवाहिया दिलानेके प्रश्न पर विचार करनेके लिए बैठे थे। मैंने उनके अदर तमाम कानूनी वारीकियोको तथा गवाहको जिरहमे तोडकर फौजी कानूनके राज्यकी, वहुतेरी शरारतोकी कलई खोलनेकी, वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी। मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था। मैंने अपना कथन उन्हे सुनाया। दूसरी मुलाकातमे मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया। उनको मैंने जो कुछ कहा उसको उन्होने उत्सुकताके साथ सुना। भारतवर्षमे पहली ही वार वहुतेरे देश-सेवकोके घनिष्ठ समागममे आनेका अवसर मुझे मिला था। तवतक मैंने महासभाके किसी काममे वैसे कोई हिस्सा न लिया था। वे मुझे जानते थे—एक दक्षिण अफ्रीकाका योद्धा है। पर मेरे तमाम साथियोने मुझे अपने घरका-सा वना लिया, और देशके इस विख्यात सेवकका नवर इसमे सवसे आगे था। मै उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था। "जिन वातोमे हमारा मतभेद होगा उनमे मै अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूगा। फिर जो फैसला आप करेगे उसे मै मान लूगा। इसका यकीन मै आपको दिलाता हू।" उनके इस स्वयस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममे इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मनका सशय उनपर प्रकट करनेका साहस हो गया। फिर जब उनकी ओरसे यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथीपर अभिमान तो

हुआ, किंतु साथ ही कुछ संकोच भी मालूम हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारतकी राजनीतिमें एक नौसिखिया था और शायद ही ऐसे पूर्ण विश्वासका अधिकारी था। परन्तु तत्रनिष्ठा छोटे-बड़ेके भेदको नहीं जानती। वह राजा जो कि तंत्र-निष्ठाके मूल्यको जानता है, अपने सेवक की भी बात, उस मामलेमे मानता है, जिसका पूरा भार उसपर छोड देता है। इस जगह मेरा स्थान एक सेवकके जैसा था। और मैं इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हू कि मुझे जितने मित्र-निष्ठ साथी वहा मिले थे, उनमे कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चित्तरंजन दास थे।

अमृतसर-धारासभामें तत्रनिष्ठका अधिकार मुझे नही मिल सकता था। वहा हम परस्पर योद्धा थे, हर शख्सको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-सबधी, अपने ट्रस्टकी रक्षा करनी थी। जहा तर्क अथवा अपने पक्षकी आवश्यकताके अलावा किसीकी बात मान लेनेका सवाल न था। महासभाके मचपर पहली लडाई लडना मेरे लिए एक पूरे आनद और तृप्ति-का विषय था। बडे सभ्य, उसी तरह न झुकनेवाले महान् मालवीयजी बलाबलको सामने रखनेकी कोशिश कर रहे थे। कभी एकके पास जाते थे, कभी दूसरेके पास। महासभाके अध्यक्ष पडित मोतीलालजीने सोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तो लोकमान्य और देशबंधुसे खासी जम रही थी। सुधार-सबधी प्रस्तावका एक ही सूत्र उन दोनोंने बना रक्खा था। हम एक-दूसरेको समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोंने तो सोचा था कि अब कोई चारा नही था और इसका अत बुरा रहेगा। अलीभाई, जिन्हे मैं जानता था और चाहता था, पर आजकी तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देशबधुके प्रस्तावके पक्षमे मुझे समझाने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी लुभावनी नम्रतासे कहा, "जाच-समितिमे आपने जो महान् कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।" पर वह मुझे न पटा सके। तब जयरामदास, वह ठडे दिमागवाला सिंधी

आया, और उसने एक चिटमे समझौतेकी सूचना और उसकी हिमायत लिखकर मुझे पहुचाई। मै शायद ही उन्हे जानता था। पर उनकी आखो और चेहरेमे कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैने उस सूचनाको पढा। वह अच्छी थी। मैने उसे देशबधुको दिया। उन्होने जवाब दिया,–"ठीक है, बशर्ते कि हमारे पक्षके लोग उसे मान ले।" यहा ध्यान दीजिए उनकी घनिष्ठतापर। अपने पक्षके लोगोका समाधान किये बिना वे नही रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगोके हृदयपर उनके आश्चर्यजनक अधिकारका। वह सब लोगोको पसद हुई। लोकमान्य अपनी गरुडके सदृश तीखी आखोसे वहा जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान-मचसे पडित मालवीयजीकी गगाके सदृश वाग्धारा बह रही थी। उनकी एक आख सभामचकी ओर देख रही थी जहा कि हम साधारण लोग बैठकर राष्ट्रके भाग्यका निर्णय कर रहे थे। लोकमान्यने कहा–"मेरे देखनेकी जरूरत नही। यदि दासने उसे पसद कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।" मालवीयजीने उसे वहासे सुना, कागज मेरे हाथसे छीन लिया और घोर करतलध्वनिमे घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैने इस घटनाका सविस्तर वर्णन इस लिए किया है कि उसमे देशबधुकी महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढता, निर्णय-सबधी समझदारी और पक्षनिष्ठाके कारणोका सग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढिए। हम जुहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिंग पहुंचते है। जूहूमे वे और पडित मोतीलालजी मुझे अपने पक्षमे मिलानेके लिए आये। वे दोनो जोडवा भाई हो गये थे। हमारे दृष्टिबिंदु अलग-अलग थे। पर उन्हे यह गवारा न होता था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसका होता तो वे ५० मील चले जाते जहा मै सिर्फ २५ मील चाहता, परतु वे अपने एक अत्यत प्रिय मित्रके सामने भी एक इच न झुकना चाहते थे, जहा कि देशहित सकटमे था। हमने एक प्रकारका समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा, पर हम निराश

न हुए। हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेके लिए तुले हुए थे। फिर हम अहमदाबादमे मिले। देशबन्धु अपने पूरे रगमे थे और एक चतुर खिलाडीकी तरह सब रग-ढग देखते थे। उन्होने मुझे एक शानकी शिकस्त दी। उनके जैसे मित्रके हाथो ऐसी कितनी शिकस्त मैं न खाऊगा! पर अफसोस! वह शरीर अब दुनियामे नही रहा! कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके कारण हम एक-दूसरेके शत्रु हो गये थे। हम एक-दूसरेको गलतीपर समझ रहे थे, पर वह मतभेद स्नेहियोका मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोके दृश्योको याद करे—किस तरह वे अपने मतभेदोके कारण कष्ट सहते है, जिसमे कि उनके पुर्नमिलनका सुख अति बढ जाय। यही हमारी हालत थी। सो हमे फिर दिल्लीमे उस भीषण जबडेवाले शिष्ट पडित और नम्र दासने, जिनका कि बाहरी स्वरूप किसी सरसरी तौरपर देखनेवालेको अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा। मेरे उनके प्रस्तावका ढाचा वहा तैयार हुआ और पसद हुआ। वह एक अटूट प्रेम-बधन था जिसपर कि अब एक दलने उनकी मृत्युकी मुहर लगा दी है।

वे अक्सर आध्यात्मिकताकी बाते करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमे आपका मेरा कोई मतभेद नही है। पर यद्यपि उन्होने कहा नही तथापि हो सकता है कि उनका भाव यह रहा हो कि मै इतना काव्यहीन हू कि मुझे हमारे विश्वासोकी एकात्मता नही दिखाई देती। मै मानता हू कि उनका खयाल ठीक था। उन बहुमूल्य पाच दिनोमे मैने उनका हर कार्य धर्म-मय देखा और न केवल वे महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढती जा रही थी। पर इन पाच दिनोके बहुमूल्य अनुभवोको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोडना चाहिए। जबकि क्रूर दैवने लोकमान्यको हमसे छीन लिया तब मै अकेला असहाय रह गया। अभीतक मेरी वह चोट गई नही है, क्योकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्योकी आराधना करनी पडती है।

पर देशबधुके वियोगने तो मुझे और भी बुरी हालतमे छोड दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे, देश आशा और उमगसे भरा हुआ था, हिंदू-मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्धका शख फूकनेकी तैयारीमे थे। पर अब? (हि० न० २५ ६ २५)

•

कलकत्तेने कल दिखला दिया कि देशबधुदासका बगालपर, नही सारे भारतवर्षके हृदयपर, कितना अधिकार था। कलकत्ता, बबईकी तरह पचरगी प्रजाका नगर है। इसमे हर प्रातके लोग बसते है और इन तमाम प्रातोके लोग, बगालियोकी तरह ही अपने दिलसे उस जुलूसमे योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोकी जो झडी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देशभरमे वे कितने लोकप्रिय थे।

जिन लोगोका हृदय कृतज्ञतासे भर रहा है, उनके सबधमे इससे भिन्न अनुभव नही हो सकता था। और देशबधु इस सारे कृतज्ञताज्ञापनके पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारताकी सीमा नही थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमे वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जबकि मैंने बडे मीठे भावसे कहा, "अच्छा होता, आप दान देनेमे अधिक विचारसे काम लेते।" उन्होने तुरत उत्तर दिया, "पर मै नही समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।" अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोईघर खुला था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय उसके पास दौड जाता था। सारे बगालमे ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमे देशबधुका कृतज्ञ नही है? उनकी बेजोड कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबोकी सेवाके लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होने यदि, सबकी नही तो, बहुतेरे राजनैतिक कैदियोकी पैरवी बिना एक कौडी लिये की है। पजाबकी जाचके समय जब वे पजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे किया था। उन दिनो अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजमा

ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पजावकी उस यात्रामे उनके ५०,००० रुपये खर्च हुए थे। जो उनके द्वारपर आता था उसीके लिए उनकी उदारताका हाथ आगे वढ जाता था। उनके इसी गुणनें उन्हें हजारो नवयुवकोके दिलका राजा वना दिया था।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसरमे उनकी धुआधार वक्तृताओने मेरा दम खुश्क कर दिया था। वे अपने देशकी मुक्ति तुरत चाहते थे। वे एक विशेषणको हटाने या वदलनेके लिए तैयार न थे। इसलिए नही कि वे जिद्दी थे, वल्कि इसलिए कि वे अपने देशको वहुत चाहते थे। उन्होने विशाल शक्तियोको अपने कब्जेमें रक्खा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसायके द्वारा उन्होने अपने दलको प्रवल वनाया। परतु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले वैठा। उनका यह वलिदान स्वेच्छापूर्वक था। वह उच्च था। उदात्त था।

फरीदपुरमे तो उनकी विजय हुई। उनके वहाके उद्‌गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञताके नमूना थे। वे विचार-पूर्ण और असदिग्ध थे और (जैसा कि मुझे उन्होने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होने अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षका राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था।

प० मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके तत्रनिष्ठ सैनिकोसे मेल करके उन्होने शून्य-से स्वराज्य-दलको एक महान् और वर्धमान् दल वना लिया और ऐसा करके उन्होने अपने निश्चयवल, मौलिकता साधन-वहुलता और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके वाद फिर परिणामकी चिंता न करनेके, गुणोका परिचय दिया। और आज हम स्वराज्य-दलको एक एकत्र और सुतत्रनिष्ठ सगठनके रूपमे देखते है। धारासभा-प्रवेशके सवधमे मेरा मतभेद था और है। पर मैने सरकारको तग करने और लगातार उसकी स्थितिको विषम वनानेके सवधमे धारासभाकी उपयोगितासे कभी इन्कार नही किया। धारासभामे इस दलने जो काम किया उसकी महत्तासे

कोई इन्कार नही कर सकता और उसका श्रेय मुख्यत देशबन्धुको ही है। मैंने अपनी आखे खुली रखकर उनके साथ प्रस्ताव किया था। तबसे मैंने जो कुछ हो सकी उस दलकी सहायता की है। अब उनके स्वर्गवासके कारण, उसके नेताके चले जानेके बाद, मेरा यह दुहरा कर्त्तव्य हो गया है कि उस दलके साथ रहू। यदि मै उसकी सहायता न कर पाया तो मै उसकी प्रगतिमे तो किसी तरह बाधक न होऊगा।

मै फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हू। स्थानापन्न बडे लाट साहबने श्रीमती वासती देवी दासके नाम जो शोक-सदेश भेजा है उसके गुणको राष्ट्र मानेगा। एग्लो-इडियन पत्रोने स्वर्गीय देशबधुकी स्मृतिमे जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मै कृतज्ञतापूर्वक करता हू। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी पारदर्शिनी निर्मल-हृदयताने अग्रेजोके दिलपर अच्छा असर किया है। मुझे इस बातकी चिता लग रही है कि कही उनके स्वर्गवासके कारण इस शिष्टाचार प्रदर्शनके साथ ही उसका अत न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमे एक महान उद्देश्य था। एग्लो-इडियन मित्रोने चाहा था कि देशबधु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दे और अपनी तरफसे आगे कदम बढावे। इसीके उत्तरमे उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उद्गारके कर्ताको हमसे छीन लिया। परतु उन अग्रेजो को, जो अब भी देशबधुकी नीयतपर शक करते हो, मै यकीन दिलाना चाहता हू कि जबतक मै दार्जिलिगमे रहा, मेरे दिल पर जो बात सबसे अधिक जोरके साथ अकित हुई वह थी, देशबन्धुके उन वचनोके निर्मल भाव। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोको भरने और अविश्वासको मिटानेमे किया जा सकता है? मै एक मामूली बात सुझाता हू। सरकार देशबन्धु चित्तरजन दासकी स्मृतिमे, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए दुनियामे नही है, उन तमाम राजनैतिक कैदियोको छोड दे, जिनके सबधमे

उनका कहना था कि वे निर्दोष है। मै निरपराधताकी बिना पर उन्हे छोडनेको नही कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए अच्छे-से-अच्छे सबूत हो। मै तो सिर्फ उस मृत-आत्माके गुणकी स्मृतिमे और बिना पहलेसे कोई बुरा खयाल बनाये, उन्हे छोड देनेके लिए कहता हू। यदि सरकार भारतीय लोक-मतके अनुरंजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढकर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियोके छुटकारेसे बढकर अनुकूल वायुमडल बनानेका अच्छा मगलाचरण न होगा। मै प्राय सारे बगालका दौरा कर चुका हू। मैने देखा कि इस बातमे लोगोके दिलमे चोट पहुची है—इनमे सभी लोग आवश्यक रूपसे स्वराजी नही है। परमात्मा करे वह आग जिसने कि कल देशबन्धु-के नश्वर शरीरको भस्म कर डाला, हमारे नश्वर अविश्वास, सदेह और डरको भस्मसात्कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोकी मागकी पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन कर सकती है।

यदि सरकार अपने जिम्मेका काम करेगी तो हमे भी अपनी तरफका काम करना होगा। हमे यह दिखा देना होगा कि हमारी नौका एक आदमीके भरोसे पर नही चल रही है। श्री विन्सेट चर्चिलके शब्दोमें, जो कि उन्होने युद्धके समयमे कहें—"हमें यह कहनेमे समर्थ होना चाहिए, सब काम ज्यो-का-त्यो चलता रहे।" स्वराज्य-दलकी पुनर्रचना तुरत होनी चाहिए। पजाबके हिंदू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहारको देखकर अपने लडाई-झगडे भूलते हुए दिखाई देते है। क्या दोनो पक्षके लोग इतनी दृढता और समझदारीका परिचय देगे कि अपने लडाई-झगडोका अत कर ले? देशबधु हिंदू-मुस्लिम-एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होने अत्यन्त विकट परिस्थितिमे हिंदू और मुसलमानोको एक बनाए रक्खा। क्या

उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको न जला सकेगी ? शायद इसके पहले-तमाम दलोके एक सस्थाके अतर्गत होनेकी आवश्यकता हो। देशवधु इसके लिए उत्सुक थे। वे अपने प्रतिपक्षियोके लिए बहुत बुरा-भला कहा करते थे। परतु दार्जिलिगमे मैने देशवधुके मुहसे उनके किसी भी राज-नैतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा। उन्होने मुझसे कहा कि सब दलोके एक करनेमे आप भरसक सहायता दीजिए। सो अब हम शिक्षित भारतवासियोका कर्तव्य है कि देशवधुके इस विचारको कार्यरूपमे परिणत करे और उनके जीवनकी इस एक महाकाक्षाको पूर्ण करे। यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढीपर ठेठ ऊपरतक न पहुच सके तो तुरत उसकी कुछ सीढिया तो चढे सही। तभी हम अपने हृदय-स्तलसे पुकार सकते है—"देशवधु स्वर्गवासी हुए, देशवधु चिरायु रहे।" (हिं० न०, २५ ६.२५)

इस अकमे लिखनेके लिए और क्या वात लिखना सूझेगी ?

पहाड-जैसे देशबधु उठ गये, सो अखवार उन्हीकी वातोसे भरे हुए है। देशबधुकी छोटी-से-छोटी वात अखबारवाले वडी उत्सुकताके साथ छाप रहे है। 'सर्वट' ने विशेष अक निकाला है। 'वसुमती 'वगालका सबसे वडा समाचारपत्र है। यह विशेष अककी तैयारी कर रहा है। हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार श्रीमती वासतीदेवी दासके पास आये है और सुदूर देशोसे आ ही रहे है। जगह-जगह सभाए हुई है। कोई भी गाव, जहा महासभाका झडा फहराता हो, शायद ही खाली होगा, जहा सभा न हुई हो।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था। अक-शास्त्री कहते है कि २ लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए थे। रास्तोपर खडे, तारके खभो-पर चढे, ट्रामकी छतपर खडे, झरोखोमे राह देखते हुए बैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदा है।

साथ भजन-कीर्तन तो था ही। पुष्पोकी वृष्टि हो रही थी। शव

खुला हुआ था, परतु उसपर फूलोके हार का पहाड बिछ गया था।

रथीके जुलूसके आगे स्वयसेवक फुलवाडी लेकर चल रहे थे। उसमे फूलोसे सुसज्जित चरखा था। जुलूस स्टेशनसे ७-३० पर चलकर श्मशानमे ३ वजे पहुचा। ३-३० वजे अग्नि-सस्कार शुरू हुआ।

श्मशान-घाटपर भीड उमडी थी। पीछेसे जो भीड उमडती थी उसे रोकना अति कठिन था और मैं समझता हू कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोने अपने कधेपर विठाकर इस उमडती हुई भीडके सामने न उठा रक्खा होता तो भयकर दुर्घटना हो जाती। दो सशक्त आदमियोने मुझे अपने कधेपर विठा रक्खा और उस हालतमे मैं लोगोको रोक रहा था और उनसे वैठ जानेकी प्रार्थना कर रहा था। लोग जवतक मुझे देखते थे तवतक तो मानते थे, पर मैं जहा अशातिकी आशका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरत उठ खडे हो जाते थे। सब लोग दीवाने हो गये थे। हजारो आखे रथीकी ओर लगी हुई थी। जब दाहकर्म शुरू हुआ तव लोग धीरज खो वैठे। सब वरवस खडे हो गये और चिताकी ओर खिच पडे। यदि एक भी क्षणका विलव होता तो सबके चितापर गिर पडनेका अदेशा था। अव क्या करे? मैंने लोगोसे कहा, "अव काम पूरा हुआ। सब अपने-अपने घर जावे।" और मुझे उठानेवाले भाइयोसे कहा, "अव मुझे इस भीडसे हटा ले चलो।" लोगोको मै पुकार पुकारकर और इशारेसे कहता चला कि मेरे पीछे आओ। इसका असर वहुत अच्छा हुआ, वह हजारोकी भीड वापस लौटी और दुर्घटना होते-होते वची।

चिता चदनकी लकडीकी वनाई गई थी।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानो वन-भोजन को आये हो। गभीरता तो सबके चेहरे पर थी, पर ऐसा नही मालूम होता था कि वे शोक-भारसे दव गये है। कुटुम्बियोका और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था। हमारे तत्त्व-ज्ञानका अन्त आ गया, लोगोका कायम रहा,

क्योकि वे तटस्थ थे। उनके अन्दर सम्मानका भाव तो पूरा-पूरा था। उनकी पूजा निःस्वार्थ थी। वे तो भारत-पुत्रको, अपने बन्धुको, प्रमाण-पत्र देनेके लिए आये थे। वे अपनी आखोसे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे, "तुमने बडा काम किया, तुम्हारे जैसे हजारो हो।"

देशबधु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे। दार्जिलिगमे इसका बडा अनुभव मुझे हुआ। उन्होने धर्म-सबधी बाते की। जिनकी छाप उनके दिलपर गहरी बैठी, उनकी बाते की। वे धर्मका अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे। "दूसरे देशमे जो कुछ हो, पर इस देशका उद्धार तो शातिमार्गसे ही हो सकता है। मै यहाके नवयुवकोको दिखला दूगा कि हम शातिके रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते है।" "यदि हम भले हो जायगे तो अग्रेजोको भला बना लेगे।" "इस अधकार और दभमे मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नही दिखाई देता। दूसरे की हमे आवश्यकता भी नही।" 'मै तमाम दलोमे मेल कराना चाहता हू। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु है। उनको एकत्र करनेके प्रयत्नमे होता क्या है कि हमे भीरु बनना पडता है। तुम जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करना और मिलना, पत्र-सपादकोको समझाना कि मेरी और स्वराज्य-दलकी ख्वाहमख्वाह निदा करनेसे क्या लाभ? मैने यदि भूल की हो तो मुझे बतावे। मै यदि उन्हे सतुष्ट न करु तो फिर शौकसे पेट भरके मेरी निदा करे।" "तुम्हारे चरखेका रहस्य मै दिन-दिन अधिक समझता जाता हू। मेरा कधा यदि दर्द न करता हो और इसमे मेरी गति कुठित न हो तो मै तुरत सीख लू। एक बार सीखनेपर नियम-पूर्वक कातनेमे मेरा जी न ऊबेगा। पर सीखते हुए जी उकता उठता है। देखो न, तार टूटते ही जाते है।" "पर आप ऐसा किस तरह कह सकते है? स्वराज्यके लिए आप क्या नही कर सकते।" "हा, हा, यह तो ठीक ही है। मै कहा सीखने-से नाही करता हू? मै तो अपनी कठिनाई बताता हू। पूछो तो वासती-देवीसे कि ऐसे काममे मै कितना मदबुद्धि हू?" वासतीदेवीने उनकी मदद

की, "ये सच कहते है। अपना कलमदान खोलना हो तो ताला लगाने मुझे आना पड़ता है।" मैने कहा, "यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबधुको अपग बना रक्खा जिससे उन्हे सदा आपकी खुशामद करनी पडे और आपपर सहारा रखना पडे।" हँसीसे कमरा गूज उठा। देशबधु मध्यस्थ हुए। "एक महीने बाद मेरा परीक्षा लेना। उस समय मैं रस्सिया निकालता न मिलूगा।" मैने कहा "ठीक है आपके लिए सतीशबाबू शिक्षक भी भेज देगे। आप जब पास हो जायगे तो समझिएगा कि स्वराज्य नजदीक आ गया।" ऐसे सब विनोदोका वर्णन करने लगू तो खातमा नही हो सकता।

कितने ही सस्मरण तो ऐसे है जिनका वर्णन मै कर ही नही सकता।

मै जिस प्रेमका अनुभव वहा कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहा न दिखाऊ तो मै कृतघ्न माना जाऊगा। वे छोटी-छोटी-सी बातकी सभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्तेसे मगवाते। दार्जिलिगमे बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल पडता है। इसलिए ठेठ तलहटीसे पाच बकरिया मगवाकर रक्खी। मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इतजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरेके दरम्यान सिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही, काम-काजसे निबटकर, मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठते थे, चारपाई अभी नही छूटी थी। पलथी मारकर बैठनेकी मेरी आदतसे परिचित थे। सो कुरसीपर नही बैठने देते थे। खटियापर ही अपने सामने मुझे बैठाते। गद्देपर भी कुछ खास तौरपर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये बिना न रहा गया, "यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहा पाणिग्रहणकी ही कसर है।" मेरे कहनेकी देर थी कि देशबधुके कहकहेसे सारा घर गूज उठा। देशबधु जब हँसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुचे बिना न रहती।

देशबधुका हृदय दिन-पर-दिन कोमल होता जाता था। रूढिके अनु-सार मास-मछली खानेमे उन्हे कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मासाहार, मद्यपान और चुरट तीनो चीजे उन्होने छोड दी थी। पीछे जाकर फिर उन्होने अपना जोर जमाया था, परतु उनका झुकाव इनको छोडनेकी ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनोसे राधास्वामी सप्रदायके एक साधुसे उनका समागम हुआ। तबसे निरा-मिष भोजनकी उत्सुकता बढ गई थी। सो जबसे वे दार्जिलिंग गये, निरा-मिष भोजन शुरू किया था। और मेरे रहने तक घरमे मास-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा, "यदि मुझसे हो सका तो अबसे मैं मास मछलीको छुऊगा तक नही। मुझे वे पसद भी नही और मै समझता हू कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमे बाधा पहुचती है। मेरे गुरुने मुझे खास तौरपर कहा कि साधनाके खातिर तुम्हे मासाहार अवश्य छोड देना चाहिए।" (हिं० न०, २ ७ २५)

यदि हमे देशबधुकी आत्माको शाति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणोको हम अपने अदर पैदा करे। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते है। उनके सदृश अग्रेजी चाहे हमे न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सके, धारा-सभामे जानेकी शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अदर उनके जैसा देशप्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते है। उनके बराबर धन हम चाहे न दे सके, परतु जो यथाशक्ति देते है उन्होने बहुत कुछ दे दिया है। विधवाके एक ताबेके छल्लेकी कीमत महा-राजके करोडोमेसे दिये हजारकी कीमतसे ज्यादा है। देशबधुने खादी पहननेके बाद फिर घरमे या बाहर उसका त्याग नही किया। क्या हम खादी पहनेगे? देशबधुने महीन खादी कभी न चाही। उन्होने तो मोटी खादीको ही पसद किया था। देशबधुने कातनेका प्रयत्न किया। जिन्होने

शुरु नही किया, क्या वे अब करेंगे ? (हिं० न०, ६ ७ २५)

• •

मै श्री मोतीलाल नेहरु, सी० आर०। दास, मनमोहन घोप, वदरुद्दीन तैयवजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होने अपनी कानूनी योग्यता विल्कुल मुफ्त वाटी और अपने देशकी वडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमे वडी लवी-लवी फीस लेते थे। मै इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोपके सिवा मेरा और सवसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सवव नही है। मैने उनको वडे सतोपमे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२ ११ ३१)

: ८३ :

दासप्पा

मैसूरमे कई वकीलोने मैसूर-सत्याग्रहकी हलचलमे हिस्सा लिया था। मैसूरकी चीफ कोर्टने उनके वकालतनामे छीन लिये है। इस सिलसिलेमे कोर्टके सवसे आखिरी शिकार श्री दासप्पा है। श्री दासप्पाकी मैसूरमे खूव प्रतिष्ठा है और वह वीस सालसे वकालत कर रहे है। वकालत-जैसे स्वतत्र पेशेमे किसीकी इस तरह सनद जव्त की जाना वेशक एक गभीर वात है। पर पहले भी काफी कारणके विना, या केवल राजनैतिक कारणोसे ऐसी घटनाए घट चुकी है। ऐसे अन्यायोको हमे धीरज और वहादुरीसे

बर्दाश्त करना है। पर श्री दासप्पाके बारेमे चीफ जजके हुक्मनामेकी रिपोर्ट 'हिंदू' मे पढकर बहुत दु ख हुआ है। श्री दासप्पाने मैसूरके एक खास भागमे सभाओमे भाषण न देनेके मजिस्ट्रेट साहबके हुक्मको तोडनेका साहस किया था और साथ ही मेरी सलाहके अनुसार सत्याग्रही कैदियोको, जज श्री नागेश्वर आइरकी महकमाना जाचका बहिष्कार करनेकी सलाह देकर अपनी धृष्टताका सबूत दिया था। इन और अन्य अपराधोके कारण श्री दासप्पाका वकालतनामा हमेशाके लिए जब्त हो गया। अगर जज-साहबकी चले, तो श्री दासप्पाको गरीबीका मुख देखना होगा। अगर उनके फैसलेका असर सरकारी मिसलके आगे जा सके, तो श्री दासप्पा समाजमे अपनी सब प्रतिष्ठा खोकर तिरस्कार और घृणाके पात्र बन जायेगे। श्री दासप्पाको मै अच्छी तरह जानता हू। वह एक निर्दोष चरित्रके शुद्ध ईमानदार आदमी है। अपनी शक्तिके अनुसार वह अहिसाका पालन करनेका मर्दानगीसे प्रयत्न कर रहे है। जो उन्होने किया है वही कई वकील और दूसरे लोग ब्रिटिश भारतमे कर चुके है। जज ऐसी बातोकी तरफ ध्यानतक नही देते, और जनताने उनको जन-नायकका पद दिया है। श्री भूलाभाई बबईकी हाईकोर्टके एडवोकेट-जनरल रह चुके है। उन्होने कानून तोडे है। इसी तरह श्री मुशीने और श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने भी कानून तोडे है। मगर उन लोगोके वकालतनामेको किसीने हाथ नही लगाया। इसमेसे पिछले दो तो अपने-अपने सूबेमे मत्री पदपर भी रह चुके है। सार्वजनिक जाचका आजसे पहले बिना किसी निजी हानिके बहिष्कार किया गया है। मगर इससे बहिष्कारके कर्त्ता-धर्त्ताओकी इज्जत या आचरणपर कभी हमला नही किया गया। मेरी रायमे अपना फैसला सुनाते समय मैसूर कोर्टके जज अपने कर्तव्यको भूल गये है। इससे श्री दासप्पाको कोई नुक्सान नही पहुचा। उलटे वह मैसूरकी जनताकी नजरोमे और ऊचे चढ जाएगे। मगर मै यह दावेसे कह सकता हू कि अपने पूर्वाग्रहोके वश होकर जजसाहबने अपने आपको

नुकसान पहुचाया है। इस तरह न्यायका मजाक पहले भी उडाया जा चुका है। (ह० से०, १३ ७ ४०)

: ८४ :

मनोहर दीवान

एक परोपकारी पुरुष, मै तो उनको महात्मा ही कहूगा मनोहर दीवान है। वे वर्धामें रहते है और विनोवा भावेके वडे शिष्य है। विनोवा-जी तो वहुत वडे आदमी है। तो मनोहरके दिलमे हुआ कि चलो, कुछ-न-कुछ करे। तो उन्होने कोढियोकी सेवा करनेका काम पसद किया। विनोवाने भी उनको ऐसा करनेके लिए प्रेरणा दी। वे निर्लेप रहते है। पैसेकी उनको दरकार नही। वे डाक्टर तो नही है, लेकिन उन्होने उसका काफी अभ्यास कर लिया है। काफी लोग उनकी मदद लेते है। (प्रा० प्र०, २३ १० ४७)

: ८५ :

गोपाल कृष्ण देवधर

श्री गोपाल कृष्ण देवधरके स्वर्गवाससे देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनोका एक सुदृढ और विश्वसनीय वधु गवा वैठा। स्व० गोखलेकी स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट् आफ इडिया सोसाइटी' के श्री देवधर सस्थापक सदस्योमेसे थे। प्रातीय हरिजन-सेवक-सघके वे अध्यक्ष भी थे। देशमे

ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नही पडा या ऐसी बाढ नही आई जहा उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानीसे काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होने तो गरीबीका ही बाना धारण किया, क्योकि लोक-सेवकका जीवन-सिद्धात ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति सक्रामक थी। जब भी उनकी समाज-सेवाकी माग हुई, वे कभी उससे पीछे नही रहे। उनका जीवन एक निष्कलक पवित्रताका जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदनके तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होने इतनी अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी-सी चीजसे बढते-बढते वह आज इतनी अच्छी सस्था बन गई है कि भारतवर्षमे जितनी भी इस प्रकारकी सस्थाए है उनसे वह किसी तरह पीछे नही। दिवगत आत्माके परिवारके साथ मै सादर समवेदना प्रकट करता हू। (ह० से०, २३ ११ ३५)

: ८६ :

दुर्गाबेन देसाई

श्रीमहादेव देसाईकी धर्मपत्नी प्रयागमे है। वे खुद भी स्वयसेविका हुई है, सेवा करनेके लिए जगह-जगह जाती है, दूसरे स्वयसेवकोको खाना पकाकर खिलाती है और दूसरी तरहसे उनकी सहायता करती है, रोज चरखा कातती है। श्रीमहादेवभाईके गिरफ्तार होते ही उन्होने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढकर पाठक प्रसन्न होगे। इसी खयालसे उसे यहा प्रकाशित करता हू —

"आप यह जानकर प्रसन्न होगे कि आप और वे जो बात चाहते थे, वही हुई। उन्हें एक वर्षकी सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल

हो चुका होगा। मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हू कि आप मेरी चिंता न करें। इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, पर नहीं कह सकती, यह हालत कबतक कायम रहेगी, क्योंकि मन तो स्वभावत ही चचल ठहरा। इसमें वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है।

देवदासभाई जबतक जेलके बाहर है और यहा काम कर रहे है तबतक तो मैं यहीं रहूगी। उनके पकडे जानेके बाद मैं आश्रम (सत्याग्रह आश्रम, साबरमती) आऊगी।

यह पत्र कल लिखकर वैसा ही छोड दिया था। आज मैं और देवदासभाई उनसे मिलने गये थे। उसका हाल देवदासभाईने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रही हू। जेलमें उनके साथ जिस तरहका बर्ताव किया जाता है, उसका हाल जानकर मनके धर्मके अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ। पर अब उसका असर बिलकुल नहीं है। जब-जब मैं सोचती हू तब-तब यही मालूम होता है कि ऊपरसे उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करनेका बल प्राप्त होगा। आप मेरी चिंता न कीजिएगा। क्योंकि यदि आपकी लडकी ही इतनेसे दुःखसे दुःखी होकर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस सग्राममें विजय ही कैसे प्राप्त हो। मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हू कि आप यह आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करनेका बल दे।"

मेरी आशीष तो हुई है। पर मैं आशीर्वाद देने वाला कौन? भारतकी महिलाए तो अपने ही तपोबलसे साहस प्राप्त कर रही हैं। एक-दो आदमी तो जेल गये ही नही है। कितने ही लोग गये है और बहुतोंकी धर्मपत्निया हिम्मत और धीरज धारण कर रही है और खुशी-खुशी अपने पतिको तथा दूसरे रिश्तेदारोंको जेलमें भेज रही है और स्वय भी

जानेको तैयार होती है । मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री देसाईके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था वह अब बद कर दिया गया है । धीरज तथा विनययुक्त वर्तावसे अनुचित दुखका निवारण हुए बिना रह ही नही सकता । पर ऐसा हो चाहे न हो, जेलके दुख चाहे कितने ही भयानक क्यो न हो, उनको सहन किये विना दूसरी गति ही नही है । (हिं० न० ८ १.२२)

: ८७ :

प्रागजी देसाई

एक भाई प्रागजी देसाई थे । उन्होने अपने जीवनमे कभी धूप-जाडा नही सहा था । और यहा तो जाडा था, धूप थी और बारिशका मौसिम था । हमने अपना श्रीगणेश तो तबूमे रहकर दिया था । मकान बँधकर तैयार हो तब उनमे सोये । करीब दो महीनोके अदर मकान तैयार हो गये । मकान टीनके थे, इसलिए उनको बनानेमे कोई देरी नही लगी । आवश्यक आकार-प्रकारकी लकडी तैयार मिल सकती थी । केवल नाप-जोख कर टुकड़ेमात्र करना पडते । दरवाजे—खिडकिया आदि ज्यादा नही बनाने थे । इसलिए इतने समयमे सभी मकान तैयार हो गये, पर इस काम-काजने भाई प्रागजीकी खूब खबर ले डाली । जेलकी बनिस्बत फार्मका काम जरूर ही अधिक सख्त था । एक दिन तो परिश्रम और बुखारके कारण वह बेहोश तक हो गये । पर वह यो इतनी जल्दी हारने वाले आदमी नही थे । यहा उन्होने अपने शरीरको पूरी तरह मेहनत पर चढा दिया और अतमे इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि वह सबके साथ-साथ काम करने लग गये । (द० अ० स० १९२५)

: ८८ :

भूलाभाई देसाई

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके सबधमे जाच करनेके लिए महासमिति (आल इडिया काग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट, विशेषकर वर्तमान अवसरपर, एक अत्यत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा, काग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे विना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और कुमारप्पा अपने इस प्रेम—परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अधिकारी है। 'यग इडिया'के विदेशी पाठक जानते है कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। इन्होने एडवोकेट-जनरलके पद का उपयोग किया है, यह बात यो ही छोड दी जाय तो दोनो धूमधामसे चलनेवाले धधेके व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेषज्ञ है। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठामें कुछ वृद्धि की है ऐसी कोई बात नही है। यह तो उनकी प्रतिष्ठा की और उनके व्यवसायमे उनका जो पद है, उसकी स्वीकृति-मात्र है। खुशाल शाह भारतप्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बबई यूनिवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनो सज्जन सदैव काममें रुके रहते है, इसलिये राष्ट्रीय महासभाके सौपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है और जो धाधलीबाज उपदेशक नही, वरन स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको

तौलकर व्यवहारमे लाने वालोकी यह कृति है। (हिं० न०, ६ ८ ३१)

बारडोलीके किसानोकी बहादुरीने और उनकी आफतो व मुसीबतोने श्री भूलाभाई देसाई-जैसोको जनताकी सेवाका काम सभाल लेनेकी प्रेरणा दी, वरना वे एक मशहूर सरकारी नोकर रहे होते और बबई हाईकोर्टके जज बनकर उन्होने अपना काम पूरा किया होता। कानूनके एक पडितके नाते उनकी होशियारीके कारण जब आजाद हिंद फौजके कैदी रिहा कर दिए गये तो उनकी कीर्ति अपनी अतिम सीमा तक पहुच गई। उनके बेटे और उनकी बहूके शोकमे मै और मेरे-जैसे दूसरे बहुतेरे उनके हिस्सेदार है। आशा है कि स्वर्गीय भूलाभाईमे देश-सेवाका जो प्रेम था, उसे विरासतमे पाकर वे दोनो अपने शोकको आनदमे बदल डालेगे। यही एक चीज है, जो जीवनको जीने योग्य बनाती है। (ह० से०, १२ ५ ४६)

: ८६ :

महादेव देसाई

पाठक यह जानकर खुश होगे कि महादेव देसाईका स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। लगातार कई सालसे स्वास्थ्य पर जोर पडनेके बाद विश्राम तो उन्हे लेना ही चाहिए था, पर वह नही ले सके। और मैने भी आग्रह नही किया। अच्छा हुआ कि दयालु प्रकृतिने आकर उन्हे विश्राम लेनेके लिए बाध्य कर दिया, जिसे कि स्वेच्छा-पूर्वक लेनेको वह तैयार न होते। श्री राजकुमारी अमृतकोर उन्हे अपने घर शिमला ले गई है। वहा पहाडोकी शुद्ध ताजी हवा तो है ही, पर इससे भी अधिक जो स्वास्थ्यप्रद चीज उन्हे वहा मिल रही है वह है राजकुमारीकी प्रेमपूर्ण सेवा और उपचार। इससे निश्चय ही शिमलाके

शक्तिवर्द्धक जलवायुमे उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा। (ह० मे०, २३ १०.३८)

•

महादेवकी अकस्मात मृत्यु हो गई। पहले जरा भी पता नही चला। रात अच्छी तरह सोये। नाश्ता किया। मेरे साथ टहले। सुशीला और जेलके डाक्टरोने जो कुछ कर सकते थे किया, लेकिन ईश्वरकी मर्जी कुछ और थी। सुशीला और मैने शवको स्नान कराया। शरीर शातिमे पडा है, फूलोमे ढका है, धूप जल रही है। सुशीला और मै गीता-पाठ कर रहे है। महादेवकी योगी और देशभक्तकी भाति मृत्यु हुई है। दुर्गा, बावला और सुशीलासे कहो, शोक करनेकी मनाई है। ऐसी महान् मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए। अत्येष्टि मेरे सामने हो रही है। भस्म रख लूगा। दुर्गाको सलाह दो कि आश्रममे रहे, लेकिन अगर वह जाना ही चाहे तो घरवालोके पास जा सकती है। आशा है, बावला बहादुरीसे काम लेगा और महादेवका सुयोग्य उत्तराधिकारी बननेके लिए अपनेको तैयार करेगा। सप्रेम, (आगा खा महलसे १५ ८ ४२को दिया तार)

•

भावना तो महादेवकी खुराक थी (का० क० ३)

महादेवका बलिदान कोई छोटी चीज नही है। अकेला भी वह बहुत काम करेगा। (का० क० १६ ८ ४२)

(बा कह रही थीं, "देखो, महादेव गये। ब्राह्मणकी मृत्यु हुई, अपशकुन है न। इतनी बडी ताकतके खिलाफ बापू लड रहे है, कैसे जीतेंगे !" बापूने सुना तो कहने लगे—)

"मै इसे शुभ शकुन मानता हू। शुद्धतम बलिदान हुआ है, इसका परिणाम अशुभ नही हो सकता।" (का० क०, २८ ८ ४२)

(आज 'बॉम्बे क्रानिकल' के सब पुराने अंक आगये। मालूम होता है, महादेवभाईकी मृत्युको देशने चुपचाप सह लिया है। यह चीज बापूको काफी चुभी है। घूमते समय कहने लगे--)

आखिर तो महादेव इनके जेलमे मरा है न? महादेवका खून इनके सिर है। मैं उस दिन गवर्नरको लिखने वाला था, मगर फिर काट डाला। जिन्दा रहा तो किसी दिन मै जरूर उन्हे यह सुनाऊगा कि महादेवकी मृत्युका कारण आप है। मै मानता हू कि वह जेल न आते तो कम-से-कम इस वक्त तो हर्गिज न मरते। बाहर वह कई तरहके कामोमे उलझे रहते। यहा वह एक ही विचारमे डूबे रहे, एक ही चिता उनके सिरपर सवार रही। वह उन्हे खागई। उनपर भावनाका कुछ इतना जोर पडा कि वह खतम हो गये। देशने कुछ भी नही किया। बैंकुठ मेहताकी श्रद्धाजलि तो आने ही वाली थी और बरेलवीकी भी। मगर महादेव तो सारे देशके थे और देशके लिए वह गये है। भगतसिंहकी मृत्युके बाद जब मै लॉर्ड अर्विनसे समझौता करके कराची जा रहा था तो लोगोके झुड-के-झुड हर स्टेशनपर मेरे पास आते थे और चिल्लाते थे, "लाओ भगतसिंहको!" इसी तरह इस बार भी वे सरकार-को कह सकते थे, "लाओ महादेवको!" सरकार लाती तो कहासे? कह देती कि जो लोग इतने भावुक, इतने विक्षुब्ध और इतने सवेदनशील है, वे जेलमे आते ही क्यो है? न आए—वगैरा।

(फिर बापू कहने लगे--)

मगर लोग शायद सोचते होगे कि आज सरकारके साथ ऐसा घमासान युद्ध चल रहा है कि उसमे दूसरी किसी चीजका विचार करनेका अवकाश ही कहा रह जाता है?

(मैंने कहा, "और आपने भी तो तारमें लिखा था न कि जो किया जा सकता था, किया गया! इसके कारण भी लोग शान्त रह

गये होगे। समझे होगे कि यह तो स्वाभाविक मृत्यु थी, जो कहीं भी हो सकती थी।" बापूने कहा--)

सो तो है, लेकिन मृत्यु हुई तो सरकारके जेलमे न ? (का० क०, १०.९ ४२)

(शामको महादेवभाईके समाधि-स्थानसे लौट रहे थे तब बापू कहने लगे—)

यहा आ जाना मेरे लिए बहुत शातिदायक है और उसमे जो प्रेरणा मुझे लेनी होती है मैं ले लेता हू।

(मैंने कहा, "अब आप महादेवभाईसे प्रेरणा लेते है, कभी वह आपसे लेते थे।" कहने लगे—)

क्यो नही, प्रेरणा तो एक बच्चेसे भी ले सकते है, और बच्चा चला जाता है, तो भी क्या? उसका स्मरण तो २४ घटे चलता ही है। जो राजाजी ने कहा है वह बिलकुल सही है। महादेव मेरा अतिरिक्त शरीर था। कितनी दफा मैंने उसे मैक्सवैलके पास भेजा है, दूसरोके पास भेजा है। मान लेता था कि महादेवको काम सौपा है तो वह कर लेगा।" (का० क०, १८ ९ ४२)

(सुबह घूमते समय बापू कहने लगे—) महादेवको मेरा वारिस होना था, पर मुझे उसका वारिस होना पडा है। मीराबहनको महादेवभाईकी समाधिपर मेरा जाना खटकता है, मगर मेरे लिए वह बिलकुल-महज बन गया है। मै न जाऊ तो बेचैन हो जाऊ। वहा जाकर मै कुछ करना नही चाहता, समय भी नही देना चाहता, मगर हो आता हू, इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मै जिंदा रहा तो यह जमीन आगाखासे माग लूगा। वह न दे, यह सभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिंदुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्राका स्थान बनेगा। मैं वहा जाता हू तो महादेवके गुणोका स्मरण करनेके लिए, उन्हे ग्रहण

करनेके लिए। मैं उसकी स्मृतिको खोना नही चाहता। और जिस तरहसे वह यहा मरा, उसमे उसकी स्त्री और उसके लडकके प्रति मेरी वफादारी भी मुझे बताती है कि मुझे वहा नियमित रूपसे जाना चाहिए। हो सकता है कि मेरी जिन्दगीमे यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगहको यात्रा-स्थल बनते मै न देख सकू, मगर किसी-न-किसी दिन वह जरूर बनेगा, इतना मै जानता हू। आज तो मै सब काम उसका काम समझकर करता हू। बाहर जाऊगा तब भी उसीका काम करूगा। (का० क०, १० ९ ४२)

•

(सुबह समाधिसे लौटते समय बापू महादेवभाईवाली गीताजीके पन्ने उलट रहे थे। आखिरी पन्ने पर 'आउज बिल्ला'वाली आयत लिखी हुई थी। पूछने लगे--)

ये किसके अक्षर है ? महादेवके या प्यारेलालके ?

(मैंने बताया कि १ अगस्तको बम्बईसे चलते समय महादेवभाईने भाईको वह आयत लिख देनेको कहा था, सो भाईके अक्षर है। बापू कहने लगे--)

बस छ दिन उसने यह आयत गाई।

(फिर थोडा ठहरकर बोले--)

लगता ही नही है कि महादेव सदाके लिए गया। कल रातको स्वप्नमे वह लडकी कहती है, "महादेवभाई कहा है ?" मै उत्तर देता हू, "बहन, मै तो उसे स्मशानमे छोड आया हू।" पीछे वह पागल-सी हो जाती है। कहती है, "लाओ महादेवभाईको। उसे वहा क्यो छोड आए ?" (का० क०, २३ १२ ४२)

(भाईसे कहने लगे--) मान लो इस उपवासके कारण मै लोप हो जाऊ तो तुम लोगोसे मै क्या आशा रक्खूगा, यह समझ लो। महादेवकी

मै भाटकी तरह स्तुति करता हू, मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है। उसकी मिसाल सपूर्ण या आदर्श नही मानना चाहिए। वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि 'मै बापूके बाद क्या कर सकता हू ? बापूसे पहले चला जाऊ तो अच्छा है।' मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नही, मुझे तो जिंदा रहना है और बापूका काम करना है।' यह दृढ सकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। (का० क०, ६ २ ४३)

मेरे विचारसे महादेवके चरित्रकी सबसे बडी खूबी थी, मौका पडनेपर अपनेको भूलकर शून्यवत बनजानेकी उनकी शक्ति। (ह० से०, १२ ८ ४६)

जमनालाल, मगनलाल और महादेव—इनमेसे हरएक अपने-अपने क्षेत्रमे अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नही ले सकते। मगर मै कहूगा कि इन तीनोमेंसे महादेव मुझमे पूरी तरह खो गया था। मै यह कह सकता हू कि मुझमे अलग उसकी कोई हस्ती ही नही रह गई थी।

महादेवकी एक बडी खूबी यह थी कि जो काम उन्हे सौपा जाता था, उसे करनेके लिए वे सदा तैयार रहते और बडे उत्साहसे करते थे। इसी तरह वे एक अच्छे लेखक, अच्छे रसोइया और अच्छे कुली बन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते है, वे ऐसे ही बन जाते है। (ह० से०, ८ १८ ४६)

• • •

महादेव गुलाबका फूल है। (ह० से०, १८ ८ ४६)

• • •

वे मेरे बॉसवेल (जीवनी लिखनेवाले) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वे क्या कर सकते थे ? सो वे तो चले गये और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड गये।

बच्चे अपने मा-बापके पहले मरना चाहे तो इससे बढकर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है। भले ही मै दूसरोको इस बातका यकीन न दिला सकू लेकिन यह मै जरूर महसूस करता हू कि मौत कभी वक्तसे पहले नही आती दुनियामे अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नही मरता। महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम पूरा कर डाला था। सो वह आराम करने चले गए, जिसपर उनका पूरा हक था। (ह० से० १८.८ ४६)

महादेव देसाईके मित्र और प्रशसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते है। वे बडे शक्तिशाली पुरुष थे। वे सुदर और सुडौल अक्षर लिखते थे। वे कई चीजोसे प्यार करते थे। लेकिन उन सबमें चर्खेकी जगह पहली थी। एक कलाकार होनेके नाते वे नियमसे बहुत बढिया कताई करते थे। कामकाजके भारी बोझसे थककर चूर हो जाने पर भी वे हमेशा कातनेका वक्त निकाल लेते थे। चर्खा उन्हे फिर तरो-ताजा बना देता था।

उनकी कई खूबियोमे उनके बेजोड अक्षर भी कोई कम महत्व नही रखते थे। उसमे कोई उनका सानी न था। रामदासस्वामीने अपने एक दोहेमे खूबसूरत अक्षरोकी चमकीले मोतियोसे तुलना की है। महादेवकी कलमसे निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिंदुस्तानकी भाषाओसे उनका प्रेम। आप सबको भी यह गुण अपनेमे पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। वे भाषाशास्त्री थे। बगाली, मराठी और हिंदीपर उनका पूरा अधिकार था और वे उर्दू भी सीख चुके थे। जेलमे उन्होने ख्वाजा साहब एम० ए० मजीदसे, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखनेकी भी कोशिश की थी। (ह०से० ८.९.४६)

: ९० :

जयरामदास दौलतराम

मुझे जिनके बारेमे चेतावनी दी गई है उनमे सबसे आखिरी नबर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका। जयरामदासके नामपर तो मै कसम खा सकता हू। इनसे अधिक सच्चा आदमी मुझे अपनी जिदगी-मे अभी नही मिला। जेलमे इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे। उनकी नेकचलनीकी सीमा न थी। इनके दिलमे मुसलमानोके विरुद्ध रत्तीभर भाव नही। डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान तो पहलेसे है, पर मै उन्हे पूरी तरह नही जानता, परतु जितना मै उन्हे जानता हू, उतने परसे मै उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हू कि वे हिंदू मुसलमान एकताके सभी हामी है। (हिं० न० १ ६ २४)

: ९१ :

आनंदशंकर ध्रुव

श्रीआनदशकर भाईकी क्षति न केवल गुजरातको अपितु काशी हिंदू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्षोकी अमूल्य सेवाके कारण यू० पी० को भी उतनी ही मालूम होगी। आनदशकर भाईकी जोड ढूढना असभव नही तो कठिन तो है ही। वे अत तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे। उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोने अपना निजी मित्र गवाया है। मालवीय जीके तो वे दाहिने हाथ ही थे। उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते है।

परतु आनदशकरभाई केवल शिक्षा-शास्त्री ही न थे। उनकी रुचि अनेक प्रकारकी थी। वे राजनीतिके गहरे अभ्यासी थे। स्वतन्त्रताके पुजारी थे। समाज-सुधारक थे। सनातनियोके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योकि उनके बहुतसे रिवाजोका वे अनुसरण करते थे। परतु उनकी बुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोके साथ ही था। वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे। सस्कृतके विद्वान् और शास्त्रोके जानकार होनेकी वजहसे उनके विचारोका सब आदर करते थे। हिंदूधर्मको उन्होने शोभित किया था।

स्वय मुझे तो उनकी सहायता मिला ही करती थी। वे मजदूरो और मालिकोके एक समान मित्र थे और दोनोके विश्वासपात्र थे। इसलिए वे दोनोकी अच्छी सेवा कर सके थे।

आनदशकर भाईके कुटुबी यह समझे कि उनके इस शोकमे बहुतेरे उनके साथ है, क्योकि उन्होने अपने कुटुबका बहुत विस्तार किया था। (ह० से०, १९ ४ ४२)

: ९२ :

नटेसन

यह कहे तो अत्युक्ति न होगी कि इस समय प्रवासी भारतवासियोके दुखोपर विचार करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले, उनके विषयमे उचित रीतिसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले सारे भारतवर्षमे अकेले नटेसन ही थे। मेरे और उनके बीच बराबर नियमित रूपसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। जब ये देशनिकालेकी सजा पाये हुए भाई मदरास पहुचे तब मि० नटेसनने उनकी हर तरहसे सेवा-सहायता की। भाई नायडू-

जैसे समझदार आदमी उनके साथमें थे। इसलिए मि० नटेसनको भी काफी सहायता मिली। स्थानीय चंदा एकत्रकर मि० नटेसनने उनकी इस कदर सेवा की कि उन्हें यह याद तक नहीं होने पाया कि वे घर-बार छोडकर देश-निकालेकी सजामें आये थे। (द० अ० स०१९२५)

: ९३ :

गुलजारीलाल नन्दा

गुजरातमें ओतप्रोत हो जानेवाला प्यारेलालकी तरह यह दूसरा पंजाबी है। प्यारेलालसे भी एक तरहसे बढकर है, क्योंकि प्यारेलालके रास्तेमें आनेवाला कोई नहीं है। इसके सामने स्त्री-बच्चे वगैरह बहुतोंका विरोध है और यह आदमी बडी व्यवस्था-शक्तिवाला और सत्यका जबरदस्त पुजारी है। (म० डा०)

: ९४ :

चार निडर नवयुवक

इस लोकेशनका कब्जा म्युनिसिपैलिटीने ले तो लिया, परंतु तुरत ही हिंदुस्तानियोंको वहांसे हटाया नहीं था। हां, यह तय जरूर हो गया था कि उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देदी जायगी। अबतक म्युनिसिपैलिटी वह जगह निश्चित न कर पाई थी। इस कारण भारतीय लोग उसी 'गंदे' लोकेशनमें रहते थे। इससे दो बातोंमें फर्क हुआ। एक तो यह

कि भारतवासी मालिक न रहकर सुधार-विभागके किरायेदार बने और दूसरे गदगी पहलेसे अधिक बढ गई। इससे पहले तो भारतीय लोग मालिक समझे जाते थे। इससे वे अपनी राजीसे नही तो डरसे ही, कुछ-न-कुछ तो सफाई रखते थे, किंतु अब 'सुधार' का किसे डर था? मकानोमे किरायेदारोकी भी तादाद बढी और उसके साथ ही गदगी और अव्यवस्थाकी भी बढती हुई।

यह हालत हो रही थी, भारतवासी अपने मनमे झल्ला रहे थे, कि एकाएक 'काला प्लेग' फैल निकला। यह महामारी मारक थी। यह फेफडेका प्लेग था और गाठवाले प्लेगकी अपेक्षा भयकर समझा जाता था। किंतु खुशकिस्मतीसे प्लेगका कारण यह लोकेशन न था, बल्कि एक सोनेकी खान थी। जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी अनेक खाने है। उनमे अधिकाश हब्शी लोग काम करते है। उनकी सफाईकी जिम्मेदारी थी सिर्फ गोरे मालिकोके सिर। इन खानोपर कितने ही हिंदुस्तानी भी काम करते थे। उनमेसे तेईस आदमी एकाएक प्लेगके शिकार हुए और अपनी भयकर अवस्था लेकर वे लोकेशनमे अपने घर आए।

इन दिनो भाई मदनजीत 'इडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और चदा वसूल करने यहा आये हुए थे। यह लोकेशनमे चक्कर लगा रहे थे। वह काफी हिम्मतवर थे। इन बीमारोको देखते ही उनका दिल टूक-टूक होने लगा। उन्होने मुझे पेसिलसे लिखकर एक चिट भेजी, जिसका भावार्थ यह था

"यहा एकाएक काला प्लेग फैल गया है। आपको तुरत यहा आकर कुछ सहायता करनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। तुरत आइए।"

मदनजीतने बेधडक होकर एक खाली मकानका ताला तोड डाला और उसमे इन बीमारोको लाकर रक्खा। मै साइकिलपर चढकर लोके-

शनमे पहुचा। वहासे टाउन-क्लर्कको खबर भेजी और कहलाया कि किस हालतमें मकानका ताला तोडना पडा।

× × ×

डाक्टर विलियम गाडफ्रे जोहान्सवर्गमे डाक्टरी करते थे। वह खबर मिलते ही दौडे आए और बीमारोके डाक्टर और परिचारक दोनो वन गये, परतु बीमार थे तेईस और सेवक थे हम तीन। इतनेसे काम चलना कठिन था।

अनुभवोके आधारपर मेरा यह विश्वास वन गया है कि यदि नीयत साफ हो तो सकटके समय सेवक और साधन कहीं-न-कहींसे आ जुटते है। मेरे दफ्तरमे कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिंदुस्तानी थे। आखिरी दोके नाम इस समय मुझे याद नही है। कल्याणदासको उनके वापने मुझे सौंप रखा था। उनके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा-पालनसे काम रखनेवाले सेवक मैने वहा बहुत थोडे देखे होगे। सौभाग्यसे कल्याणदास उस समय ब्रह्मचारी थे। इसलिए उन्हे मै कैसे भी खतरेका काम सौपते हुए कभी न हिचकता। दूसरे व्यक्ति माणिकलाल मुझे जोहान्सवर्गमे ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुवारे ही थे। इन चारोको चाहे कारकुन कहिए, चाहे साथी या पुत्र कहिए, मैने इनमें होम देनेका निश्चय कर लिया। कल्याणदाससे तो पूछनेकी जरूरत ही नही थी, और दूसरे लोग पूछते ही तैयार हो गये। "जहा आप तहा हम"—यह उनका सक्षिप्त और मीठा जवाब था।

मि० रीचका परिवार वडा था। वह खुद तो कूद पडनेके लिए तैयार थे, किंतु मैने ही उन्हे ऐसा करनेसे रोका। उन्हे इस खतरेमे डालनेके लिए मै विलकुल तैयार न था, मेरी हिम्मत ही नही होती थी। अतएव उन्होने ऊपरका सव काम सम्हाला।

शुश्रूषाकी यह रात भयानक थी। मै इससे पहले वहुत-से रोगियोकी सेवा-शुश्रूषा कर चुका था। परतु प्लेगके रोगीकी सेवा करनेका अवसर

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोकी हिम्मतने हमे निडर बना दिया था। रोगियोकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हे दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारो नवयुवकोके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमे आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमे आ जाती है—पर इन नवयुवकोकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यो करके रात बीती। जहा तक मुझे याद पडता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नही खोया। (आ० क० १९२७)

: ९५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसग लिख देना चाहता हू। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नही थे, तथापि हमे तो यही मालम हुआ कि रुपये आदि इन्हीके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करे। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हे भेजे गये, उन्हे उन्होने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सबधी काम हमे सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही, पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढती। मैने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममे बडे ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुच तो लौटती डाकसे अवश्य ही आ पहुचती। उस पत्रमे भी आश्वासनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वय ही लिखते और उन पहुचनेवाले पत्रोको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमें छाप लेते। (ह० अ० म०, १९२५)

•

दादाभाई नवरोजीकी सौवी जयती आगामी ४ सितवरको पडती है। श्रीभरूचाने समयपर ही उसकी याद हमे दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हीसे हमे मिला है। वे भारतके गरीबो-के मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमे कराया था। उनके तैयार किये अकोको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमे भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमे वे सब भारतकी सतान थे। और इस-लिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पौत्रियोमे सोलहो आना दीख पडता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावे? सभाए तो होगी ही, वह भी अकेले शहरोमे नही, वल्कि देहातमे भी, जहा-जहा तक महासभाकी आवाज पहुचती है, वहा सब जगह। वहा करेंगे क्या? उनकी स्तुति? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यो न बैठ रहे? पर यदि हम उनके गुणोका अनुकरण करना चाहते हो तो हमें उनकी छानबीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होने सिखाया कि 'स्वराज्य'

मुझे कभी न मिला था। डाक्टरोकी हिम्मतने हमे निडर बना दिया था। रोगियोकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हे दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना---इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारो नवयुवकोके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमे आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमे आ जाती है---पर इन नवयुवकोकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यो-त्यो करके रात बीती। जहा तक मुझे याद पडता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नही खोया। (आ० क० १९२७)

: ९५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसग लिख देना चाहता हू। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नही थे, तथापि हमे तो यही मालम हुआ कि रुपये आदि इन्हीके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करे। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हे भेजे गये, उन्हे उन्होने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-सबधी काम हमे सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही, पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम बेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढती। मैने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममे बडे ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुच तो लौटती डाकसे अवश्य ही आ पहुचती। उस पत्रमे भी आश्वासनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वय ही लिखते और उन पहुचनेवाले पत्रोको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमे छाप लेते। (द० अ० स०, १९२५)

•

दादाभाई नवरोजीकी सौवी जयती आगामी ४ सितबरको पडती है। श्रीभरूचाने समयपर ही उसकी याद हमे दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हीसे हमे मिला है। वे भारतके गरीबोके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमे कराया था। उनके तैयार किये अकोको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमे भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमे वे सब भारतकी सतान थे। और इसलिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पौत्रियोमे सोलहो आना दीख पडता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावे ? सभाए तो होगी ही, वह भी अकेले शहरोमे नही, बल्कि देहातमे भी, जहा-जहा तक महासभाकी आवाज पहुचती है, वहा सब जगह। वहा करेगे क्या ? उनकी स्तुति ? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यो न बैठ रहे ? पर यदि हम उनके गुणोका अनुकरण करना चाहते हो तो हमे उनकी छानबीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होने सिखाया कि 'स्वराज्य'

उसकी औषधि है। परतु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड गये। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमे वे वडे लीन हो गये थे।

हम जानते है कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे बडा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोका सालमे छ या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव वन बैठे तो फिर इस देशकी मुक्ति-का कोई ठिकाना नही। यही नही, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है--चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोका अनुकरण है।

चरखेका अर्थ है खादी, चरखेका अर्थ है विदेशी कपडेका वहि-ष्कार, चरखेका अर्थ है गरीबोके झोपडोमे ६० करोड रुपयोका प्रवेश।

अखिल-भारत-देशबधु स्मारकके लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोषके लिए उस दिन द्रव्य एकत्रित करना मानो दादा-भाईकी जयती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र होकर लोग विदेशी कपडोका सर्वथा त्याग करे। सिर्फ हाथ-कते सूतकी खादी पहने, निरतर कम-से-कम आधा घटा सूत कातनेका निश्चय दृढ करे और खादी-प्रचारके लिए धन एकत्र करे। कपास पैदा करनेवाले अपनी जरूरतका कपास घरमे रख ले।

परतु जिसे चरखेका नाम ही पसद न हो वह क्या करे? उसके लिए मै क्या उपाय बताऊ? जिसे स्वराज्यका नाम तक न सुहाता हो उसे मै शताब्दी मनानेका क्या उपाय सुझाऊ? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाईके अन्य गुणोकी खोज करके कोई उनका

अनुकरण चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीकेमे जयती मनाने-का उसे हक है। अथवा फर्ज कीजिए, शहरोमे स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहे तो वह अवश्य करे। मै तो सिर्फ वही बात बता सकता हू जिसे क्या शहराती और क्या देहाती क्या वृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सब कर सकते है।

यदि हम लोग मेरी तजवीजके अनुसार ही दादाभाईकी जयती मनाना चाहते हो तो हमे आजसे ही तैयारी करनी चाहिए। आजसे हम उसके लिए चरखा चलाने लग जाय। आज हीमे हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करे और ऐसी सभाए स्थान-स्थानपर करे जो हमे तथा देशको शोभा दे। (हि० न०, ६ ८ २५)

दूसरे, जिन कानूनोको मैने पढा उनमे भारतवर्षके कानूनोका नाम तक न था। न यह जाना कि हिंदू-शास्त्र तथा इस्लामी कानून क्या चीज है। अर्जी-दावा तक लिखना न जानता था। मै बडी दुविधामे पडा। फीरोजशाह मेहताका नाम मैने सुना था। वह अदालतमे सिंह-समान गर्जना करते है। यह कला वह इग्लैडमे किस प्रकार सीखे होगे ? उनके जैसी निपुणता इस जन्ममे तो नही आनेकी, यह तो दूरकी बात है, किंतु मुझे तो यह भी जबरदस्त शक था कि एक वकीलकी हैसियतमे मै पेट पालनेतकमे भी समर्थ हो सकूगा या नही।

यह उथल-पुथल तो तभी चल रही थी, जब मै कानूनका अध्ययन कर रहा था। मैने अपनी यह कठिनाई अपने एक-दो मित्रोके सामने रखी। एकने कहा—दादाभाईकी सलाह लो। दादाभाईके नाम परिचय-पत्रका उपयोग मैने देरसे किया। ऐसे महान पुरुषसे मिलने जानेका मुझे क्या अधिकार है ? कही यदि उनका भाषण होता तो मै सुनने चला जाता और एक कोनेमे बैठकर आख-कानको तृप्त करके वापस लौट आता।

उन्होने विद्यार्थियोके सपर्कमे आनेके लिए एक मडलकी स्थापना की थी। उसमे मै जाया करता। दादाभाईकी विद्यार्थियोके प्रति चिता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोके आदर-भाव देखकर मुझे बडा आनद होता। आखिर हिम्मत बाधकर वह पत्र एक दिन दादाभाईको दिया। उनसे मिला। उन्होने कहा—"तुम जब कभी मिलना चाहो और सलाह-मशविरा लेना चाहो, जरूर मिलना।" लेकिन मैने उन्हे कभी तकलीफ न दी। बगैर जरूरी कामके उनका समय लेना मुझे पाप मालूम हुआ। इसलिए उस मित्रकी सलाहके अनुसार, दादाभाईके सामने अपनी कठिनाइयोको रखनेकी मेरी हिम्मत न हुई। (आ० क०, १९२७)

(मद्यनिषध विरोधी शिष्टमडलसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा—)

शराबबदी मुझे सिखानेवाले स्व० दादाभाई नवरोजी थे। मद्यनिषेध और मितपानके बीच भेद करना भी उन्होने ही मुझे सिखाया था। (ह० से०, ७ ९ ३९)

: ९६ :

हरदयाल नाग

उन्होने अनासक्तियोग साधा है। (म० डा० १० ७ ३२)

* * *

प्रिय हरदयाल बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबको बहुत आनद हुआ। इतनी पकी उमरमे आपने तकली सीखी, यह जानकर मुझे आपसे ईर्षा होती है। और यह भी बडी खुशीकी बात है कि आपका वजन १६ पौड बढ गया।

सेवा करनेके लिए आप बहुत वर्ष जिये । आपके और आपकी तदुरुस्तीके बारेमें हम बहुत बार बाते करते है । हम सबका नमस्कार। (म० डा०, ५ ८ ३२)

ऐन मौकेपर सच्चा सदेश भेजनेमे आप हमेशा नियमित रहे है। इतनी उम्रमे इतना उत्साह दिखाकर आप देशके नौजवानोको शरमाते है। अभीके जैसा ही जोश कायम रखकर ईश्वर आपसे सौ बरस काम कराए। (म० डा०, १० १० ३२)

: ९७ :

नागप्पा

ट्रासवालका जाडा बडा सख्त होता है। जाडा इतना भयकर पडता था कि सुबह काम करते-करते हाथ-पैर ठिठुर जाते थे। ऐसी स्थितिमे कितने ही कैदियोको एक छोटी-सी जेलमे रखा गया, जहा उन्हे कोई मिलने भी न पाए। इस दलमे नागप्पा नामक एक नौजवान सत्याग्रही था। उसने जेलके नियमोका पालन किया। उसे जितना काम दिया गया, सभी कर डाला। सुबह, पौ फटते ही सडकोपर मिट्टी डालनेको वह जाता। नतीजा यह हुआ कि उसे फेफडेका सख्त रोग हो गया और अतमे उसने अपने प्यारे प्राण अर्पित कर दिये। नागप्पाके साथी कहते है कि अत समय तक उसे लडाईकी ही धुन थी। जेल जानेसे उसे कभी पश्चात्ताप नही हुआ। देश-कार्य करते-करते आई मृत्युका उसने एक मित्रकी तरह स्वागत किया। हमारे नापसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर ही कहना पडेगा। अग्रेजी, जुलु आदि भाषाए वह अपने अभ्याससे कारण बोल सकता

था, कुछ-कुछ अंग्रेजी लिख भी सकता था। पर विद्वानोकी पंक्तिमे तो उसे कदापि नही रखा जा सकता था। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शांति, देश-भक्ति और मौतकी घडी तक दिखाई गई उसकी दृढतापर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उसमे किसी ऐसी बातकी न्यूनता न थी कि जिसकी हमे उससे आशा करनी चाहिए। हमे बहुत बडे-बडे विद्वान नही मिले, पर फिर भी ट्रासवालका युद्ध रुका नही। यदि नागप्पा जैसे शूर सिपाही हमे नही मिलते तो क्या वह युद्ध चल सकता था?"

(द० अ० स०, १९२५)

: ६८ :

थंबी नायडू

थंबी नायडू तामिल सज्जन थे। उनका जन्म मारीशसमें हुआ था। उनके माता-पिता मद्रास इलाकेसे वहा आजीविकाके लिए गये हुए थे। श्री नायडू एक सामान्य व्यापारी थे। उन्होने कोई भी शिक्षा पाठशालामें नही पाई। पर उनका अनुभव-ज्ञान बडे ऊंचे दर्जेका था। अंग्रेजी अच्छी तरह बोल और लिख भी सकते थे, हालाकि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे उसमे वे अवश्य गलतिया करते थे। तामिल भाषाका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी अच्छी तरह समझ लेते और बोल भी सकते थे। तेलगूका भी कुछ ज्ञान रखते थे। पर हिंदी और तेलगूकी लिपियोका ज्ञान उन्हे जरा भी न था। मारीशसकी भाषा भी जिसका नाम क्रीओल है और जो अपभ्रष्ट फ्रेंच कही जा सकती है, उन्हें बहुत अच्छी तरह अवगत थी। इतनी भाषाओका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामे कोई आश्चर्य-जनक बात न थी। दक्षिण अफ्रीकामे आपको ऐसे सैकडो भारतीय मिलेगे

जिन्हे इन सभी भाषाओका मामूली ज्ञान है । और इन सबके अतिरिक्त हवशियोकी भाषाका ज्ञान तो उन्हे अवश्य ही होता है । इन सभी भाषाओका ज्ञान वे अनायास प्राप्त करते है कर भी सकते है। इसका कारण मैने यह देखा कि विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करते-करते उनके दिमाग थके हुए नही होते । उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है । उन भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियोके साथ बोल-बोलकर और अवलोकन करके ही वे उन भाषाओका ज्ञान प्राप्त कर लेते है । इससे उनके दिमागको जरा भी कष्ट नही होता, बल्कि इस रोचक व्यायामके कारण उनकी बुद्धि-का स्वाभाविक विकास ही होता है । यही हाल थवी नायडूका हुआ। उनकी बुद्धि भी बहुत तीव्र थी । नवीन प्रश्नोको वे बडी फुर्तीके साथ समझ लेते । उनकी हाजिरजवाबी आश्चर्यजनक थी । भारत कभी नही आए थे पर फिर भी उनका उस पर अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भरा हुआ था। उनकी दृढता चेहरेपर ही चित्रित थी । उनका शरीर बडा मजबूत और कसा हुआ था । मेहनतसे कभी थकते ही न थे । कुर्सीपर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढा दे । पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे । सिरपर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमे थवी नायडू जरा भी न शरमाते थे । मेहनतके समय न रात देखते, न दिन । कौमके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे । अगर थवी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमे क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रासवालमे काछलियाकी अनु-पस्थितिमे आसानीसे कौमका नेतृत्व ग्रहण कर सकता था । ट्रासवालके युद्धके अत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नही हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोके समान चमक रहे थे । पर बादमे मैने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होने उनके गुणोको छिपा दिया । पर कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-

युद्धमे थबी नायडूका नाम हमेशा पहले ही वर्गमे रहेगा । (द० अ० स०, १९२५)

: ९९ :

पी० के० नायडू

देश-निकालेकी सजा पाये हुए भाइयोके विषयमे यही तय हुआ कि उनके लिए वह सब किया जाय जो सहानुभूति और हमदर्दी कर सकती है । उनको आश्वासन दिया गया कि उनकी सहायताके लिए भारतमे यथाशक्ति व्यवस्था की जायगी । पाठकोको यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेसे अधिकाश तो गिरमिट-मुक्त ही थे । भारतमे कोई रिश्तेदार वगैरा उन्हे नही मिल सकते थे । कितनोका तो जन्म ही अफ्रीकाका था । सबको भारतवर्ष विदेशके समान मालूम होता था । इस तरहके निराधार मनुष्योको भारतके किनारेपर उतारकर उन्हे यहा-वहा भटकनेके लिए छोड देना तो जघन्य दुष्टता होती । इसलिए उनको यह विश्वास दिलाया गया कि भारतमे उनके लिए पूरी व्यवस्था कर दी जायगी ।

यह सब कर देनेपर भी उन्हे तबतक शाति कैसे मिल सकती थी, जबतक कि कोई खास मददगार उनके साथ न कर दिया जाय ? देश-निकालेकी सजा पानेवालोका यह पहला ही दल था । स्टीमर छूटनेको कुछ ही घटोकी देरी थी । पसदगी करनेके लिए समय नही था । साथियोमेसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैने पूछा—

"इन गरीब भाइयोको भारत छोडनेके लिए आप जा सकते है ?"

"बडी प्रसन्नताके साथ ।"

"पर स्टीमर तो अभी खुलने ही को है ।"

"तो मुझे कौन देरी है ?"

"पर आपके कपडे वगैरह और खर्चा?"

"कपडे तो शरीरपर है ही। रही खर्चेकी बात, सो तो स्टीमरमे ही मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। पारसी रुस्तमजीके मकानपर यह बातचीत हुई थी। वहीसे उनके लिए कुछ कपडे, कबल वगैरा माग-मूग कर उन्हे रवाना कर दिया।

'देखिए भाई, राहमे इन भाइयोको अच्छी तरह सभालकर ले जाइए। इनको सुलाकर फिर आप सोइए और खिलाकर खाइए। मदरासके मि० नटेसनके नाम मैं तार भेज देता हू। वह जैसा कहे वही कीजिए।'

"एक सच्चा सिपाही बननेको मैं कोशिश करूँगा।" यह कहकर वह निकल पडे। मुझे निश्चय हो गया कि जहा ऐसे-ऐसे वीर पुरुष है, वहा कभी हार हो ही नही सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रिकामे ही हुआ था। उन्होने कभी भारतवर्षका दर्शन तक नही किया था। (द० अ० स० १९२५)

—

: १०० :

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सरोजिनीदेवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गई। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बडी योग्यता द्वारा उन्होने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्तिके लिए और पूर्व और दक्षिण अफ्रीकामे राष्ट्रीय प्रतिनिधिके रूपमे की गई महान सेवाओके लिए, वे इस सम्मानकी पात्र है और आजकलके दिनोमे जब कि स्त्री-जातिके अदर भारी जागृति हो रही है, स्वागत-

कारिणी-समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्रीको सभापति चुनना भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जानेसे हमारे प्रवासी देशभाइयोको पूर्ण सतोष होगा और इससे उनके अदर वह साहस पैदा होगा, जिससे वे अपने सामने उपस्थित लडाईको लड सकेगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सबसे ऊचे पदपर उनका होना स्वतत्रताको हमारे अधिक समीप लावे।
(हि० न०, ८ १०.२५)

• •

अमेरिकाके लिए श्री सरोजिनीदेवीने गत १२ ता० को हिंदुस्तान-का किनारा छोडा। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि मुल्कोमे अपनी स्थायी सभाए स्थापित करके या समय-समयपर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे बारेमे जो झूठी मान्यताए प्रचलित हो गई है, उन्हे दूर करनेकी आशा अनेको आदमी रखते है। मुझे यह आशा हमेशा ही गलत जान पडी है। ऐसा करनेसे हम सार्वजनिक धनका और जिनका और अच्छा उपयोग हो सकता है उन लोगोके समयका दुरुपयोग करेगे। किंतु पश्चिममे अगर किसीका जाना फल सकता है तो सरोजिनी देवीका या कविवर रवीन्द्र-नाथ ठाकुरका जाना अवश्य फल सकता है। सरोजिनीदेवीका नाम उनके काव्योसे पश्चिममे प्रसिद्ध है। उनने चतुराई भी वैसी ही है। उन्हे यह भली भाति मालूम है कि कहा, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दु ख पहुचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होने साधी है। जहा कही वे जाती है, उनकी बात सुने बिना लोगोका काम चलता ही नही है। दक्षिण अफ्रीकामे अपनी शक्तिका सपूर्ण उपयोग करके उन्होने वहाके अग्रजोका मनहरण किया था और सुदर विजय प्राप्त करके सर हबी-बुल्ला-प्रतिनिधि-मडलका रास्ता साफ किया था। वहाका काम कठिन था। किंतु वहापर उन्होने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानूनके जाल-पेचोमे न पडते हुए, मुख्य बातमे लगे रहकर अपना काम भलीभाति किया

था और हिंदुस्तानका नाम चमकाया था। ऐसा ही काम वे अमेरिका आदि देशोमे भी करेगी। अमेरिकामे उनकी हाजिरी ही मिस मेयोके असत्यका जवाव हो जायगी। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोके ही समान है। परदेश जानेमे न तो उन्हे किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मत्रीकी ही। जहा कही जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती है। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोके लिए तो अनुकरणीय है ही पुरुषोको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते है कि उनकी पश्चिमकी यात्रामेसे अच्छा फल निकलेगा। (हिं० न०, २०-९-२८)

•

अमेरिकामे कई-एक मित्रोके पत्र बरावर मेरे पास आते रहते है, जिनमे सरोजिनीदेवीके कामकी प्रशसा रहती है। मित्र लिखते है कि सरोजिनी देवी अमेरिकामे वडे महत्वका काम कर रही है और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही है। इसमे शका नही कि उन्होने अमेरिकावासियोका मन मोह लिया है। कनाडाकी एक वहनने एक लबे पत्रमे अपने कुछ अनुभव लिखकर भेजे है, उसमे थोडी से वाते नीचे देता हू

"सरोजिनीदेवी थोडे समयके लिए मेरी मेहमान वनी थीं। आपके उन मित्र और दूतसे मिलकर मैंने अपने आपको वडभागी पाया है मै खुद एक स्त्री हू, वह भी स्त्री ही है। साथ ही वह तो कवि और सुधारक है, इसीलिए उन्होने मेरा हृदय और भी चुरा लिया है। उनकी आत्माका मुझपर वहुत ज्यादा असर हुआ है और इतने दिनके वाद भी उनके मिलापकी वात हमारे हृदयमें जैसी-की-तैसी वनी हुई है। जिस गिरजाघरमें सरोजिनीदेवीने व्याख्यान दिया था वह तो श्रोताओसे खचाखच भर गया था। उनके ज्ञानकी, उनके अनुभवोकी, उनकी काव्यशक्तिकी, उनके मधुर कोकिल कठ की, उनके विनोदकी

और अंग्रेजी भाषापर उनके प्रभुत्वकी मैं आपसे क्या बात कहूं ? जैसे-जैसे उनकी वाणीका प्रवाह बढ़ता गया, वैसे-वैसे लोग मारे आश्चर्यके चकित होते गये और आखिरकार उनके गुणोंपर पूरे-पूरे मुग्ध होगये। उन्होंने हमारे सामने जितनी भी समस्याएं रक्खी, हममेंसे कोई भी उनका उत्तर न दे सका। मेरे पास एक व्यवहार-कुशल व्यापारी बैठे हुए थे, उन्होंने समाधिवत् होकर उनका सारा व्याख्यान सुना। जो प्रश्न पूछे गये सरोजिनीदेवीने उनके ठीक-ठीक उत्तर दिये और बीच-बीचमें जिस ढंगसे उन्होंने विनोदका सहारा लिया उसे देखकर तो पूर्वोक्त व्यापारी महाशयसे बोले बिना न रहा गया। उन्होंने कहा, "ऐसी शक्ति तो मैंने किसी भी दूसरी स्त्रीमें नहीं देखी। अगर सच कहूं, मेरी रायमें कोई भी पुरुष इनके मुकाबलेमें खड़ा नहीं रह सकता।" वर्तमान भारतके विषयमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह बहुत ज्यादा असर करनेवाला था। उन्होंने हमारी न्याय-प्रियताको जागृत किया, हमारे हृदयोंको पानी-पानी कर दिया और हमें उसी समय यह अनुभव होने लगा कि आपके वहां भी उसी तरहका राज्यतंत्र होना चाहिए जैसा हमारे यहां है। सरोजिनीदेवीकी रचनामें मालूम होता है, ईश्वरने कई रंग भरे हैं। उन्हें भोजनके समय मिलिये या सम्मेलनोंमें मिलिये, सामान्य वार्तालापके लिए मिलिये अथवा और किसी कामके लिए, हर हालतमें उनकी प्रतिभा बिखरी पड़ती थी। उनके उत्साहका तो पार ही नहीं है। कई निमंत्रणोंको स्वीकार कर चुकी हैं, एक ही दिनमें कई जगह जाती हैं, लेकिन मालूम नहीं होता कि थकी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके पास शक्तिका कोई अटूट भंडार है! लोकप्रियतासे वह फूल नहीं उठती। यहांकी सब अच्छी चीजें उन्हें पसंद हैं। वह बच्चोंको प्यार करती हैं, सुंदर फूल उनका मन चुरा लेते हैं, हमारे वृक्ष, हमारे सरोवर और हमारी नदियां उन्हें आनंद प्रदान करती हैं, फिर भी वह भविष्यको नहीं भूलतीं। यानी, स्त्री-

जातिमें जो कमजोरिया रहती है और प्रशसाके कारण जिस तरह बहुधा स्त्रिया अपना आपा भूल जाती है, उस तरहका भय मुझे सरोजिनीदेवीके बारेमें नहीं है।"

मै नही समझता कि इन बहनने जिस शब्दोमे सरोजिनीदेवीकी शक्तिका वर्णन किया है उनमे कोई बात बढाकर लिखी गई है। सरोजिनीदेवीमें वस्तुस्थितिको पलभरमे समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है। वह अपनी मर्यादाको समझती है। अर्थशास्त्रियो और राजनैतिक नेताओकी बारीकीमे वह कभी नही उतरती। इस तरहके ज्ञानका न तो वह कभी दावा करती है और न आडबर ही। साधारण आदमीके पास जितना ज्ञान होता है, उतने ही ज्ञानकी पूजीसे वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती है कि सामनेवाला आदमी उन्हे कभी उलझनमे डाल ही नही सकता। उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमे इतना सतोष अनुभव करता है, मानो उसे सबकुछ मिल गया हो। (हि० न०, २१ २ २६)

सरोजिनी नायडूको वह चीज लागू नही होती। वह कोई आश्रमवासी तो है नही, बहुत चीजोमे मेरा विरोध भी कर लेती है। मै तो गुणोको ही देखता हू। मै खुद कहा दोषरहित हू कि किसीके दोष देखू। वह तो अपना स्वतत्र स्थान रखती है। उसने अपना मार्ग निकाल लिया है। (का०क०,२४ ९ ४२)

'मैने रात भी कहा था कि यह सब जो तुम लोगोने किया है,[1] करने जैसा नही था। सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढिया कर लेती है, मगर सच्ची सस्कृतिकी कीमत देकर। जो चीज मै कहता हू उसमे सच्ची सस्कृति है ' (का०क०,३-१०-४२)

---

[1]अपने जन्मोत्सवकी ओर सकेत है।

: १०१ :

जयप्रकाश नारायण

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सपूर्णानदजीने साफ शब्दोमे कह दिया है कि हम २६ जनवरीको ली जानेवाली प्रतिज्ञामे जो भाग जोडा उसके खिलाफ है। मुझे उनका बडा लिहाज है। वे योग्य है, वीर है और उन्होने देशकी खातिर कष्ट उठाए है। लडाईमे वे मेरे साथी बन सके तो इसे मै अपना सौभाग्य समझू। मै उन्हे अपने विचारका बना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लडाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मै ऐसे सहायकोके भरोसे नही कर सकता, जिनका कि कार्य-क्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमे उसके बारेमे शकाए हो।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपनी और समाजवादी दलकी स्थिति साफ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्य-क्रमके बारेमे वे कहते है—

हमने इस अपनी लडाईके एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियारके रूपमें कभी स्वीकार नही किया है। इन मामलोमें हमारे विचार ज्यो-के-त्यो बने हुए है। मौजूदा सकटकालमे हमारे राष्ट्रीय नेताओकी लाचारी देखकर वे विचार कुछ मजबूत ही हुए है। उस दिन विद्यार्थियोको स्कूल-कालेजोसे निकल आना चाहिए और मजदूरोको काम बद कर देना चाहिए।

अगर अधिकाश काग्रेसियोका यही विचार है जो श्री जयप्रकाशने समाजवादी दलकी तरफसे प्रकट किया है तो मै इस तरहकी सेनाको साथ लेकर सफलता पानेकी कभी आशा नही रख सकता। उनकी न कार्य-क्रममे श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओमे। मेरे खयालसे जिस कार्यक्रमपर वे सिर्फ राष्ट्रके नेताओकी इच्छाके कारण ही चलनेकी बात कहते है

उसकी उन्होने बिल्कुल अनजानमे ही सही निंदा कर दी। जरा ऐसी फौजकी कल्पना तो कीजिए जो लडाईके लिए कूच करनेवाली है, लेकिन न तो जिन हथियारोसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओने यह हथियार बताये है उनपर श्रद्धा है। ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकोका और कामका सत्यानाश ही कर सकती है। मै श्री जयप्रकाशकी जगह होऊ और मुझे लगे कि मै अनुशासनका पालन कर सकता हू तो मै अपने दलको चुपचाप घरमे बैठे रहनेकी सलाह दू। अगर ऐसा न कर सकू तो निकम्मे नेताओकी बुरी योजनाओको मटियामेट करनेके लिए खुली बगावतका झडा फहरा दू।

श्री जयप्रकाश चाहते है कि विद्यार्थी स्कूल-कालिजोसे निकल आए और मजदूर काम छोड बैठे। यह तो अनुशासन भग करनेका पाठ पढाना हुआ। मेरी चले तो मै हर विद्यार्थीसे कहू कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल छब्बीस जनवरीको उत्सवमे भाग लेनेके लिए स्कूल या कालिज बद करनेका फैसला न करे तो उन्हे स्कूल या कालेजमे ही रहना चाहिए। इसी तरहकी सलाह मै मजदूरोको दूगा। श्री जयप्रकाशकी शिकायत है कि स्वाधीनताके दिन जो काम करना है उसके बारेमे कार्यसमितिने कोई तफसील नही बताई। मैने समझा था कि जब भाईचारेका और खादीका कार्यक्रम है तो फिर तफसीलवार हिदायते देनेकी क्या जरूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटिया कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेगी। मै देखता हू कि कुछ कमेटिया तो ऐसा कर भी रही है। मैने काग्रेस कमेटियोसे आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमितिका प्रस्ताव प्रकाशित हो जाय उसी दिनसे तैयारिया शुरू हो जायगी। मै राष्ट्रकी तैयारी सिर्फ इसी बातसे नही जानूगा कि देश-भरमे कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यत इस बातसे जानूगा कि खादी कितनी बिकी।

अतमे श्री जयप्रकाशका कहना है कि हमने अपनी तरफसे तो एक

२२

नया कार्य-क्रम मजदूर और किसान सगठनका बनाया है, ताकि उसके पायेपर क्रातिकारी सार्वजनिक आदोलन चलाया जाय।

इस तरहकी भाषासे मुझे डर लगता है। मैने भी सगठन तो किसान और मजदूर दोनोका किया है, मगर शायद उस तरहपर नही किया जैसा श्री जयप्रकाशके जीमे है। उनके वाक्यको और खोलकर समझानेकी जरूरत है। अगर उनका सगठन पूरी तरह शातिपूर्ण न हो तो उससे अहिसक कार्रवाईको उसी तरह नुकसान पहुच सकता है जिस तरह कि रोलट कानून-वाले सत्याग्रहको पहुचा था और बादमे ब्रिटिश युवराजके आने पर बबईकी हडतालके समय पहुचा था। (ह० से०, २० १.४०)

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नही है। समाजवादके वे महान् विशेषज्ञ है। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादकी जो बात उन्हे मालूम है उसे हिदुस्तानमे और कोई भी नही जानता। वे कुशल योद्धा भी है। देशकी स्वाधीनताके लिए उन्होने सर्वस्व त्याग किया है। वे अविरत उद्योगशील है। उनकी कष्टसहिष्णुता अतुलनीय है। मै नही जानता कि उनका कौन-सा भाषण कानूनके पजेमे आ गया है। लेकिन अगर दफा १२४ 'ए' या भारत-रक्षा कानूनकी अति कृत्रिम धाराए असुविधाजनक व्यक्तियोको गिरफ्तार करनेके काममे लाई जाती है तो कोई भी व्यक्ति, जिसे अधिकारी चाहे, कानूनकी बदिशमे आ सकता है। मै इससे पहले ही कह चुका हू कि सरकार चाहे तो सघर्ष अविलब आरभ कर सकती है। ऐसा करनेका उसे पूरा हक है। लेकिन मै दृढतासे यह आशा बाधे हू कि युद्धको उसी समय तक अपने उचित मार्गपर चलने दिया जायगा जबतक कि वह सर्वथा अहिसात्मक रहेगा। चाहे जो हो, भ्रमजाल नही चलने देना चाहिए। अगर श्री जयप्रकाश नारायण पर हिसा का अभियोग है तो उसे प्रमाणित किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि इस

गिरफ्तारीसे लोगोको ऐसा लगने लगा है कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थितिसे इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय-भग आन्दोलनके समय सरकारने अली-बन्धुओको गिरफ्तार कर दमनका श्रीगणेश किया था। पता नही कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार की गई है या किसी बहुत जोशीले अधिकारीकी भूल है। अगर यह किसी अधिकारीकी भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिए। (ह० से०, २३ ३ ४०)

श्रीजयप्रकाशनारायणने अदालतमे जो बयान दिया उसकी नकल उन्होने मेरे पास भेजी थी। यह उनके योग्य है, वीरोचित है, छोटा-सा और मुद्देसर है। जैसा कि उन्होने खुद कहा है, यह दुर्भाग्यकी बलिहारी है कि उन्हे देश-प्रेमके लिए सजा दी जा रही है। जो बात लाखो सोचते और हजारो बातचीतमे कहते है वही श्रीजयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमे और जो लोग लडाईका सामान तैयार करते है, उन्हीके सामने कह दी। यह सही है कि उनकी बातका असर हो और वह बार-बार कही जाय तो सरकार तग होगी। मगर इस तरह तग होकर उसे किसी देश-भक्तको, उसके खुलकर विचार करनेका दड देनेके बजाय, यह सोचना चाहिए कि हिंदुस्तानके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।

बयानके आखिरी हिस्सेसे बयान देनेवालेकी गहरी मानवीयताका प्रमाण मिलता है। उनके दिलमे कोई मैल नही। वे साम्राज्यवाद और नात्सीवादका नाश करना चाहते है। उनका अग्रेजो या जर्मनोसे कोई झगडा नही। उन्होने सच कहा है कि इग्लैड साम्राज्यवाद छोड दे तो न सिर्फ भारत, बल्कि तमाम दुनियाके स्वतत्रता-प्रेमी मनुष्य नात्सीवादकी हार और स्वतत्रता और लोकतत्रकी विजयके लिए पूरी कोशिश करेगे (ह० से०, ३० ३ ४०)

• • • • • •

श्री जयप्रकाशनारायण और डॉक्टर राममनोहर लोहियाके नाम तो आपने सुने ही है। दोनो विद्वान् है। उन्होने अपनी विद्वताका प्रयोग पैसा कमानेके लिए नही किया। देशकी गुलामीको देखकर वे अधीर हो उठे। उन्होने अपना सबकुछ देशके अर्पण कर दिया और उसकी गुलामीकी जजीरोको तोडनेमे लग गये। सरकारको उनसे डर लगा और उसने उन्हे जेलमे डाल दिया। अगर मै राज्य चलानेवाला होऊ तो शायद मैं भी ऐसे लोगोसे डरू और उन्हे जेलमे रखू।

सरकारने यह समभकर कि अब हमे आजादीसे वचित नही रखना है, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री राममनोहर लोहियाको छोड दिया है। सरकार समभ गई है कि उन्होने उसका पाप भले ही किया हो, सत्याग्रही गाधीका भी पाप किया हो, लेकिन ४० करोड जनताका उन्होने कोई पाप नही किया। जेलसे भागना आदि मेरी समभमे पाप है। लेकिन मै जानता हू कि उनके मनमे भी आजादीकी उतनी ही लगन है, जितनी मेरेमे। इसलिए वे मेरी नजरमे गिरते नही है। मै उनकी बहादुरीकी कदर करता हू।

सरकारका उन दोनोको और आजाद हिंद फौजवालोको छोड देना मेरी समभमे शुभ शकुन है। उसके लिए हम सरकारको धन्यवाद दे और ईश्वरका उपकार माने कि उसने उसे सन्मति दी। (ह० से० २१४४६)

: १०२ :

निवारणबाबू

पुरुलियाके निवारणबाबू, जिनका अभी हालमे स्वर्गवास हो गया है, बडे ही विनम्र स्वभावके पुरुष थे। जिस तरह हरिजनोके सच्चे सेवक

थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनोके सच्चे बन्धु थे। अहिंसाकी अनुपम सुंदरताका उन्होने खूब गहरे जाकर साक्षात्कार किया था और उसे अपने जीवनमे उतारनेका वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे। उनका जीवन उनके अनेक मित्रो और अनुयायियोके लिए प्रेरणाप्रद था और वे भारीसे भी भारी संकटके समय निवारण बापूसे पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासनकी आशा रखते थे। उनके मित्रो और अनुयायियोको उनके जीवनकी स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हे सन्मार्गपर उत्तरोत्तर प्रगति करनेकी स्फूर्ति दे। (ह० से०, ६ ८ ३५)

: १०३ :

भगिनी निवेदिता

मैं भूल ही नही सकता कि इसने पहली ही मुलाकातमे अंग्रेजोके लिए अत्यंत तिरस्कार और द्वेषके वचन कहे थे। मुझपर कुछ दिखावटकी छाप पडी थी, मगर दूसरे कई लोग कहते है कि वह गरीब-से गरीब भंगियोके मुहल्लेमे रहती थी। इसलिए यह सबूत मेरे लिए काफी है। दूसरी बार पादशाहके यहा मिली थी। वहा पादशाहकी बूढी माने एक कटाक्ष किया था वह याद रह गया है—इस बहनसे कहिये कि इसने अपना धर्म तो छोड दिया है। अब मुझे क्या मेरा धर्म समझाती है? (म० डा० १ ८ ३२)

: १०४ :

कमला नेहरू

गत १६ तारीखको इलाहाबादमे मुझे कमला नेहरू स्मारक अस्पताल की आधार-शिला रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हे दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मै यह देखते रहनेका प्रयत्न करता रहूगा कि जिस कामकी उन्होने अपने ऊपर जिम्मेदारी ले रक्खी थी वह ठीक तरहसे चल रहा है या नही। वे अपने स्वास्थ्यकी शोधमे यूरोप जा रही थी। उनकी वह यूरोप-यात्रा मृत्यु-शोधकी यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होने मुझे लिखा था कि मै या तो उनके साथ-साथ बबईतक चलू या उन्हे देखने सीधे बबई पहुच जाऊ। मै बबई गया। उन्हे जो थोडा-सा वक्त मै दे सका, उस बीचमे उन्होने मुझसे कहा—"अगर मेरा शरीर यूरोपमे छूट जाय तो जवाहरलालजीने स्वराज्य-भवनमे जो अस्पताल खोल रक्खा है और जिसे कायम रखनेके लिए मैने इतना परिश्रम किया है उसे देखते रहनेका आप प्रयत्न करते रहेगे न कि उसकी नीव स्थायी हो गई है ?" मैने उन्हे वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी उसमे मेरे शामिल होनेका आधार अशत मेरा यह वचन भी था। (ह० से०, २५ ११ ३६)

: १०५ :

जवाहरलाल नेहरू

"महासभाके सभापतिकी जिम्मेदारी हरसाल अधिकाधिक बढती जाती है। इस वक्त हमारे सामने वह गभीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए राष्ट्रपतिका ताज कौन पहने ? क्योकि अबकी बार तो मेरी सम्मतिमे पडित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए। अगर मैं निर्णयके समय अपना प्रभाव डाल सका होता तो वह चालू वर्षके भी राष्ट्रपति होते, मगर बगालकी जोरदार मागने 'पुराने साथी' को ही सिंहासनपर बैठानेको विवश किया।

बूढे नेता अब अपना कार्यकाल समाप्त कर चुके है। भावी सग्राममे जूझनेका काम नवयुवको और नवयुवतियोका है। और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हीमे से कोई खडा किया जाय। बूढोको चाहिए कि समयकी गतिको परखे, नही तो जो चीज वे अपनी सहज उदारतासे न देगे वह उनसे जबर्दस्ती छीन ली जायगी। जब जिम्मेदारीका बोझ सरपर आ पडेगा, नोजवान अपने आप सौम्य और गभीर बनेगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार रहेंगे, जो उन्हीको सम्हालना है। पडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य है। उन्होने वर्षोतक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ महासभाके मत्रीका काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ सकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई और धैर्यके कारण उन्होने देशके नौजवानोका मन मुट्ठीमे कर लिया है। वह किसानो और मजदूरोके भी सपर्कमें आये है। यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हे है, उससे उन्हे स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमे बडी सहायता मिलेगी।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते है कि जबकि हमे सभवत महासभाके

बाहरके अनेक दलोके साथ गभीर और नाजुक चर्चा छेडनी पडेगी, जब सभवत ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आवेगा और जबकि हिंदू-मुस्लिम समस्या अभी हमारे सामने उलझी ही पडी है, ऐसे समयमे नेतृत्वके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमे देशकी बागडोरका होना आवश्यक है। इस दलीलमे तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर इस कथनमे आ जाता है कि क्षेत्र-विशेषके लिए मुझमे जो भी खूबिया है, उनका प्रयोग मै उस हालतमे और भी अच्छी तरह कर सकूगा जबकि मै हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक रहूगा। जबतक जनताका मुझ-पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नही है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मै, अपनी शक्तियोका, जो मुझमे हो सकती है, सपूर्ण उपयोग न कर सकूगा। ईश्वर-कृपासे बिना किसी पदको स्वीकार किये ही मै १९२० से देशके जीवनको प्रभावित करनेमें समर्थ हो सका हू। मै नही समझता कि बेलगाव महासभाका सभापति बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोडी बढी हो।

और जिन्हे यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या सबध है, वे यह भी जानते है कि वह सभापति हुए तो क्या और मै हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममे मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक है। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कडे अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा है, जिनमे पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

इतनेमे एक दूसरे आलोचक कानोके पास आकर कहते है—क्या जवाहरलालका नाम अग्रेज-बुलके लिए लाल चीथडेका काम नही करेगा? मै कहता हू कि जब हम इन कल्पित आलोचककी तरह तर्क करते है तब न तो राजनीतिज्ञोकी व्यवहार-पटुता और कूट चातुर्यकी कद्र करते है और न स्वय अपनी शक्तिमे ही विश्वास रखते है। राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका खयाल रखना कि अग्रेज राजनीतिज्ञ

हमारे चुनावपर क्या कहेंगे, अपनेमे आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक अग्रेज-स्वभावके जितने पारखी हो सकते है, उनसे अधिक उसका पारखी मै हू। एक अग्रेजकी दृष्टिमे सच्चाई वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण है और जवाहरलालमे ये सब प्रचुर परिमाणमे पाये जाते है। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोका भी विचार कर लिया जाय तो भी पडित जवाहरलाल उनके अदाजसे किसी कदर कम नही उतरते।

और आखिर यह तो है कि महासभाका सभापति कोई एकाधिकारी या निरकुश नही होता। उसका दर्जा एक प्रतिनिधिका है, जिसे एक प्रख्यात परपरा और सुसघटित सगठनके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनतापर अपने विचार लादनेका जितना हक है उससे ज्यादा हमारे राष्ट्रपतिको हो नही सकता। महासभा एक ४५ वर्ष पुरानी सस्था है और उसका महत्व एव प्रतिष्ठा उसके अत्यत सुप्रसिद्ध सभापतियोसे भी बढकर है। दूसरे जब समय आवेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोको किसी एक व्यक्तिसे नही, बल्कि सारी महासभासे मोर्चा लेना पडेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद उन लोगोको, जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हू कि वे मेरा विचार छोड दे और पूरी-पूरी आशा और विश्वासके साथ पडित जवाहरलालको ही उच्चपदके लिए वरण करे। (हिं० न० १ ८ २९)

• •

बहादुरीमे कोई उनसे बढ नही सकता और देश-प्रेममे उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहा उनमे एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहा एक राजनीतिज्ञका विवेक भी है। वह स्फटिक मणिकी भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सदेहके परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथमे सुरक्षित है। ('प० जवाहर

लाल नेहरू'—श्रीरामनाथ 'सुमन,' पृष्ठ २)

जवाहरलालके समान नवयुवक राष्ट्रपति हमे बार-बार नही मिलेगे। भारतमे युवकोकी कमी नही है, लेकिन जवाहरलालके मुकाबलेमे खडे होनेवाले किसी नवजवानको मै नही जानता। इतना मेरे दिलमे उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्तिके अनुभवपर स्थापित है और इसलिए मै कहता हू कि जबतक उनके हाथमे लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करले तो कितना अच्छा हो। लेकिन हम तभी कुछ कर सकेगे, जब मुझे आप लोगोकी पूरी-पूरी मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि स्वराज्यके भावी सग्राममे आप लोग सबसे आगे होगे। अगर नौ वर्षोका यहाका आपका अनुभव सफल हुआ हो और आपको अपने आचार्योके प्रति सच्चा आदर तथा प्रेम हो तो उसे बतानेका, आपमे जो जौहर हो उसे प्रकट करनेका, समय आगे आ रहा है। ('विद्यार्थियोसे,' पृष्ठ २०३)

पडित नेहरूने अपने देश और उसकी वेदीपर अपने जीवनकी समस्त अभिलाषाओ तथा ममताओका बलिदान किया है। सबसे बडी विशेषताकी बात यह है कि उन्होने किसी दूसरे देशकी सहायतासे मिलनेवाली अपने देशकी आजादीको कभी सम्मानपूर्ण नही समझा।

जवाहरलालका जहातक सवाल है, हम जानते है कि हममेसे किसीका भी एक-दूसरेके बिना काम नही चल सकता, क्योकि हम लोगोमे ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नही कर सकते। (ह० से०, ३ ६ ३६)

• •

हमे अलग करनेके लिए केवल मतभेद ही काफी नही है। हम जिस क्षणसे सहकर्मी बने है उसी क्षणसे हमारे बीचमे मतभेद रहा है, लेकिन

फिर भी मैं वर्षोसे कहता रहा हू और अब भी कहता हू कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा, राजाजी नही। वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझमे नही आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किंतु हृदयोकी एकतामे भाषा बाधक नही होती।

और मैं यह जानता हू कि जब मैं चला जाऊगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषामे बात करेगा।(ह०, २५ १ ४२)

सवाल—आपने भी उस रोज वर्धामें कहा था कि जवाहरलाल आपके कानूनी वारिस है। आपके कानूनी वारिसने जापानियोके खिलाफ छापेमारीसे लडनेकी जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार कर रहे है और राजाजी सारे देशको शस्त्र और शस्त्रोकी शिक्षा देना चाहते है, तो आपकी अहिंसाका क्या होगा ?

उत्तर—जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयकर मालूम होती है, मगर आपको जितनी भयकर वह लगती है, दर-असल उतनी है नही। पहली बात तो यह है कि मैंने कानूनी वारिस शब्द अपने मुहसे नही कहा। मेरी तकरीर हिंदुस्तानीमे थी। मैंने तो कहा था कि वे मेरे कानूनी वारिस नही, बल्कि असली वारिस है। मेरा मतलब यह था कि जब मैं न रहूगा, तो वे मेरी जगह लेगे। उन्होने मेरे तरीकेको पूरे तौरपर कभी अगीकार नही किया। उन्होने तो उसकी साफ-साफ आलोचना की है। परतु बावजूद इसके काग्रेसकी नीतिका उन्होने वफा-दारीके साथ पालन भी किया है। यह नीति या तो मेरी ही निर्धारित की हुई थी, या अधिकाशमें मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई जैसे नेता, जिन्होने हमेशा बिना किसी प्रकारकी शका या सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नही कहे जा सकते। यह तो हर कोई

स्वीकार करता है कि और किसीमे जवाहरलालकी सी क्रियात्मक शक्ति नही है। और क्या मै यह नही कह चुका हू कि मेरे चले जानेके बाद वे तमाम मतभेदको, जिसका जिक्र वे अकसर किया करते है, भूल जायगे।

मुझे इस बातका खेद है कि काबेबाजीकी युद्ध प्रणालीने उनके दिलमे घर कर लिया है। मगर मुझे जरा भी शक नही कि वह चार दिनकी चादनी ही साबित होगी। देशपर उसका कुछ असर न होगा। यहाकी भूमि उसके अनुकूल नही। २२ वर्ष तक जिस अहिंसाका लगातार आचार और प्रचार हुआ है चाहे वह कितना ही अपूर्ण क्यो न रहा हो, उसका असर जवाहरलालजी या राजाजीकी इच्छासे—फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यो न हो—एक क्षणमे नही मिट सकता। इसलिए मैं जवाहरलालजी या राजाजीके अहिसा-मार्गसे च्युत होनेसे विचलित नही होता। अपने प्रयत्नके होनेपर वे नई शक्ति और नए उल्लासके साथ अहिंसा-मार्गपर लौटेगे। उनमेसे कोई भी हिसाको इसलिए ग्रहण नही करना चाहता कि वह उन्हे पसद है। अगर आज वे हिंसाकी शरण लेते भी है, तो गालिबन इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसापर आनेसे पहले हिंदुस्तानको हिंसाके दावानलमे से गुजरना ही चाहिए। (ह० से०, २६ ४.४२)

• •

(शामको घूमते समय कुछ दिन पहलेके इस प्रश्नके उत्तरमें कि सत्याग्रही जडवत-से क्यो लगते है, बापूने कहा—) सत्याग्रही जडवत लगते हैं, यह मै स्वीकार कर लेता हू। इसके कारणको ढूढो तो पहली याद रखनेवाली बात यह है कि किस वर्गमेंसे मेरे पास सत्याग्रही आए। लेनिनके पास काम करनेवाले धनहीन थे, क्योकि वह उनके लिए काम कर रहा था। कुछ भी हो, लेनिनको उनसे सतोष मानना था। इसी तरह मेरे पास जो कार्यकर्त्ता है उनसे मुझे सतोष मानना है। दूसरी बात यह है कि जबतक वे लोग मेरे अकुशके नीचे रहकर काम करते है, उन्हे जडवत लगना

ही है। कारण यह है कि सत्याग्रहका सचालक मैं रहा। मुझसे आगे उनमेंसे कोई कैसे जा सकता है ? वे लोग अपनी वुद्धि चलाने लगे तो उनका राजाजी-जैसा हाल होगा। मैंने राजाजीसे कहा था कि जबतक मैं हू, तुम मुझे समझानेका प्रयत्न करो। न समझा सको तो अतमे तुम्हें मेरी वात मानकर चलना चाहिए। वे कहने लगे, "कभी नहीं।" तो मैंने कहा, "अच्छी वात है। ऐसे ही कह तो जवाहरलाल भी देता है कि 'कभी नहीं', मगर पीछे करता वही है जो मैं कहता हू। (का० फ०, २ १२ ४२)

•

अगर लोग जरा-सी समझदारीसे चले तो स्वराज्य उनके हाथोमें आ चुका है, क्योकि हमारी सरकारके उप-प्रधान जवाहरलालजी है। वाइसराय प्रधान है सही, पर उन्हे अब शातिसे बैठना है। आपके असली वादशाह जवाहरलाल है। वे ऐसे वादशाह है जो हिंदुस्तानको तो अपनी सेवा देना चाहते ही हैं, पर उसके मार्फत सारी दुनियाको अपनी सेवा देना चाहते है। उन्होने सभी देशोके लोगोसे परिचय किया है और उनके राजदूतोका सत्कार करनेमें वह वडे कुशल हैं। लेकिन वह अकेले कहातक कर सकते है ?

वह वेताजके वादशाह आपके खिदमतगार है। तो क्या वह वदूकसे आपकी वदअमनीको दवा देगे ? अगर आज एकको दवायगे तो कल दूसरेको इसी तरह दवाना पडेगा। फिर वह स्वराज्य तो नही हुआ। पचायती राज्य भी नही हुआ। जव आप लोग अनुशासनसे रहेंगे तभी जवाहरलालकी वादशाहत चलेगी और हमारा स्वराज्य सुखरूप होगा।

खुद जवाहरलालजी भी किस तरह अनुशासनमे रहते है इसका उदाहरण सुनिए। पिछले वर्ष जव वह काश्मीर चले गए थे तव वेवल साहवको उनकी जरूरत पड गई। मौलाना साहवने उन्हे वुलाना चाहा

और मेरे समझानेपर वह वहाका संघर्ष छोडकर राष्ट्रपतिका हुक्म मानकर यहा चले आये थे।

आज भी जवाहरलालका चित्त काश्मीरमे है, जहा प्रजाके नेता शेख अब्दुल्ला सीखचोमे बद पडे है। मैने जवाहरलालसे कहा है कि तुम्हारी आवश्यकता यहापर ज्यादा है। इसलिए जरूरत हुई तो मैं काश्मीर जाऊगा और तुम्हारा काम करूगा। तुम यही रहो। मैंने यह भी उनसे कहा कि यद्यपि मै वचनसे बिहार और नवाखालीमे ही करने या मरनेके लिए बधा हूँ, परतु काश्मीरमे भी मुसलमान भाइयोका ही सवाल है, इसलिए वहा जा सकता हू। वहा जाकर काश्मीरके राजासे मित्रता करूगा और मुसलमानोकी भलाईका काम करूगा। लेकिन जवाहरलालने अभी इस बातकी 'हा' नही भरी है। (प्रा० प्र०, १४.४७)

कल मैंने जवाहरलालजीके अमूल्य कामके बारेमे जिक्र किया था। मैने उन्हे हिंदुस्तानका बेताजका बादशाह कहा था। आज जब अग्रेज अपनी ताकत यहासे उठा रहे है तब जवाहरलालकी जगह कोई दूसरा ले नही सकता। जिसने विलायतके मशहूर स्कूल हैरो और केब्रिजके विद्यापीठमे तालीम पाई है और जो वहा बैरिस्टर भी बने है उनकी आज अग्रेजोके साथ बातचीत करनेके लिए बहुत जरूरत है। (प्रा० प्र०, २.४.४७)

मैं परसो हरिद्वार जाऊगा। मेरे साथ जवाहरलाल जायगे। वे तो युक्तप्रातमे अद्वितीय है। आज तो वे सारे हिंदुस्तानमे भी अद्वितीय हो रहे है। (प्रा० प्र०, २६.४ ४७)

लेकिन आज क्या हो रहा है? सरदार ऊचा सिर रखकर चलनेवाला, आज मैं आपको कहता हू कि उसका सिर नीचा हो गया है। वह

जवाहरलाल, वह बहादुर जवाहरलाल, हवामे उडनेवाला, किसीकी परवाह न करनेवाला, आज वह लाचार बनकर बैठ गया है। क्यो लाचार बना ? हमने उसको लाचार बनाया। वह जवाहरलाल कोई ईश्वर तो है नही। सरदार ईश्वर थोडे ही है। दूसरे जो उनके मत्री पडे है वे ईश्वर तो है नही। उनके पास ईश्वरीय ताकत तो कोई नही है। बाहरकी ताकत, दुनियाकी ताकत भी, कहा उनके पास पडी है ? (प्रा० प्र०, १३ ६ ४७)

•

दूसरी बात यह है कि यहा जितने दु खी लोग है, उनके लिए तो पडित जी—उनको मै बहुत पहचानता हू—ऐसे है कि दूसरोको सुलाकर सोनेवाले है। मानो एक ही बिछौना है, जो सूखा है, बाकी गीला है, तो वह सूखेमे दु खीको सुलायगे, खुद चाहे घूमते रहे। मै यह पढकर बहुत खुश हुआ। वे कहते है कि उनके घरमे जगह नही है, दूसरे आदमी भी चले आते है, इसलिए जगह नही रहती है। वह तो मुख्य प्रधान है। तो मिलनेवाले जाते है, दोस्त है, अग्रेज भी जाते है, तो क्या वहासे उनको निकाल दे ? तो भी कहते है कि मेरी तरफसे एक कमरा या दो कमरा, जितना निकल सकता है निकालूगा और दु खी लोगोको रखूगा। फिर दूसरे मुख्य प्रधान भी करें, फिर फोजके अफसर है वे भी ऐसा करे। इस तरहसे सब अपने धर्मका पालन करे तो कोई दु खी नही रहेगा। ऐसा जो जवाहरने किया, उसे देखा, तो मै उनको और आपको धन्यवाद देता हू कि हमारे यहा एक रत्न है। (प्रा० प्र०, २१ १ ४८)

अब मेरा दिल आगे बढता है कायदे आजम जिन्नाकी तरफ। उनको मै पहचानता हू। मै तो उनके घर जाता था और एक दफा तो १८ बार गया था। मै उसको तपश्चर्या मानता हू। बादमे भी उन्होने और मैने एक चीजमे दस्तखत किये थे और उसमे भी हम दोनो हिस्सेदार

बन गये थे। तब भी उनके साथ मीठी बाते होती थी। इसलिए मै तो उनसे, लियाकतअली साहबसे और उनके मन्त्रिमडलसे कहूगा कि यह बात है कि आप जवाहरलाल-जैसे आदमीको कहते है कि आप धोखेबाजी करते है। जवाहरलाल और उनकी सरकारको इसमे धोखेबाजी क्या करनी थी? मै कहूगा कि जवाहर तो किसीसे भी धोखा करनेवाला नही है, जैसा उसका नाम है वैसा उसका गुण है। उनकी सरकारमे सरदार या जो दूसरे आदमी है उनको भी मै पहचानता हू। वे भी कोई धोखेबाज नही है। अगर वे काश्मीरसे मशविरा करना चाहते है तो उसका यह मतलब नही है कि वे फुसला रहे है। जवाहरलाल तो पहले भी उनसे बाते करता था और अकेला शेख अब्दुल्लाके लिए उनसे लडता था। तो उसको इसमे धोखा क्या करना था? (प्रा० प्र०, २ ११ ४७)

• • • •

वे आसानीसे पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त या अतर्राष्ट्रीयताके रूपमे प्रकाशमान है, तो भी पाठकोके सामने इन लेखोमेसे उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतत्रताके, जिसकी वेदीपर उन्होने अपनी दूसरी सभी कामनाओका बलिदान कर दिया है, निष्ठावान भक्त-का रूप होगा। यह श्रेय उन्हे मिलना ही चाहिए कि वे किसी अन्य देशकी सहायताको कीमतपर अपने देशकी आजादी प्राप्त करना अपनी शानके खिलाफ समझेगे। उनकी राष्ट्रीयता अतर्राष्ट्रीयता-जैसी है। ('नेहरू-यौर नेवर' के प्राक्कथनसे)

: १०६ :

मोतीलाल नेहरू

महासभाका सभापतित्व अब फूलोका कोमल ताज नही रह गया है। फूलके दल तो दिनो-दिन गिरते जाते है और काटे उघडते जाते है। अब इस काटोके ताजको कौन धारण करेगा ? वाप या वेटा ? सैकडो लडाइयोके लडाका पडित मोतीलाल नेहरू इस काटोके ताजको पहनेंगे या सयम-नियमके पक्के जवान सिपाही पडित जवाहरलाल नेहरू, जिन्होने अपनी योग्यता और महत्तामे देशके युवकोके हृदयोपर अधिकार कर लिया है ? श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका नाम स्वभावत ही सबकी जवान पर है। पडितजी एक व्यक्तिगत पत्रमे लिखते है कि इस समय तो वल्लभभाई पटेलको ही, उनकी वीरताके लिए सभापति चुनना चाहिए और सरकारको यह दिखला देना चाहिए कि उनपर सारे राष्ट्रका विश्वास है। खैर, मगर अभी तो श्री वल्लभभाईका कोई प्रश्न ही नही हो सकता। इस समय उनके पास काम भी इतना पडा हुआ है कि वे वारडोली छोडकर दूसरी ओर ध्यान ही नही दे सकते। और फिर दिसवर आनेसे पहले ही सभव है कि वे सरकारके अनेक वदीगृहोमेसे किसी एकमें उसके अतिथि वनकर पहुच जाय। मेरा अपना विचार तो यह है कि यह काटोका ताज पडित जवाहरलालको ही मिलना चाहिए। भविष्य तो देशके युवकोके ही हाथमें होना चाहिए। मगर वगाल तो अगले साल, जवकि वहुतसे तूफानोका भय है, पडित मोतीलालके ही हाथो महासभाकी पतवार देना चाहता है। हम लोगोमे आपसमे फूट है और चारो ओरसे हमें एक ऐसा शत्रु घेरे हुए है जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति-अनीतिसे लापरवाह भी। वगालको इस समय किसी वडे-वूढेकी विशेष आवश्यकता है और वह भी ऐसे आदमीकी जिसने, उसके गाढे अवसरपर, उसे सभाला

हो। अगर सारे हिंदुस्तानके लिए आगे सुखका समय नही आनेवाला है तो बगालके लिए तो और भी नही। इसके तो हजारो कारण है कि पडित मोतीलालजीको ही क्यो यह काटोका ताज धारण करना चाहिए। वे वीर है, उदार है, उनपर सभी दलोका विश्वास है, मुसलमान उन्हे अपना मित्र मानते है, उनके विरोधी भी उनका आदर करते है और अपनी जोरदार दलीलोसे वे उन्हे प्राय ही अपनी रायसे सहमत कर लेते है और फिर इसके अलावा उनके स्वभावमे सधि और समझौनेकी भावनाकी ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्रके अत्यत योग्य दूत होने लायक है, जिसे सम्मानित समझौतेकी आवश्यकता है और जो उसे करनेके लिए तैयार है। इन्ही बातोपर विचार करके, अत्यत साहसी बगाली देशभक्त पडित मोतीलाल नेहरूको ही अगले वर्षके लिए राष्ट्रका कर्णधार बनाना चाहते है। (हिं० न०, २६ ७ २८)

हमारे देशके इस बहादुर वीरके शवके सामने खडे होकर गगा और जमुनाके किनारे हममेसे हर पुरुष और स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जबतक हिंदुस्तान आजाद न होगा वह चैन न लेगे, इसलिए कि यही वह काम है जो मोतीलालजी दिलसे चाहते थे। इसी खातिर उन्होने अपनी जान देदी। ('कोई शिकायत नही', पृष्ठ ७३)

मेरी हालत विधवा स्त्रीसे भी बुरी है। एक विधवा अपने पतिकी मृत्युके बाद वफादारीसे जीवन बिताकर अपने पतिके अच्छे कामोका फल पा सकती है। मै कुछ भी नही पा सकता। मोतीलालजीकी मृत्युसे जो कुछ मैने खोया है वह मेरा सदाके लिए नुकसान है। ('कोई शिकायत नही', पृष्ठ ७३)

... .

मोतीलालजीकी मृत्यु हरेक देशभक्तके लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए,

क्योंकि अपना सबकुछ न्यौछावर करके वे मरे है और अत समय तक देशका ही ध्यान करते रहे है। इस वीरकी मृत्युमे हमारे अदर भी वलिदानकी भावना आनी चाहिए। हममेसे हरेकको चाहिए कि जिस स्वतत्रताके लिए वे उत्सुक थे और जो हमारे बहुत नजदीक आ पहुची है, उसको प्राप्त करनेके लिए अपना सर्वस्व नही तो कम-से-कम इतना वलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमे प्राप्त हो जाय।

(मोतीलालजीकी मृत्युपर, ७ फरवरीको, इलाहावादमे दिया सदेश।)

मै श्री मोतीलाल नेहरू इत्यादिकी याद आपको दिला दूगा जिन्होने अपनी कानूनी लियाकत विल्कुल मुफ्त बाटी और अपने देशकी वडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप मुझे शायद ताना देगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमे वडी लवी फीस लेते थे। मै इस तर्कको इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबमे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोने भारतको आवश्यकता पडनेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नही कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई सबध नही है। मैने उनको वडे सतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हि० न०, १२ ११ ३१)

•

स्वर्गीय मोतीलालजीके चित्रके उद्‌घाटनका जो सम्मान तुम लोगोने मुझे दिया है, उसके लिए मै तुम्हारा आभारी हू। तुम्हारे पास उनकी छवि रहे और उनके पवित्र भावोको तुम सदा अपने हृदयमे अकित रक्खो, यह उचित ही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही है कि जैसा सबध दो सगे-सहोदर भाइयोके बीच होता है, वैसा ही प्रगाढ प्रेम-सवध मोतीलालजीके और मेरे बीच था। मोतीलालजीकी देश-सेवा, मोतीलालजीका त्याग, मोतीलालजीका अपने पुत्र-पुत्रियोके प्रति अनुपम प्रेम, इन सब बातोका

परिचय जैसा मुझे था, लगभग वैसा ही तुम्हे भी होना चाहिए। जबसे मुझे मोतीलालजीका प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, तबसे उनके जीवनके अतिम समयतक उनके निकट ससर्गमे रहनेका सद्भाग्य ईश्वरने मुझे दिया था। मैंने देखा कि वह प्रतिक्षण स्वदेशहितका ही चिन्तन करते थे। उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नही, बल्कि प्राण था। स्वराज्यकी उन्हे सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढती ही गई। ऐसे आदर्श देशभक्तका चित्र अपने सम्मुख रखना उचित ही है। इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पडितजीके गुणोका तुम लोग अनुकरण करोगे। पडित मोतीलालजीके सद्गुणोमे एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यता नही मानते थे। वह मानो एक राजपुरुष थे। उन्होने तो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्योमे, स्वराज्यके कार्योमे लुटाया। मुझे उनके ऐसे दृष्टात मालूम है कि उनके हृदयमे ऊच-नीचका भाव था ही नही। (ह० से०, २६.१२.३३)

.. ...

उस जमानेमे हमने विदेशी कपडेके पहाड चिन-चिनकर जला दिये थे और कोई यह नही कहता था कि इससे राष्ट्रकी निधि बरबाद हो रही है। श्रीमती नायडूने अपनी पेरिसकी साडी जला दी थी और स्व० मोतीलालजीने भी अपने विलायती कपडोमे दियासलाई लगा दी थी। उनके पास तो आलमारी-की-आलमारियां विदेशी कपडे थे। इसके बाद जब वे जेल गए तब उन्होने मेरे पास एक खत भेजा था—आज वह खत मैं खोज नही सकता—पर उसमे था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हू, आनदभवनमे मेरे पास जो समृद्धि थी उससे मुझे यह सुख नही मिलता था। वहा उन्हे सिगार, शराब, गोश्त कुछ नही मिलता था। पूरा भोजन भी नही मिलता था, फिर भी उसमें उन्हे सुख मालूम हुआ। यह सही है कि उनकी यह चीज हमेशा नही चली। (प्रा० प्र०, २० ६ ४७)

: १०७ :

सुशीला नैयर

सुशीलाबहन बहावलपुर चली गई है। बहावलपुरमे दुखी आदमी है। उनको देखनेके लिए चली गई है। फ्रेंड्स सर्विसके लेसली क्रॉसके साथ चली गई है। फ्रेंड्स यूनिटमेसे किसीको भेजनेका मैंने इरादा किया था, ताकि वह वहा लोगोको देखे, मिले और मुझको वहाके हाल बता दे। उस वक्त सुशीलाबहनके जानेकी बात नही थी, लेकिन जब सुशीलाबहनने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत देदो तो मैं क्राससाहबके साथ चली जाऊ। वह जब नोआखालीमे काम करती थी तबसे वह उनको जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पजाबके गुजरातकी है। उसने भी काफी गवाया है, क्योकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है, फिर भी दिलमे कोई जहर पैदा नही हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहा क्यो जाना चाहती हू, क्योकि मै पजाबी बोली जानती हू, हिंदुस्तानी जानती हू, उर्दू और अग्रेजी भी जानती हू, तो वहा मै क्राससाहबको मदद दे सकूगी। तो मै यह सुनकर खुश हो गया। वहा खतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है? ऐसा डरती तो नोआखाली क्यो जाती? पजाबमें बहुत लोग मर गये है, बिल्कुल मटियामेट हो गये है, लेकिन मेरा तो ऐसा नही है। खाना-पीना सब मिल जाता है। ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दे और क्राससाहब मुझे ले जाय तो वहाके लोगोको देख लूगी। तो मैने क्राससाहबसे पूछा कि क्या आपके साथ सुशीलाबहनको भेजू? तो वे खुश हो गये और कहा कि यह तो बडी अच्छी बात है। मै उनके मारफत दूसरोसे अच्छी तरह बातचीत कर सकूगा। मित्रवर्गमें हिंदुस्तानी जाननेवाला कोई रहे तो वह बडी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रासके है। तो डाक्टर

सुशीला श्राससाहबके साथ गई है या डाक्टर सुशीलाके साथ श्रास-साहब गये हैं यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नही, क्योकि दोनो क-दूसरेके दोस्त है श्रौर दोनो एक दूसरेको चाहते हैं, मोहब्बत करते है। वे सेवा-भावसे गये है, पैसा कमाना तो है नही। वे जो देखेगे, मुझे बतायगे श्रौर सुशीलाबहन भी बतायगी। मैं नही चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है श्रौर श्राससाहब दूसरे हैं। कौन ऊचा है, कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करे। (प्रा०प्र०, २९ १ ४८)

: १०८ :

वल्लभभाई पटेल

श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पुराने सिपाही है श्रौर सेवाके सिवा उनका दूसरा काम भी नही है। (हि० न०, १५ ८ २७)

• •

श्रभी जो भयकर श्रफवाहे उड रही है उनको ध्यानमे रखकर मुझे यह स्पष्ट कर देना श्रावश्यक मालूम होता है कि बारडोलीसे मेरा क्या सबध है। पाठक जान ले कि बारडोली सत्याग्रहके श्रारभसे ही मैं उसमें शामिल हू। उसके नेता वल्लभभाई है। उन्हे जब कभी मेरी जरूरत हो, वे मुझे वहा ले जा सकते है। यह कोई बात नही कि उन्हे मेरी सलाहकी श्रावश्यकता हो, तथापि कोई भी भारी काम करनेसे पहले वे मुझसे परा-मर्श करते है। पर वहाका सारा काम, चाहे वह छोटा हो या बडे-से-बडा, वे श्रपनी जिम्मेदारीपर ही करते है। इस बातके विषयमे मैंने उनसे पहले हीसे समझौता कर लिया है कि मै सभा श्रादिमे नही जाऊगा।

मेरा शरीर अब इस लायक नही रहा कि मै हरएक काममे दिलचस्पी ले सकू। इसलिए उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अहमदाबादमे या गुजरातमे अन्यत्र बिना कारण वे मुझे नही ले जावेंगे, और इस प्रतिज्ञाका उन्होने अक्षरश पालन किया है। इस सत्याग्रहमे उनके साथ मेरी सपूर्ण सहानुभूति रही है। अब तो गभीर स्थिति खडी होनेकी सभावना है और उसका सामना करनेके लिए वल्लभभाई जो-जो करेंगे उसमें भी उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी। यदि वे कही पकडे गये तो बारडोली जानेके लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हू। उनके बारडोलीमे रहते वहा जाने अथवा अन्य किसी तरह सक्रिय भाग लेनेकी न मुझे कोई जरूरत दिखाई दी, न उन्हे। जहा आपसमे सपूर्ण विश्वास है वहा शिष्टाचार अथवा किसी प्रकारके बाह्य आडबरकी जरूरत नही होती। (हि० न०, १३ ३ १९२९)

जिस सरदारके सेनापतित्वमे आपने इस प्रतिज्ञाका इतना सुदर पालन किया उसीके सेनापतित्वमे आप यह भी करे। ऐसा स्वार्थत्यागी सरदार आपको और नही मिलेगा। यह मेरे सगे भाईके समान है, तथापि इतना प्रमाण-पत्र उन्हे देते हुए मुझे जरा भी सकोच नही होता। ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३२५)

वल्लभभाई जैसे नामके पटेल है वैसी ही उनकी साख भी है। बारडोलीकी विजय प्राप्तकर उन्होने अपनी साखको कायम रखा। (विजयी बारडोली', पृष्ठ ४२६)

सरदार वल्लभभाई हसीमे कहा करते थे कि उनके हाथकी रेखाओमें जेलकी रेखा नही है। उन लोगोके लिए जेल है ही नही, जिनके मनमे जेल महलके समान है और जो जेल और महलमे कोई भेद नही सम-

झते। जहा आज सरदार विराजे है, वहा हम सबको जाना है। पर बिना योग्यता प्राप्त किये जेल नही मिलती। सरदार वल्लभभाईकी अमूल्य सेवाओके हम पात्र थे या नही, इसे प्रमाणित करनेका अवसर अब आ गया है। उन्हे गुजरातसे आशा क्यो न हो? उन्होने मजदूरोकी सेवामे कौन कमी रक्खी है? डाकवालो और रेलवेके नौकरोने उनके पास बैठकर स्वराज्यका पाठ कौन कम पढा है? अहमदाबादका ऐसा कौन नागरिक है जो नही जानता कि उन्होने अपना सर्वस्व होम कर शहर-की सेवा की है? शहरमे जब भीषण महामारी फैली थी उन दिनो गरीबोकी सेवाका इतजाम करने वाला कौन था? वल्लभभाई। अकाल पडनेपर अकाल पीडितोकी मददके लिए दौड पडनेवाला कौन था? वल्लभभाई। गुजरातमे ऐतिहासिक बाढ आई, लाखो लोग घरबार-विहीन बन गये, खेतोकी फसल बह गई। उस समय सारे गुजरातका सकट टालनेके लिए सैकडो स्वयसेवकोको तैयार करनेवाला, लोगोके लिए एक करोड रुपए सरकारके खजानेसे निकलवानेवाला कौन था? वल्लभ-भाई ही। और वह भी वल्लभभाई ही थे, जिन्हे बारडोलीकी जीतके लिए ऋणी जनताने सरदार कहकर पुकारा और जो सपूर्ण स्वराज्यकी आखिरी लडाईके लिए जनताको तैयार कर रहे थे। वल्लभभाई तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए जेल पहुच गये। अब हमे क्या करना चाहिए? इस सवालका एक जवाब तो साफ ही है। हम हिम्मत न हारें, उलटे हममेसे हरएक दुगुनी दृढता और दुगुनी हिम्मतके साथ सविनय भगके लिए तैयार हो जाय और जेलकी, या मौत मिले तो मौतकी राह पकड ले। सरदारके जानेके बाद अब रहनुमा कौन होगा? इस तरहका नामर्दीसे भरा हुआ सवाल कोई अपने मनमे न उठने दे। जिसे सविनय भग करना है, उसके पास आज बहुतेरे साधन पडे हुए है और सरकार नए-नए साधन पैदा कर रही है। जैसे हमारे लिए यह जीवन-मरणका खेल है, वैसे ही सरकारके लिए भी है। मालूम होता है कि उसकी

हस्तीका आधार ही स्वतन्त्र स्वभावके मनुष्योको दवानेपर है, नही तो वह वल्लभभाईके समान शातिरक्षाके लिए प्रसिद्ध आदमीको क्यो पकडती ? (हिं० न०, १३.३ ३०)

सरदारके लिए सब समान है, एक नन्हा वालक भी इसे जानता है। उन्हें तो गरीवमात्रकी सेवा करनी है। फिर भले ही वह भगी हो या ब्राह्मण, गुजराती हो या मद्रासी। राष्ट्रने उनकी इस विशेपताको पहचाना और पहचानकर राष्ट्रपति वनाया। (हिं० न, १८.५ ३१)

•

वल्लभभाईके लिफाफोकी और सस्कृतकी पढाईकी तारीफ हर पत्रमें करते है। कल काकाके खतमें लिखा था कि .

उच्चै श्रवाकी गतिसे वल्लभभाईकी पढाई चल रही है।

आज प्यारेलालको लिखा

वल्लभभाई अरवी घोडेकी तेजीसे दौड रहे है। सस्कृतकी किताव हायसे छूटती ही नही। इसकी मुझे आशा नही थी। लिफाफोमे तो कोई उनकी वरावरी नही कर सकता। लिफाफे वे नापे विना वनाते है और अदाजसे काटते है, मगर वरावरके निकलते है और फिर भी ऐसा नही लगता कि इसमें वहुत समय लगता है। उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है। जो कुछ करना हो उसे याद रखनेके लिए छोडते ही नही। जैसे आया वैसे ही कर डाला। कातना जवसे शुरु किया है, तवसे वरावर समयपर कातते है। इस तरह सूतमें और गतिमें रोज सुधार होता जा रहा है। हायमें लिया हुआ भूल जानेकी वात तो शायद ही होती है। और जहा इतनी व्यवस्था हो, वहा धावली तो हो ही कैसे ? (म० डा०, २८ ८ ३२)

•

सरदार वल्लभभाई पटेलके साथ रहना मेरा वडा सौभाग्य था। उनकी अनुपम वीरतासे मैं अच्छी तरह परिचित था, परतु पिछले १६

महीनेमे जिस प्रकार रहा वैसा सौभाग्य मुझे कभी नही मिला था। जिस प्रकार उन्होने मुझे स्नेहमे ढक लिया वह मुझे मेरी माकी याद दिलाता है। मै यह कभी नही जानता था कि उनमे माके गुण भी है। .बार-डोली और खेडाके किसानोके लिए उनकी चिता मै कभी नही भूल सकता। (म० डा०)

•

दूसरी बात तो यह है कि हर जगहसे शिकायते आ रही है। यह ठीक था कि अग्रेजी जमानेमे तो जो देशी रियासते थी वे अपने दिलमे आए वैसा करती थी। थोडा-सा अकुश तो अग्रेजी सल्तनत रखती थी। उसको तो रखना ही था, क्योकि उसको सल्तनत चलानी थी। आज तो वह चली गई है। हा, यह तो है कि आज सरदार पटेल है—उनके हाथमे उनका महकमा है, इसलिए वह तो कुछ करे ? लेकिन वे बेचारे क्या कर सकते है ? उनकी तो अपनी जबान पडी है—हिंदुस्तानकी सेवा कर ली है, इसलिए सरदार बने है। लेकिन उनके पास तलवार नही, बदूक नही, लश्कर नही। वे खुद थोडे लश्करी है, वे कमाडर भी नही है कि उनका हुक्म चले। (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

•

पीछे सरदारका नाम आ जाता है। वे कहते है कि सरदारको हटा दो, तुम अच्छे हो। पीछे सुनाते है कि जवाहर भी अच्छा है। तुम हकूमतमे आ जाओ तो हकूमत अच्छी चले। सब अच्छे है, सरदार अच्छे नही है। तो मै मुसलमानोसे कहूगा कि मुसलमान ऐसा कहेगे तो कोई बात चलनी नही है। क्यो नही ? क्योकि आपका हाकिम वह मत्रिमडल है। हकू-मतमे न अकेला सरदार है और न जवाहर है। वे आपके नौकर है। उनको आप हटा सकते है। हा, ऐसा है कि सिर्फ मुसलमान तो हटा नही सकते है, लेकिन इतना तो करे कि सरदार जितनी गलती करते है—लोगोमे आपस-आपसमे बात करनेसे निपटता नही है—उनको बताओ।

ऐसा नही कि उन्होने यह बात कही, वह बात कही, लेकिन उन्होने किया क्या, यह बताओ। मुझको बता दो । उनसे मै मिलता रहता हू और सुनता भी हू तो मै कह दूगा। वही जवाहर, वही सरदार दोनो हकूमत चलाते है। जवाहर तो उनको निकाल सकते है, लेकिन ऐसा नही करते है तो कुछ है। वे उनकी तारीफ करते है। फिर मन्त्रि-मडल है, वह हकूमत है। सरदार जो कुछ करता है उसके लिए सारी हकूमत जवाबदार है। आप भी जवाबदार है, क्योकि वे आपके नुमायदे है।

सरदार सीधी बात बोलनेवाले है। वे बोलते है तो कड़वी लगती है। वह सरदारकी जीभमें है। मैने उनसे कहा कि आपकी जीभसे कोई बात निकली कि काटा हो गई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है कि काटा है, दिल वैसा नही है। उसका मै गवाह हू। उन्होने कलकत्तेमे कह दिया, लखनऊमे कह दिया कि सब मुसलमानोको यहा रहना है, रह सकते है। साथ ही मुझको यह भी कहा कि उन मुसलमानोका एतबार नही करता हू, जो कल तक लीगवाले थे और अपनेको हिंदू-सिखका दुश्मन मानते थे, वे जब कलतक ऐसे थे तब आज एक रातमे दोस्त कैसे बन सकते है? पीछे ऐसा है कि लीग रहेगी तो वे लोग किसकी मानेगे—हमारी हकूमतकी या पाकिस्तानकी? लीग अभी भी वैसा ही कहती है तो उनको शक होता है। उनको शक करनेका अधिकार है। सबको शक करनेका अधिकार है। सरदारने जो कहा है उसका सीधा अर्थ निकाल ले तो काम बन जाता है। जैसे कोई मेरा भाई है, लेकिन उसपर शक है तो क्या करू? शक साबित हो तब काटू, यही मै कर सकता हू। लेकिन मै पहलेसे ही भाईकी बुराई करू, ऐसा कैसे हो सकता है? वे कहते है कि हमारे दिलमे आज मुस्लिम लीगके मुसलमानोके बारेमे ऐतबार नही है, उनपर कैसे भरोसा रखे? मुसलमान सबूत दे कि वे ऐसे नही है। ऐसा करे तो सब अजाम पहुच जाता है। पीछे मुझे यह कहनेका हक मिल जाता है

कि हिंदू, सिख क्या करे। इस यूनियनमे सरदार क्या करे, जवाहर क्या करे, उसमे कोई भी क्या करे, मै क्या करू ? (प्रा० प्र०, १३ १ ४८)

"आपने कहा है कि मुसलमान भाई अपने डरकी और अपनी असुरक्षितताकी कहानी लेकर आपके पास आते है, तो आप उन्हें कोई जवाब नही दे सकते। उनकी शिकायत है कि सरदार--जिनके हाथोमें गृह-विभाग है--मुसलमानोके खिलाफ है। आपने यह भी कहा है कि सरदार पटेल पहले आपकी हा-मे-हा मिलाया करते थे, 'जीहुजूर' कहलाते थे, मगर अब ऐसी हालत नही रही। इससे लोगोके मनपर यह असर होता है कि आप सरदारका हृदय पलटनेके लिए उपवास कर रहे है। आपका उपवास गृह-विभागकी नीतिकी निंदा करता है। अगर आप इस चीजको साफ करेंगे तो अच्छा होगा।"

मै समझता हू कि मै इस बातका साफ-साफ जवाब दे चुका हू। मैने जो कहा है, उसका एक ही अर्थ हो सकता है। जो अर्थ लगाया गया है, वह मेरी कल्पनामें भी नही आया। अगर मुझे पता होता कि ऐसा अर्थ किया जा सकता है तो मै पहलेसे इस चीजको साफ कर देता।

कई मुसलमान दोस्तोने शिकायत की थी कि सरदारका रुख मुसलमानोके खिलाफ है। मैने कुछ दु खसे उनकी बात सुनी, मगर कोई सफाई पेश न की। उपवास शुरू होनेके बाद मैने अपने ऊपर जो रोक-थाम लगाई हुई थी वह चली गई। इसलिए मैने टीकाकारोंको कहा कि सरदारको मुझसे और पडित नेहरूसे अलग करके और मुझे और पडित नेहरूको खामख्वाह आसमानपर चढाकर वे गलती करते हे।

इससे उनको फायदा नही पहुच सकता। सरदारके बात करनेके ढगमे एक तरहका अक्खडपन है, जिससे कभी-कभी लोगोका दिल दुख जाता है, अगरचे सरदारका इरादा किसीको दु खी बनानेका नही होता।

उनका दिल बहुत बडा है। उसमे सबके लिए जगह है। सो मैंने जो कहा, उसका मतलब यह था कि अपने जीवनभरके वफादार साथीको एक बेजा इलजामसे बरी कर दू। मुझे यह भी डर था कि सुननेवाले कही यह न समझ बैठे कि मै सरदारको अपना 'जीहुजूर' मानता हू। सरदारको प्रेमसे मेरा 'जीहुजूर' कहा जाता था। इसलिए मैने सरदारकी तारीफ करते समय कह दिया कि वे इतने शक्तिशाली और मनके मजबूत है कि वे किसीके 'जीहुजूर' हो ही नही सकते। जब वे मेरे 'जीहुजूर' कहलाते थे तब वे ऐसा कहने देते थे, क्योंकि जो कुछ मै कहता था वह अपने आप उनके गले उतर जाता था। वे अपने क्षेत्रमे बहुत बडे थे। अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीमे उन्होने शासन चलानेमे बहुत काबलियत बताई थी। मगर वह इतने नम्र थे कि उन्होने अपनी राजनैतिक तालीम मेरे नीचे शुरू की। उन्होने उसका कारण मुझे बताया था कि जब मै हिंदुस्तानमें आया था उन दिनो जिस तरहका राज-काज हिंदुस्तानमे चलता था, उसमे हिस्सा लेनेका उन्हे मन नही होता था। मगर अब जब सत्ता उनके गले आ पडी तब उन्होने देखा कि जिस अहिंसाको वे आजतक सफलतापूर्वक चला सके अब वह नही चला सकते। मैने कहा है कि मै समझ गया हू कि जिस चीजको मै और मेरे साथी अहिंसा कहा करते थे वह सच्ची अहिंसा न थी। वह तो नकली चीज थी और उसका नाम है निष्क्रिय प्रतिरोध। हा, किनके हाथोमे निष्क्रिय प्रतिरोध किसी कामकी चीज है? जरा सोचिए तो सही कि एक कमजोर आदमी जनताका प्रतिनिधि बने तो वह अपने मालिकोकी हँसी और बेइज्जती ही करवा सकता है। मै जानता हू कि सरदार कभी उन्हे सौपी हुई जिम्मेदारीको दगा नही दे सकते। वे उसका पतन बर्दाश्त नही कर सकते। मै उम्मीद करता हू कि यह सब सुननेके बाद कोई ऐसा खयाल नही करेगे कि मेरा उपवास गृह-विभागकी निंदा करनेवाला है। अगर कोई ऐसा खयाल करनेवाला है तो मै उसको कहना चाहता हू कि वह अपने-आपको नीचे गिराता है और अपने-आपको

नुकसान पहुचाता है, मुझे या सरदारको नही। (प्रा० प्र०, १५ १ ४८)

. . . .

सरदारने बबईमे क्या कहा, उसे गौरसे पढे तो पता चल जायगा कि सरदार और पडित नेहरू दूर नही है, अलग-अलग नही है। कहनेका तरीका अलग हो सकता है, लेकिन करते एक ही चीज है। वे हिदुस्तान या मुसलमानके दुश्मन नही हो सकते। जो मुसलमानका दुश्मन है वह हिदुस्तानका भी दुश्मन है, इसमे मुझे कोई शक नही। (प्रा० प्र०, २० १ ४८)

: १०६ :

विट्ठलभाई जे० पटेल

पाठकोको एक खुशखबरी न सुनानेका मुझे खेद है। अब वह नीचे दिये गए श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल और मेरे बीचके पत्र-व्यवहारसे प्रकट होगा

(१)

आर्य-भवन
सैडहर्स्ट रोड, बबई,
१० मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

जब मैने लेजिस्लेटिव असेम्बलीका सभापतित्व स्वीकार किया था तो उस समय अपने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि मेरे वेतनसे जो कुछ बचत होगी, उसका किसी राष्ट्रोपकारी काममें उपयोग करूगा। कई कारणोसे, पहले ६ महीनोमे मै कुछ कहने-सुनने लायक रकम नही बचा सका। पिछले महीनेसे, मुझे कहते हुए खुशी होती है कि, मै कठि-

नाइयोसे पार हो गया हू और एक भारी रकम बचा सकता हू । मै देखता हू कि मुझे औसतन दो हजार रुपये महीनेकी जरूरत पडती है । इन्कम टैक्स देकर, मेरा माहवारी वेतन ३,६२५) रुपये है । इसलिए मै चाहता हू कि पिछले महीनेसे शुरू करके मै हर महीने १,६२५) रु० अलग निकाल दू और इसका आप जिस काममें, जैसे चाहें, उपयोग करें । खैर, मेरे मनमें इस विषयमें कुछ विचार तो है, और समयानुसार मै उनपर आपसे चर्चा करूगा, मगर आप मुझसे उन विचारोमें सहमत हो या नहीं, वह रकम आपके अधिकारमें रहेगी । साथमें अप्रेल मासके वेतनमेंसे मै १६२५) रु० का एक चेक भेजता हू ।

मुझे विश्वास है कि इस जिम्मेदारीको आप अस्वीकार नहीं करेंगे ।

आपका

(ह०) वी० जे० पटेल

(२)

'सुखडेल'

शिमला, ३१ मई, १६२६

प्रिय महात्माजी,

साथमें मै ४३२५) रु० का चेक भेजता हू । इसमें १,६२५) रु० तो मईके मेरे वेतनमेंसे मेरा हिस्सा है और २७००) रु० उस ३२००) रु० के बाकी है जो बबई कार्पोरेशनके मेरे सहकारियोने मेरे कार्पोरेशनके सभापतित्वका कार्यकाल समाप्त होनेपर, ५,०००) रु० की थैली मुझे भेंट करनेके लिए, इकट्ठे किये थे । आखिरी बार जब मै आपसे साबरमतीमें मिला था तो मैने आपको समझा दिया था कि इस रकमको जो मैने यो साधारणत स्वराजदलके या बबई-राष्ट्रीय-म्युनिसिपल-दलके, ऐसे कामोके लिए खर्च करनेका निश्चय किया था, जिन्हें मै उचित समझता,

अब उसे क्यो आपको देना चाहता हू ताकि मेरे वेतनमें से मेरी मासिक सहायताके कोषमें वह मिला दिया जाय ।

आपका

(ह०) वी० जे० पटेल

(३)

आश्रम

साबरमती, २५-७-२६

प्रिय विट्ठलभाई,

मेरे पास आपके पत्र और सब मिलाकर ७,५७५) रु० के चेक मिले जिसमे असेम्बलीके प्रमुखके रूपमे आपके तीन महीनोके वेतनके हिस्से है और ५०००) की थैलीकी बचत है। आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काममे खर्च करनेको कहते है, जिसे मै पसद करू। वह पत्र लिखनेके बाद आपने मेरे साथ अपने सुदर दानके उपयोगके विषयमे अपने विचारोकी चर्चा करली है। मैने इसपर खूब विचार किया है कि उस रकमका मै सचमुचमे क्या उपयोग करू और अतमे इस निश्चयपर आया हू कि अभी हालमे तो उसे जमा होते जाने दू। इसलिए आश्रमके एजेन्सी खातेमे उसे ६ महीनेकी बधी मुद्दतके लिए जमा करता जा रहा हू जिसमे सूदकी अच्छी रकम इकट्ठी हो सके और दलादलीका झगडा खत्म होते ही कुछ पारस्परिक मित्रोकी सहायता लेकर, आपकी और उनकी सलाहसे किसी प्रशसनीय राष्ट्रीय काममे लगाऊ ।

इस बीचमे मै आपको इस उदार भावके लिए, जिससे आप अपने वेतनका एक बडा भाग सार्वजनिक कामके लिए दे देते है आपको साधुवाद देता हू । मै आशा करता हू कि आपका उदाहरण और लोगो-पर असर करेगा ।

आपका

(ह०) मो० क० गाधी

(४)

२०, अकबर रोड
नई दिल्ली, ६ मार्च, १६२७

प्रिय महात्माजी,

जैसा कि आप जानते है, मैंने आपको पहले ही जैसा, पिछले अप्रेल मासके मेरे पत्रमें बतलाये हुए कामके लिए, हर महीने कोई ऐसी रकम देनेका निश्चय किया है, जो मै अपने वेतनमें से बचा सकूगा। असेम्बलीके सभापतित्वके सारे कार्य-काल भर, जहा तक सभव हो, मैं यही प्रबध जारी रखना चाहता हू।

फरवरीके अत तक जो कुछ बचत हो सकी है, उसके लिए २०००) रु० का चेक साथमें भेजता हू।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

यह पत्र-व्यवहार, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेलकी इच्छासे ही रुका रहा। चुनावके दिनोमे इसे प्रकाशित करनेमे उन्हे कुछ सकोच-सा मालूम हुआ। चुनावोके बाद भी मै पिछले ही हफ्ते, उनकी स्वीकृति पा सका। अगर इसके प्रकाशनमे सार्वजनिक लाभ न होता तो मै स्वय इस झिझक-को बढावा ही देता। मै जानता हू कि विट्ठलभाई चाहते है कि लोग उनके उदाहरणकी नकल करे। अगर किसी-न-किसी कारणसे, हिंदुस्तानकी स्थितिके हिसाबसे, बेहिसाब बडे वेतन जरूर लेने ही पडे तो उनका एक अच्छा हिस्सा, सार्वजनिक लाभके किसी कामके लिए, अलग निकालकर रक्खा जा सकता है। मै जानता हू कि ऐसे कितने ही बडे वेतनोवाले आदमी है जो अपनी आमदनी, अपनी व्यक्तिगत मौजमे नही उडाते, मगर सार्वजनिक सेवामे लगाते है। मगर उसका खर्च अपनी ही इच्छाके अनुसार करते है। विट्ठलभाई ऐसे चदोका एक विशेष कोष खोलना चाहते है जिसका प्रबध जाने-सुने प्रतिष्ठित पुरुष करे। अगर इस उद्देश्यको

सफल होना है तो ट्रस्टियोका मडल राष्ट्रीय हो और उसमे उन सभी दलोके प्रतिनिधि हो जो एक कार्यक्रमपर सहमत हो सके। इसलिए जिन लोगोको यह प्रस्ताव पसद हो, उनसे मै आलोचनाए और सूचनाए मागता हू। कोषकी सारी जिम्मेदारी लेने या केवल उन्ही कामोमे उसका उपयोग करनेकी मेरी इच्छा नही है, जिनके लिए मैने अपना जीवन उत्सर्ग किया हुआ है। मै जानता हू कि मै विट्ठलभाईके महान उपहारका मतलब सबसे अच्छी तरह पूरा कर सकूगा अगर मै उन सबका सहयोग मागू जो सहायता करनेको तैयार हो। (हि० न०, १७ ३ २७)

धारासभाके सभापति और सरकारके बीचके मतभेदका परिणाम चाहे जो हो, इतना तो सच है कि धारासभाने श्री विट्ठलभाई पटेलको अपना सभापति चुनकर जो काम किया था उसके औचित्यका श्री पटेलने अपने कार्य द्वारा जरूरतसे ज्यादा प्रमाण दे दिया है। अपनी कठोर निष्पक्षता द्वारा उन्होने अपने पदके सम्मानकी रक्षा की है। साथ ही परपरा द्वारा और कानून द्वारा जो मर्यादा उनके लिए बन चुकी है, उसके भीतर रहकर भी, राष्ट्रीय हितका एक भी अवसर उन्होने हाथसे नही जाने दिया है। इस कारण सहज ही उनमे और सरकारमे हर बार मतभेद पैदा होता गया है। फिर भी हरएक वक्त जीत उनकी ही हुई है। वह ऐसे अवसरोपर भी विजयी हुए है जब कि उपस्थित समस्याकी विकटताके कारण ऐसा भ्रम होता था-कि वह अपना सहज उदात्त स्वभाव कायम न रख सकेगे। ऐसा होनेपर भी दूसरे ही दिन उन्होने स्वेच्छासे, उपयुक्त, सम्मानपूर्ण, शब्दोमे प्रार्थना करते हुए अपनी गलती सुधार ली है। उन्होने कभी अपने हृदयके भाव छिपाये नही है। सभापति की हैसियतसे निर्भीकता-पूर्वक कार्य-सचालन करके उन्होने राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको बढाया है।

अतएव यहा उनकी महान् सफलताके कारणकी जाच करना अनुचित न होगा। उनका अपना कोई स्वार्थ नही है। सादा जीवन

वितानेके कारण उनकी आर्थिक जरूरतें बहुत थोडी है। यही कारण है कि न तो ऊचा पद और न बडा वेतन ही उन्हें ललचा पाते है। अपनी इस विरक्तिके कारण उनका उद्यम घटा नहीं, बल्कि आश्चर्यकारक ढगसे वढ गया है, जिसके कारण इतने उच्च पदका कार्य-सचालन करनेके लिए जिन नियमो और कार्य-प्रणालीका ज्ञान आवश्यक है, उस पर उनका अनन्य प्रभुत्व हो गया है। विट्ठलभाई पटेलके लिए राजनीति फुर्सतके वक्तका मनोरजन नहीं है, वह तो उनके जीवनका प्रधान अग बन गई है। अतएव उन्होंने राजनीतिके अध्ययनमे अपनी सारी बुद्धि और सारा समय खर्च कर दिया है। फलस्वरूप अपने क्षेत्रमे उन्होने अपने आपको अजेय बना लिया है। (हिं० न०, १८ ४ २९)

विट्ठलभाई पटेलने अपनी आखिरी कारगुजारी द्वारा अपूर्व साहस और जागरूकताका परिचय दिया है। धारासभाके प्रति मुझे कभी मोह पैदा हुआ ही न था। अब तो वह पहलेसे भी ज्यादा बुरी मालूम होती है। इस धारासभाकी वजहसे हिंदू-मुसलमानोमें दुश्मनी बढी है। नेताओके स्वार्थमें वृद्धि हुई है। फिर भी अगर किसीका धारासभामे जाना सार्थक और सफल हुआ है तो वह विट्ठलभाईका ही। बडी धारासभाके अध्यक्षके नाते उन्होने अपना सारा जौहर जताया है और भारतवर्षका गौरव बढाया है। (हिं० न०, २५ ४ २९)

सन् १९१७ की गोधराकी राजनैतिक परिषद्के अवसरपर विट्ठल-भाई को मैंने हरिजन-बस्तीमे जो देखा था, वह दृश्य कभी भूलनेका नही। राजनैतिक परिषद्के साथ-साथ गोधरामे दूसरे सम्मेलन भी किये जाते थे। उनमे एक सुधार-सम्मेलन भी वहा था। उसमे एक प्रस्ताव हरिजनोके सबधका था। मैने परिषद्मे कहा कि जहा उगलियोपर गिनने लायक भी हरिजन मौजूद न हो वहा उस प्रस्तावका रखना व्यर्थ है। इससे

यह अच्छा होगा कि रातको हरिजन-बस्तीमे जाकर वह प्रस्ताव पास किया जाय। सभाको यह बात पसद आ गई। हरिजन-बस्ती सवर्ण हिदुओसे खूब भर गई। गोधराके इतिहासमे यह बात अपूर्व थी। तिल रखनेको जगह न थी। अब्बास साहब, उनकी बेगम साहिबा वगैरा तो थे ही। पर वहा मैने एक दाढीवाले भाईको कफनी, धोती और साधुओ-का-सा कनटोप लगाए देखा। इस अजीब भेषमे विट्ठलभाईको इससे पहले कभी नही देखा था। इसलिए मै उन्हे झटसे पहचान न सका। पर जब पहचाना तब तो हम एक-दूसरेसे लिपट गये और खूब ही हसे। इस भेषमे विट्ठलभाईका एक नाटकीय स्वाग तो था ही, किन्तु इसके अदर उनकी सादगी और जनसाधारणमे घुल-मिल जानेकी एक कला भी थी। विट्ठलभाईकी वहाकी उपस्थितिसे मैने उनके हरिजन-प्रेमका परिचय पाया। और फिर ज्यो-ज्यो उनका अधिक अनुभव मुझे होता गया, यह सिद्ध हुआ कि उनका उस दिन हरिजन-बस्तीमे जाना शुद्ध हार्दिक था।

उनके अदर छुआछूतके लिए जरा भी जगह न थी। ऊच-नीच-भाव उनमे नही था। उनका दृढ विश्वास था कि जो अधिकार या पद सवर्ण हिदुओको प्राप्त हो सके, वही सब हरिजनोको भी मिलने चाहिए। उनका यह विश्वास ही नही, बर्ताव भी इसी प्रकारका था। इसीसे मै आशा करता हू कि आगामी ९ नवबरको जब उनके शवका अग्नि-सस्कार भारतमे होगा, उस दिन समस्त जनताके आसुओमे हरिजन भी अपने श्रद्धापूर्ण आसू मिलाएगे। (ह० से०, १० ११ ३३)

सिर्फ विट्ठलभाईका चित्र कालेज हालमे लटका देनेसे ही तुम लोग उत्तीर्ण नही हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे जब उनकी नि स्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगीको तुम लोग ग्रहण करोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा-सा धधा

करके लाखो रुपया कमाकर मालामाल हो जाते। पर वह तो सारी जिंदगी सादगीसे ही रहे और अंतमे गरीबीकी हालतमे ही मरे। क्या ही अच्छा हो कि तुम लोग भी स्व० विट्ठलभाई पटेलका इसी तरह पदानुसरण करो। ('विद्यार्थियोमे' पृष्ठ १७२)

: ११० :

विजयालक्ष्मी पण्डित

आप सब श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडितको जानते है। वह हिंदुस्तानी नुमाइंदा-मंडलकी मुखिया इसलिए नही है कि पंडित जवाहरलालकी बहन है, बल्कि इसलिए है कि वह इसके लायक है और अपना काम होशियारीसे करती है। (प्रा० प्र०, १६ ११ ४७)

: १११ :

नागेश्वरराव पन्तलु

नागेश्वररावमे विनय है और सचाई कूट-कूटकर भरी है। मुझे उनकी मित्रता और साथी होनेका गर्व है। मेरा जबसे उनके साथ परिचय हुआ है, मैंने उनमे यह विशेषता देखी है कि जिन्हे उनकी या उनकी सहायताकी आवश्यकता होती है उनके हाथमे वे अपनी गर्दन दे देते है। उनके दाहिने हाथका दिया हुआ उनके बाये हाथको मालूम नही होता। (ह० से०, १२ १ ३४)

: ११२ :

पेस्तनजी पादशाह

यहा मुझे पेस्तनजी पादशाह याद आते है। विलायतसे ही उनका मेरा मधुर सबध हो गया था। पेस्तनजीसे मेरा परिचय लदनके अन्नाहारी भोजनालयमे हुआ था। उनके भाई बरजोरजी एक 'सनकी' आदमी थे। मैने उनकी ख्याति सुनी थी, पर मिला न था। मित्र लोग कहते, वह 'चक्रम' (सनकी) है। घोडेपर दया खाकर ट्राममे नही बैठते, शतावधानकी तरह स्मरण-शक्ति होते हुए भी डिग्रीके फेरमे नही पडते। इतने आजाद मिजाज कि किसीके दम-झासेमे नही आते और पारसी होते हुए भी अन्नाहारी! पेस्तनजीकी डिग्री इतनी बढी हुई नही समझी जाती थी, पर फिर भी उनका बुद्धि-वैभव प्रसिद्ध था। विलायतमे भी उनकी ऐसी ही ख्याति थी, परतु उनके मेरे सबधका मूल तो था उनका अन्नाहार। उनके बुद्धि-वैभवका मुकाबला करना मेरे सामर्थ्यके बाहर था।

बबईमे मैने पेस्तनजीको खोज निकाला। वह प्रोथोनोटरी थे। जब मै मिला तब वह बृहद् गुजराती शब्द-कोषके काममे लगे हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाके काममे मदद लेनेके सबधमे मैने एक भी मित्रको टटोले बिना नही छोडा था। पेस्तनजी पादशाहने तो मुझे ही उलटे दक्षिण अफ्रीका न जानेकी सलाह दी—'मै तो भला आपको क्या मदद दे सकता हू, पर मुझे तो आपका ही वापस लौटना पसद नही। यही अपने देशमे ही, क्या कम काम है? देखिए, अभी अपनी मातृ-भाषाकी सेवाका ही कितना क्षेत्र सामने पडा हुआ है? मुझे विज्ञान-सबधी शब्दोके पर्याय खोजने है। यह हुआ एक काम। देशकी गरीबीका विचार कीजिए। हा, दक्षिण अफ्रीकामे हमारे लोगोको कष्ट है, पर उसमे आप जैसे लोग खप जाय, यह मुझे बरदाश्त नही हो सकता। यदि हम यही राज-सत्ता

अपने हाथमे ले सके तो वहा उनकी मदद अपने-आप हो जायगी। आपको शायद मै न समझा सकूगा, परतु दूसरे सेवकोको आपके साथ ले जानेमे मै आपको हरगिज सहायता न दूगा।' ये बाते मुझे अच्छी तो नही लगी, परतु पेस्तनजी पादशाहके प्रति मेरा आदर बढ गया। उनका देश-प्रेम व भाषा-प्रेम देखकर मै मुग्ध हो गया। उस प्रसगकी बदौलत मेरी उनकी प्रेम-गाठ मजबूत हो गई। उनके दृष्टि-बिदुको मै ठीक-ठीक समझ गया, परतु दक्षिण अफ्रीकाके कामको छोडनेके बदले, उनकी दृष्टिमे भी, मुझे तो उसी पर दृढ होना चाहिए—यह मेरा विचार हुआ। देश-प्रेमी एक भी अगको, जहातक हो, न छोडेगा, और मेरे सामने तो गीताका श्लोक तैयार ही था—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधन श्रेय' परधर्मो भयावह' ॥

(गीता ३।३५)

बढे-चढे पर-धर्मसे घटिया स्वधर्म अच्छा है। स्वधर्ममे मौत भी उत्तम है, किंतु पर-धर्म तो भयकर्त्ता है। (आ० क०)

: ११३ :

जी० परमेश्वरन् पिल्ले

यहा मुझे बडी-से-बडी सहायता स्वर्गीय जी० परमेश्वरन् पिल्लेसे मिली। वह 'मद्रास स्टैंडर्ड' के सपादक थे। उन्होने इस प्रश्नका अच्छा अध्ययन कर लिया था। वह बार-बार अपने दफ्तरमे बुलाते और सलाह देते। 'हिंदू'के जी० सुब्रह्मण्यम्से भी मिला था। उन्होने तथा डा० सुब्रह्मण्यम्ने भी पूरी-पूरी हमदर्दी दिखाई, परतु जी० परमेश्वरन् पिल्लेने

तो अपना अखबार इस कामके लिए मानो मेरे हवाले ही कर दिया और मैंने भी दिल खोलकर उसका उपयोग किया। (आ० क०)

: ११४ :

पुरुषोत्तम (बापू गायधनी)

श्रीयुत जी० वी० केतकरने महान् वीरताकी एक घटनाका हाल भेजा है, जो यहा उल्लेखनीय है

"श्रीयुत पुरुषोत्तम, जो बापू गायधनीके नामसे अधिक पहचाने जाते है, नासिकके एक नौजवान कार्यकर्ता थे। पिछले कुछ वर्षोंमे वह नासिककी गुलालवाडी सार्वजनिक व्यायामशालाके सहायक मत्रीका काम कर रहे थे। वह समय-समयपर महासभा और स्वदेशी प्रचारके कामोमे भी हाथ बटाया करते थे। ४ अप्रेलके दिन नासिकमे एक मकानमे आग लगी। बापू गायधनीने आग बुझानेके काममे बहुत अधिक मेहनत की। यह मालूम होने-पर कि मकानमे बालक रह गये है, परिणामकी तनिक भी चिता न करके, वह मकानमे घुस पडे और बच्चोको निकाल लाये। ढोरोको बचानेके लिए वह फिरसे घरमे घुसे। बदकिस्मतीसे इस वक्त तक आग चारों ओर फैल चुकी थी। एक जलता हुआ पाट अरराकर उनके सरपर फट पडा। वह बुरी तरह जल गये और शरीर कई जगह घायल हो गया। घायल दशामे वह सिविल अस्पताल पहुचाए गये, जहा ११ वी अप्रेलको उनका स्वर्गवास हो गया।"

उनके माता-पिताको, अगर वे जीवित है, अपने बहादुर पुत्रके लिए गर्व होना चाहिए। बापू गायधनी ऐसी भव्य मृत्यु पाकर अमर हो गये है। (हि० न०, ३० ४ ३१)

: ११५ :

सरदार पृथ्वीसिंह

'हरिजन' के पाठक जानते है कि सरदार पृथ्वीसिह पच्चीस सालके बाद आजाद हुए है। इन पच्चीस सालोका एक भाग तो उन्होने जेलमे बिताया और सोलह साल फरारीकी हालतमे इधर-उधर छिपते हुए। उन सोलह सालकी जिदगीको वह आजादीकी जिदगी नही कह सकते, जबकि खुफिया पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी और जब जैसा अवसर हो उसके अनुसार वह नए-नए नाम रखते और नए-नए भेस धारण करते रहते थे। पाठकोको याद होगा कि पिछले साल जब मै स्वास्थ्य-सुधारके लिए जुहूमे था तब पृथ्वीसिहने मुझसे मिलकर अपने पिछले पापोको स्वीकार करने और भविष्यमे मेरे आदेशानुसार अपना जीवन बनानेका निश्चय किया। मैने उन्हे सलाह दी कि पुलिसको आत्म-समर्पण कर दो और अपने पिछले पापोसे मुक्त होनेके लिए स्वेच्छा-पूर्वक जेलके नियमोका पालन करनेवाले कैदी बन जाओ। मैने उनसे कहा था कि मै तुम्हे रिहा करानेकी कोशिश तो करूगा, लेकिन तुम्हे यह न समझना चाहिए कि मै उसमे सफल हो ही जाऊगा, बल्कि जरूरत हो तो अपना शेष जीवन जेलमे काटनेमे ही सतोष करना चाहिए। बडी प्रसन्नता और सच्चे जीके साथ वह आजन्म कारावास भुगतनेके लिए तैयार हो गये। सच्चे जीसे उन्होने यह सचाई कबूल कर ली कि स्वेच्छापूर्ण कैदमे भी देशकी शायद उतनी ही सेवा होगी, जितनी कि जेलसे बाहर रहकर की जा सकती है। मै बडी खुशीके साथ यह कह सकता हू कि वह अपनी बातके पक्के रहे है। पाठक जानते है कि महादेव देसाईने रावलपिडी-जेलमे उनसे मिलनेके बाद उस मुलाकातका वर्णन करते हुए उन्हे सौ फीसदी आदर्श कैदी बतलाया था। वह अपने जेलरोके प्रिय बन गये है और जेलरोने उनमें

जो विश्वास किया उसके लिए उन्हे कभी पछताना नही पडा। वहा उन्होने ऊन और सूतकी कताई सीखी और ऊन-कताईका काम ऐसी मेहनतसे किया कि उनका हट्टा-कट्टा शरीर भी लगातार परिश्रमसे थक जाता था। सरदार पृथ्वीसिहके आदर्श जेल-जीवनके बारेमे पहले प्यारेलालने और फिर महादेव देसाईने जो कुछ कहा उसपरसे मैंने अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। महादेव देसाईको इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि उनके मामलेमे वह सफलताके साथ सर सिकदर हयातखासे बातचीत कर सकते है। मैंने उन्हे इसकी आज्ञा देदी। सर सिकदर भी बडी उदारतासे पेश आये। महादेवने जो कुछ कहा उसकी सचाईसे, जिसकी पुष्टि पृथ्वीसिह जिन जेलोमे रहे उनके अफसरो द्वारा प्राप्त रिपोर्टोसे भी होती थी, वह प्रभावित हुए। महादेवने इसके लिए वाइसराय-भवनके भी द्वार खटखटाए। इस सबका फल यह हुआ कि २२ सितबरको अधिकारियोने सरदार पृथ्वीसिहको लाकर मेरे पास छोड दिया। मैंने उनका स्वागत करते हुए कहा—"तुमने अपनेको एक जेलमे दूसरी जेलमे बदल दिया है, जो किसी कदर ज्यादा ही सख्त है।" उन्होने हँसकर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की। वह जानते है कि वह कसौटीपर कसे जा रहे है। अपने देशकी आजादीके लिए एकमात्र हिसामे उनका पक्का विश्वास रहा। उन्होने ऐसे-ऐसे साहसपूर्ण काम किये है, जिनकी बराबरी चाहे कोई कर सके, लेकिन उनसे बढकर किसी भी क्रातिकारीने नही किया है। उनका जीवन अद्‌भुत घटनाओमे भरा हुआ है। लेकिन धीरजके साथ आत्म-निरीक्षण करनेसे उन्हे मालूम पडा कि मूलभूत रूपमे उनका जीवन असत्यपूर्ण है और असत्यसे सच्ची मुक्ति कभी नही हो सकती। लुका-छिपीके उनके जीवनमे जो मोहकता थी और उनके साहसपूर्ण कार्योसे चकाचौध होकर उनके मित्र उनकी जो सहायता करते थे, उसके बावजूद वह लुका-छिपीके ऐसे असत्यपूर्ण जीवनसे ऊब गये। सैकडो नौजवानोको उन्होने जो व्यायाम सिखलाया, उससे उन्हे कोई सतोष नही हुआ। सौभा-

न्यवश, उन्हे दक्षिणामूर्तिके नानाभाई जैसे साथी मिल गये। उन्होंने उनके कदम मेरी तरफ मोड़े। मैंने उनसे कह दिया कि मुझे तबतक सतोष न होगा, जबतक कि वह सक्रिय रूपमे अहिंसाके ऐसे उदाहरण न बन जाय जैसा कि मैं कभी भी हो सकता हू। मैं तो सक्रिय रूपमे कभी पूरा हिंसक नही रहा, बल्कि हिंसाकी जो भावना मुझमे रही वह कायरोंकी-सी ही थी। लेकिन वह तो हिंसाके मूर्तरूप ही रहे है। अब अगर उन्होने अहिंसा-को हृदयगम कर लिया है। तो उनकी अहिंसा पहलेकी उनकी हिंसासे अधिक अद्भुत और शाश्वत रूपमे समृद्ध होनी चाहिए। ईश्वरकी कृपासे उन्हे इस लोकोक्तिको पूरा करके बतलाना चाहिए कि "जो जितना अधिक पापी होता है वह उतना ही बडा सत बनता है।" उन्होने मुझे अपनी डायरीके वे प्रामाणिक पृष्ठ दिखलाये है, जिनमे उन्होने स्वेच्छापूर्ण कैदी-के रूपमे बिताई अपनी पहली रातका मृत्युके रूपमे वर्णन किया है। उनमेंसे नीचे लिखे महत्वपूर्ण वाक्य मैं यहा देता हू

"आज मेरे आत्म-समर्पणका दिन है, जबकि दैवी आदेशसे प्रेरित होकर मैं ऐसी हरएक वस्तुका समर्पण करता हू जिसे कि मैं अपनी कह सकू। २५ साल तक मैंने सब खतरोका सामना करते हुए ऐसा प्रकाश पानेके लिए सख्त मेहनत की है जो मुझे सेवाका मार्ग बतला सके। काफी अनुभववाला क्रातिकारी होनेके कारण मैं अपनी सफलताओपर गर्व करता था। १९ मईका दिन मेरे जीवनमे एक महत्वपूर्ण दिन है। यह वह दिन है जब मुझे यह महसूस हो गया है कि उसी चले हुए रास्तेपर चलकर मैं न तो अपने राष्ट्रको समृद्ध कर सकूगा और न मानवताके उद्धारमे ही अपनी कोई देन दे सकूगा। १९ मईका यह दिन मेरे जीवनमे सबसे बडे साहसका दिन है। वर्तमान जीवनका मेरे लिए न कोई आकर्षण है और न कोई अर्थ। मुझे नए जीवनमे प्रवेश करना ही चाहिए। मृत्युका आलिगन किये बिना भला मैं उसे कैसे पा सकता हू? लेकिन मृत्युका आलिगन करना कोई उद्देश्य नही है। उद्देश्य तो नया जीवन ही है। किंतु मृत्युके सिवा और कैसे

मै उसे पा सकता हू ? तर्ककी इसमे विशेष गुजाइश नही। यह तो श्रद्धा थी, जिसने मुझे चुनावका रास्ता बतलाया।"

क्या अच्छा हो कि सरदारको जो आजादी अब मिली है वह इस बातको सिद्ध कर दे कि उनका यह नोट गर्म कल्पनाकी उपज नही, बल्कि छटपटाती हुई आत्माका प्रदर्शन है। (ह० से०, ३० ९ ३९)

: ११६ :

हेनरी पोलक

तीसरे मित्र पोलक है। वेस्टकी तरह इनके साथ भी मेरा परिचय भोजन-गृहमे हुआ। वह ट्रासवालके 'क्रिटिक' के उप-सपादककी जगह छोडकर 'इडियन ओपीनियन' मे आये थे। सब कोई जानते है कि उन्होने युद्ध (सत्याग्रह) के लिए इग्लैड और सारे भारतवर्षमे भ्रमण किया था। रिच विलायत गये कि मैने उन्हे फिनिक्समे अपने दफ्तरमे बुला लिया। वहा आर्टिकल्स दिये और ये भी वकील बन गये। बादमे उन्होने शादी की। मिसेज पोलकको भी भारतवर्ष जानता है। इस महिलाने भी अपने युद्धके काममे पतिकी बडी सहायता की थी। एक दिन भी उसमे विघ्न नही डाला। और यद्यपि आज वे दोनो असहयोगमे हमारा साथ नही दे रहे है, तथापि वह यथाशक्ति भारतकी सेवा अब भी किया ही करते है। (द० अ० स० १९२५)

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक भारतवर्ष जाकर उनकी कुछ सहायता करे। मि० पोलकका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जहा कही रहे, मनुष्यके लिए उपयोगी हो जाते है। जिस कामको वे उठाते है उसीमे तन्मय हो

जाने है। इसलिए उनको भारतवर्ष भेजनेकी तैयारिया चल रही थी। मैने तो लिख दिया था कि वे चले जावे। पर विना मुझसे मिले, सभी सूचनाए प्रत्यक्ष मेरे मुहसे सुने विना ही वे जाना नही चाहते थे। इसलिए उन्होने इस सफरमे ही मुझसे मिल लेनेकी इजाजत मागी। मैने उन्हे तारमे उत्तर दिया—"गिरफ्तार हो जानेकी जोखिम उठाना चाहे तो चले आवे।" सिपाही सभी आवश्यक जोखिमोका स्वागत कर लेते है। यह युद्ध तो ऐसा था कि सरकार यदि सबको पकडना चाहती तो सभीको गिरफ्तार हो जाना चाहिए था। जबतक सरकार गिरफ्तार नही करती है तबतक गिरफ्तार होनेके लिए सरल और नीतियुक्त कोशिशे करते जाना धर्म था। इसलिए मि० पोलक अपनी गिरफ्तारीकी जोखिम उठाकर भी आ पहुचे।

हम लोग हेडलबर्गके करीब पहुच चुके थे। नजदीकवाले स्टेशनसे उतरकर वे हमे वही मिले। हमारी बात-चीत हो रही थी। अभी वह पूरी भी नही हो पाई थी। दोपहरके तीन बजे होगे। हम दोनो दलके मुहानेपर थे। दूसरे साथी भी हमारी बाते सुन रहे थे। शामको मि० पोलकको डरबन जानेवाली ट्रेन पकडनी थी। किंतु रामचद्रजी जैसे महापुरुषतकको राजतिलकके समय वनवास मिला। फिर पोलक कौन होते थे? हमारी बातचीत हो रही थी कि एक घोडा-गाडी सामने आकर ठहर गई। उसमे ऐशियाटिक विभागके उच्च अधिकारी मि० चमनी और एक पुलिस अधिकारी भी थे। दोनो नीचे उतरे। मुझे जरा दूर ले जाकर कहा, "मै आपको गिरफ्तार करता हू।" इस तरह चार दिनमे मै तीन बार पकडा गया। मैने पूछा—"इस दलको?"

"यह सब होता रहेगा।"

मै कुछ न बोला। केवल अपने गिरफ्तार होनेकी खबर देनेका समय हो मुझे दिया गया। मैने पोलकसे कह दिया कि वे दलके साथ जावे।
(द० अ० स० १९२५)

जिस तरह वेस्टसे मेरी मुलाकात निरामिष भोजनालयमे हुई, उसी तरह पोलकसे भी हो गई। एक दिन मेरे खानेकी मेजसे दूरकी मेजपर एक नवयुवक भोजन कर रहा था। उसने मुझसे मिलनेकी इच्छासे अपना नाम मुझतक पहुचाया। मैने उन्हे अपनी मेजपर खानेके लिए बुलाया और वह आये।

"मै 'क्रिटिक' का उप-सपादक हू। प्लेग-सबधी आपका पत्र पढनेके बाद आपसे मिलनेकी मुझे बड़ी उत्कठा हुई। आज आपसे मिलनेका अवसर मिला है।"

मि० पोलकके शुद्ध भावने मुझे उनकी ओर खीचा। उस रातको हमारा एक-दूसरेसे परिचय हो गया और जीवन-सबधी अपने विचारोमे हम दोनोको बहुत साम्य दिखाई दिया। सादा जीवन उन्हे पसद था। किसी वातके पट जानेके बाद तुरत उसपर अमल करनेकी उनकी शक्ति आश्चर्यजनक मालूम हुई। उन्होने अपने जीवनमे कितने ही परिवर्तन तो एकदम कर डाले। (आ० क० १६२७)

• • • •

फिनिक्स जैसी सस्था स्थापित करनेके वाद मै खुद थोडे ही समय उसमे रह सका। इस वातपर मुझे हमेशा बडा दुख रहा है। उसकी स्थापनाके समय मेरी यह कल्पना थी कि मै भी वही वसूगा। वही रहकर जो-कुछ सेवा हो सकेगी वह करूगा और फिनिक्सकी सफलताको ही अपनी सेवा समझूगा, परतु इन विचारोके अनुसार निश्चित व्यवहार न हो सका।

हमारी धारणा यह थी कि हम लोग खुद मिहनत करके अपनी रोजी कमायगे, इसलिए छापेखानेके आस-पास हरएक निवासीको तीन-तीन एकड जमीनका टुकडा दिया गया। इसमे एक टुकडा मेरे लिए भी नापा गया। हम सब लोगोकी इच्छाके खिलाफ उनपर टीनके घर बनाए गये। इच्छा तो हमारी यह थी कि हम मिट्टी और फूसके, किसानोके लायक

अथवा ईंटके मकान बनावे, पर वह न हो सका। उनमे अधिक रुपया लगता था और अधिक समय भी जाता था। फिर सब लोग इस बातके लिए आतुर थे कि कब अपने घर बसा ले और काममे लग जाय।

यद्यपि 'इडियन ओपिनियन' के सपादक तो मनसुखलाल नाजर ही माने जाते थे, तथापि वह इस योजनामें सम्मिलित नही हुए थे। उनका घर डरबनमे ही था। डरबनमे 'इडियन' ओपिनियन' की एक छोटी-सी शाखा भी थी।

छापेखानेमे कपोज करने यानी अक्षर जमानेके लिए यद्यपि वैतनिक कार्यकर्त्ता थे, फिर भी उसमे दृष्टि यह रखी गई थी कि अक्षर जमानेकी क्रिया सब सस्थावासी जान ले और करे। क्योंकि यह है तो आसान, पर इसमे समय बहुत जाता है। इसलिए जो लोग कपोज करना नही जानते थे वे सब तैयार हो गये। मैं इस काममे अततक सबसे ज्यादा पिछड़ा रहा और मगनलाल गाधी सबमे आगे निकल गये। मेरा हमेशा यह मत रहा है कि उन्हे खुद अपनी शक्तिकी जानकारी नही रहती थी। उन्होने इससे पहले छापेखानेका कोई काम नही किया था, फिर भी वह एक कुशल कपोजीटर बन गये और अपनी गति भी बहुत बढा ली। इतना ही नही, बल्कि थोड़े ही समयमे छापेखानेकी सब क्रियाओमे काफी प्रवीणता प्राप्त करके, उन्होने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया।

यह काम अभी ठिकाने लगा ही न था, मकान भी अभी तैयार न हुए थे कि इतनेमे ही इस नए रचे कुटुबको छोडकर मुझे जोहासबर्ग भागना पड़ा। ऐसी हालत न थी कि मै वहाका काम बहुत समयतक यो ही पटक रखता।

जोहासबर्ग आकर मैंने पोलकको इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना दी। अपनी दी हुई पुस्तकका[1] यह परिणाम देखकर उनके आनदकी

---

[1] रस्किनकी 'अनटू दिस लास्ट'

सीमा न रही। उन्होने वडी उमगके साथ पूछा—"तो क्या मै भी इसमे किसी तरह योग नही दे सकता ?"

मैने कहा—"हा क्यो नही, अवश्य दे सकते है। आप चाहे तो इस योजनामे भी शरीक हो सकते है।"

"मुझे आप शामिल कर ले तो मुझे तैयार ही समझिए।" पोलकने जवाव दिया।

उनकी इस दृढताने मुझे मुग्ध कर लिया। पोलकने 'क्रिटिक' के मालिकको एक महीनेका नोटिस देकर अपना इस्तीफा पेश कर दिया और मियाद खतम होनेपर फिनिक्स आ पहुचे। अपनी मिलनसारीसे उन्होने सवका मन हर लिया और हमारे कुटुम्बी वनकर वहा वस गये। सादगी तो उनके रगोरेशेमे भरी हुई थी, इसलिए उन्हे फिनिक्सका जीवन जरा भी अटपटा या कठिन न मालूम हुआ, वल्कि स्वाभाविक और रुचिकर जान पडा।

पर खुद मै ही उन्हे वहा अधिक समयतक न रख सका। मि० रिचने विलायतमे रहकर कानूनके अध्ययनको पूरा करनेका निश्चय किया। दफ्तरके कामका बोझा मुझ अकेलेके वसका न था। इसलिए मैने पोलकसे दफ्तरमे रहने और वकालत करनेके लिए कहा। इसमे मैने यह सोचा था कि उनके वकील हो जानेके वाद अतको हम दोनो फिनिक्समे आ पहुचेगे।

हमारी ये सव कल्पनाए अतको झूठी सावित हुई परतु पोलकके स्वभावमे एक प्रकारकी ऐसी सरलता थी कि जिसपर उनका विश्वास वैठ जाता उसके साथ वह हुज्जत न करते और उसकी सम्मतिके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करते। पोलकने मुझे लिखा—"मुझे तो यही जीवन पसद है और मै यही सुखी हू। मुझे आशा है कि हम इस सस्थाका खूव विकास कर सकेगे। परतु यदि आपका यह खयाल हो कि मेरे वहा आनेसे हमारे आदर्श जल्दी सफल होगे तो मै आनेको भी तयार हू।"

मैने इस पत्रका स्वागत किया और पोलक फिनिक्स छोडकर

जोहासवर्ग आये और मेरे दफ्तरमे मेरे सहायकका काम करने लगे। (आ० क० १९२७)

. . .

पोलकको मैने अपने साथ रहनेका निमत्रण दिया और हम सगे भाईकी तरह रहने लगे। पोलकका विवाह जिस देवीके साथ हुआ उसमे उनकी मैत्री वहुत समयसे थी। उचित समयपर विवाह कर लेनेका निश्चय दोनोने कर रखा था, परतु मुझे याद पडता है कि पोलक कुछ रुपया जुटा लेनेकी फिराकमे थे। रस्किनके ग्रथोका अध्ययन और विचारोका मनन उन्होने मुझसे वहुत अधिक कर रखा था, परतु पश्चिमके वातावरणमे रस्किनके विचारोके अनुसार जीवन वितानेकी कल्पना मुश्किलसे ही हो सकती थी। एक रोज मैने उनसे कहा, "जिसके साथ प्रेम-गाठ वध गई है उसका वियोग केवल धनाभावसे सहना उचित नही है। इस तरह अगर विचार किया जाय तव तो कोई गरीव वेचारा विवाह कर ही नही सकता। फिर आप तो मेरे साथ रहते है। इसलिए घर-खर्चका खयाल ही नही है। सो मुझे तो यही उचित मालूम पडता है कि आप शादी कर ले।"

पोलकसे मुझे कभी कोई वात दुवारा कहनेका मौका नही आया। उन्हें तुरत मेरी दलील पट गई। भावी श्रीमती पोलक विलायतमे थी, उनके साथ चिट्ठी-पत्री हुई। वह सहमत हुई और थोडे ही महीनोमे वह विवाहके लिए जोहासवर्ग आ गई।

विवाहमें खर्च कुछ भी नही करना पडा। विवाहके लिए खास कपडे-तक नही वनाए गये और धर्म-विधिकी भी कोई आवश्यकता नही समझी। श्रीमती पोलक जन्मत ईसाई और पोलक यहूदी थे। दोनो नीति-धर्म-के माननेवाले थे।

परतु इस विवाहके समय एक मनोरजक घटना हो गई थी। ट्रासवालमे जो कर्मचारी गोरोके विवाहकी रजिस्ट्री करता वह कालेके विवाह-की नही करता था। इस विवाहमे दोनोका पुरोहित या साक्षी मैं ही था।

हम चाहते तो किसी गोरे-मित्रकी भी तजवीज कर सकते थे, परतु पोलक इस बातको बरदाश्त नही कर सकते थे। इसलिए हम तीनो उस कर्मचारीके पास गये। जिस विवाहका मध्यस्थ एक काला आदमी हो उसमे वर-वधू दोनो गोरे ही होगे, इस बातका विश्वास सहसा उस कर्मचारीको कैसे हो सकता था? उसने कहा कि मै जाच करनेके बाद विवाह रजिस्टर करूगा। दूसरे दिन बडे दिनका त्यौहार था। विवाहकी सारी तैयारी किए हुये वर-वधूके विवाहकी रजिस्ट्रीकी तारीखका इस तरह बदला जाना सबको बडा नागवार गुजरा। बडे मजिस्ट्रेटसे मेरा परिचय था। वह इस विभागका अफसर था। मै इस दपतीको लेकर उनके पास गया। किस्सा सुनकर वह हँसा और चिट्ठी लिख दी। तब जाकर यह विवाह रजिस्टर हुआ।

आजतक तो थोडे-बहुत परिचित गोरे पुरुष ही हम लोगोके साथ रहे थे, पर अब एक अपरिचित अग्रेज महिला हमारे परिवारमे दाखिल हुई। (आ० क० १९२७)

• • •

पोलकसे बढकर ईमानदार अग्रेज और तुम्हे कहा मिलेगा? तुम उसके समागममे खूब आये हो। यह आदमी तो साफ मानता है कि अग्रेजो-ने इस देशका भला ही किया है। फिर दूसरे ऐसा माने तो इसमे आश्चर्य ही क्या? यह तो ईसाई मिशनकी वृत्ति है। (म० डा० भाग २ ९ ९ १३)

• • •

"वह (पोलक) बहुत जल्दी चिढ जाता था। वह और श्रीमती पोलक पहले मित्र थे। इथीकल सोसाइटी (Ethical Society) के सदस्य बने, वहासे मित्रता शुरू हुई, आखिर मैने उनकी शादी कराई। वे सोचते थे कि कुछ पैसे हो जाय तब शादी करे। मगर मैने कहा, 'यह निकम्मी बात है, और पैसेकी जरूरत हो तो मै भी तो तुम्हारे पास पडा हू न!" पोलकका

यह प्रेम-सबंध था। मगर वह कई बार अपना संतुलन खो बैठता था। वैसे तो श्रीमती पोलक दो की चार सुनानेवाली थी, मगर जब पोलक गुस्सेमे होता था तो उससे बड़े प्रेमसे पेश आती थी। कहती, "तुम्हे हुआ क्या है ?" और हँस देती थी। मै कहा करता था कि यह क्या बात है कि पहले तो तुम इतने मित्र थे, और अब शादी हो गई है तो क्या लडना ही चाहिए ? जैसे मैने तुम्हारी शादी कराई है वैसे ही तलाक भी करवाना होगा क्या ? श्रीमती पोलककी कार्य-कुशलताका नतीजा यह है कि वे आज एक दूसरेको पूजते है और मुझे छोड दिया है। (का० क०, १९ ६ ४२)

: ११७ :

फकीरी

फकीरीकी मौत तो ऐसी हुई जो आश्रमको शोभा देनेवाली नही कही जा सकती। आश्रम अभी नया था। फकीरीपर आश्रमके संस्कार न पडे थे। फिर भी फकीरी बहादुर लडका था। मेरी टीका है कि वह अपने खाऊपनकी बलि हो गया। उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी। मुझे ऐसा याद है कि आखिरी दिन उसकी बगलमे सारी रात मै ही बैठा रहा।

सवेरे मुझे गुरुकुल जानेके लिए ट्रेन पकडनी थी। उसे अरथीपर सुलाकर, पत्थरका कलेजा करके मैने स्टेशनका रास्ता लिया। फकीरीके बापने फकीरी और उसके तीन भाइयोको यह समझकर मुझे सौंपा था कि मै फकीरी और दूसरोके बीच भेद न करूगा। फकीरी गया तो उसके तीन भाइयोको भी मै खो बैठा। ('आश्रमवासियोसे', ३० ५ ३२)

: ११८ :

रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स

डोकके ही जैसा सबध रखनेवाले और बहुत भारी सहायता करनेवाले एक और पादरी सज्जन थे। उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स। बहुत वर्ष पहले वे ट्रान्सवालमे काग्रीगेशनल मिनिस्टर थे। उनकी सुशीला स्त्री भी उनकी बडी सहायता करती। (द० अ० स० १९२५)

: ११९ :

जमनालाल बजाज

मनुष्यके जीते हुए उसकी जीवनीका प्रकट होना सामान्यतया अयोग्य है, परतु इसमे अपवाद भी है। जमनालालजीको मै मुमुक्षु या आत्मार्थी समझता हू। ऐसे पुरुषोकी जीवनीमेसे दूसरोको कुछ-न-कुछ नैतिक लाभ मिलता है। इस दृष्टिसे इस जीवनीके प्रकट करनेके औचित्यके लिए मुझसे पूछा गया तब मैने इसको उचित माना। इसके एक-दो प्रकरण मैने सुने है। इसपरसे मेरा विश्वास है कि इसमे अतिशयता या अयोग्य स्तुति नही है। मै आशा करता हू कि जिन्होने सेवाधर्मको स्वीकार किया है उनको जमनालालजीके जीवनमे से बहुत-सी बाते अनुकरणीय प्रतीत होगी। ('सेठ जमनालाल बजाज' से)

• • • • • •

उनको नजरबद रखना तो समझमे आ जाता है क्योकि वे उस हुक्म की अदूली करना चाहते है जो उनके अपने जन्म-प्रदेशमे प्रवेश करनेसे

रोकता है। अधिकारियोको यह मालूम है कि सेठजी एक आदर्श कैदी है, वे जेलके नियन्त्रणका पूरी तरह पालन करनेमे विश्वास रखते है। उन्हे जिस प्रकार बाहरकी सारी दुनियासे अलग कर दिया गया है, क्या यह अत्याचार और निर्दयता नही है? (ह० से०, ६ ५ ३९)

• • •

सेठ जमनालाल बजाजको छीनकर कालने हमारे बीचसे एक शक्तिशाली व्यक्तिको छीन लिया है। जब-जब मैंने धनवानोके लिए यह लिखा कि वे लोककल्याणकी दृष्टिसे अपने धनके ट्रस्टी बन जाए तब-तब मेरे सामने सदा ही इस वणिक्शिरोमणिका उदाहरण मुख्य रहा। अगर वह अपनी सपत्तिके आदर्श ट्रस्टी नही बन पाए तो इसमे दोष उनका नही था। मैंने जानबूझकर उनको रोका। मैं नही चाहता था कि वे उत्साहमे आकर ऐसा कोई काम कर ले, जिसके लिए बादमे शात मनसे सोचनेपर उन्हे पछताना पडे। उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। अपने लिए उन्होने जितने भी घर बनाए, वे उनके घर नही रहे, धर्मशाला बन गये। सत्याग्रहीके नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा। राजनैतिक प्रश्नोकी चर्चामे वह अपनी राय दृढतापूर्वक व्यक्त करते थे। उनके निर्णय पक्के हुआ करते थे। त्यागकी दृष्टिसे उनका अतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। वे किसी ऐसे रचनात्मक काममे लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यताके साथ अपने जीवनका शेष भाग तन्मय होकर बिता सके। देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होने अपने लिए चुना था और गायको उसका प्रतीक माना था। इस काममे वह इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये थे कि जिसकी कोई मिसाल नही। उनकी उदारतामे जाति, धर्म या वर्णकी सकुचितताको कोई स्थान न था। वे एक ऐसी साधनामे लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमीके लिए विरल है। विचार-सयम उनकी एक बडी साधना थी। वे सदा ही अपनेको तस्कर विचारोसे बचानेकी कोशिशमे रहते थे। उनके अवसानसे वसुन्धरा

का एक रत्न कम हो गया है। उनको खोकर देशने अपना एक वीर-से-वीर सेवक खोया है। जिस कार्यके लिए उन्होने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया था, उसे अब उनकी विधवा जानकीदेवीने स्वय करनेका निश्चय किया है। उन्होने अपनी समस्त निजी सपत्तिको, जो करीव ढाई लाखके आस-पास है, कृष्णार्पण कर दिया है। ईश्वर उन्हे अपने इस अगीकृत कार्यमे सफल होनेकी शक्ति दे। (ह० से०, १५ २ ४२)

[जमनालालजी अकेले एक व्यक्ति ही नही थे। वे सच्चे अर्थमें देशकी एक सस्था थे। उनके आकस्मिक स्वर्गवासके वाद गाधीजीने तय किया कि उनकी तमाम सार्वजनिक प्रवृत्तियोको पहलेकी तरह अखड रूपमें चलाए रखना ही उनका सच्चा स्मारक हो सकता है। इस हेतुको सफल बनानेके लिए उन्होने जमनालालजीके करीव दो सौ ऐसे मित्रोको, जिन्हें उनके जीवन-कार्यसे सहानुभूति थी, अपनी सहीसे निमत्रण भेजकर सलाह-मशविरेके लिए वर्धा वुलाया। जमनालालजीके राष्ट्रभाषा प्रचारके सिद्धातोको ध्यानमें रखकर निमत्रण-पत्र हिंदी और उर्दू दोनो लिपियोमें छापा गया था। वर्धाके नवभारत विद्यालयमें २० और २१ फरवरीको दोपहर इस निमित्तसे आये हुए भाई-वहनोकी दो सभाए हुईं। इस अवसरपर गाधीजीने जो भाषण किया वह अपनी मिसाल आप ही है। उनके मुहसे ऐसे वचन इस प्रकारके अवसरपर शायद पहले कभी सुननेमें नही आये। रुपए-पैसे द्वारा ईंट-पत्थरका स्मारक बनानेकी बात को छोडकर जमनालालजीकी मृत्युको आत्मोन्नतिका और उनके जीवन-कार्यको आगे वढानेका एक साधन वना लेनेकी सलाह देते हुए उन्होने वहा एकत्र मित्र-मडलसे कहा .]

आजका-सा अवसर मेरे जीवनमे इससे पहले कभी नही आया था और जहा तक मै सोच पाता हू आगे भी कभी नही आयेगा। आप देखते है कि जो कार्रवाही आज हम यहा करने जा रहे है उसके लिए कोई सभापति

नही चुना गया है। मैं तो सभापति हू ही नही। क्यो नही हू, सो आप खुद ही थोडे समयमे समझ जाइयेगा।

कहा जाता है कि मेरे साथ जमनालालजीका सबध करीब-करीब तभीसे शुरू हुआ जबसे मैंने हिंदुस्तानके सार्वजनिक जीवनमे प्रवेश किया। उन्होने मेरे सभी कामोको पूरी तरह अपना लिया था, यहातक कि मुझे कुछ करनाही नही पडता था। ज्योही मैं किसी नए कामको शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चित कर देना, मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था। यो हमारा काम मजेमे चल रहा था, लेकिन अब तो वे खुद ही चले गये है और उनके सब कामोको चलानेका भार मेरे कधोपर आ पडा है। इसलिए मैंने सोचा कि मैं उनके उन सब मित्रोको जो उनके अनेकानेक सेवाकार्योमे सहायक होते रहते थे, यहा बुलाऊ और उनसे निवेदन करू कि वे इस असह्य बोझको उठानेमे अपनी ताकतभर मेरी मदद करके इसे हलका करे। आज मैं आपके सामने एक भिक्षुककी हैसियतसे यहा खडा हू। फिर इस सभाका सभापति कैसे बन सकता हू?

अपना भिक्षापात्र लेकर मैं आपके सामने खडा होता हू। लेकिन मैं धन-दौलतकी भीख नही मागता। वैसी भीख भी मैंने जीवनमे खब मागी है। गरीबकी कौडी और अमीरोके करोडोकी मुझे जरूरत नही है।

लेकिन आज जो काम मुझे करना है उसमे रुपए-पैसेकी कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आजके दिन जमनालालजीके सब धनिक मित्रोको यहा इकट्ठा करके उनपर दबाव डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओको द्रवित करके थैलियोके मुह खुलवा सकता था। यह धधा भी मैंने अपने जीवनमे जी-भरकर किया है और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन वही सब आज मैं यहा करने बैठता तो उस व्यक्तिके नाम को बडा धब्बा लगता। मुझे अपना कर्त्तव्य देकर वह चल बसा है, जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेनेको,

मगर पुत्र बनकर बैठ गया और मेरा सारा बोझ उठाता रहा। मुझे जो भिक्षा आज आपसे मागनी है वह तो यह है कि जमनालालजीके उठ जानेसे जो बोझ बढ गया है उसको उठानेमे कौन-कौन मेरी मदद करेगे? अकेले एक आदमीकी मददसे काम नही चलेगा। मदद तो सबको मिलकर देनी होगी और काम बाट लेना होगा।

इस सबधमे आगे कुछ कहनेके पहले मै आपको यह बता दू कि अभी तक मैंने क्या किया है। ११ फरवरीको जब मै जमनालालजीके द्वारपर पहुचा तो उनका देहात हो चुका था। मेरे पास वर्धासे सदेशा तो सिर्फ यही आया था कि ख़ूनका दौरा कम करनेकी दवा भेजे। मै दवा भेजकर अपने दिलकी तसल्ली कर सकता था। लेकिन उस दिन मैंने महसूस किया कि नही, मुझे खुद ही जाना चाहिए। जब वहा पहुचा तो मामला कुछ और ही पाया। मै उस अवसरपर भी निर्दयी बन गया। जानकीदेवी तो पतिके शवके साथ सती होनेकी बात करती थी। मैंने कहा कि सचमुच सती बनना है तो जीती-जागती सती बन जाओ। धनका जितना त्याग कर सको कर दो। यह तो उनके लिए एक मामूली बात थी। आखिर धनसे वह कितना सुख और आराम भोग सकती थी? लेकिन दूसरी चीज उतनी आसान नही थी। सभव है, वह भी उतनी आसान न हो। मैंने कहा कि वह अपने पतिका स्थान ले ले। उन्हे सकोच हुआ, फिर भी मैंने उनसे प्रतिज्ञा करा ही ली। इतना कठोर मै बन गया।

इस तरह जानकीदेवीने तो त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। लेकिन फिर मैंने सोचा कि उनके लडके-लडकियो और दामाद वगैराको भी ऐसा ही त्याग करना चाहिए। मै उनके साथ भी कठोर हो गया। मैंने उनसे कहा, "बेशक आप जमनालालजीकी तरह व्यापार कीजिए, लेकिन उसमे उनकी विशेषताको निबाहते रहिए, याने व्यापार भी सेवाभाव अथवा धर्मभावसे कीजिए। जितना कमाए, नीति-पूर्वक कमाइए और उसे खर्च

भी पुण्य कार्यके लिए कीजिए। अपने ऐश-आरामके लिए नही, यानी आप अपने कमाए धनके भी सरक्षक बनकर रहिए।

जमनालालजी करीब ६ लाख रुपया अपने लडकोके पास जोड गये थे ताकि वे उसका उपयोग सेवार्थ करें। यानी इससे मेरे जैसे भिखारियोकी झोलिया भरें। लडके कह सकते थे कि एक बार हमें जी-भरकर ऐश-आराम करने दीजिए, फिर हम त्याग भी करते रहेंगे। लेकिन नही, एक-दो दिनके गभीर विचारके बाद उन्होने वह सारी रकम सेवा-कार्यके लिए दे दी। इसके सिवा जमनालालजीके जीवन-कालमे काग्रेसजनोके और दूसरे कार्यकर्ताओके आतिथ्य पर हरसाल करीब २० हजार रुपया खर्च होता था। उन्होने इसको भी पहलेकी तरह जारी रखनेका निश्चय किया और सारे खर्चकी जवाबदारी बच्छराज जमनालाल कपनीकी तरफसे अपने कधोपर उठा ली। सेठजीने बजाजवाडीका एक हिस्सा जानकीदेवीके लिए और बच्चोके लिए रखा था। लेकिन उनके परिवारवालोने यह तय किया कि उनमेसे कोई उन बगलोमे नही रहेगे। उनका प्रयोग सिर्फ अतिथि-सत्कारके लिए अथवा सार्वजनिक कामके लिए ही होगा। वे खुद तो अभी गोपुरीमे ही रहना पसद करते है।

इस तरह शुभ सकल्पोके साथ यह काम शुरू हुआ है। जमनालालजीकी आख बद होते ही मैने उनके बोझका बटवारा कर लिया है। आप देखेगे कि जमनालालजीके कामोकी फेहरिस्त आपको भेजी गई है। उसमें उनके आखिरी कामको पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराजप्राप्तिके कामसे भी कठिन है। स्वराज्य मिलनेमे वह अपने आपही नही हो जायगा। यह सिर्फ पैसेसे होनेवाला काम नही। मै इस बातका साक्षी हू कि आजीवन अलौकिक निष्ठासे काम करनेवाले उस व्यक्तिने किस अपूर्व निष्ठासे इस कामको शुरू किया था। इन्हे इस तरह काम करते देख एक दिन सहज ही मेरे मुहमे निकल गया था कि जिस वेगसे वह इस कामको कर रहे है उसको उनका शरीर सह सकेगा या नही? कही बीचमे

ही वह धोखा तो नही दे जायगा ! आज मेरा वह कथन भविष्यवाणी सिद्ध हुआ है मानो उस समय भगवान ही मेरे मुहसे बोल रहे थे। साराश यह कि यह काम पैसेसे नही, एक निष्ठासे होनेवाला है। जानकीदेवीने जो ढाई लाख रकम दान की है उसमेसे ढाई हजार रुपये खादीके काममें खर्च करनेका वह पहले ही सकल्प कर चुकी थी। इसके सिवा वर्धामे एक प्रसूतिगृह बनानेकी उनकी इच्छा थी। कुछ रुपया उसमे लगेगा। बाकी करीब सवा दो लाख गोमाताके कामके लिए रह जाता है। बीस-पच्चीस हजार रुपया अखिल गोसेवा सघका था, वह भी आज हमारे पास है। जानकीदेवीके दानकी रकमके साथ मिलकर यह रकम हमारी आजकी आवश्यकताके लिए काफी है, लेकिन कार्यकर्त्ता काफी नही है। गोसेवाका काम आजतक जिस तरह चला उससे न जमनालालजीको सतोष था, न मुझे। इस कामको सतोपजनक रूपमे चलानेके लिए मुझे आपकी तन, मन, धन-से मदद मिलनी चाहिए। जब तक यह न हो जायगा मुझे चैन न पड़ेगा। असलमे वारिस तो उन्हे मेरा बनना चाहिए था; पर वह तो चले गये और जी गए। अब परीक्षा मेरी है। मै एक नए रूपमे उनका वारिस बन गया हू। यानी उनके सारे-के-सारे कामोको मैने अपने जिम्मे ले लिया है। लेकिन यह तो एक ऐसी चीज है जिसके वारिस आप सब बन सकते है। जब आप सब मिलकर इन कामोको उठा लेगे तो यह पहलेसे भी ज्यादा व्यवस्थित और सतोष-जनक रीतिसे चलेगे और तभी मै इस परीक्षामे उत्तीर्ण हो पाऊगा।

जमनालालजी तो बड़भागी थे। उनकी तरह हम भी अपनेको बड़भागी साबित कर सकते है, बशर्ते कि जो चीज उनके रहते हमे साफ नही दिखाई दी वह उनके बाद हमे साफ दिखाई देने लगे। जो जाग्रति हममे उनके जीवित रहते नही आई वह अब सबमें आ जाय। यह सब कठिन है। मगर एक तरहसे आसान भी है। अगर आप यह कठिन काम कर सकते है तो करे। परतु मै नही चाहता कि आप कुछ शरमा-शरमी करें।

इससे तो आप जमनालालजीके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाका सबूत नहीं दे सकेंगे। लेकिन बिना किसी सकोचके सोच-समझकर उनके काममे थोडी-सी मदद पहुचायगे तो आप यहासे एक बडा काम करके चले जायगे।

उनका सबसे बडा काम गोसेवाका था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था, लेकिन धीमी चाल से। इसमें उन्हे सतोष न था। उन्होने इसे तीव्र गतिसे चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतासे चलाया कि खुद ही चल बसे! अगर हमे गायको जिन्दा रखना है तो हमें भी इसी तरह उसकी सेवामे अपने प्राण होमने होगे। इसी तीव्रतासे काम करना होगा। अगर हम गायको बचा पाये तो हम भी बच जायगे। इसका एक रास्ता तो वह है जो पश्चिम वालोने अख्तियार कर रखा है। यानी उसको बेचे और उसकी मिट्टीसे अपना पेट भरकर मोटे-ताजे बने। परन्तु उनका यह न्याय न मुझे मजूर है, न आपको और न जमनालालजीको। इसलिए इसकी जो मर्यादा उन्होने अपने लिए बनाई थी उसके अदर रहकर ही हमे काम करना होगा। जमनालालजी हमे अपना रास्ता बता गये है। शायद आपको मालूम हुआ होगा कि उन्होने गोसेवाकी दो योजनाए तैयार की थी। एक सारे देशके लिए, दूसरी वर्धाके लिए।

× × ×

अब दूसरी चीज लीजिए। मिसालके तौरपर खादीके काममे उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैने दिया उतना ही उन्होने भी दिया। उन्होने इस कामके पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नही की थी। इसलिए कार्यकर्त्ता भी वे ही ढूढ-ढूढकर मेरे पास लाया करते थे। थोडेमे यह कह लीजिए कि अगर मैने खादीका मत्र दिया तो जमनालालजीने उसको मूर्त रूप दिया। खादीका काम कुछ होनेके बाद मै तो जेलमे जा बैठा, मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी हीमे 'स्वराज्य' है। अगर उन्होने तुरत ही उसमे रत होकर उसे सगठित

रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरीमे सारा काम तीन-तरह हो जाता ।

यही बात ग्रामोद्योगकी थी । उन्होने इसके लिए तो मगनवाडी दी ही थी । साथ ही उसके सामनेकी कुछ जमीन भी वे मगनवाडीके लिए खरीदनेका सकल्प कर चुके थे । अब चि० कमलनयनने वह जमीन भी मगनवाडीको देदी है । ग्रामोद्योगका काम इतना व्यापक है कि इसमें अटूट रुपया खर्च किया जा सकता है ।

× × ×

एक बात और जमनालालजी कई बार कहा करते थे कि लोग और सब जगह तो खादी पहनकर चले जाते है, लेकिन बैकमे नही जाते । अगर बैकमे वह अपनी मारवाडी पगडी पहनकर न जाय तो उनके ख्यालमे इसमे उनकी प्रतिष्ठाकी हानि होती है । मगर खुद जमनालालजी ने कभी इसकी कोई चर्चा नही की । फिर उसका नतीजा कुछ भी क्यो न हुआ हो ! अत मै यह चाहता हू कि हममें इतनी स्वतन्त्रता और इतना आत्म-गौरव पैदा हो जाना च.हिए कि हम अपनी खादीकी पोशाकमे हर जगह बिना झिझकके जा सके ।

आज हमारे सिर एक बहुत बडा सकट मडरा रहा है । सिंगापुर गया, रगून जाता नजर आता है । खुद कलकत्ता खतरेमे है । ऐसी हालतमे अगर कलसे कोई दूसरी ताकत हिंदुस्तानमे आ पहुचे तो क्या पहलेकी तरह हम फिर अपने व्यापारके लालचसे उसकी खुशामद करने लग जावेगे और अपनी स्वतन्त्रता उनके हाथो बेच देगे ? अथवा यह कहेगे कि हम इनकी गुलामीसे निकलकर आपकी सरदारीको स्वीकार करना नही चाहते ? जमनालालजीकी आत्मा आज हमसे पूछती है ! इस सबधमे उनका अपना क्या जवाब होता, सो तो मै उतनी ही अच्छी तरह से जानता हू, जितना अपनेको जानता हू ।..

× × ×

अवतक इस देशकी आजादीको खोनेमे व्यापारी-समाजकी खास जिम्मेदारी रही है। जमनालालजीको यह चीज वरावर खटका करती थी। इसीलिए आज आपके सामने मुझे यह सारी बाते रखनी पडी हैं। ..

जमनालालजीके दूसरे कामोके वारेमे मैं आपका इस वक्त ज्यादा समय नही लेना चाहता। वे सव आपकी आखोके सामने ही है। महिला-आश्रमको ही लीजिए। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। उन्हीकी कल्पनाके अनुसार यह अवतक काम करता रहा है। जमनालालजीके सामने सवाल यह था कि जो लोग देशके काममे जुटकर भिखारी वन जाते है, उनके वाल-वच्चोकी शिक्षाका क्या प्रवध हो ? उन्होने कहा कि कम-से-कम उनकी लडकियोको सरकारी मदरसोके मुकावलेमे अच्छी ही तालीम मिल सकेगी। वस, इसी खयालसे महिला-आश्रमकी स्थापना हुई। आज इस आश्रमके लिए एक त्यागी और सुशिक्षित महिलाकी आवश्यकता है। आप इस आवश्यकताकी पूर्तिमे सहायक हो सकते है। वुनियादी तालीम और हरिजन सेवक सघके कामका भी यही हाल है। आप इनमे शरीक हो सकते है। हिंदु-मुस्लिम एकताके लिए उनके दिलमें खास लगन थी। उनके अदर साप्रदायिक द्वेपकी वू तक न थी। आप उनके जीवनसे इस गुणको ग्रहण कर सकते हैं। ..

जमनालालजीका स्मृति-स्तभ खडा करके हम उनकी यादको चिरस्थायी नहीं वना सकते। स्तभपर खुदे हुए शिला-लेखको तो लोग पढकर थोडे ही समयमे भूल जायगे, परतु जिस आदमीने दुनियाके लिए इतना कुछ किया है उसके कामको चिरस्थायी रखनेका सकल्प कोई कर ले तो वह उनका सच्चा स्मारक हो रहेगा। किंतु इसके लिए मैं जवरदस्ती नही करना चाहता और न मैं आपसे ही वैसी कोई आशा रखता हू। जिसे जो कुछ भी करना हो आत्मोन्नतिके लिए करे। अगर दिखावेके लिए कुछ भी होगा तो उससे मुझे और जमनालालजीकी आत्माको उल्टा कष्ट ही होगा।

[इसपर कई सूचनाए गाधीजीके सामने रखी गई, परंतु वे उन्हें पसद न आई। अपनी मनोदशाको और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होने पुन· जोरदार शब्दोमें कहा :]

मैंने आज जानबूझकर अनियमित ढगसे सारा काम चलाया है, क्योकि मै इस काममे थोडी भी कृत्रिमता नही चाहता। मै इसे अपने जीवनका एक अत्यन्त गभीर अवसर मानता हू। जो शुद्ध धर्म-भावना अतिम समयमे जमनालालजीकी थी उसे मै कायम रखना चाहता हू। इसलिए जिसे जो कुछ करना हो उसी भावनासे करे। एकातमे बैठे अतर्मुख बने और ईश्वरको साक्षी रखकर जो सकल्प करना हो करे। (सेवाग्राम, १८ २ ४२)

मै क्या सदेश भेजू ? जमनालालजीकी स्तुति करू ? कैसे करू ? मेरे हाथ कट गये है। जिसका द्वारपाल गया है वह उसके लिए क्या लिख सकता है ? ('समाज-सेवकसे')

गाधीजीने आते ही जमनालालजीके सिरपर हाथ रखा। जमनालालजीकी धर्मपत्नी, श्री जानकीदेवी, तो कुछ हक्की बक्की सी रह गई थीं। गाधीजीको देखते ही वह आशाकी तरगोमें उछलने लगीं—

"बापूजी, ओ बापूजी! आप पासमें होते तो यह न मरते। मैंने आपको इनकी तबीयत बिगडते ही जल्दी खबर क्यो न भेज दी। इन्हें जिदा कर दीजिए। क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते ?"

गाधीजीने कहा :

जानकी, अब तुम्हे रोना नही है। तुम्हे तो हँसना है और बच्चोको हँसाना है। जमनालाल तो जिदा ही है। जिसका यश अमर है, तो फिर उसकी मृत्यु कैसी! उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है जब तुम उसका मार्ग अनुसरण करनेसे मुह मोडो। जमनालालने परमार्थकी

जिंदगी बिताई। तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री उसे मिली, तो फिर रोना कैसा! जो काम उसने अपने कंधोंपर लिया था उसे अब तुम सम्हालो। उसी ध्येयके लिए तुम अपने आपको संपूर्णतया अर्पण कर दो। और जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवानको सावित्रीने अपने तपसे पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीरका क्या हो सकता था? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्रीने अपने तपसे सत्यवानके तपको सदाके लिए अमरत्व दे दिया। यही सावित्री-सत्यवान की कथाका सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तपसे अपने पतिके यशको जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते हैं।

"बापूजी, मैं तो अपने आपको अर्पण करनेको तैयार हूं। पर मेरी शक्ति ही क्या? मेरा तप ही क्या? मैं उनके कामको कैसे चलाऊंगी? कैसे उनके तपको जागृत रखूंगी? आप इन्हें मरने मत दीजिए। आप क्या इन्हें जिला नहीं सकते। तो क्या यह मर ही गये। क्या अब बोलेंगे नहीं।"

मैं तुम्हे झूठा धीरज नहीं देने आया हूं। जमनालालका शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिंदा ही है और आगेके लिए उसे जिंदा रखना हमारा काम है।"

('जमनालालजी', पृष्ठ १०)

शामको घूमते समय अंग्रेजी न जाननेवालोंकी बातें चलीं। चर्चा मीराबहनने चलाई थी। मैंने कहा, "जमनालालजी भी तो अंग्रेजी नहीं जानते थे, मगर वह अपना काम खासा चला लेते थे।" बापू कहने लगे

मगर जमनालाल अंग्रेजीकी बाते सब समझ लेता था। अंग्रेजीमे प्रस्ताव वगैरा आते थे, उनमें वह एक भी चीज छोडता नही था। व्याकरण नही जानता था, मगर शब्दोका उपयोग ठीक जानता था। इसलिए अपने भाषणो वगैराका तर्जुमा दुरुस्त किया करता था। उसके जैसा बारीकी-

से हरेक चीजको पकडनेवाला आदमी भाग्यसे ही कही मिलता है। जमनालाल किसी चीजको वर्किंग कमेटीमे छोडता नही था। वह बुद्धि-शाली था और व्यवहार-कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय था।" (का० का०, २६ ६ ४२)

मैंने कहा, "मगर आज हमारे पास ट्रस्टीशिपका कोई नमूना है तो जमनालालजीका है। जमनालालजीकी बहुत चीजें सेवाके काममें इस्ते-माल होती थी। कितनी ही जायदाद उन्होने दे भी डाली। तो भी उनके मनमें यह तो था ही कि वे देते हैं--दान करते है।" बापू कहने लगे

जमनालालजीने महा प्रयत्न किया, मगर वह पूरी तरहसे ट्रस्टी बन नही सके। वह उनकी अपूर्णताका नतीजा था। (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२० :

बहादुरजी

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके सबधमे जाच करनेके लिए काग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा काग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे विना न रहेगा। श्रीबहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और श्रीकुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभि-नदनके अधिकारी है। 'यग इडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्रीबहा-दुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक बार एडवोकेट-

जनरल थे। उन्होने एडवोकेट-जनरलके पदका उपयोग किया है, यह बात योही छोड दी जाय, तो दोनो धूमधामसे चलनेवाले धन्धेके व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेषज्ञ है। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठा-में कुछ वृद्धि की है, ऐसी कुछ बात नही है। यह तो उनकी प्रतिष्ठाकी और उनके व्यवसायमे उनका जो पद है, उसकी स्वीकृतिमात्र है। खुशाल-शाह भारत-प्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बबई यूनिवर्सिटीमे अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। यह तीनो सज्जन सदैव काममे घिरे रहते है, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सके कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है, और जो बावलीबाज उपदेशक नही, वरन् स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोकी यह कृति है। (हिं० न०, ६ ८ ३१)

: १२१ :

व्रजलाल

व्रजलाल बडी उम्रमे, शुद्ध सेवा-भावसे आश्रममे आए थे और सेवा करते हुए ही मृत्युका आलिंगन करके अमर हो गये और आश्रमके लिए शोभा रूप हुए। एक लडकेका घडा कुएंसे निकालते हुए ढोरमे फसकर फिसल गए और प्राण तजे। ('यरवदा मदिरसे' ३०.५ ३२)

: १२२ :

अब्दुलबारी

जैसी हिंदुओंके बारेमे चेतावनिया मुझे दी गई है, वैसी ही मुसलमानोके विषयमे भी मिली है। यहा मैं सिर्फ तीन ही नाम पेश करूगा। मौलाना अब्दुलबारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिंदू द्वेष्टाके रूपमे मेरे सामने पेश किए गये है। मुझे उनके कितने ही लेख दिखाए गये है जिन्हे मैं समझ नही सकता। मैंने तो इस विषयमे उनसे पूछताछ भी नही की, क्योकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बच्चे है। मैंने उनके अदर किसी तरहका छल-कपट नही देखा। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते है, जिससे उनके अभिन्न मित्रोको भी परेशानी उठानी पडती है। पर वे कडवी बाते कह बैठनेमे जितनी जल्दी करते है उतनी जल्दी अपनी भूलके लिए क्षमा मागनेको भी तैयार रहते है। जिस वक्त जो बात बोलते है उस वक्त वे सच्चे दिलसे बोलते है। उनका क्रोध और उनकी क्षमा दोनो सच्चे दिलसे होती है। एक बार वे मौ० मुहम्मदअलीपर बिना उचित कारणके बिगड बैठे। मै उस वक्त उनका अतिथि था। उनके मनमे लगा तो उन्होने मुझे भी कुछ सख्त-सुस्त कह डाला। उसी समय मौ० मुहम्मदअली और मैं कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमे थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हे लगा कि उन्होने हमारे साथ अनुचित बरताव किया है। मौ० मुहम्मदअलीके साथ सचमुच अनुचित बरताव किया गया था। मेरे साथ नही। पर उन्होने तो हम दोनोके पास कानपुरमे अपनी तरफसे कुछ लोगोको भेजकर हम दोनोसे माफी मागी। इस बातसे वे मेरी नजरोमे ऊचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं स्वीकार करता हू कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते है। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेगे।

उनके पास 'खानेके और, दिखानेके और' यह बात नही है। उनके दिलमे कोई दाव-पेच नही है। ऐसे मित्रमे सहस्रो दोषोके होते हुए भी मै उनकी गोदीमे अपना सिर रखकर चैन से सोऊगा, क्योकि मै जानता हू ये छिपकर वार कभी न करेगे। (हि० न०, १ ६ २४)

: १२३ :

बाल्डविन

सबसे ज्यादा साफ बात करनेवाला बाल्डविन है। उसे मैने कहा कि मेरी यह दलील है कि अग्रेजी राजसे हमारा कुछ भी भला नही हुआ। तब वह कहने लगा, मुझे कहना चाहिए कि हमारे लोगोने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया है उसके लिए मुझे गर्व है। और इसमें आश्चर्य ही क्या? रामकृष्ण भाडारकर अक्षरश मानते थे कि एक मामूली टामी (अग्रेज सिपाही) भी हमसे बढकर है। (म० डा०, ४.७ ३२)

बाल्डविन तो मुझसे मिलना ही नही चाहता था। सर सेमुएल होरने उससे मिलनेका प्रबध कर दिया। वह भी लार्ड लिनलिथगोकी तरह बाह्य शिष्टाचार खूब बरतता था। बाल्डविनके पास तो मै पद्रह मिनट भी नही बैठा। मैने अपना केस रखनेकी कोशिश की। बताया कि हम तो ऐसा मानते है कि अग्रेजी राज्यमे हिंदका हमेशा अहित ही रहा है। आप लोगोसे हमने कुछ सीखा है, मगर वह आप लोगोके सम्पर्कमे आनेके कारण। आप राजा न होते और हम आपके सम्पर्कमे आते तब भी सीखते—तब शायद ज्यादा सीखते। आपके पास सुन्दर भाषा है। उसमे इतना काम किया गया है, इतना साहित्य लिखा

गया है। उसकी हमे कदर है। हम हिंदुस्तानमे सीमित होकर नही रहना चाहते। सारे जगतके साथ सबध रखना चाहते है, मगर आजाद होकर। हमे स्वतत्रता चाहिए। अग्रेजी भाषामे 'इडिपेन्डेन्स' शब्दका जो अर्थ है, वह स्वतत्रता हमे चाहिए, किसी खास तरहकी नही, क्योकि हम मानते है कि हिंदुस्तानमे अग्रेजी राज बुरी चीज है। वह कहने लगा, इसमे हमारा मतभेद है, मुझे तो अपनी कौमका और भारतमे अपने शासनका गर्व है। मैने कहा, "ऐसा है तो मुझे आपसे और कुछ नही कहना।" (का० क०, ३ १२ ४२)

: १२४ :

बालासुंदरम्

'नेटाल इडियन काग्रेस' मे यद्यपि उपनिवशोमे जन्मे भारतीयोने प्रवेश किया था, कार्कुन लोग शरीक हुए थे, फिर भी उसमे अभी मजूर गिरमिटिया लोग सम्मिलित न हुए थे। काग्रेस अभी उनकी न हुई थी। वे चदा देकर, उसके सदस्य होकर, उसे अपना न सके थे। काग्रेसके प्रति उनका प्रेम पैदा तभी हो सकता था, जब काग्रेस उनकी सेवा करे। ऐसा अवसर अपने आप आ गया और सो भी ऐसे समय, जबकि खुद मै अथवा काग्रेस उसके लिए मुश्किलसे तैयार थी, क्योकि अभी मुझे वकालत शुरू किए दो-चार महीने भी मुश्किलसे हुए होगे। काग्रेस भी बाल्यावस्थामे ही थी। इन्ही दिनो एक दिन एक मंदरासी हाथमे फेटा रखकर रोता हुआ मेरे सामने आकर खडा हो गया। कपडे उसके फटे-पुराने थे। उसका शरीर काप रहा था। सामनेके दो दात टूटे हुए थे और मुहसे खून बह रहा था। उसके मालिकने उसे बेदर्दीसे पीटा था। मैने अपने मुशीसे, जो

तामिल जानता था, उसकी हालत पूछवाई। वालासुंदरम् एक प्रतिष्ठित गोरेके यहां मजूरी करता था। मालिक किसी बातपर उसपर बिगड पडा और आग-बबूला होकर उसने उसे बुरी तरह पीट डाला, जिससे वालासुंदरम्के दो दात टूट गये।

मैंने उसे डाक्टरके यहा भेजा। उस समय गोरे डाक्टर भी वहा थे। मुझे चोट संबंधी प्रमाण-पत्रकी जरूरत थी। उसे लेकर मैं वालासुंदरम्को अदालतमे ले गया। वालासुंदरम्ने अपना हलफिया बयान लिखवाया। पढकर मजिस्ट्रेटको मालिकपर बडा गुस्सा आया। उसने मालिकको तलब करनेका हुक्म दिया।

मेरी इच्छा यह न थी कि मालिकको सजा हो जाय। मुझे तो सिर्फ वालासुंदरमको उसके यहासे छुडवाना था। मैंने गिरमिट-संबंधी कानूनको अच्छी तरह देख लिया। मामूली नौकर यदि नौकरी छोड दे तो मालिक उसपर दीवानी दावा कर सकता है, फौजदारीमे नही ले जा सकता। गिरमिट और मामूली नौकरोमे यो वडा फर्क था, पर उसमे मुख्य बात यह थी कि गिरमिटया यदि मालिकको छोड दे तो वह फौजदारी जुर्म समझा जाता था और इसलिए उसे कैद भोगनी पडती। इसी कारण सर विलियम विलसन हटरने इस हालतको 'गुलामी'-जैसा बताया है। गुलामकी तरह गिरमिटिया मालिककी संपत्ति समझा जाता। वालासुंदरम्को मालिकके चंगुलसे छुडानेके दो ही उपाय थे या तो गिरमिटियोका अफसर, जो कानूनके अनुसार उनका रक्षक समझा जाता था, गिरमिट रद कर दे, या दूसरेके नामपर चढा दे अथवा मालिक खुद उसे छोडनेके लिए तैयार हो जाय। मैं मालिकसे मिला और उससे कहा—"मैं आपको सजा कराना नही चाहता। आप जानते है कि उसे सख्त चोट पहुंची है। यदि आप उसकी गिरमिट दूसरेके नाम चढानेको तैयार होते हो तो मुझे संतोष हो जायगा।" मालिक भी यही चाहता था। फिर मैं उस रक्षक अफसरसे मिला। उसने भी रजामंदी तो

जाहिर की, पर इस शर्तपर कि मैं बालासुदरम्‌के लिए नया मालिक ढूढ दू ।

अब मुझे नया अग्रेज मालिक खोजना था । भारतीय लोग गिरमिटियोको रख नही सकते थे । अभी थोडे ही अग्रेजोसे मेरी जान-पहचान हो पाई थी । फिर भी एकसे जाकर मिला । उसने मुझपर मेहरबानी करके बालासुदरम्‌को रखना मजूर कर लिया । मैंने कृतज्ञता प्रदर्शित की । मजिस्ट्रेटने मालिकको अपराधी करार दिया और यह बात नोट कर ली कि अपराधीने बालासुदरम्‌की गिरमिट दूसरोके नामपर चढा देना स्वीकार किया है ।

बालासुदरम्‌के मामलेकी बात गिरमिटियोमे चारो ओर फैल गई और मैं उनके बधुके नामसे प्रसिद्ध हो गया । मुझे यह सबध प्रिय हुआ । फलत मेरे दफ्तरमे गिरमिटियोकी बाढ आने लगी और मुझे उनके सुख-दुख जाननेकी बडी सुविधा मिल गई ।

बालासुदरम्‌के मामलेकी ध्वनि ठेठ मदरास तक जा पहुची । उस इलाकेके जिन-जिन जगहोमे लोग नेटालकी गिरमिटमे गये उन्हें गिरमिटियोने इस बातका परिचय कराया । मामला कोई इतना महत्त्वपूर्ण न था, फिर भी लोगोको यह बात नई मालूम हुई कि उनके लिए कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता तैयार हो गया है । इस बातसे उन्हे तसल्ली और उत्साह मिला ।

मैंने लिखा है कि बालासुदरम् अपना फेटा उतारकर उसे अपने हाथमें रखकर मेरे सामने आया था । इस दृश्यमे बडा ही करुण रस भरा हुआ है । यह हमे नीचा दिखानेवाली बात है । मेरी पगडी उतारनेकी घटना पाठकोको मालूम ही है । कोई भी गिरमिटिया तथा दूसरा नवागत हिदुस्तानी किसी गोरेके यहा जाता तो उसके सम्मानके लिए पगडी उतार लेता—फिर टोपी हो या पगडी, अथवा फेटा हो । दोनो हाथोसे सलाम करना काफी न था । बालासुदरम्‌ने सोचा कि मेरे सामने भी इसी तरह

जाया जाता होगा। बालासुदरम्‌का यह दृश्य मेरे लिए पहला अनुभव था। मैं शर्मिन्दा हुआ। मैंने बालासुदरमसे कहा, "पहले फेटा सिरपर बाध लो।" बडे सकोचसे उसने फेटा बाधा, पर मैंने देखा कि इससे उसे बडी खुशी हुई। मैं अबतक यह गुत्थी न सुलझा सका कि दूसरोको नीचे झुकाकर लोग उसमे अपना सम्मान किस तरह मान सकते होगे। (आ० क०, १९२७)

: १२५ :

घनश्यामदास बिड़ला

वल्लभभाई—"मगर पुरुषोत्तमदास और बिड़लाका क्या हाल है?"

बापूने कहा ये लोग होरको कोई वचन दे चुके हो ऐसी बात नही है। मगर कमजोरी आ गई होगी। बिडला होरके हाथ बिक जाय तो उसे आत्म-हत्या करनी चाहिए। और अभी तो मालवीयजी बाहर बैठे है। बिडला मालवीयजी से पूछे बिना एक कदम भी रखे ऐसा आदमी नही है। नही, मुझे भरोसा है कि व्यापारियोमे ये लोग नही है। (म० डा०, १५ ७ ३२)

.. . ...

इस सस्थाका जन्म सेठ शिवनारायणजीके दो पौत्र रामेश्वरदास और घनश्यामदासकी पढनेकी इच्छामेसे हुआ। सेठजीको यह अच्छा नही लगा कि केवल उनके पौत्र ही पढे और गावके दूसरे लडकोको इसका लाभ न मिले। पाच रुपये मासिकका उन्होने एक शिक्षक रखा और बिडला-पाठशाला खोल दी। इसी बीजमेसे निकलकर यह महावृक्ष इतना बडा हुआ है। स्वार्थके साथ परोपकारका मेल

साधना बिडला-वधुओंके स्वभावमे उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदिमे अधिक-से-अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदासने ली और पिलानी की विशाल शिक्षण-सस्थामे घनश्यामदासजीने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगाई और ध्यान दिया, उसके लिए सस्था उनकी आभारी है। सर मॉरिस ग्वायर वगैरह यह सस्था देख आये है और उन्होने इसकी मुक्त कठसे प्रशसा की है । इस कॉलेजको सब तरहसे आदर्श कॉलेज बनानेका घनश्यामदासजीका बरसोसे प्रयास चल रहा है। पर चूकि पिलानी एक देशी रियासतके अतर्गत है, इसलिए सब धीमे-धीमे ही होता है। आशा है कि ऐसी अच्छी शिक्षण-प्रवृत्तिको जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कॉलेजको पूर्ण बनानेकी इजाजत भी तुरत दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यानसे चलनेवाली सस्थाए हिदुस्तानमे थोडी ही है।

आधुनिक कॉलेजोकी अगर आवश्यकता स्वीकार की जाए तो बिडला-कॉलेजमें जितनी चीजोका मेल किया गया है, दूसरी जगह वह शायद ही देखनेमे आयेगा। (ह० से०, २७.७ ४०)

: १२६ :

बृजकिशोर

बृजकिशोरबाबू दरभगासे और राजेद्रबाबू पुरीसे यहा आए। यहा जो मैंने देखा तो यह लखनऊवाले बृजकिशोरप्रसाद नही थे। उनके अदर बिहारीकी नम्रता, सादगी, भलमनसी और साधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे फूल उठा। बिहारी वकील-मडलका उनके प्रति आदर-भाव देखकर मुझे आनद और आश्चर्य दोनो हुए।

तबसे इस वकील-मडल और मेरे बीच जन्म-भरके लिए स्नेह-गाठ

वध गई। वृजकिशोरबाबूने मुझे सब बातोंसे वाकिफ करा दिया। वह गरीब किसानोंकी तरफ से मुकदमे लड़ते थे। ऐसे दो मुकदमे उस समय चल रहे थे। ऐसे मुकदमोंके द्वारा वह कुछ व्यक्तियोंको राहत दिलाते थे, पर कभी-कभी इसमें भी असफल हो जाते थे। इन भोले-भाले किसानोंसे वह फीस लिया करते थे। त्यागी होते हुए भी वृजकिशोरबाबू या राजेंद्रबाबू फीस लेनेमें संकोच न करते थे। "पेशेके काममें अगर फीस न लें तो हमारा घर-खर्च नही चल सकता और हम लोगोंकी मदद भी नही कर सकते।"—यह उनकी दलील थी। उनकी तथा बंगाल-बिहारके बैरिस्टरोंकी फीसके कल्पनातीत अंक सुनकर मैं तो चकित रह गया। " को हमने 'ओपीनियन' के लिए दस हजार रुपये दिए।' हजारोंके सिवाय तो मैंने बात ही नही सुनी।

इस मित्र-मंडलने इस विषयमें मेरा मीठा उलाहना प्रेमके साथ सुना। उन्होंने उसका उलटा अर्थ नहीं लगाया।

मैंने कहा—"इन मुकदमोंकी मिसलें देखनेके बाद मेरी तो यह होती है कि हम यह मुकदमेबाजी अब छोड़ दें। ऐसे मुकदमोंसे बहुत कम लाभ होता है। जहां प्रजा इतनी कुचली जाती है, जहां सब लोग इतने भयभीत रहते हैं, वहां अदालतोंके द्वारा बहुत कम राहत मिल सकती है। इसका सच्चा इलाज तो है लोगोंके दिलसे डरको निकाल देना। इस-लिए अब जबतक यह 'तीन कठिया' प्रथा मिट नहीं जाती तबतक हम आरामसे नहीं बैठ सकते। मैं तो अभी दो दिनमें जितना देख सकूं, देखने-के लिए आया हूं, परंतु मैं देखता हूं कि इस काममें दो वर्ष भी लग सकते हैं, परंतु इतने समयकी भी जरूरत हो तो मैं देनेके लिए तैयार हूं। यह तो मुझे सूझ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए, परंतु आपकी मददकी जरूरत है।"

मैंने देखा कि वृजकिशोरबाबू निश्चित विचारके आदमी हैं। उन्होंने शांतिके साथ उत्तर दिया—"हमसे जो-कुछ बन सकेगा वह मदद हम

जरूर करेगे, परतु हमे आप वतलाइए कि आप किस तरहकी मदद चाहते है।"

हम लोग रात-भर वैठकर इस विषयपर विचार करते रहे। मैने कहा—"मुझे आपकी वकालतकी सहायताकी जरूरत कम होगी। आप जैसोसे मै लेखक और दुभाषिएके रूपमे सहायता चाहता हू। सभव है, इस काममे जेल जानेकी भी नौवत आजाय। यदि आप इस जोखिममे पड सके तो मै इसे पसद करूगा, परतु यदि आप न पडना चाहे तो भी कोई वात नही। वकालतको अनिश्चित समयके लिए वद करके लेखकके रूपमे काम करना भी मेरी कुछ कम माग नही है। यहाकी वोली समझने-मे मुझे वहुत दिक्कत पडती है। कागज-पत्र सव उर्दू या कैथीमे लिखे होते है, जिन्हे मै पढ नही सकता। उनके अनुवादकी मै आपसे आशा रखता हू। रुपये देकर यह काम कराना चाहे तो वह अपने सामर्थ्यके वाहर है। यह सव सेवा-भावसे विना पैसेके होना चाहिए।"

वृजकिशोरवावू मेरी वातको समझ तो गये, परतु उन्होने मुझसे तथा अपने साथियोसे जिरह शुरू की। मेरी वातोका फलितार्थ उन्हें वताया। मुझसे पूछा—"आपके अदाजमे कवतक वकीलोको यह त्याग करना चाहिए, कितना करना चाहिए, थोडे-थोडे लोग थोडी-थोडी अवधि-के लिए आते रहे तो काम चलेगा या नही?" इत्यादि। वकीलोसे उन्होने पूछा कि आप लोग कितना-कितना त्याग कर सकेगे?

अतमे उन्होने अपना यह निश्चय प्रकट किया—"हम इतने लोग तो आप जो काम सौपेगे करनेके लिए तैयार रहेगे। इनमेसे जितनोको आप जिस समय चाहेगे आपके पास हाजिर रहेगे। जेल जानेकी वात अलवत्ता हमारे लिए नई है, पर उसकी भी हिम्मत करनेकी हम कोशिश करेगे।" (आ० क०, १९२७)

•

वृजकिशोरवावू और **राजेंद्रवावू**की जोडी अद्वितीय थी। उन्होने

प्रेममे मुझे ऐसा अपग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०, १९२७)

: १२७ :

ए० डब्ल्यू० बेकर

मि० बेकर वकील और साथ ही कट्टर पादरी भी थे। अभी वह मौजूद है। अब तो सिर्फ पादरीका ही काम करते है। वकालत छोड दी है। खा-पीकर सुखी है। अबतक मुझसे चिट्ठी-पत्री करते रहते है। चिट्ठी-पत्रीका विषय एक ही होता है। ईसाई-धर्मकी उत्तमताकी चर्चा वह भिन्न-भिन्न रूपमे अपने पत्रोमे किया करते है और यह प्रतिपादन करते है कि ईसामसीहको ईश्वरका एकमात्र पुत्र तथा तारनहार माने बिना परमशान्ति कभी नही मिल सकती।

हमारी पहली ही मुलाकातमे मि० बेकरने धर्म-सबधी मेरी मनोदशा जान ली। मैंने उनसे कहा—"जन्मत मैं हिंदू हू, पर मुझे उस धर्मका विशेष ज्ञान नही। दूसरे धर्मोका ज्ञान भी कम है। मै कहा हू, मुझे क्या मानना चाहिए, यह सब नही जानता। अपने धर्मका गहरा अध्ययन करना चाहता हू। दूसरे धर्मोका भी यथाशक्ति अध्ययन करनेका विचार है।"

यह सब सुनकर मि० बेकर प्रसन्न हुए और मुझसे कहा—"मै खुद 'दक्षिण अफ्रीका जनरल मिशन' का एक डाइरेक्टर हू। मैंने अपने खर्चसे एक गिरजा बनाया है। उसमे मै समय-समयपर धर्म-सबधी व्याख्यान दिया करता हू। मै रग-भेद नही मानता। मेरे साथ और लोग भी काम करनेवाले है। हमेशा एक बजे हम कुछ समयके लिए मिलते है और

आत्माकी शाति तथा प्रकाश (ज्ञानके उदय) के लिए प्रार्थना करते है। उसमे आप आया करेगे तो मुझे खुशी होगी। वहा अपने साथियोका भी परिचय आपसे कराऊगा। वे सब आपसे मिलकर प्रसन्न होगे और मुझे विश्वास है कि आपको भी उनका समागम प्रिय होगा। आपको कुछ धर्म पुस्तके भी मै पढनेके लिए दूगा, परतु सच्ची पुस्तक तो बाइबिल ही है। मै खास तौरपर सिफारिश करता हू कि आप इसे पढे।"

मैने मि० बेकरको धन्यवाद दिया और कहा कि जहा तक हो सकेगा आपके मडलमे एक बजे प्रार्थनाके लिए आया करूगा। (आ० क० १९२७)

• •

मेरे भविष्यके सबधमे मि० बेकरकी चिता दिन-दिन बढती जा रही थी। वह मुझे वेलिंग्टन कन्वेशनमे ले गये। प्रोटेस्टेट ईसाइयोमे, कुछ-कुछ वर्षो बाद धर्म-जागृति अर्थात् आत्मशुद्धिके लिए विशेष प्रयत्न किए जाते है। इसे धर्मका पुन प्रतिष्ठा अथवा धर्मका पुनरुद्धार कहा करते है। ऐसा एक सम्मेलन वेलिग्टनमे था। उसके सभापति वहाके प्रख्यात धर्मनिष्ठ पादरी रेवरड एड्रू मरे थे। मि० बेकरको ऐसी आशा थी कि इस सम्मेलनमे होनेवाली जागृति, वहा आनेवाले लोगोका धार्मिक उत्साह, उनका शुद्ध भाव, मुझपर ऐसा गहरा असर डालेगा कि मै ईसाई हुए बिना न रह सकूगा।

परतु मि० बेकरका अतिम आधार था प्रार्थना-बल। प्रार्थनापर उनकी भारी श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि अत करण-पूर्वक की गई प्रार्थनाको ईश्वर अवश्य सुनता है। वह कहते, "प्रार्थनाके ही बलपर मुलर (एक विख्यात भावुक ईसाई) जैसे लोगोका काम चलता है।" प्रार्थनाकी यह महिमा मैने तटस्थ भावसे सुनी। मैने उनसे कहा कि मेरा अतरात्मा पुकार उठे कि मुझे ईसाई हो जाना चाहिए तो दुनियाकी कोई शक्ति मुझे रोक नही सकती। अतरात्माकी पुकारके अनुसार चलनेकी

आदत तो मै कितने ही वर्षोसे डाल चुका था। अतरात्माके अधीन होते हुए मुझे आनद आता। उसके विपरीत आचरण करना मुझे कठिन और दु खदाई मालूम होता था।

हम वेलिंग्टन गये। मुझ 'श्यामल साथी' को साथ रखना मि० बेकरके लिए भारी पडा। कई वार उन्हे मेरे कारण असुविधा भोगनी पडती। रास्तेमें हमे मुकाम करना पडा था, क्योकि मि० वेकरका सघ रविवारको सफर न करता था और बीचमे रविवार पड गया था। बीचमे तथा स्टेशनपर मुझे होटलवालेने होटलमें ठहरनेसे तथा चख-चख होनेके वाद ठहरनेपर भी भोजनालयमे भोजन करने देनेसे इन्कार कर दिया, पर मि० बेकर आसानीसे हार माननेवाले न थे। वह होटलमे ठहरनेवालोके हकपर अडे रहे, परतु मैने उनकी कठिनाइयोका अनुभव किया। वेलिंग्टनमे भी मै उनके पास ही ठहरा था। वहा उन्हे छोटी-छोटी-सी वातोमे असुविधा होती थी। वह उन्हे ढाकनेका शुभ प्रयत्न करते थे, फिर भी वे मेरे ध्यानमे आ जाया करती थी। (आ० क०, १९२७)

: १२८ :

एनी बेसन्ट

हम ऐसे कई बूढोको जानते है जिनमे जवानी की उद्यम-प्रियता पाई जाती है और कई ऐसे नौजवानोको देखते है, जो जवान होते हुए भी उद्यम की दृष्टिसे बूढोके समान शिथिल होते है। विदुषी एनी बेसन्ट वृद्ध होती हुई भी जवानके बराबर काम करती है। समयकी पाबदी और सुरक्षामे उनकी बराबरी करनेवाले बहुत थोडे आदमी पाए जाते है। जोशमें भी वह किसीसे कम नही है। (हि० न०, ७ ३ २९)

: १२६ :

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी आवाज आज सुनाई नही देती है। उनके और मेरे मतोके बीच आज उत्तर और दक्षिण ध्रुवोके जितना अतर है। पर मतोके बीच अतर होनेसे ही परस्पर शत्रुता का भाव या व्यवहार होना वही उचित नही है। मुझे स्मरण है जब मै बालक था तब सुरेन्द्रनाथ देशकी वह सेवा कर रहे थे, जिसका हमे कृतज्ञ होना चाहिए। (कलकत्ता-भाषण, १२ १२ २०)

•

'बगालके देव' सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीसे तो मिलना ही था। उनसे जब मै मिलने गया तब दूसरे मिलनेवाले उन्हे घेरे हुए थे। उन्होने कहा, "मुझे अदेशा है कि आपकी बातमे यहाके लोग दिलचस्पी न लेगे। आप देखते ही है कि यहा हम लोगोको कम मुसीबते नही है। फिर भी आपको तो भरसक कुछ-न-कुछ करना ही है। इस काममे आपको महाराजाओकी मदद की जरूरत होगी। 'ब्रिटिश इडिया एसोसियेशन' के प्रतिनिधियोसे मिलिएगा। राजा सर प्यारीमोहन मुकर्जी और महाराजा टागोरसे भी मिलिएगा। दोनो उदार हृदय है और सार्वजनिक कामोमे अच्छा भाग लेते है।" मै इन सज्जनोसे मिला, पर वहा मेरी दाल न गली। दोनोने कहा, "कलकत्तामे सभा करना आसान बात नही, पर यदि करना ही हो तो उसका बहुत-कुछ दारोमदार सुरेद्रनाथ बैनर्जीपर है।" (आ० क०, १९२७)

•

सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी मृत्यु क्या हुई मानो भारतके राजनैतिक जीवनसे ऐसा पुरुष उठ गया जो अपने व्यक्तित्वकी गहरी छाप उसपर छोड

गया है। नये आदर्श और नई आशाए ली हुई जनताकी नजरोमे यदि वे पीछे हट गये तो क्या हुआ? हमारा वर्त्तमान हमारे भूतकालका ही तो परिणाम है। सर सुरेन्द्रनाथ-जैसे पथ-दर्शक लोगोके वहुमूल्य कार्यके विना वर्तमान समयके आदर्श और उच्च आकाक्षाओका होना सभव ही न था। एक ऐसा समय था जवकि विद्यार्थी लोग उनको अपना आराध्य देव समझते थे, जवकि देशके राष्ट्रीय कामोमे उनकी सलाह लेना अनिवार्य समझा जाता था और उनके वक्तृत्वसे लोग मत्र-मुग्धसे हो जाते थे। जव हमे वग-भगके समय की दिल दहला देनेवाली घटनाओका स्मरण होता है तव उसके साथ ही सर सुरेन्द्रकी उस समय की गई अनुपम सेवाओकी स्मृति, कृतज्ञता और अभिमान-पूर्वक हुए विना नही रह सकती। ऐसे ही समयमे सर सुरेन्द्रनाथको अपने कृतज्ञ देश-वधुओसे 'कभी न झुकनेवाला' की पदवी मिली थी। वग-भगके युद्धकी भीषण स्थितिमे भी सर सुरेन्द्र-कभी डावाडोल न हुए, कभी निराश न हुए। वे अपनी पूरी शक्तिके साथ उस आदोलनमे कूद पडे थे। उनके उत्साहसे सारे वगालमे उत्साह फैल गया। सरकारकी 'नान्यथा' को 'अन्यथा' करनेके दृढ सकल्पमे वे अचल रहे। उन्होने हमको हिम्मत और दृढताकी शिक्षा दी। उन्होने हमे मदान्ध अधिकारियो से 'नही' कहना सिखलाया।

राजनैतिक क्षेत्रके अनुसार ही शिक्षा-विभागमे भी उनका काम वहुत ऊचे दरजेका था। रिपन कालेजके द्वारा हजारो विद्यार्थियोको उनकी सीधी देख-रेख और लगातार असरमे रहनेके कारण वडी उदार शिक्षा मिली। अपने नियमित जीवन के कारण वे हमेशा तदुरुस्त और सशक्त वने रहे और उन्हे दीर्घ जीवन---हिंदुस्तानमे समझा जानेवाला दीर्घ जीवन---मिला। अत समय तक वे अपनी मानसिक शक्तियोको कायम रख सके। ७७ वर्षकी उमरमे अपने दैनिक 'वगाली' पत्रका सपादन-भार लेना कोई मामूली शक्ति का काम न था। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कायम रहनेके सवधमे उनकी ऐसी दृढ धारणा थी कि दो मास

पहले जब मुझे बारकपुरमे उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होने मुझसे कहा था कि मै ९१ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेकी उम्मीद करता हू। इसके बाद मुझे जीनेकी इच्छा नही है; क्योकि उसके बाद मेरी शक्ति कायम न रह सकेगी। पर भाग्य ने तो उसका उलटा कर दिखाया। बिना सूचना दिए ही उसने उन्हे हममे छीन लिया। किसी को इसकी कल्पना तक न थी। गुरुवार ता० ६ के प्रातःकालतक उनकी मृत्यु का कोई चिह्न दिखाई नही दिया। यद्यपि आज उनका शरीर हमारे बीचमे नही है तो भी उनकी देश-सेवा तो कभी भुलाई नही जा सकती। वर्तमान भारतके निर्माण करनेवालोमे उनका नाम सदा अमर रहेगा।
(हि० न०, २० ८ २५)

: १३० :

जनरल बोथा

दक्षिण अफ्रीकाका जनरल बोथा कौन था? वह भी तो बारडोलीके किसानोके समान एक किसान ही था। वह ४०,००० भेडे रखता था। भेडोकी परीक्षा करनेमे उसके जैसा कोई चतुर न था। यद्यपि उसकी कीर्ति तो योद्धाकी हैसियतसे फैली, पर उसके जीवनमे लडनेके प्रसग तो बहुत कम आए। उसके जीवनका अधिकाश भाग रचनात्मक कामोमें ही व्यतीत हुआ। इतना भारी व्यवसाय करने वाले के लिए कितने रचना-कौशलकी जरूरत पडी होगी? ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३९)

: १३१ :

सुभाषचन्द्र बोस

प्र०—क्या सुभाषबाबूका यह कहना सही नहीं है कि काग्रेसके सत्ताधारी नेताओंकी—जिनमें आप भी शामिल है—मनोवृत्ति सुधारवादी और नरम है ?

उ०—अवश्य सही है। दादाभाई नौरोजी एक महान् सुधारवादी थे। गोखले नरम दलके एक महान् प्रतिनिधि थे। इसी तरह बबई प्रातके बेताजके बादशाह फीरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी नरम थे। अपने समयमे वे ही राष्ट्रके लिए लडनेवाले थे। हम उन्हीके उत्तराधिकारी है। वे न होते तो हम भी न होते। सुभाषबाबू आगे बढनेकी अधीरतामें यह भूल जाते है कि मेरे जैसे लोग सुधारवादो और नरम मनोवृत्तिके होते हुए भी उनके साथ देशभक्तिमे होड लगा सकते है। मगर मैंने उनसे कहा है कि आपके सामने जवानी है, आपमें जवानीका जोश होना ही चाहिए। मैंने या और किसीने उनका हाथ नही पकड रखा है। वे ऐसे आदमी भी नही है, जिन्हे पकड़कर रखा जा सके। उन्हें उनकी दूरदेशीने ही रोक रखा है और इस तरह वे भी उतने ही सुधारवादी और नरम है जितना मै हू। अतर इतना ही है कि उनमें जो गुण हैं उन्हे अनुभवी होनेके कारण मैं जानता हू, पर जवानी के जोशमे वे नही देख सकते। सुभाषबाबूका और मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग होते हुए और उनपर काग्रेसकी तरफसे प्रतिबध होनेपर भी मेरा निमत्रण है कि वे शात युद्धमे अपना जौहर बताए तो फिर लेखक देखेग कि मै उनके पीछे-पीछे चल रहा हू। मै उनसे आगे निकल गया तो वे मेरे पीछे-पीछे चलेंगे, यह मुझे भरोसा है। मगर मुझे तो इसी आशा पर जीना है कि हम अपना समान ध्येय दूसरी लड़ाईके विना ही प्राप्त कर लेंगे।

वर्धा लौटते हुए नागपुर-स्टेशनपर एक नवयुवकने यह सवाल पूछा कि कार्य-समितिने सुभाषबाबूकी गिरफ्तारीकी तरफ क्यो कुछ ध्यान नही दिया ? चूकि सोमवारका दिन था, मेरा मौन चल रहा था, मैने कुछ भी जवाब नही दिया। मगर नवयुवकका यह प्रश्न मुझे ठीक लगा। मैंने उसे ध्यानमे रख लिया। मेरे दिलमे जरा भी शक नही कि हजारो नही तो सैकड़ो लोग यही सवाल, जो इस नवयुवकने नागपुर-स्टेशनपर पूछा, अपने दिलमे पूछ रहे होगे। और यह बात है भी ठीक। सुभाषबाबू दो बार लगातार काग्रेसके राष्ट्रपति चुने जा चुके है। अपनी जिदगीमे उन्होने भारी आत्मबलिदान किया है। वह एक जन्म-जात नेता है। मगर सिर्फ इस वजहसे कि उनमे यह सब गुण है, यह साबित नही होता कि उनकी गिरफ्तारीके विरुद्ध कार्य-समिति अपनी आवाज ऊची करे। हा, यदि गुण-दोषका विचार करनेके बाद कार्य-समितिको ऐसा लगे कि अमुक गिरफ्तारी निदाके योग्य है तो वह जरूर उसकी ओर अपना ध्यान देगी। मगर सुभाषबाबूने काग्रेसकी आज्ञासे सरकारी कानूनका भग नही किया। उन्होने तो खुद कार्य-समितिकी आज्ञाका भी, साफ ऐलानके साथ और छाती ठोककर, उल्लघन किया है। अगर उन्होने इस घडी कोई दूसरी-तीसरी बिना पर लडाईके लिए कार्य-समितिसे आज्ञा मागी होती तो मेरा विचार है कि वह उसे देनेसे इन्कार ही करती। सुभाषबाबूने जो सवाल उठाया, वैसे तो उससे भी बडे महत्त्वके सैकडो सवाल शायद देशमें मिलेगे। मगर देशने इस समय केवल एक प्रश्नपर, यानी स्वतन्त्रताके प्रश्नपर अपना सारा ध्यान जमा दिया है। अवसर आनेपर इस सिल-सिलेमे सत्याग्रह शुरू करनेके लिए तैयारिया भी की जा रही है। इसलिए सुभाषबाबूने जो कदम उठाया है अगर उसके बारेमे कार्य-समिति कोई कार्रवाई करती तो वह सिर्फ यही हो सकती थी कि वह अपनी नापसदगी प्रकट करे। मगर उसे यह नही करना था। मै भी चाहता तो इस नव-युवकके सवालको जवाब दिए बिना ही रख छोडता। मगर मुझे लगा कि

इस गिरफ्तारीको इसके ठीक रूपमे जनताके आगे रखनेमे कुछ नुकसान नही। श्री सुभाषबाबू-जैसे बड़े आदमीकी गिरफ्तारी कोई ऐसी-वैसी बात नही है। मगर सुभाषबाबूने अपनी युद्धकी योजना खूब सोच-विचारके बाद और साहसके साथ गढी है। उनके ख्यालमे उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारीसे यह मानते है कि कार्य-समिति गलत रास्तेपर है, और 'टाल-मटोल' की नीतिसे कुछ भला होनेवाला नही। उन्होने साफ शब्दोमे मुझसे कह दिया था कि जो काम कार्य-समिति न कर सकी वह उसे करके बताएगे। उनका धीरज चला गया था और विलब वह सहन नही कर सकते थे। मैने जब उनसे कहा कि अगर उनकी योजनाके परिणाम-स्वरूप मेरी जिंदगीमे स्वराज मिल गया तो सबसे पहले उन्हे मेरी तरफसे धन्यवादका तार मिलेगा। और अगर उनके उठाए हुए युद्धके दरमियान मेरा विचार उनके जैसा हो गया तो मै खुले दिलसे उनका नेतृत्व स्वीकार करनेका ऐलान करूगा और उनके झडेके नीचे बतौर एक सिपाहीके आकर खुद भरती हो जाऊगा। लेकिन इसके साथ-साथ मैने उन्हे यह चेतावनी भी दी थी कि वह गलत रास्तेपर चढे है।

मगर मेरी राय कुछ बहुत मानी नही रखती। जबतक श्री सुभाष-बाबू किसी एक रास्तेको ठीक समझते है तबतक उस रास्तेपर डटे रहनेका उनका अधिकार और धर्म है, चाहे काग्रेसको वह पसद हो या न हो। मैने उनसे कहा कि यह अधिक ठीक होगा कि वह काग्रेसमेसे बिलकुल निकल जाए, मगर मेरी राय उन्हे जची नही। लेकिन यह सबकुछ होते हुए भी अगर उनका प्रयत्न सफल हो और हिंदुस्तानको स्वतत्रता मिल जाय तो उनका काग्रेसके विरुद्ध विद्रोह करना ठीक ही सिद्ध होगा और काग्रेस न सिर्फ उनके इस विद्रोहको क्षमा ही करेगी, बल्कि देशके तारनहारके तौरपर वह उनका स्वागत भी करेगी।

सत्याग्रहके युद्धमे आग्रह करके जेल जाना प्रशसनीय गिना जाता है। इसलिए देशके समान्य कानूनका भग करनेकी वजहसे किसीको कैदकी सजा

मिले तो उसके खिलाफ आवाज नही उठाई जा सकती। इसके विपरीत, गिरफ्तार होनेपर सविनय-भग करनेवालोको धन्यवाद देने और दूसरे काग्रेसवादियोको उनका अनुकरण करनेका निमत्रण देनेकी प्रथा रही है। यह स्पष्ट है कि सुभाषबाबूके बारेमे कार्य-समिति ऐसा नही कर सकती थी। मै यहा यह भी कह दू कि देशमे जगह-जगह जो गिरफ्तारिया आज हो रही है—और उनमे प्रख्यात काग्रेसके सदस्य भी शामिल है—उनके बारेमे भी कार्य-समितिने कोई कार्रवाई नही की। इसका मतलब यह नही कि कार्य-समितिको इससे आघात नही पहुचा, मगर जीवन-सग्राममे कईएक अन्यायोका मूक सहन करना कभी-कभी धर्म हो जाता है। अगर वह इरादतन सहन किया जाए तो उसमेसे एक बडी शक्ति पैदा होगी। (ह० से०, १३ ७ ४०)

•

नेताजीके जीवनसे जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनकी अपने अनुयायियोमे ऐक्यभावनाकी प्रेरणाविधि, जिससे कि वे सब साम्प्रदायिक तथा प्रातीय बधनोसे मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्यके लिए अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हे निस्सदेह इतिहासके पन्नोमे अमर रखेगी।

नेताजीके प्रत्येक अनुगामीने जो भारत लौटनेपर मुझसे मिले, निर्विवाद रूपसे यह कहा कि नेताजीका प्रभाव उनपर जादू-सा करता था और वे उनके अधीन एकमात्र भारतकी आजादी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे काम करते थे। उनके दिलोमे साप्रदायिक और प्रातीय या और कोई भी भेद-भाव कभी भी अकुरित नही हुआ था।

नेताजी एक महान गुणवान पुरुष थे। वे व्युत्पन्नमति और प्रतिभा-सपन्न थे। उन्होने आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की, किंतु नौकरी उन्होने नही की। भारत लौटनेपर वे देशबधुदाससे प्रभावित हुए और कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त हुए। बादमे

वे राष्ट्रीय महासभाके भी दो वार राष्ट्रपति बने, परतु उनकी उल्लेखनीय सफलताओमे, भारतसे वाहरके, उस समयके कार्य हैं, जब वे देशसे भागे और कावुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशोमे होकर अतमें जापान पहुचे। विदेशी चाहे कुछ भी कहे, पर मै विश्वासके साथ यह अवश्य कहूगा कि आज भारतमे एक भी ऐसा आदमी नही है जो उनके इस प्रकार भागनेको अपराध मानता है। 'समरथको नहि दोष गुसाईं'—सत तुलसीदासके इस कथनके अनुसार नेताजी पर भागनेका दोष नही लगाया जा सकता। जब सर्वप्रथम उन्होंने सेना तैयार की तो उसकी तुच्छ सख्या की उन्होंने कोई चिंता नही की। उनका निश्चय था कि सख्या चाहे कितनी ही कम क्यो न हो, पर भारतको आजाद करानेके लिए उन्हे सामर्थ्यभर यत्न करना ही चाहिए।

नेताजीका सबसे महान् और स्थिर रहनेवाला कार्य था सब प्रकारके जातीय और वर्गभेदका उन्मूलन। वह केवल बगाली ही नही थे। उन्होंने अपने आपको कभी सवर्ण हिंदू नही समझा। वह आमूलचूल भारतीय थे। इससे अधिक क्या कि उन्होंने अपने अनुगामियोमे भी यही आग प्रज्वलित की, जिससे प्रेरित होकर वे उनकी उपस्थितिमे सभी भेदभाव भूल गये थे और एकसूत्र होकर काम करते थे। ('नेताजी - हिज लाइफ एण्ड वर्क')

•

एक बात और। वह यह कि जो आजाद हिंद फौज सुभाषबाबूने बनाई थी और उसके लिए हम सब सुभाषबाबूकी होशियारी, बहादुरीकी तरीफ करते है और तारीफ करनेकी बात है, क्योकि जब वह हिंदुस्तानसे बाहर था तब उसने सोचा कि चलो, थोडा फौजी काम भी कर लू। वह कोई लडवैया तो था नही। एक मामूली हिंदुस्तानी था। जैसे दूसरे वकील, बैरिस्टर रहते है वैसे सुभाषबाबू भी थे। फौजकी कोई तालीम तो पाई नही थी। हा, सिविल सर्विसमे जैसा आमतौरपर होता है, थोडी

घुडसवारी सीख ली होगी। लेकिन पीछे उन्होने फौजी-शास्त्र थोडा पढ लिया होगा। इस प्रकार उनके मातहत जो सेना बनी थी, मैं सुनता हू कि उसके दो बडे अफसर, जिनसे मैं जेलमे तथा उसके बाहर भी मिला था, काश्मीरपर हमला करनेवालोसे मिले हुए है। यह मुझको बहुत चुभता है। ये सुभाषबाबूके मातहत खास काम करनेवाले थे और हमेशा उनके साथ रहा करते थे। सुभाषबाबू लश्करसे कोई बात छिपाकर रख तो सकते नही थे, क्योकि उन्हे उनके मारफत काम लेना पडता था। वे आज लुटेरोके सरदार होकर जाते है तो मुझको चुभता है। अगर उनको अखबार मिलते है या जो मैं कहता हू उसको वे सुनले तो मैं अपनी यह नाकिस आवाज उनको पहुचाता हू कि आप इसमे क्यो पडते है और सुभाषबाबूके नामको क्यो डुबाते है ? आप ऐसा क्यो करते है कि हिंदूका पक्ष ले या मुसलमानका पक्ष ले ? आपको तो जातिभेद करना नही चाहिए। सुभाषबाबू तो ऐसे थे नही। उनके साथ हिंदू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे। वहा न हरिजनका भेद था, न इतरजनका। वहा तो हिंदुस्तानियोमे जातपातका कोई भेदभाव था ही नही। यो तो सब अपने धर्मपर कायम थे, कोई धर्म तो छोड बैठे थे नही। लेकिन सुभाषबाबूने कब्जा कर लिया था, उनके चित्तका हरण कर लिया था, शरीरका हरण नही किया था। ऐसा तो चलता नही था कि अगर आजाद हिंद फोजमे शामिल नही होता है तो काटो। लोगोको इस तरह काटकर वे हिंदुस्तानको रिहाई दिलानेवाले नही थे। इस तरहसे बडे हुए और बडप्पन पाया। तब आप इतने छोटे क्यो बनते है और इस छोटे काममे क्यो पडते है ? अगर कुछ करना ही है तो सारे हिंदुस्तानके लिए करो। वहा जो मुसलमान है, अफरीदी है, उनको कहे कि यह जाहिलपन क्यो करना ? लोगोको लूटना और देहातोको जलाना क्या ? चलो, महाराजासे मिले, शेख अब्दुल्लासे मिले, उनको चिट्ठी लिखे कि हम आपस मे मिलना चाहते है, हम यहा कोई लूट करने तो आए नही

हैं। आप इस्लामको दवाते हैं, इसलिए आपको वताने आए है। यह तो मै समझ सकता हू। तव तो आप सुभाषवावूका नाम उज्ज्वल करेंगे और उन अफरीदी लोगोके सच्चे शिक्षक वनेंगे। अफरीदी लोग कैसे रहते हैं, उनमे भी लुटेरे हैं या नही हैं, यह मैं नही जानता हू। लेकिन मेरी निगाहमे वे भी इन्सान हैं। उनके दिलमे भी वही ईश्वर या खुदा है, इसलिए वे सब मेरे भाई हैं। अगर मैं उनमे रहू तो उनसे कहूगा कि लूट क्या करना, एक-दूसरेपर गुस्सा क्या करना। मै यह तो कहता नही कि तुम्हारे पास जो वदूके या तलवारे है, उन्हे छोड दो। उनको रखो, लेकिन जो दूसरे लोग डरे हुए हैं, मुफलिस है, औरते है, वच्चे है, उनको वचानेके लिए। उसमे क्या है, चाहे वे हिंदू हो या मुसलमान। तो मै कहूगा कि ये जो दो अफसर है, जिनका नाम मैंने सुन लिया है, वे सुभाषवावूका नाम याद करे। वे तो मर गये, लेकिन उनका नाम नही मरा, काम तो नही मरा। (प्रा० प्र०, २ ११ ४७)

• • •

आज सुभाषवावूकी जन्म-तिथि है। मैंने कह दिया है कि मैं तो किसीकी जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि याद नही रखता। वह आदत मेरी नही है। सुभाषवावूकी तिथिकी मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वे हिंसाके पुजारी थे। मैं अहिंसाका पुजारी हू। पर इसमे क्या ? मेरे पास गुणकी ही कीमत है। तुलसीदासजीने कहा है न

"जड़-चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥"

हंस जैसे पानीको छोडकर दूध ले लेता है, वैसे ही हमे भी करना चाहिए। मनुष्यमात्रमे गुण और दोष दोनो भरे पडे है। हमें गुणोको ग्रहण करना चाहिए। दोषोको भूल जाना चाहिए। सुभाषवावू वडे देश-प्रेमी थे। उन्होने देशके लिए अपनी जानकी वाजी लगा दी थी और वह करके भी

बता दिया। वह सेनापति बने। उनकी फौजमे हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख सब थे। सब बगाली ही थे, ऐसा भी नही था। उनमें न प्रातीयता थी, न रगभेद, न जातिभेद। वे सेनापति थे, इसलिए उन्हे ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नही था (प्रा०, प्र०, २३ १ ४८)

: १३२ :

भगवान्‌दास

जब काशी विद्यापीठके अध्यापक कृपलानी और उनके विद्यार्थी पकडे गये, मैंने अपने मित्रोसे कहा था, "क्या ही अच्छा हो, यदि बाबू भगवान्‌दास गिरफ्तार हो जाय। आखिर अध्यापक कृपलानी बनारसके रहनेवाले है। लेकिन बाबू भगवान्‌दास नही पकडे जायगे।" उस समय मुझे यह पता नही था कि बाबू भगवान्‌दास ही उस पुस्तिकाके रचयिता थे, जिसे अध्यापक कृपलानी बेच रहे थे। पुस्तक लिखनेमें लेखकने बडी सावधानीसे काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्रका शुभ सवाद मुझे मिला कि बाबूजी पकडे गये। गिरफ्तारी पर वे सतुष्ट थे। बाबू भगवान्‌दास असहयोगी है—ऐसे असहयोगी जो मनसा, वाचा, कर्मणा हमेशा हिंसासे दूर रहते है। आप सस्कृत साहित्यके अच्छे पडित है। बडे ही धर्मनिष्ठ है। जमीदार है। श्रीमती बेसेट यदि सेंट्रल हिंदू कालेजकी जन्मदात्री है तो बाबू भगवान्‌दास उसके निर्माता है। अतएव उनकी गिरफ्तारी एक ऐसा बलिदान है जो ईश्वरको रुचिकर हुए बिना नही रह सकता। और वह पतित-पावनी विश्वनाथपुरी इससे अच्छा बलिदान और क्या करती? अख-

वारोके पढनेवाले लोग जानते ही होगे कि वावू भगवान्‌दास महासभाके द्वारा स्वराज्यकी योजना तैयार करानेका प्रयत्न कर रहे थे। उसके लिए आप स्वय भी दीर्घ परिश्रम कर रहे थे। आपने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नोकी एक लवी सूची भेजी है, जिसपर मैं इन वर्तमान घटनाओके कारण अभी तक कोई कार्रवाई नही कर सका। दगा-फसाद न होने देनेकी वे वडी चिंता रखते थे। यदि उनकी गिरफ्तारीसे भी सरकारकी हिंसा-काटको न्यौता देनेकी उत्सुकताका पता न चलता हो तो मैं नही कह सकता कि किस वातसे चलेगा! (हिं० न०, २५ १२ २१)

: १३३ :

गोकुलभाई भट्ट

सिरोही राजपूतानेकी एक रियासत है, जिसकी आवादी १,८६,६३९ और आमदनी ९, ७०, ०००) रु० है। अखवारोमे इसकी चर्चा उस लाठी-चार्जके लिए हुई है, जो एक सभामे और कहते है कि विना किसी उत्तेजनाके किया गया। श्री गोकुलभाई भट्टसे, जो सिरोहीके ही रहने-वाले है और एक सुयोग्य अध्यापक तथा वफादार कांग्रेस-कार्यकर्त्ताके रूपमें जिन्होने प्रसिद्धि पाई है, मुझे इस घटनाकी प्रामाणिक जानकारी मिली है। वह अहिंसाकी भावनामें ओतप्रोत है। हाल हीमे वह सिरोही गये है और प्रजाके लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे है। (ह० से०, २३ ९ ३९)

: १३४ :

भंसाली

सुबह घूमते समय भसालीभाईकी ही बातें होती रहीं। मेरे मनमें उनकी साधुताके प्रति बहुत मान रहा है। बापूके बाद मेरी नजरमें भंसालीभाई ही साधु हैं। बापू कहने लगे—

मै उसे अपनेसे ऊचा समझता हू। तीनो काल निर्भय रहता है। यह साधुका लक्षण है। वह जो कर सकता है, मै नही कर सकता।

मैंने पूछा, "भसालीभाईको क्या लगता होगा ?" बोले,

कुछ नही, वह तो महाभारतको भी घोटकर पी गया है। महाराष्ट्रियोमे धर्म-ग्रथोमेसे अद्भुत नतीजे निकालनेकी विलक्षण क्षमता है। (का० क०, २४ ११.४२)

• •

भसालीकी मृत्युकी खबर आवेगी तो मेरा हृदय काप भले ही उठे, मगर खुशीसे नाचेगा भी। ऐसी सपूर्ण अहिसक मृत्यु आजतक हुई ही नही है। भसालीको मै जानता हू। उसके हृदयमे वैरभावका लेश भी नही है। हमारे लोगोमे इतना मैल भरा है कि उसे निकालनेके लिए कइयोको तो जल मरना होगा। (का० क०, २४ १२ ४२)

•

: १३५ :

बड़े भाई

बडे भाईने तो मुझपर बहुतेरी आशाए बाध रखी थी। उन्हें धनका, कीर्तिका और ऊचे पदका लोभ बहुत था। उनका हृदय बादशाहके जैसा था। उदारता उडाऊपनतक उन्हे ले जाती। इसमे तथा उनके भोलेपनके कारण मित्र बनाते उन्हे देर न लगती। उन मित्रोके द्वारा उन्होने मेरे लिए मुकदमे लानेकी नजर्बाज कर रखी थी। उन्होने यह भी मान लिया था कि मै खूब रुपया कमाने लगूगा और इस भरोसेपर उन्होने घरका खर्च भी खूब बढा लिया था। मेरे लिए वकालतका क्षेत्र तैयार करनेमें भी उन्होने कमर न उठा रखी थी।

इधर जातिका झगडा अभी खडा ही था। उसमे दो दल हो गये थे। एक दलने मुझे तुरत जातिमे ले लिया। दूसरा न लेनेके पक्षमे अटल रहा। जातिमे लेलेनेवाले दलको सतुष्ट करनेके लिए, राजकोट पहुचनेके पहले, भाईसाहब मुझे नासिक ले गये। वहा गगा-स्नान कराया और राजकोटमे पहुचते ही जाति-भोज दिया गया।

यह बात मुझे रुचिकर न हुई। बडे भाईका मेरे प्रति अगाध प्रेम था। मेरा खयाल है कि मेरी भक्ति भी वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छाको आज्ञा मानकर मै यत्रकी तरह बिना समझे, उसके अनुकूल होता चला गया। (आ० क०, १९२७)

'ट्रस्टी' यो करोडोकी सम्पत्ति रखते है, फिर भी उसकी एक पाईपर भी उनका अधिकार नही होता। इसी तरह मुमुक्षुको अपना आचरण रखना चाहिए—यह पाठ मैने गीताजीसे सीखा। अपरिग्रही होनेके लिए, सम-भाव रखनेके लिए, हेतुका और हृदयका परिवर्तन आवश्यक

है, यह वात मुझे दीपकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। बस, तुरत रेवाशकर भाईको लिखा कि बीमेकी पालिसी बद कर दीजिए। कुछ रुपया वापस मिल जाय तो ठीक, नही तो खैर। वाल-बच्चो और गृहिणी की रक्षा वह ईश्वर करेगा जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह आशय मेरे उस पत्रका था। पिताके समान अपने बडे भाईको लिखा—"आजतक मै जो कुछ बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा। अब मेरी आशा छोड दीजिए। अब जो-कुछ बच रहेगा वह यहीके सार्वजनिक कामोमे लगेगा।"

इस वातका औचित्य मै भाईसाहबको जल्दी न समझा सका। शुरूमे तो उन्होने बडे कडे शब्दोमे अपने प्रति मेरे धर्मका उपदेश दिया—"पिताजीसे बढकर अक्ल दिखानेकी तुम्हे जरूरत नही। क्या पिताजी अपने कुटुबका पालन-पोषण नही करते थे? तुम्हे भी उसी तरह घरबार सम्हालना चाहिए।" आदि। मैने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—"मै तो वही काम कर रहा हू, जो पिताजी करते थे। यदि कुटुबकी व्याख्या हम जरा व्यापक कर दे तो मेरे इस कार्यका औचित्य तुरत आपके खयालमें आ जायगा।"

अब भाईसाहबने मेरी आशा छोड दी। करीब-करीब अ-बोला ही रखा। मुझे इससे दुःख हुआ, परतु जिस वातको मैने अपना धर्म मान लिया, उसे यदि छोडता हू तो उससे भी अधिक दुःख होता था। अतएव मैने उस थोडे दुःखको सहन कर लिया। फिर भी भाईसाहबके प्रति मेरी भक्ति उसी तरह निर्मल और प्रचड रही। मै जानता था कि भाईसाहबके इस दुःखका मूल है उनका प्रेम-भाव। उन्हे रुपए-पैसेके सद्व्यवहारकी अधिक चाह थी।

पर अपने अतिम दिनोमे भाईसाहव मुझपर पसीज गये थे। जब वह मृत्यु-शय्यापर थे तब उन्होने मुझे सूचित कराया कि मेरा कार्य ही उचित और धर्म्य था। उनका पत्र बडा ही करुणाजनक था। यदि पिता पुत्रसे

माफी माग सकता हो तो उन्होने उसमे मुझसे माफी मागी थी। लिखा कि मेरे लडकोका तुम अपने ढगसे लालन-पालन और शिक्षण करना। वह मुझसे मिलनेके लिए बडे अधीर हो गये थे। मुझे तार दिया। मैंने तार द्वारा उत्तर दिया—"जरूर आजाइए।" पर हमारा मिलाप ईश्वरको मजूर न था।

अपने पुत्रोके लिए जो इच्छा उन्होने प्रदर्शित की थी वह भी पूरी न हुई। भाईसाहबने देशमे ही अपना शरीर छोडा था। लडकोपर उनके पूर्व-जीवनका असर पड चुका था। उनके सस्कारोमे परिवर्तन न हो पाया। मै उन्हे अपने पास न खीच सका। (आ० क० १९२७)

: १३६ :

रामकृष्ण भांडारकर

रामकृष्ण भाडारकर मुझसे उसी तरह पेश आए, जिस तरह पिता पुत्रसे पेश आता है। मै दोपहरके समय उनके यहा गया था। ऐसे समय भी मै अपना काम कर रहा था, यह बात इस परिश्रमी शास्त्रज्ञको प्रिय हुई और तटस्थ अध्यक्ष बनानेके मेरे आग्रहपर ('दैट्स इट', 'दैट्स इट') 'यही ठीक है', 'यही ठीक है' उद्गार सहज ही उनके मुहसे निकल पडे।

बातचीतके अतमे उन्होने कहा—

"तुम किसीसे भी पूछोगे तो वह कह देगा कि आजकल मै किसी भी राजनैतिक काममें नहीं पडता हू, परतु तुमको मै विमुख नहीं कर सकता। तुम्हारा मामला इतना मजबूत है और तुम्हारा उद्यम इतना स्तुत्य है कि मै तुम्हारी सभामें आनेसे इन्कार नहीं कर सकता। श्रीयुत तिलक और श्रीयुत गोखलेसे तुम मिल ही लिये हो, यह अच्छा

हुआ। उनसे कहना कि दोनो पक्ष जिस सभामें मुझे बुलावेंगे, आ मै जाऊगा और अध्यक्ष का स्थान ग्रहण कर लूगा। समयके बारेमें मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नही। जो समय दोनो पक्षोको अनुकूल होगा उसकी पाबदी मै कर लूगा।"

यह कहकर मुझे धन्यवाद और आशीर्वाद देकर उन्होने विदा किया। (आ० क०, १९२७)

: १३७ :

गोपीचन्द भार्गव

डॉ० गोपीचद मेरे साथी कार्यकर्ता है। मै उन्हे बहुत मानता हू। मै बरसोसे उन्हे एक योग्य सयोजकके नाते जानता हू, जिनका पजाबियोपर बडा प्रभाव है। उन्होने हरिजन-सेवक-सघ, अखिल भारत चरखा-सघ और अखिल भारत ग्रामउद्योग-सघके लिए काफी काम किया है। मुझे यह नही सोचना चाहिए कि पूर्वी पजाबका काम उनकी ताकतके बाहर है। लेकिन अगर पानीपत उनकी कार्य-कुशलताका नमूना न हो तो यह उनकी सरकारके लिए बडी बदनामीकी बात है। पहलेसे बिना सूचना दिए इतने निराश्रित पानीपतमे क्यो उतारे गए? उन्हे ठहरानेके लिए वहा नाकाफी बदोबस्त क्यो है? अफसरोको पहलेसे ही यह सूचना क्यो नही दी जानी चाहिए कि कौन और कितने निराश्रित पानीपत भेजे जा रहे है? उसके साथ ही कल मुझे यह भी सूचना मिली है कि गुडगाव जिलेमे तीन लाख ऐसे मुसलमान है, जिन्होने डरकर अपना घर-बार छोड दिया है। आम सडकके दोनो तरफ खुलेमे इस आशासे पडे है कि उन्हे अपने

औरत, बच्चो और मवेशियोके साथ पजावकी कडी सर्दीमें ३०० मीलका रास्ता तय करना है। मैं इस वातपर विश्वास नही करता। मेरा खयाल है कि मुझे दोस्तोने जो वात सुनाई है उसमे कुछ गलती है। अभी भी मैं आशा करता हू कि यह वात गलत है या वढा-चढा कर कही गई है। लेकिन पानीपतमे मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा यह अविश्वास डिग गया है। फिर भी मुझे आशा है कि डा० गापीचद और उनकी केविनेट समय रहते चेत जाएगे और तवतक चैन नही लेंगे, जवतक सारे निराश्रितोकी अच्छी देखभालका पूरा इतजाम नही हो जाता। यह वदोवस्त दूरदेशी और हद दरजेकी सावधानी से ही किया जा सकता है। (प्रा० प्र०, १०.११.४७)

: १३८ :

दो सच्चरित्र भारतवासी

मवक्किलोकी तो मेरे आस-पास भीड ही लगी रहती थी। इनमेसे लगभग सब या तो विहार इत्यादि उत्तर तरफके या तामिल-तेलगू इत्यादि दक्षिण प्रदेशके लोग थे। वे पहली गिरमिटमे आये थे और अव मुक्त होकर स्वतत्र पेशा कर रहे है।

इन लोगोने अपने दुखोको मिटानेके लिए भारतीय व्यापारी वर्गमे अलग अपना एक मडल वनाया था। उसमे कितने ही वडे सच्चे दिलके उदारभाव रखनेवाले और सच्चरित्र भारतवासी थे। उनके अध्यक्षका नाम था श्री जेरामसिंह और अध्यक्ष न रहते हुए भी अध्यक्षके जैसे ही दूसरे सज्जन थे श्री वदरी। अव दोनो स्वर्गवासी हो चुके है। दोनोकी तरफसे मुझे अतिशय सहायता मिली थी। श्री वदरीके परिचयमे मैं

बहुत ज्यादा आया था और उन्होंने सत्याग्रहमें आगे बढकर हिस्सा लिया था। इन तथा ऐसे भाइयोंके द्वारा मैं उत्तर-दक्षिणके बहु-सख्यक भारत-वासियोंके गाढ़ संपर्कमें आया और मैं केवल उनका वकील ही नहीं, बल्कि भाई बनकर रहा और उनके तीनों प्रकारके दु खोंमें उनका साझी हुआ। सेठ अब्दुल्लाने मुझे 'गांधी' नामसे संबोधित करनेसे इन्कार कर दिया। और 'साहब' तो मुझे कहता और मानता ही कौन ? इसलिए उन्होंने एक बड़ा ही प्रिय शब्द ढूढ निकाला। मुझे वे लोग 'भाई' कहकर पुकारने लगे। यह नाम अंत तक दक्षिण अफ्रीकामें चला। पर जब ये गिरमिट-मुक्त भारतीय मुझे 'भाई' कहकर बुलाते तब मुझे उसमें एक खास मिठास मालूम होती थी। (आ० क०)

: १३६ :

मजहरुलहक

मौलाना मजहरुलहक और मैं एक साथ लदनमें पढते थे। उसके बाद हम बबईमें १६१५ की कांग्रेसमें मिले थे। उस साल वह मुसलिम लीगके सभापति थे। उन्होंने पुरानी पहचान निकालकर जब कभी मैं पटना आऊं तो अपने यहां ठहरनेका निमत्रण दिया था। इस निमत्रणके आधार-पर मैंने उन्हें चिट्ठी लिखी और अपने कामका परिचय भी दिया। वह तुरत अपनी मोटर लेकर आए और मुझसे अपने यहां चलनेका आग्रह करने लगे। इसके लिए मैंने उनको धन्यवाद दिया और कहा—"मुझे अपने जानेके स्थानपर पहली ट्रेनसे रवाना कर दीजिए। रेलवे गाइडसे मुकामका मुझे कुछ पता नहीं लग सकता।" उन्होंने राजकुमार शुक्लके साथ बात की और कहा कि पहले मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन

गामको मुजफ्फरपुरकी गाडा जाती थी। उसमें उन्होने मुझे रवाना कर दिया। (आ० क०, १९२७)

मौलाना मजहरुलहकने मेरे सहायकके रूपमें अपना हक लिखवा रखा था और महीनेमें एक-दो बार आकर मुझसे मिल जाया करते। उस समयके उनके ठाट-बाट और शानमे तथा आजकी सादगीमें जमीन-आसमानका अतर है। वह हम लोगोमें आकर अपने हृदयको तो मिला जाते परतु अपने साहबी ठाट-बाटके कारण बाहरके लोगोको वह हमसे भिन्न मालूम होते थे। (आ० क०)

: १४० :

किशोरलाल मशरूवाला

वे एक पुराने कार्यकर्त्ता है और अभी-अभी तक गुजरात विद्यापीठके महामात्र (रजिस्ट्रार) थे। किंतु बीमारीके कारण उन्हे उस पदका त्याग करना पडा है। भारतमें चुप-चाप काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओमें से वे एक अत्यत विचारशील पुरुष है। हरएक शब्दको वे तौल-तौलकर लिखते और बोलते भी है। (हि० न०, २६ ५ २७)

•

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्त्ताओमेंसे एक है। काम करते हुए वह कभी थकते नही। वह अत्यत जागरूक रहते है। उनकी जाग्रत दृष्टिसे ब्यौरेकी कोई भी बात नही छूट पाती। वह एक तत्ववेत्ता है और गुजरातीके एक लोकप्रिय लेखक। गुजरातीके वह जैसे विद्वान है वैसे ही मराठीके भी है। वह जातीय, साम्प्रदायिक या

प्रातीय अहकार या दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त है। वह एक स्वतत्र चितक है। वह राजनीतिज्ञ नही, एक पैदाइशी समाज-सुधारक है। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी है। उनमे धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नही। वह जिम्मेदारी ओढने और विज्ञापनबाजीसे भागते है। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। बडी मुश्किलोसे मै उन्हे गाधी-सेवा-सघ-का अध्यक्ष बननेको राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल श्रद्धाके कारण ही सघको इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होने अपने स्वास्थ्यके प्रति पूरी लापरवाही (मै सार्वजनिक कार्यकर्तामे इसे कोई गुण नही, बल्कि अवगुण मानता हू) रखकर सदा अपना द्वार सत्यशोधकोके लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नही कि इस सबसे वह सघके एक अभिन्न अग बन गये। असीम सावधानीके साथ उन्होने सघ-के लिए एक ऐसा विधान बनाया जो ऐसी किसी भी सस्थाकेलिए नमूनेका काम दे सकता है। (ह० से०, २ ३ ४०)

श्री किशोरलालने एक स्वतत्र ग्रथ लिखा है। अगर उनका शरीर काम दे तो वे उस तरहकी और चीज लिख सकते है। उनके ग्रथको शास्त्र कहना शायद ठीक न हो, तो भी वह शास्त्रके नजदीककी चीज है, ऐसा तो माना जा सकता है। लेकिन इस वक्त जैसी उनकी तदुरुस्ती है, उसे देखते हुए मै मानता हू कि वे इस बोझको उठा नही सकेगे। मै तो उठानेको कहूगा ही नही। वे भी अपने समयको व्यर्थ नही जाने देते। अनेक मित्रोके जीवनकी समस्याओको सुलझानेमे उनका बहुत-सा समय बीत जाता है और दिनडूबे वे लस्त होकर पड जाते है। (ह० से०, ३ ३ ४६)

: १४१ :

जमशेद महता

जमशेद महताको पवित्र व्यक्ति मानता हूं। (म० ना०, १० १० ३०)

: १४२ :

ब्रजलाल महता

ब्रह्मदेशमे धनोपार्जनके लिए जाकर रहनेवाले अनेक हिन्दुस्तानी है। उनमेसे कुछने धधेके साथ सेवाको भी स्थान दिया है। उनमें से एक ब्रजलाल महता थे। कुछ ही दिन पहले उनका स्वर्गवास हो गया। वह महासभाका काम करते थे, पर हमे उसका पता नही। उनके पास दो पैसे थे। वह हरएक फडमे कुछ-न-कुछ देते और दूसरोसे दिलवाते। लेकिन इसके लिए वह सम्मानकी इच्छा नही रखते थे। दरिद्रनारायणके वह भक्त थे। खादीपर उनकी पूरी श्रद्धा थी और चर्खासघके वह प्रतिनिधि थे। जिसे सम्मानकी, पुरस्कारकी, इच्छा नही, जो सेवाके लिए ही सेवा करता है, वह वदनीय है। भाई ब्रजलाल महता ऐसोमे ही थे। उनके कुटुवको धन्यवाद। (हि० न०, ६ ८ ३१)

: १४३ :

दाऊद महमद

पहले सेठ दाऊद महमदका परिचय सुना दू। वह नेटाल इडियन काग्रेसके अध्यक्ष और दक्षिण अफ्रीकामे आए हुए व्यापारियोमे सबसे पुराने थे। वह सूरती सुन्नत जमातके वोहरा थे। बडे ही चतुर पुरुष। इस बातमे उनकी बराबरी करनेवाले बहुत ही थोडे भारतीय मैने दक्षिण अफ्रीकामे देखे। उनकी ग्राहकशक्ति बडी तेज थी। अक्षर-ज्ञान तो मामूली-सा था; पर अनुभवसे वह अग्रेजी और डच भी अच्छी तरह बोल सकते थे। अग्रेजी व्यापारियोके साथ अपना काम चलानेमे उन्हे जरा भी कठिनाई नही पडती थी। उनकी दानशीलता प्रसिद्ध थी। नित्य पचास महमान-से कम तो कभी उनके यहा होते ही नही थे। कौमी चदोमे उनका नाम अग्रसरोमे ही रहता। उनके एक लडका था। लडका क्या था, एक अमूल्य रत्न था। चारित्र्यमे उनसे भी श्रेष्ठ और हृदय स्फटिकके समान। उसके चारित्र्य वेगको दाऊद सेठने कभी नही रोका। दाऊद सेठ अपने लडकेकी पूजा करते थे, यह अत्युक्ति नही, यथार्थ सत्य है। वह चाहते थे कि उनका एक भी ऐब हसनको नही लगने पावे। इगलैड भेजकर उन्होने उसे बढिया शिक्षा दी। पर दुर्भाग्यसे दाऊद सेठ उस लडकेसे भरजवानीमे हाथ धो बैठे। हसनको क्षयने घेरा और उसका प्राण हरण कर लिया। वह घाव कभी नही भरा। हसनके साथ-साथ भारतीय जनताकी बडी-बडी आशाए मिट्टीमे मिल गई। हसनके लिए तो हिंदू और मुसलमान दोनो अपनी दाहिनी-बाई आखोके समान थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी नही रहे। (द० अ० स०, पृष्ठ ४२)

: १४४ :

बाई फातमा महेताब

न्यूकासलमें द्राविड वहनोको जेल जाते देखकर वाई फातमा महेताव-से न रहा गया। वह भी अपनी मा और सात वर्षके वच्चेको लेकर जेल जानेके लिए निकल पड़ी। मा-वेटी तो गिरफ्तार हो गई, पर सरकारने वच्चेको अदर लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने वाई फातमाकी उगलियोंकी छाप लेनेकी खूब कोशिश की, पर वे निडर रही और आखीरतक उन्होंने पुलिसको अपनी उगलियोकी छाप नही दी। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३)

: १४५ :

लुई माउंटबेटन

माउटवेटन यदि गवर्नर-जनरल वनते है तो वे हिंदुस्तानके खिदमत-गार या नौकर होकर ही वनते है। आप कह सकते है कि यह तो वच्चोको फुसलानेकी-सी वात हुई। जो माउटवेटन इगलैंडके शाही घरानेसे सवध रखते है वह क्या तुम्हारी नौकरी करनेवाले है, आप तो धोखा देते है! मुझे आपको धोखा देकर माउटवेटनसे कोई इनाम नही चाहिए। मै तो आजतक उनसे लड़ता आया हू तो आज उनकी खुशामद करनेकी मुझे क्या जरूरत पडी है? आप शायद यह कहेंगे कि काग्रेसी नेता उनके फुसलावेमे आ गए है। इसका मतलव यह हुआ कि जवाहरलालजी, सरदार और राजाजी ऐसे पागल है कि

अपना सब नूर गवाकर बैठे है, वे खुशामदी बन गये है। मै वहातक नही जा सकता। यह तो सही है कि मै जो चाहता था वह नही बना और बहुत दफा मै यह कह भी चुका हू। मगर मै हर चीजका सीधा मतलब निकालता हू। हम लोग माउटबेटनको गवर्नर-जनरल बनाते है इसीलिए तो वह बनते है। यदि हम न चाहते तो वह नही बन सकते। परन्तु जिन्ना साहबने यह सोचा होगा कि सारी दुनिया कैसे मानेगी कि मैने पाकिस्तान ले लिया, इसलिए मै क्यो न गवर्नर-जनरल बनू। हमे इसपर ईर्ष्या क्या करना और गुस्सा भी क्या करना। उनको गवर्नर-जनरल बनकर यह सारी दुनियाको बताना है कि इस्लाम क्या चीज है। यह देखना है कि वह वहाके खादिम बनने है या बादशाह।

अखबारोसे मुझे मालूम हुआ कि पहले हिदुस्तान और पाकिस्तान—दोनोके लिए एक ही गवर्नर-जनरल रखना तय हुआ था। मगर बादमे जिन्ना साहब मुकर गये। तब कौन उन्हे पाकिस्तानका गवर्नर-जनरल बननेसे रोकनेवाला था? मेरी निगाहमे उन्होने ठीक नही किया। एक दफा जब उन्होने कहा था तो माउटबेटनको बनने देते और पीछे यदि कोई गोलमाल होता तो उनको हटा देते। परन्तु अब इस्लामकी परीक्षा जिन्ना साहबके मार्फत होनेवाली है। सारी दुनियाके सामने वे पाकिस्तान स्टेटके गवर्नर-जनरल बन रहे है। अत पाकिस्तानकी खूबिया ही देखने-मे आनी चाहिए। काग्रेस तो हमेशा अग्रेजोसे लडती आई है। जवाहर-लालजी तो सीधे आदमी है, मगर सरदार तो हमेशा लडनेवाले है। वे तो मेरे साथ लडते थे कि तू इनका एतबार करता है। जब वही इनके दावमे आ गए तो आपकी तथा हमारी बात ही क्या है! जब वे यह कबूल करते है कि वाइसराय गवर्नर-जनरल बनकर रहे तो हमे कबूल करनेमे क्या सकोच है? हम देखते है कि वे हिदुस्तानके खादिम बनकर गवर्नर-जनरल हो रहे है या दगा देनेके लिए। एक नया अनुभव हमको मिलेगा। अत इसमे दूरदेशी है और फिर हम कुछ खोते तो है ही नही। आखिर

डोमीनियन स्टेट्स भी हमने उनके कहने पर स्वीकार किया है। वे एक वहुत वडे एडमिरल हैं, वडी लडाई लडनेवाले हैं। उनको हम रखे तो सही। यदि कोई वुराई निकली तो हम उनसे लड लेगे।

× × ×

जव मैं वाइसरायसे मिलने गया था तव उन्होने मुझसे कहा कि जिस लडके से एलिजावेथकी सगाई हुई वह मेरे लडके-जैसा ही है। आशा है, कल आप आशीर्वादके तौरपर कुछ शब्द लिखेगे। सो परसो जव वाइस-रायकी लडकी यहा आई तव मैने उसके हाथ मुवारकवादीका एक खत लिखकर भेज दिया। कितनी सादी लडकी है वह। प्रार्थनाके समय मैने उसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा, मगर कुर्सीपर न वैठकर वह हमारे साथ ही दरीपर वैठ गई। और फिर राजकुमारी अमृतकौरने तो आज मुझे यह भी वताया कि जिस लडकीकी सगाई हुई है वही इगलैडकी रानी वनेगी, क्योकि वादशाहके कोई लडका नही है। वाइसरायके भी कोई लडका नही है। खैर, वाइसराय अगर वुरा होता तो मै आशीर्वाद लिखकर क्यो भेजता? मै उसे वुरा नही मानता। उनकी जगह अगर जवाहरलालजी या सरदार पटेल गवर्नर-जनरल वनकर वैठ जाते तो उन्होने वहुत खतरनाक काम किया होता। इसके अलावा गवर्नर-जनरलके हाथमे किसी प्रकारकी सत्ता नही होगी। जवाहरलालजी या उनकी केविनट जो कहेगी वही उसको करना होगा। उसको तो केवल अपने दस्तखत देने होगे।

मगर लार्ड माउटवेटन एक वडा आदमी है और अग्रेज शैतानियत ही कर सकते है, ऐसा हम लोगोका खयाल वन गया है। तो माउटवेटनको भी अपनी शराफत और इसाफ-पसदीका सवूत देना होगा, और मुझे विश्वास है कि वह इन्साफ करनेके लिए ही यहा आया है। (प्रा० प्र०, १२ ७ ४७)

: १४६ :

लेडी माउंटबेटन

लेडी माउटबेटन मुझसे मिलने आई थी। वह दयाकी देवी बन गई हैं। वह हमेशा दोनो उपनिवेशोका दौरा किया करती है, अलग-अलग छावनियोमें निराश्रितोसे मिलती है, बीमारो और दु खियोको देखती हैं और इस तरह जितना भी ढाढम उन्हे बधा सकती है, बधानेकी कोशिश करती है। (प्रा० प्र०, ८ ११ ४७)

: १४७ :

माता-पिता

मेरे पिताजी कुटुब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार परतु साथ ही क्रोधी थे। मेरा खयाल है, कुछ विषयासक्त भी रहे होगे। उनका अतिम विवाह चालीस वर्षकी अवस्थाके बाद हुआ था। वह रिश्वतसे सदा दूर रहते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, ऐसी प्रसिद्धि उनकी हमारे कुटुबमें तथा बाहर भी थी। वह राज्यके बडे वफादार थे। एक बार असिस्टेंट पोलिटिकल एजेटने राजकोटके ठाकुरसाहबसे अपमान-जनक शब्द कहे तो उन्होने उसका सामना किया। साहब बिगडे और कबा गाधीजीसे कहा, माफी मागो। उन्होने साफ इन्कार कर दिया। इससे कुछ घटेके लिए उन्हे हवालातमे भी रहना पडा। पर वह टस-से-मस न हुए। तब साहबको उन्हे छोड देनेका हुक्म देना पडा।

पिताजीको धन जोडनेका लोभ न था। इससे हम भाइयोंके लिए वह बहुत थोडी सपत्ति छोड गए थे।

पिताजीने शिक्षा केवल अनुभव द्वारा प्राप्त की थी। आजकी अपर प्राइमरीके बराबर उनकी पढाई हुई थी। इतिहास, भूगोल बिलकुल नही पढे थे। फिर भी व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊचे दर्जेका था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नोको हल करनेमे अथवा हजार आदमियोसे काम लेनेमें उन्हें कठिनाई न होती थी। धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर हुई थी। परतु मदिरोमें जानेसे, कथा-पुराण सुननेसे, जो धर्मज्ञान असख्य हिंदुओको सहज ही मिलता रहता है, वह उन्हें था। अपने अतिम दिनोमें एक विद्वान् ब्राह्मणकी सलाहसे, जोकि हमारे कुटुबके मित्र थे, उन्होने गीता पाठ शुरू किया था, और नित्य कुछ श्लोक पूजाके समय ऊचे स्वरसे पाठ किया करते थे।

माताजी साध्वी स्त्री थी, ऐसी छाप मेरे दिलपर पडी है। वह बहुत भावुक थी। पूजा-पाठ किए बिना कभी भोजन न करती, हमेशा हवेली—वैष्णव मदिर—जाया करती। जबसे मैंने होश सभाला, मुझे याद नही पडता कि उन्होने कभी चातुर्मास छोडा हो। कठिन-से-कठिन व्रत वह लिया करती और उन्हें निर्विघ्न पूरा करती। बीमार पड जानेपर भी वह व्रत न छोडती। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होने चाद्रायणव्रत किया था। बीचमे बीमार पड गई, पर व्रत न छोडा। चातुर्मासमें एक बार भोजन करना तो उनके लिए मामूली बात थी। इतनेसे सतोष न मानकर एक बार चातुर्मासमें उन्होने हर तीसरे दिन उपवास किया। एक साथ दो-तीन उपवास तो उनके लिए एक मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होने ऐसा व्रत लिया कि सूर्यनारायणके दर्शन होनेपर ही भोजन किया जाय। इस चौमासेमे हम लडके लोग आसमानकी तरफ देखा करते कि कब सूरज दिखाई पडे और कब मा खाना खाय। सब लोग जानते है कि चौमासेमें बहुत बार सूर्य-दर्शन

मुश्किलसे होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद है, जबकि हमने सूर्यको निकला हुआ देखकर पुकारा है—"मा-मा, वह सूरज निकला।" और जबतक मा जल्दी-जल्दी दौडकर आती है, सूरज छिप जाता था। मा यह कहती हुई वापस जाती कि "खैर, कोई बात नही, ईश्वर नही चाहता कि आज खाना मिले," और अपने कामोमे मशगूल हो जाती।

माताजी व्यवहार-कुशल थीं। राजदरबारकी सब बाते जानती थी। रनवासमे उनकी बुद्धिमत्ता ठीक-ठीक आकी जाती थी। जब मै बच्चा था, मुझे दरबारगढमे कभी-कभी वह साथ ले जाती और 'बा-मा साहेब' (ठाकुर साहबकी विधवा माता) के साथ उनके कितने ही सवाद मुझे अब भी याद है। (आ० क०, १९२७)

सिगरेटके टुकडे चुराने तथा उसके लिए नौकरके पैसे चुरानेसे बढ कर चोरीका एक दोष मुझसे हुआ है और उसे मै इससे ज्यादा गभीर समझता हू। बीडीका चस्का तब लगा जब मेरी उम्र १२-१३ सालकी होगी। शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरीके समय १५ वर्षकी रही होगी। यह चोरी थी मेरे मासाहारी भाईके सोनेके कडेके टुकडेकी। उन्होने २५) के लगभग कर्जा कर रखा था। हम दोनो भाई इस सोचमें पडे कि यह चुकावे किस तरह। मेरे भाईके हाथमे सोनेका एक ठोस कडा था। उसमेंसे एक तोला काटना कठिन न था।

कडा कटा। कर्ज चुका, पर मेरे लिए यह घटना असह्य हो गई। आगे-मे कदापि चोरी न करनेका मैने निश्चय किया। मनमे आया कि पिता-जीके सामने जाकर चोरी कबूल करलू। पर उनके सामने मुह खुलना मुश्किल था। यह डर तो न था कि पिताजी खुद मुझे पीटने लगेगे क्योकि मुझे नही याद पडता कि उन्होने हम भाइयोमेसे कभी किसीको पीटा हो। पर यह खटका जरूर था कि वह खुद बड़ा सताप करेगे, शायद अपना सिर भी पीट ले। तथापि मैने मनमे कहा—"यह जोखिम उठाकर भी अपनी

बुराई कबूल कर लेनी चाहिए, इसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती।'

अंतमें यह निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार कर लूं। मैंने चिट्ठी लिखकर खुद ही उन्हें दी। चिट्ठीमें सारा दोष कबूल किया था और उसके लिए सजा चाही थी। आजिजीके साथ यह प्रार्थना की थी कि आप किसी तरह अपनेको दुःखी न बनावें और प्रतिज्ञा की थी कि आगे मैं कभी ऐसा न करूंगा।

पिताजीको चिट्ठी देते हुए मेरे हाथ कांप रहे थे। उस समय वह भगंदरकी बीमारीसे पीडित थे। अतः खटियाके बजाय लकडीके तख्तो-पर उनका बिछौना रहता था। उनके सामने जाकर बैठ गया।

उन्होंने चिट्ठी पढी। आंखोंसे मोतीके बूंद टपकने लगे। चिट्ठी भीग गई। थोडी देरके लिए उन्होंने आंखें मूंद ली। चिट्ठी फाड डाली। चिट्ठी पढनेको जो वह उठ बैठे थे सो फिर लेट गए।

मैं भी रोया। पिताजीके दुःखको अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी उस चित्रको हूबहू खींच सकता। मेरी आंखोंके सामने आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों दिखाई दे रहा है।

इस मोती-बिंदुके प्रेमबाणने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेमको तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है—

रामबाण वाग्यारे होय ते जाणे[1]

मेरे लिए यह अहिंसाका पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-वात्सल्यके अधिक कुछ न दिखाई दिया, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा-के नामसे पहचान सका हूं। ऐसी अहिंसा जब व्यापक रूप ग्रहण करती है तब उसके स्पर्शसे कौन अलिप्त रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसाके बलको नापना असंभव है।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिताजीके स्वभावके प्रतिकूल थी। मैंने तो यह

---

[1] प्रेम-बाणसे जो बिंधा हो, वही उसके प्रभावको जानता है—अनु०

अदाज किया था कि वह गुस्सा होगे, सख्त-सुस्त कहेगे, शायद अपना सिर भी पीट ले। पर उन्होने तो असीम शातिका परिचय दिया। मै मानता हू कि यह अपने दोषको शुद्ध हृदयसे मजूर कर लेनेका परिणाम था।

जो मनुष्य अधिकारी व्यक्तिके सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदयसे कह देता है और फिर कभी न, करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मै जानता हू कि मेरी इस दोष-स्वीकृतिसे पिताजी मेरे सबधमे निशक हो गये और उनका महाप्रेम मेरे प्रति और भी बढ गया। (आ० क०, १९२७)

मुझे तो अपनी माताकी गोदमे ही अपना धर्म सिखाया गया था। मेरी माता तो बिना पढी-लिखी थी। अपने दस्तखत भी नही कर सकती थी। छोटा-सा नाम था और वह भी लिखना नही सीखा था। हमको तो वह पढनेके लिए स्कूल भेज देती थी और खुद पढी नही थी। उन दिनो शिक्षक रखकर कोई पढता नही था और यह भो काठियावाड-जैसे जगली प्रदेशमे। यह मै ७० साल पहलेकी बात करता हू। पिताजी एक दीवान तो थे मगर उस जमानेमे दीवान कोई बहुत अग्रेजी पढा-लिखा थोडे ही होता था। वे तो एक अगरखा पहनते थे और पावोमे सादी जूतिया होती थी। पतलूनका तो नाम भी नही जानते थे। परतु इस हालतमे भी मेरी मा मुझे यह सिखाती थी कि बेटा, तुझे रामनाम लेना चाहिए। वह मेरा धर्म जानती थी। (प्रा० प्र०, २८ ६ ४७)

जब हम बच्चे थे तब मेरी मा कहती थी कि नवरात्रिको खाना नही खाना चाहिए। अगर खाना ही है तो फल खाओ, ज्यादा-से-ज्यादा दूध पियो, लेकिन अनाज न खाओ। अगर सचमुच पूरा-का-पूरा उपवास करो तो सबमे अच्छा है। मेरी मा तो बडी उपवास करनेवाली थी, जिसका मै तो कोई मुकाबला नही कर सकता था। मेरे बड़े भाई तो मुकाबला

कर ही नही सकते थे—मै थोडा-सा मुकावला करता था। लेकिन उसमे उपवास करनेकी जो शक्ति थी उसके सामने मै एक खिलौना हू वच्चा हू। (प्रा० प्र०, २१ १०.४७)

: १४८ :

दो मातायें

इस समय हडताल पूरे जोरमें थी। पुरुषोकी तरह उसमे स्त्रिया भी शामिल होती जा रही थी। उनमें दो माताए अपने वच्चोको साथमें लिए हुए थी। एक वच्चेको कूचमें जाडा हो गया और वह मृत्युकी गोदमे जा सोया। दूसरीका वालक एक नाला पार करते हुए गोदमेंसे पानीमें गिरकर डूव गया। पर माता निराश नही हुई। दोनोने अपनी कूचको उसी प्रकार शुरू रक्खा। एक ने कहा

"हम मरेहुओका शोक करके क्या करेंगी? इससे वे कहीं लौटकर थोडे ही आ सकते हैं! हमारा धर्म तो है जीवितोकी सेवा करना।"

उस शात वीरताके, ऐसी असीम आस्तिकताके और अगाध ज्ञानके कई उदाहरण मैने उन गरीवोमे देखे। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३-४)

: १४६ :

वी० पी० माधवराव

उस दिन बगलोरमे ८५ वर्षकी अवस्थामे श्री वी० पी० माधवराव-का स्वर्गवास हो गया। मै दिवगत आत्माके शोकाकुल परिवारके साथ सादर समवेदना प्रकट करता हू। श्री माधवराव त्रावणकोर, बडौदा और मैसूर राज्यके दीवान रह चुके थे। अवकाश ग्रहण करनेके बाद वह अपना समय समाज-सेवामे लगाया करते थे। यद्यपि वह इतने वृद्ध हो गये थे तो भी स्थानीय हरिजन-सेवक-सघका अध्यक्षपद उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। ईश्वर उनकी स्वर्गीय आत्माको शाश्वत शाति प्रदान करे। (ह० से०, २१ १२ ३४)

: १५० :

गोविन्द मालवीय

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र गोविद तथा उनके भतीजे कृष्णकात मालवीय एक बार पकडे गए, सजा पाई और छोड दिये गए। व्याख्यान देनेके कारण अब दुबारा गिरफ्तार किये गए हैं और उन्हे डेढ वर्षकी कठोर कैदकी सजा दी गई है। इसे मै भारतवर्षका सद्भाग्य मानता हू। श्रीमालवीयजीके पुत्रका असहयोगके कारण जेल जाना तो हमे अपने प्राचीन धर्मकी याद दिलाता है। श्रीगोविदजीने मालवीयजीसे आज्ञा प्राप्त करनेमे किसी बातकी कसर नही रक्खी। जहा-तक उनसे कहा गया तहातक उन्होने अपने पूज्य पिताजीकी इच्छाका

आदर किया। पिताने भी पुत्रको पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। जब प० जवाहरलाल नेहरू आदिके पकडे जानेपर श्रीगोविंदसे न रहा गया तब उन्होंने अपने पिताको एक बडा ही विनयपूर्ण पत्र लिखा और आप रणा-गणमे कूद पडे। मैं जानता हू कि गोविंदका पितृभक्तिमे जरा भी कमी नही हुई। मुझे दृढ विश्वास है कि पडितजीके दिलमे भी गोविंदकी इस कृतिके विषयमे जरा भी रोष नही है। इन पिता-पुत्रका सबध ऐसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञमे सब लोग अपनी अपनी अतरात्माकी पुकारके अनुसार काम कर रहे है और हम पिता-पुत्रको जुदा-जुदा मैदानमे देख रहे है। ये सब धर्मजागृतिके, स्वराज्यके ही चिन्ह है। (हि० न०, ८ १ २२)

: १५१ :

मदनमोहन मालवीय

प० मदनमोहन मालवीयका नाम तो जनतापर जादू कर देता है। देशसेवामे जितना आत्मत्याग तथा परिश्रम पडितजीने किया है वह सब जानते है। (१९२० की विशेष कांग्रेसके एक भाषणका अश—१५ ९ २०)

इसी समय मुझे बनारसकी घटनाका भी स्मरण आ गया है। पडित मदनमोहन मालवीय पर जो कटाक्ष किया जा रहा है उससे जनताकी अवस्थाका पता चलता है। यदि इस देशमे किसीका स्वप्नमे भी अनादर नही होना चाहिए तो वे पडितजी है। पजाबकी जो सेवाए उन्होने की है वह अभी ताजी है। यह केवल उन्हीके परिश्रमका फल है कि काशी विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई है। उनकी देशभक्ति भी किसीसे कम नही

है । वे इतने सज्जन है कि उनसे भूल हो ही नही सकती । यदि उनकी समझमे हम लोगोकी बाते नही आ रही है और वे अपने आदर्शको छोडकर हम लोगोके दलमे नही शामिल हो रहे है तो इसे हम देशका दुर्भाग्य कहेगे, इसमे उनका कोई दोष नही है । उनका जिस तरहसे अपमान किया गया है उसे पढकर हार्दिक दुःख होता है । यदि सस्कृतके विद्यार्थी अथवा सन्यासी छात्रोने धरना देकर मार्गमे बाधा डालना उचित समझा था तो पडितजीका भी यह कर्तव्य था कि वे उस मामलेमे हस्तक्षेप करते और सहयोगी विद्यार्थियोके लिए मार्ग दिलवाते । यदि पुलिसने प्रधान कार्य-कर्ताओको गिरफ्तार कर लिया तो उसने कोई बुराई नही की । उसकी कार्यवाई सर्वथा उचित थी । (य० इ०, १६ ३ २१)

यह असहयोग-सग्राम अपने ढगका निराला ही है । कितने ही परि-वारोमे इसके बदौलत मतभेद और कृति-भेद उत्पन्न हो गया है । यह इसका सबसे अद्भुत प्रभाव है । और तिसमे भी मालवीय-परिवारमे इसने जो द्विविधा-भाव उत्पन्न कर दिया है वह तो विशेष रूपसे उल्लेखयोग्य है । मेरी रायमे तो यह भारतवासियोके लिए सहिष्णुता और सविनय कानून-भगका खासा वस्तु-पाठ ही है । श्री मालवीयजीकी सहिष्णुता तो वास्तव-मे अनुपम है । मै इस बातको जानता हू कि वे जेलको निमत्रण देनेके खिलाफ है । मै यह भी जानता हू कि यदि वे उसके कायल होते तो वे ऐसे आदमी नही है जो उससे दुम दबाते । और जब उनके दुःखकी मात्रा हद दर्जे तक पहुच जायगी और जबकि मेरी तरह उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्यायसे पूरा-पूरा उठ जायगा तब यदि वे जेलको निमत्रण देनेमे सबसे आगे बढ जाय तो मुझे तनिक भी आश्चर्य न होगा । परतु यद्यपि वे आज स्वय सविनय कानून भगके विरुद्ध है तथापि उन्होने कभी उन लोगोके भी सकल्पोमे हस्तक्षेप नही किया जो उनके आत्मीय है और जिन पर अपने प्रेम अथवा बडे-बूढे होने के कारण उनकी अदम्य सत्ता

है। बल्कि इसके विपरीत उन्होने अपने पुत्रोको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार बरतनेकी पूरी आजादी दे दी है। गोविंदके सविनय कानून भगका उदाहरण मेरी दृष्टिमे एक सग्रहणीय रत्नके सदृश है। पडितजीने अपने मृदुल मधुर ढगसे अपने उस वीर पुत्रको इस मार्गसे हटानेका बहुत-कुछ प्रयत्न किया। गोविदने भी अततक अपने पूज्य पिताकी इच्छाके अनुसार चलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वरसे प्रार्थना की कि मुझे मार्ग बता। वह परस्पर विरुद्ध कर्तव्योकी कैचीमें फस गया। नेहरू-परिवारकी गिरफ्तारीका गोविंदपर बडा असर हुआ और अपने विशाल हृदय पिताजी की आशीष प्राप्त करके उसने इस रणक्षेत्रमे कूद पडनेका निश्चय किया। जेलोंमें भी गोविदसे बढकर हर्ष-पूर्ण हृदय शायद किसीका न देखा होगा। यह साहसके साथ कहा जा सकता है कि अपनी इस सविनय कानून भगकी कृतिके द्वारा गोविंदने अपने देशकी तरह अपने पूज्य पिताजीके प्रति भी अपनी कर्तव्य-परायणता सिद्ध की है। बालकोके कर्तव्य-परायण सविनय कानून-भगमे गोविंदकी यह कृति हमारे समयके लिए एक नमूना है। मुझे यकीन है कि इससे पिता-पुत्रके बीच किसी तरहकी अनबन नही है। बल्कि शायद मालवीयजी, गोविन्दके जेलको स्वीकार करनेके पहलेकी अपेक्षा, अब उसके विषयमे अधिक अभिमान रखते होगे। ऐसे ही सत्ययुक्त कार्योके द्वारा मुझे इस युद्धकी धार्मिक प्रकृतिका प्रमाण मिलता है। (हि० न०, १५ १ २२)

• •

मुझे पडित मालवीयके बारेमे चेतावनी दी गई है। उनपर यह इल्जाम है कि उनकी बातें बडी गहरी छुपी हुई होती है। कहा जाता है कि वे मुसलमानोके शुभचिंतक नही है यहातक कि वे मेरे पदसे ईर्ष्या करनेवाले बताए जाते है, जबसे १९१५ में हिंदुस्तान आया तबसे मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हे अच्छी तरह जानता हू। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हे मैं हिंदू-ससारके श्रेष्ठ

व्यक्तियोमे मानता हू । कट्टर और पुराने खयालातके होते हुए भी बड़े उदार विचार रखते हैं । वे मुसलनमानोके दुश्मन नही हैं । उनका किसी-से ईर्ष्या रखना असभव है । उनकी उदारता ऐसी है कि उसमे उनके दुश्मनोके लिए भी जगह है । उन्हे कभी शासनकी चाह न रही और जो शासन आज उनके पास है वह उनकी मातृभूमिकी आजतककी लबी और अखड सेवाका फल है । ऐसी सेवाका दावा हममेसे बहुत कम लोग कर सकते है । उनकी और मेरी विशेषता अलग-अलग है, लेकिन हम दोनो एक दूसरेको सगे भाई-सा प्यार करते हैं । मेरे और उनके बीच कभी जरा बिगाड न हुआ । हमारे रास्ते जुदे-जुदे हैं । इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नही हो सकता (हि० न०, १९२४)

•

एक पाठक पूछते हैं

"आपने कराचीमें विषय-समितिको दक्षिण भारतके सदस्योको कार्य-समितिमें न रखनेका कारण तो समझाया, पर यह नही बताया कि मालवीयजीको क्यो अलग रक्खा ।"

बात इतनी स्पष्ट थी कि किसीने कुछ पूछा ही नही । मालवीयजीका अपमान करनेका तो इसमे कोई सवाल हो नही सकता । वह अपमानसे परे है । कोई भी सस्था उन्हे अपना सदस्य बनाकर उनकी स्थिति या उनके महत्त्वको बढा नही सकती । हा, उनकी सदस्यतासे सस्थाकी प्रतिष्ठा बढ सकती है । कार्यसमितिने जानबूझकर उन्हे अलग रक्खा, जिसमे समय पडनेपर उनकी स्वतत्रता और काम करनेकी आजादी कायम या सुरक्षित रह । सदस्य न होते हुए भी, जबसे नेता लोग छूटे है, वह बराबर कार्य-समितिकी बैठकोमे उपस्थित रहे है । चूकि कार्य-समितिमे उनका काम मूल्यवान रहा है, सदस्योने यह सोचा कि उन्हे समितिके अनुशासनमे ले लेना कही उनके लिए कष्टप्रद न सिद्ध हो । डॉक्टर असारी

तो मालवीयजीको समितिमें रखनेके लिए इतने उत्सुक थे कि उनके लिए स्वयं हट जाना उन्हें पसंद था। पर जिस विचारका मैं ऊपर जिक्र कर आया हूं, जमनालालजीने उसे ऐसे प्रभावशाली ढंगसे समितिके सामने रक्खा था कि डॉक्टर अंसारीको भी इस बातके लिए राजी होना पड़ा कि मालवीयजी अलग रक्खे जायं। इस व्यवस्थासे समिति अपनी बैठकोंमें मालवीयजीकी सलाहसे लाभ भी उठा सकती है और साथ ही उनकी कार्य-स्वतंत्रतामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती। गोलमेज परिषद्में उन्हें अलगसे निमंत्रित करके तो सरकारने भी समाजमें उनकी अद्वितीय स्थितिको स्वीकार किया है। (हिं० न०, १६-८-३१)

बिरलाको पत्र लिखते हुए हिंदीमें लिखा—

आशावाद और भोलेपनमें मैं भेद करता हूं। पंडितजीमें दोनों हैं। दृष्टिमर्यादापर निराशाके चिह्न होते हुए भी और जानते हुए भी जो आशा रखता है वह आशावादी है। यह गुण पंडितजीमें काफी मात्रा में है। आशाकी बात कोई कह देवे और उसपर विश्वास लाना वह भोलापन है। यह भी पंडितजीमें है। उसे मैं त्याज्य समझता हूं। पंडितजी महान व्यक्ति हैं, इसलिए उनको ऐसे भोलेपनसे हानि नहीं हुई है। हमें ऐसे भोलेपनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए। आशावाद अंतर्नादपर निर्भर है, भोलापन बाह्य बातोंपर। (म० डा०, २७-५-३२)

देशके सार्वजनिक जीवनको उनकी बहुत बड़ी देन है। उनका सबसे बड़ा कार्य हिंदू विश्वविद्यालय बनारस है, इस विद्यालयके प्रेमसे हमें हार्दिक प्रेम है। महामना मालवीयजीने उसके लिए जब कभी मेरी सेवाएं चाही हैं, मैंने दी हैं।

मालवीयजी एक सफल व महान् भिखारियोंमेंसे एक हैं, विश्वविद्या-

लयके लिए कितना चदा कर सकते है, इसका अनुमान उस अपीलसे किया जा सकता है, जो उन्होने केवल पाच करोड रुपएके लिए निकाली थी। ('विद्यार्थियोसे', पृष्ठ २६२)

•

आप जानते है कि मालवीयजी महाराजके साथ मेरा कितना गाढ सबध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है और अगर मै उसे कर सकू तो अपने को कृतार्थ समझता हू। इसलिए जब सर राधाकृष्णन्का पत्र मुझे मिला तो मैने निमत्रण स्वीकार कर लिया। यहा आना मेरे लिए तो एक तीर्थमे आनेके समान है।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजका सबसे बडा और प्राणप्रिय कार्य है। उन्होने हिंदुस्तानकी बहुत-बहुत सेवाए की है, इससे आज कोई इन्कार नही कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्योमे इस कार्यका महत्त्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहले, जब इस विश्वविद्यालयकी नीव डाली गई थी, तब भी मालवीयजी महाराजके आग्रह और खिचावसे मै यहा आ पहुचा था। उस समय तो मै यह सोच भी न सकता था कि जहा बडे-बडे राजा-महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले है, वहा मुझ-जैसे फकीरकी क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मै 'महात्मा' भी नही बना था।

उस समय भी मालवीयजी महाराजकी कृपादृष्टि मुझपर थी। कही भी कोई सेवक हो, वे उसे ढूढ निकालते है और किसी-न-किसी तरह अपने पास खीच ही लाते है। यह उनका सदाका धधा है।

लोग मालवीयजी महाराजकी बडी प्रशसा करते है। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशसा सुनी है। वे सब तरह उसके लायक है। मै जानता हू कि हिंदू विश्वविद्यालयका कितना बडा विस्तार है। ससारमे मालवीयजीसे बढकर कोई भिक्षुक नही। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नही—उनकी भिक्षाकी झोलीका

मुह हमेशा खुला रहता है। वे हमेशा मागा ही करते है, और परमात्माकी भी उनपर बडी दया है कि जहा जाते है, उन्हे पैसे मिल ही जाते है, तिसपर भी उनकी भूख कभी नही बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होने विश्वविद्यालयके लिए एक करोड इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक करोडकी जगह डेढ करोड दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नही भरा। अभी-अभी उन्होने मुझसे कानमे कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजा साहब दरभगाने उनको एक खासी बडी रकम दानमे और दी है।

मै जानता हू कि मालवीयजी महाराज स्वय किस तरह रहते है। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नही। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनके प्रेमसे मै भलीभाति परिचित हू। उनके इन गुणोमेसे आप जितना कुछ ले सके, जरूर ले। विद्यार्थियोके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बाते सीखने लायक है। मगर मुझे डर है कि उन्होने जितना सीखना चाहिए, सीखा नही है। यह आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमे उनका कोई कसूर नही। धूपमे रहकर भी कोई सूरजका तेज न पा सके तो उसमे सूरज बेचारेका क्या दोष? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुचाता रहता है, पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे और ठडमे रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर भी अगर आप उनके जीवनसे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्गुणोका अपने जीवनमे अनुकरण न कर सके तो कहिए, आपसे बढकर अभागा और कौन होगा? (ह० से०, २१ १ ४२)

• •

अग्रेजीमे एक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जियो!" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिए कहा जा सकता है—

"मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हो !" मालवीयजी हिंदुस्तानके लिए पैदा हुए और हिंदुस्तानके लिए किये गए अपने कामोमे जीते है। उनके काम बहुत है। बहुत बडे है। उनमे सबसे बडा हिंदू-विश्व-विद्यालय है। गलतीसे उसे हम बनारस हिंदू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते है। उस नामके लिए दोष मालवीयजी महाराजका नही, उनके पैरोकारोका रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभावमे भरी थी। यहा तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी, लेकिन 'समरथको नहिं दोष गुसाईं' वाली बात मालवीय महाराजके बारेमे भी कही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिंदू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने योग्य है। इस विश्वविद्यालयका हरएक पत्थर शुद्ध हिंदू-धर्मका प्रतिबिब होना चाहिए। एक भी मकान पश्चिमके जडवादकी निशानी न हो, बल्कि अध्यात्मकी निशानी हो। और जैसे मकान हो, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हो। आज है ? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है ? नही है, तो क्यो नही है ? इस विश्वविद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोकी सख्यासे नही, बल्कि उनके हिंदू धर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोडे ही क्यो न हो।

मै जानता हू कि यह काम कठिन है। लेकिन यही इस विद्यालयकी जड है। अगर यह ऐसा नही है, तो कुछ नही है। इसलिए स्वर्गीय मालवीयजीके पुत्रोका और उनके अनुयायियोका धर्म स्पष्ट है। जगतमे हिंदू धर्मका क्या स्थान है ? उसमे आज क्या दोष है ? वे कैसे दूर किए जा सकते है ? मालवीयजी महाराजके भक्तोका कर्त्तव्य है कि वे इन प्रश्नोको हल करे। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड गये है। उसको स्थायीरूप देना और उसका विकास करना उसका श्रेष्ठ स्मृति-स्तभ होगा।

विश्व-विद्यालयके लिए स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन बाकी भी काफी रहा है। इस काममें तो हरएक आदमी हाथ बटा सकता है।

यह तो हुई उनकी बाह्यप्रवृत्ति। उनका आतरिक जीवन विशुद्ध था। वे दयाके भडार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बडा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वे सजग कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

उनकी राजनीतिको और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोको छोड देता हू। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था और जो अनेक विभूतिया रखते थे, उनकी प्रवृतिकी मर्यादा हो नही सकती। मैंने तो उनमेंसे चिरस्थायी चीजे ही देनेका सकल्प किया था। जो लोग विश्वविद्यालयको शुद्ध बनानेमें मदद देना चाहते हैं, वे मालवीयजी महाराजके अतरजीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करे। (ह० से०, ८ १२ ४६)

• •

मालवीयजी महाराजने भी हिंदीके लिए बहुत काम किया था। मगर उर्दू जबानको काट डालो, ऐसा कहते मैंने उनको कभी नही सुना। (प्रा० प्र०, १५ १०.४७)

: १५२ :

हसन मिरजा

ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजाने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरजाको फेफडेका बहुत बुरा रोग है। वे है भी नाजुकमिजाज आदमी।

तथापि जब-जब जो काम उन्हे मिला, उन्होने खुशीसे उसे किया। इतना ही नही, बल्कि अपनी बीमारी की परवाह भी न की। एक बार एक काफिर दारोगाने उन्हे बड़े दारोगाका पाखाना साफ करनेपर रख दिया। उन्होने तुरत ही उस कामको मजूर कर लिया। यह काम उन्होने कभी न किया था। इससे उन्हे कै हो गई। उन्होने उसकी भी परवाह न की। जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे मै वहा जा पहुचा। देखते ही मै आश्चर्यसे सन्न हो गया। मेरे मनमे उनके विषयमे प्रेम उमड उठा। ('मेरे जेलके अनुभव', पृष्ठ ४२)

: १५३ :

मीराबहन

मीराबहनका जीवन तो सब बहनोके लिए विचार करने योग्य बन गया है। उसके हिंदी पत्र वहा आते होगे। मेरे नाम जो पत्र आते है, उनसे मै देखता हू कि उसने अपनी सरलता और प्रेमपूर्ण स्वभावसे गुरु-कुलकी बालाओके मन हर लिए है। वह लडकियोमे खूब घुलमिल गई है और उन्हे पीजना-कातना अच्छी तरह सिखा रही है। अपना एक पल भी व्यर्थ नही जाने देती। इस निष्ठा, इस त्याग और इस पवित्रता-की आशा मै तुम बहनोसे रखता हू। ('बापूके पत्र' पृष्ठ ५)

• •

मीरा बहनके तमाम पत्र मै चि० मगनलालको भेजा करता हू। मै चाहता हू कि उन्हे तुम सब बहन ध्यानसे सुनो, समझो और विचारो। मेरी नजरमे इस समय हमारे पास वह एक आदर्श कुमारी है। ('बापूके पत्र)

"बापू, आपकी उत्तम सेवा किस तरह कर सकती हू, यह विचार मेरे मनसे कभी निकलता ही नहीं है। मैं विचार करती हू, अपने मनको समझाती हूं और भगवानसे प्रार्थना करती हू, मगर अतमें मेरे अतरकी गुफा मेंसे एक ही आवाज उठती है। जब आपको हमारे बीचसे उठा लिया जाता है, जैसे कि जेलमें तब मैं आपके बाहरी कामोमें पूरे जोशके साथ पड सकती हूं। कुछ भी शका या कुछ भी मुश्किल पैदा नहीं होती। मगर जब आप हमारे पास होते है, तब एक असाधारण प्रबल वृत्ति चुपचाप आपकी निजी सेवा में ही डूबे रहनेकी प्रेरणा मुझे करती रहती है। और कोई काम करनेका प्रयत्न करना मुझे मिथ्या लगता है, रास्ता भूलने जैसा लगता है। ऐसा लगता है कि आपकी निजी सेवा करनेमें सफलता मिले, तो ही उन बाहरी कामोको करनेकी शक्ति आए। ऐसा लगता है कि एक चीज दूसरीकी पूरक है। कोई मुझे हमेशा भीतर-ही-भीतर कहा करता है कि मैं जो खिचकर आपके पास चली आई हू, सो आपकी सेवा करनेके लिए ही आई हू। यह वृत्ति इतनी ज्यादा प्रबल है कि मैं उससे छूट नहीं सकती। यह बात माननेके लिए आपसे कहना भी कठिन है, क्योकि इस बातकी सचाईका पूरा सबूत तो आपके अवसानके बाद ही मिल सकता है। इस लिए मुझे इतना कहकर ही रुक जाना पडता है कि यह एक वृत्ति है। इतनी बात मैं निश्चित जनती हू कि इस बारकी लडाईमें मेरा बल, मेरी शक्ति मेरी भीतरी शाति और सुख पिछली बारसे कही ज्यादा रहे हैं। इसका एक यही कारण है कि इस बार मैं अपनी वृत्तिके अनुसार काम कर सकी हू। सिर्फ आपके पहले छूटनेके बाद एक बार थोडे समयके लिए मैं दुखी हो गई थी। इस बार यहा (जेलमें) आनेसे पहले मेरा स्वास्थ्य नष्ट होनेको ही था, मगर इस बातका इस प्रश्नके साथ कोई वास्ता नहीं है। जिसका कारण तो सिर्फ ताकतसे ज्यादा काम करना ही था। मैंने देखा कि मैं थोडे दिनमें पकडी जानेवाली हू, इसलिए मैंने अपनी शक्ति ऊच-नीच देखे बिना ही खर्च करना शुरु कर दिया। मैं जानती थी कि

मुझे जबर्दस्ती आराम मिलनेही वाला है। और मेरे पास कामका इतना ढेर पडा था कि ज्यादा सोच-विचार करनेकी गुजायश नही थी।

"कौन जाने, यह सब भ्रम ही तो न हो? मगर स्त्री तो अपनी मनोवृत्तिसे ही चलती है न? उसका बल वुद्धिके वजाय वृत्तिके आधारपर चलनेमें ही है। वह अपने स्वभावको प्रकट कर सके तभी उसकी सच्ची शक्ति काबूमें की जा सकती है और सेवामें लगाई जा सकती है। एक आप, आप ही मेरे काम और आप ही मेरे आदर्श हैं, इसके सिवा सारी दुनियामें मेरा और कोई विचार और कोई चिंता या और कोई चाह नहीं है। इस जीवनमें यह काम पूरा करनेके लिए और अगले जीवनमें इस आदर्शतक पहुचनेके लिए क्या भगवान मेरी प्रार्थना नही सुनेंगे? किसलिए वे मेरी वृत्तियोको गलत रास्तेपर जाने देंगे? क्या वे ही मुझे गहरे अधेरेसे आपके प्रकाशमय मार्गपर खीच नहीं लाए? यह सब मै आपके सामने तर्क करनेके लिए नही लिख रही हूं। लेकिन जेलमें आनेके बाद असली चीज समझनेके लिए मै जो निरतर प्रयत्न कर रही हू, उससे जो कुछ मुझे सूझा है वह आपके सामने रख देनेके लिए ही लिख रही हू।"

उसे बापूने जवाब दिया :

तूने अपने लिए जो कुछ लिखा है वह मै समझ सकता हू और उसकी कदर करता हू। एक मामलेमे मै तुझे निश्चिन्त कर ही द्। मेरे जेलसे निकलनेके बाद जरूर तू मेरे साथ ही रहेगी और मेरी सेवाका अपना असल काम फिर शुरू कर देगी। मै साफ देख सकता हू कि तेरी आत्माके आविर्भावके लिए यही एक मार्ग है। पहले मैने ऐसा किया है, मगर अव अपनी सेवाके काममे तुझे वचित रखनेका अपराध मै नही करूगा। भूतकालमे जो कुछ हुआ है उसका विचार करता हू तव मुझे एक वडा सतोष यह रहता है कि मैने तेरे प्रति जो कुछ किया है वह तेरे लिए गहरे प्रेम और तेरे भलेकी भावनासे प्रेरित होकर किया है। मगर मै देख सकता हू कि 'स्वराज' का काम 'सुराज्य' नहीं दे सकता। एक गुजराती कहावत

है कि 'वणीने मुझे डाकणीमा ने पडोसीने न सूझे आरसीमा'। ये दोनो कहावते सब जगह लागू नही की जा सकती। हा, तेरे मामलेमें तो दोनो ही अच्छी तरह लागू होती है। इसलिए आइंदा मेरी तरफसे कोई दखल नही दिया जायगा, यह पूरा भरोसा रखना। और मेरी सेवा तुझसे ज्यादा प्रेमके साथ कौन कर सकता है?" (म० डा०, ८ ४ ३२)

वह विशुद्ध आत्मा है। उसमे आत्मत्यागकी अपार शक्ति है। (म० डा०, २३ ६ ३२)

तू लिखती है कि तेरा मन ठिकाने नही, इसीलिए पत्र नही लिखेगी। यह भी विकारकी निशानी है। विकारका अर्थ अच्छी तरह समझनेकी जरूरत है। क्रोध करना भी एक विकार ही है। मनमे अनेक प्रकारकी इच्छाए होते रहना भी विकार है। इसलिए यह पहनू, यह ओढू, यह खाऊ यह न खाऊ, यह विकार है, और विवाहकी इच्छा हो या विवाहकी इच्छा हुए बिना बराबरके लडकोका सग अच्छा लगे, उनके साथ गुप्त बाते अच्छी लगे, उन्हे छूना अच्छा लगे, उनके साथ दिल्लगी करना अच्छा लगे, तो यह भी विकार है। यह आखिरी विकार एक भयकर विकार माना जाता है। लेकिन इनमेंसे कोई भी विकार जबतक होता है तबतक स्त्रीको मासिक धर्म होगा और पुरुषको मासिक धर्म नही तो दूसरा कुछ होता ही है। इस अर्थमे मीराबहन भी विकार-रहित नही कही जा सकती। इसीसे उसे अभी तक मासिक धर्म होता है। इसमे वह कोई पाप नही करती। वह तो बहुत ऊची पहुच गई है। वह अपने तमाम विकारोको दूर करनेके लिए लड रही है। पुरुष-सग-रूपी इच्छाका विकार तो उसमेसे साफ चला गया है। मगर उसमें क्रोध है, राग है, अनेक इच्छाए है। इन सबको भी रोकनेकी वह कोशिश करती है। (म० डा०, ११ ९ ३२)

मीराबहन तो आश्रमवासी रही। घर-बार, माता-पिताका त्याग करके आई। उसको तो जो चीज प्यारेलालको लागू होती है उससे भी ज्यादा लागू होती है। वह यद्यपि अपनेको मेरी लडकी कहती है, मगर उसका भी तो अपना स्वतत्र स्थान बन गया है। अपने आप उसको लगता है कि उसे नही लिखना चाहिए तो अलग बात थी। (का० क०, २४ ६.४२)

. .

सुबह घूमते समय मैंने बापूसे मीराबहनकी बकरीवाली बात कही। कहने लगे :

मीरा बहनमे एक बडा गुण है। उसके निकट मनुष्य, पशु, वृक्षो और फूलोमे कोई फर्क नही है। उसे बकरियोसे बाते करते तो तूने सुना होगा। फूल-पत्तोसे भी वह बाते करती है। और कल रात उसने बिना किसीके कहे वह सब तेरे लिए किया।

मैंने कहा, "उनमे गुण तो भरे ही है, नही तो अपने राजा-समान पिताके घरको छोडकर वह यहा भागकर क्यो आती।" बापू बोले : हा, यह बात तो है। (का० क०, ३० ६ ४२)

. . .

मीराबहन आज यह विचार कर रही है कि सारी दुनियामें कैसे क्राति हो सकती है। उनकी मान्यता है कि पहले कुछ नेता रूस जावे, फिर हर गावसे कुछ किसान वहा भेजे जावें, वे आकर बाकी लोगोमें प्रचार करे। मीराबहनका दिमाग आज रूस और मार्क्ससे ही भरा हुआ है। बापू कह रहे थे :

यह एक छोटी-सी मिसाल है कि कैसे उनका मन एक बालककी भाति कल्पनाके घोडेपर सवार होकर कहा-से-कहा पहुच जाता है, नही तो आज इस जेलमे बैठे हुए रूस जानेका प्रश्न ही कैसे उठ सकता है?

और फिर क्या हम इतने कगाल है कि रस जानेके सिवा और कुछ कर ही नही सकते ? (का० क०, २६ ११ ४२)

•

इसके भोलेपन और इसकी कल्पना-शक्तिका कोई पार नही है। (का० क०, १३ ३ ४४)

•

एक वात यह भी है कि हमारे यहा पूरी खूराक तो पैदा नही होती है। तव लोगोको कहो कि वे जमीनको वो ले, उसमेसे पैदा हो जायगी। वात तो सच्ची है, लेकिन उसके लिए वाहरसे जो वनी-वनाई खाद आती है, जिसको कि रसायन खाद वोलते है, उसमे हम चद करोड रुपए मुफ्तके दे देते है या ऐसा कहो कि जमीनको विगाडनेके लिए वह पैसे देते है। यह मेरा कहना नही है, मै तो वह जानता ही नही, लेकिन जो इसका ज्ञान रखते है वे ऐसा कहते है। मीरावहनने ही यह सव किया है और उसने ही इस चीजके जानकार लोगोको इकट्ठा किया। उसको शौक है और वह सचमुच किसान वन गई है। (प्रा० प्र०, १० १२ ४७)

: १५४ :

रामास्वामी मुदालियर

वहाके (मैसूरके) दीवान श्री रामास्वामी मुदालियर तो वहुत वडे आदमी है। उन्होने सारी दुनियामे भ्रमण किया है। उन्होने समझा कि आखिर कवतक लोगोका दमन करते रहेगे ? ऐसा कवतक चल सकता है ? नतीजा यह हुआ कि जो लोग कैदमे चले गये थे वे छूट गये और मैसूर राज्य और उसके लोगोके वीच एक सुलहनामा हो गया। लोगोकी जो

वाकानून गर्ने थी वे राज्यकी तरफसे स्वीकृत हो गई। मैसूरमें यह जो कुछ हुआ उसके लिए वहाके राजा, दीवान साहब और लोगोको धन्यवाद देना चाहिए। राज्यने वहा लोगोको राजी रखकर ही काम चलाना कबूल कर लिया है। (प्रा० प्र०, १६ १० ४७)

: १५५ :

नरोत्तम मुरारजी

सेठ नरोत्तम मुरारजीकी दु खद मृत्युके कारण हममेसे एक प्रसिद्ध व्यापारी उठ गया है। सेठ नरोत्तम मुरारजीमे देशभक्ति और व्यापारिक महत्वाकाक्षा, दोनो बाते एक साथ पाई जाती थी। पूजीपति होते हुए भी वह मजदूरोके साथ दयाका—मनुष्यताका—व्यवहार करते थे। सिंधिया स्टीम नेविगेशन कपनी खडी करनेमे उन्होने जिस साहसका परिचय दिया था, उससे महत्वाकाक्षाके साथ उनकी देशभक्तिका भी परिचय मिलता है। उनका दान विशाल, विवेकपूर्ण और आधुनिक आवश्यकताओके अनुकूल होता था। देशकी वर्तमान अवस्थामे इस सपूतके चल बसनेसे भारत-माताकी बडी क्षति हुई है। अब उनके कार्यका सारा बोझा उनके नौजवान और उदीयमान पुत्रके सिर आ पडा है। लेकिन मै जानता हू कि श्रीशातिकुमार भी अपने सुप्रसिद्ध पिताके समान ही देशभक्त है और सभवत अपने पिताके व्हुनस्यक कारखानोमे काम करनेवाले मजदूरोसे अधिकतर प्रेम करते है। मै उनके, उनकी बूढी दादी माके और दूसरे सब कुटुबियोके प्रति हृदयसे समवेदना प्रकट करता हू, जिनके निकट परिचयमे आनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। (हि० न०, २१ ११ २९)

: १५६ :

शांतिकुमार मुरारजी

आज हम सोलापुरमे है। यह बडा शहर है। यहा पाच मिले है। उनमे सबसे बडी मुरारजी गोकुलदासकी है। उनके पोते शातिकुमार उम्रमें तो अभी नवयुवक है, परतु उनकी आत्मा महान है। वे खुद खादी-प्रेमी है और खादी ही पहनते है। यह कोई उनका सबसे बडा गुण है, यह नही कहना चाहता। उनमे दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है वैसे ही गुण रखने है। शातिकी मूर्ति है। करोडपतिके यहा ऐसा रत्न है, यह देखकर मुझे बहुत आनद होता है। ('बापूके पत्र' पृष्ठ १६)

: १५७ :

बेगम मुहम्मदअली

मौलाना मुहम्मदअलीकी बेगमसाहबाके धीरजको देखकर मै तो दग रह जाता हू। वाल्टेरमे जब उनके पति, मौलानासाहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थी और जब मिलकर लौटी तब मैने उनसे पूछा कि आपके दिलको घबराहट तो नही होती ? उन्होने कहा—

"नही, मुझे जरा भी घबराहट नहीं। पकडे जानेवाले तो थे ही। यह तो उनका धर्म था।"

मैने उनकी आवाजमे भी घबराहट नही पाई। उसके बाद से वे हमारे ही साथ घूमकर अपनी हिम्मतका परिचय दे रही है। औरतो-

के जलसोमे और मर्दोके भी जलमेमे वे बुर्का ओढकर आती है और थोडेमे परतु ऐसा भाषण करती है कि वह ठेठ दिलकी तह तक पैठ जाता है। वे सबको शाति कायम रखने, चरखा कातने, और खादी पहननेके लिए सिफारिश करती है और स्मर्नाके लिए मुसलमानोसे चदा भी मागती है। कुछ ही महीने पहले तक उनके बनाव-सिगारकी हद नही थी। महीन कपडेके विना काम नही चलता था। पर आज वे मोटी खादीका हरा रगा हुआ झगा पहनती है। हिंदू स्त्रियोकी बनिस्वत मुसलमान स्त्रियोको अधिक कपडे पहनने पडते है। उसमे भी बेगम-साहबाका बदन हल्का नही है। तो भी वे अपने धर्मके लिए इस तरह तपस्या कर रही है। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करनेके लिए अब जगह-जगहपर, मुसलमान बहने भी आया करती है। (हि० न०, ३० ९ २१)

बेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहासे रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलानासाहब भी न ले पाते। यह बात मै पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलानासाहबसे भी बढिया होता है। (हि० न०, २५ १२-२१)

: १५८ :

मेरीमैन

मेरा तो खयाल है कि ससारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नही कि जिससे यथा समय और सस्कृति मिलनेपर बढिया-से-बढिया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीका मे सभी स्थानोपर मै इसके उदाहरण

सौभाग्यवश देख चुका हू । पर केपकालोनीमें मुझे इसके उदाहरण अधिक सख्यामे मिले । उनमे सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात है श्री मेरीमैन । इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते । केपकालोनीमें आप अध्यक्ष भी रह चुके है । यदि श्री मेरीमैन के जैसे श्रेष्ठ नही तो उनसे दूसरे नबरमे वहाके श्राईनर और मोल्टोनोके परिवार है ।

श्री मेरीमैन और ये दोनो परिवार हमेशा हवशियोका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोपर हमला होता तबतब उसके लिए वे झगडते । और यद्यपि वे सब भारतीयो और हवशी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेम-धारा भारतीयोकी ओर भी अवश्य बहती । उनका दलील यह थी कि हवशी लोग गोरोके पहलेसे यहा रह रहे है और उनकी यह मातृभूमि है । इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोसे नही छीना जा सकता । किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाय तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नही कहा जा सकता । पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोकी ओर ही झुकता । स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमे केपटाउन हालमे जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री श्राईनर ही थे । श्री मेरीमैनने भी उनसे बडे प्रेम और विनयपूर्वक बातचीत की और भारतीयोके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया । (द० अ० स०, पृष्ठ ५६)

: १५६ :

फिरोजशाह मेहता

मै सर फिरोजशाहसे मिला । मै उनसे चकाचौंध होनेके लिए तैयार ही था। उनके नामके साथ लगे बडे-बडे विशेषण मैंने सुन रखे थे। 'बबईके शेर', 'बबईके बेताजके बादशाह' से मिलना था। परन्तु बादशाहने मुझे भयभीत नही किया। जिस प्रकार पिता अपने जवान पुत्रसे प्रेमके साथ मिलता है, उसी प्रकार वह मुझसे मिले। उनके चेबरमे उनसे मिलना था। अनुयायियोसे तो वह सदा घिरे हुए रहते ही थे। वाच्छा थे, कामा थे। उनसे मेरा परिचय कराया। वाच्छाका नाम मैंने सुना था, वह फिरोजशाहके दाहिने हाथ माने जाते थे। अक-शास्त्रीके नामसे वीरचद गाधीने मुझे उनका परिचय कराया था। उन्होने कहा—"गाधी, हम फिर भी मिलेगे।"

कुल दो ही मिनटमे यह सब हो गया। सर फिरोजशाहने मेरी बात सुन ली। न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजीसे मिलनेकी भी बात मैने कही। उन्होने कहा—"गाधी, तुम्हारे कामके लिए मुझे एक सभा करनी होगी। तुम्हारे काममे जरूर मदद देना चाहिए।" मुशीकी ओर देखकर सभाका दिन निश्चय करनेके लिए कहा। दिन तय हुआ और मुझे छुट्टी मिली। कहा—'सभाके एक दिन पहले मुझसे मिल लेना।" मै निश्चित होकर मनमे फूलता हुआ अपने घर गया। (आ० क०, १९२७)

. . . .

बहनोईके देहातके दूसरे ही दिन मुझे सभाके लिए बबई जाना था। मुझे इतना समय न मिला था कि अपने भाषणकी तैयारी कर रखता। जागरण करते-करते थक रहा था। आवाज भी भारी हो रही थी। यह विचार करता हुआ कि ईश्वर किसी तरह निबाह लेगा,

मै बबई गया। भाषण लिखकर ले जानेका तो मुझे स्वप्नमे भी खयाल न हुआ था।

सभाकी तिथिके एक दिन पहले शामको पाच बजे आज्ञानुसार मै सर फिरोजशाहके दफ्तरमे हाजिर हुआ।

"गाधी, तुम्हारा भाषण तैयार है न ?" उन्होने पूछा।

'नही तो, मैने जबानी ही भाषण देनेका इरादा कर रखा है।" मैने डरते-डरते उत्तर दिया।

"बबईमें ऐसा न चलेगा। यहाका रिपोर्टिंग खराब है और यदि तुम चाहते हो कि इस सभासे लाभ हो तो तुम्हारा भाषण लिखित ही होना चाहिए और रातो-रात छपा लेना चाहिए। रात ही को भाषण लिख सकोगे न ?"

मै पसोपेशमे पडा, परतु मैने लिखनेकी कोशिश करना स्वीकार किया।

"तो मुंशी तुमसे भाषण लेने कब आवें ?" बबईके सिह बोले।

"ग्यारह बजे।" मैने उत्तर दिया।

सर फिरोजशाहने मुशीको हुक्म दिया कि उतने बजे जाकर मुझसे भाषण ले आवे और रातो-रात उसे छपा ले। इसके बाद मुझे विदा किया।

दूसरे दिन मै सभामे गया। मैने देखा कि उनकी लिखित भाषण पढनेकी सलाह कितनी बुद्धिमत्तापूर्ण थी। फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूटके हालमे सभा थी। मैने सुन रखा था कि सर फिरोजशाहके भाषणमे सभा भवनमे खडे रहनेको जगह न मिलती थी। इसमे विद्यार्थीलोग खूब दिलचस्पी लेते थे।

ऐसी सभाका मुझे यह पहला अनुभव था। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी आवाज लोगो तक नही पहुच सकती। कापते-कापते मैने अपना भाषण शुरू किया। सर फिरोजशाह मुझे उत्साहित करते जाते—"हा,

जरा और ऊची आवाजमे ।" ज्यो-ज्यो वह ऐमा कहते त्यो-त्यो मेरी आवाज गिरती जाती थी ।

मेरे पुराने मित्र केशवराव देशपाडे मेरी मददके लिए दौडे। मैने उनके हाथमे भाषण सौपकर छुट्टी पाई । उनकी आवाज थी तो बुलद, पर प्रेक्षक क्यो सुनने लगे ? 'वाच्छा', 'वाच्छा', की पुकारसे हाल गूज उठा । अब वाच्छा उठे । उन्होने देशपाडेके हाथसे कागज लिया और मेरा काम बन गया । सभामे तुरत सन्नाटा छा गया और लोगोने अथसे इतितक भाषण सुना । मामूलके मुताबिक प्रसगानुसार 'शर्म'-'शर्म' की अथवा करतल-ध्वनि हुई । सभाके इस फलमे मै खुश हुआ ।

सर फिरोजशाहको भाषण पसद आया । मुझे गगा नहानेके बराबर सतोष हुआ । (आ० क०, १९२७)

: १६० :

डा० मेहता

डॉ० मेहताके पैरका घाव जहरीला हो गया और उनका पांव कटवा देना पडा । तार आया है कि इससे उनकी स्थिति गभीर हो गई है । सुबह आपरेशन अच्छा हो गया । यह तार आया था कि हालत संतोषजनक है । इस पर बापूने वापस तार दिया था--"बडी खुशी हुई । रोज तार देते रहिए ।" यह बात हो ही रही थी कि डॉक्टरमें बर्दाश्त करनेकी ताकत है कि इतनेमें दूसरा तार आया—डॉक्टरको खूब बुखार है । फिर तार आया--डॉक्टरको निमोनिया है और हालत नाजुक है । इसके बाद भी बापूने कहा--"रतिलाल और मगनकी तकदीरसे अब भी जी जाय तो

कह नहीं सकते ।" इस तरह बापूके मुहसे भी मानवोचित उद्‌गार निकल जाते थे (३ ८ ३२)

आज डॉक्टर मेहताके देहावसानका तार आया। कल रातको ९–४५ पर शरीर छोडा। बापूको कितनी चोट लगी, इसका अदाज इस तारसे हो सकता है—

ईश्वरकी इच्छा ! तुम्हे और माताजीको आश्वासन। पिताजीकी उदात्त परपराओकी यानी व्यापारमे ईमानदारी, महमानदारीमे उदारता और दानशील स्वभाव, इन सबकी रक्षा करना। सरदार और महादेव शोकमे मेरे साथ शरीक है। मेरी तो कहू ही क्या ? उम्र-भरके वफादार दोस्तकी जुदाई दिलमे चुभ रही है। मुझे सब हाल बताते रहना। ईश्वर तुम सबका भला करे।

बेचारे ने दो महीने पहले तो सत्याग्रहमें शामिल होनेकी इजाजत मागी थी और उसे नवबरमें बापूसे मिलनेकी आशा थी। मणिलाल रेवाशकर जगजीवनको पत्रमें लिखा

सुदर भवनके अब बर्बाद होनेका खतरा पैदा हो गया है। तुम सबको डॉक्टरका वियोग खटकेगा ही। मगर मेरी हालत अजीब है। डॉक्टरसे ज्यादा मित्र इस ससारमे मेरा कोई नही था। मेरे लिए वे जिदा ही है। मगर यहा बैठा हुआ मै उनके भवनको अविच्छिन्न रखनेमे लगभग कुछ भी भाग नही ले सकता, यह मुझे खटकता है। तुम जो कुछ कर सकते हो कर लेना। डॉक्टरका नाम अमर रखनेके काममे तुम कहा तक भाग ले सकते हो, यह लिखना।

नानालाल मेहताको

डॉक्टरके चले जानेसे मेरी हालत तुम सबसे ज्यादा खराब हो गई है। मुझे यह खटकता है कि जिसे मै अपना सबसे पुराना साथी या मित्र कहता हू, वह जाता रहे और मै जेलमें बद होनेसे उसके पीछे कुछ भी न कर सकू। मगर इसमें भी ईश्वरका भेद है, कृपा भी हो। मै नहीं

जानता कि डॉक्टरका भवन आबाद रखनेकी तुम्हारी कहा तक शक्ति है। जितनी हो उसे काममे लेना। डॉक्टरका नाम निष्कलंक रहे और उनके गुण उनके लडके कायम रखे, यह देखनेकी बात है।

बड़े लड़के छगनलालको :

डॉक्टरके स्वर्गवासका सच्चा खयाल अबसे तुम्हारे बरतावमे जाहिर होना चाहिए। डॉक्टरके कई सद्गुण ही उनका असली वसीयतनामा है। वह तुम्हारा उत्तराधिकार है। तुममे छोटे भाइयोको जरा भी क्लेश न होना चाहिए। मेरा उम्रभरका साथी जा रहा है तब मै अपग जैसी हालतमे (जेलमे) हू, यह मुझे खटकता है नही तो मै इस वक्त तुम्हारे पास खडा होता। शायद डॉक्टरकी आखिरी सास मेरी गोदमे निकली होती। मगर ईश्वर हमारा सोचा हुआ सब होने नही देता। इसलिए मै उतना ही करूगा, जितना डाकके जरिए हो सकता है।

पोलकको :

डॉ० मेहता चल बसे। मैने अपना उम्रभरका वफादार मित्र खो दिया। वैसे मेरे लिए वे जीने-जीमे भी मरनेके बाद ज्यादा जीवित है, क्योकि अब मै उनके तमाम अच्छे गुणोको ज्यादा याद करूगा। यह स्मरण एक पवित्र थाती है। मगनलालके नामका पत्र इसके साथ भेजता हू। मै चाहता हू कि तुम उसे पिताके योग्य बननेमे पूरी मदद दो। मैने उसे सलाह तो दी ही है कि चिता न करे और पढाईमे लगा रहे। कितने ही समयसे डॉ० मेहता शरीरसे जर्जर हो गये थे, फिर भी उनकी शुरूकी व्यवहारदक्षता ज्यो-की-त्यो बाकी थी। इसलिए उन्होने मगनलालकी पढाईके लिए रुपएका इतजाम किया ही होगा। मगनलाल जानता होगा। मुझे दुख है कि इस समय मै उन लोगोके बीच नही हू। मगर मेरा सोचा हुआ नही, सदा उसीका सोचा हुआ होवे।

रातको सोते समय बापू कहने लगे :

ज्ञान भी इतना ज्यादा पक्का होनेकी जरूरत है कि बुद्धिसे मनको

मनानेका थोडा ही असर हो । जानते है कि डॉक्टरको जीना नही था, वह शरीर नाश होने लायक था और उसका नाश हो गया। फिर भी इतनी बेचैनी किस लिए ?

मैंने कहा—"अपने प्रिय जनोकी या जिनके साथ वर्षों निकट सबधमें बीते हो उनकी मौतका समाचार सुनकर यदि उनका स्मरण बार-बार होने लगे तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?" बापू बोले :

स्मरण तो हो, परन्तु दु ख किसलिए हो ? मौत और शादीमे किस लिए फर्क होना चाहिए ? विवाहका प्रसग याद करके आनद-ही-आनद होता है, वैसे ही मृत्युमे होनेवाले स्मरणोमे आनद क्यो नही होना चाहिए ? मेरी बेचैनी मगनलालकी मौतसे भी कुछ ज्यादा है । कारण इतना ही है कि मै बाहर होता तो इस परिवारको अच्छी तरह सभाल लेता । मगर यह भी गलत ही है । यह अपग हालत ठीक क्यो न हो ?

डाक्टरके उदात्त गुणोको याद करके उनका तर्पण किया । (म० डा०, ४ ८ ३२)

: १६१ :

मेहरबाबा

वह जबरदस्त आदमी है । वह किसीको ढूढने नही जाते, मगर लोग उनके पास चले आते है, रुपया चला आता है, विलायतमे किसी स्टारने बुलाया तो चले गये । अमरीकामे धनवानोने बुलाया तो चले गये । और उनका असर क्यो न पडे ? सात वर्षसे मौन और फिर भी कोई पागल नही । इतनी-सी बात भी लोगोको आकर्षित करनेके लिए काफी है ।

मैंने कहा—"उन्होंने अपनी पुस्तक पढ़नेको दी थी, वह आपको कैसी लगी ?" बापू :

उसमे साधारण तो कोई बात थी नही। और अग्रेजीमे लिखी थी। उनके शिष्यने उनके विचार दर्ज किए थे, इसलिए गड़बड़ घोटाला-सा हो गया था। मैंने उन्हे सुझाया कि आपको लिखना हो तो गुजरातीमे लिखिए या अपनी मादरी जबान फारसीमे लिखिए। हम पराई भाषामे क्यो लिखे ? उन्हे यह सूचना पसद आई।

मैंने कहा—"उनकी मुखमुद्रापर एक तरहकी प्रसन्नता है।" बापू बोले :

हा, जरूर है। और उनका दावा भी है कि उन्हे सदा आनद-ही-आनंद है। वे मानते है कि उन्हे साक्षात्कार हुआ है। वे बाल-ब्रह्मचारी है और उनका कहना है कि उन्हे विकार नही होते। और मुझे वे सच्चे आदमी मालूम होते है। उनमे आडबर तो है ही नही। (म० डा०)

: १६२ :

रेम्जे मैक्डोनल्ड

वल्लभभाई—"कुछ भी हो, मैक्डोनल्ड सब निगल जायगा। और पंच फैसला भी हमारे खिलाफ ही होनेवाला है।"

बापू—"अभी मुझे मैक्डोनल्डसे आशा है कि वह विरोध करेगा।"

वल्लभभाई—"नहीं जी, वह क्या विरोध करेगा! ये सब बिलकुल नंगे लोग है।"

बापू—"तो भी इस आदमीके अपने उसूल है"

वल्लभभाई—"उसूल हो तो इस तरह अनुदारोके हाथोमें बिक जाय ? उसे देश परसे हुकूमत छोडनी ही नहीं है ।"

बापू—"छोडनी तो नही है, मगर इसमे उसका स्वार्थ नही है । सिर्फ लास्की, होरेबिन और ब्रॉकवे जैसे थोडेमे आदमियोके सिवा छोडना तो कोई नही चाहता । बेन, लीज और स्मिथ वगैरह सब मैक्डोनल्ड-जैसे ही है । मै तो इतना ही कहता हू कि यह आदमी देशका हित देखकर अनुदारोमे मिला है । अब यह आदमी पच फैसला देनेकी बात रोके हुए है । वह सारी जिंदगीके उसूलोको ताकमे नही रख सकता ।"

मै—"तो क्या मुसलमानोको अलग मताधिकार नही देने देगा ?"

बापू—"यह तो देने देगा, लेकिन अस्पृश्योके लिए अलग मताधिकार वह सहन नही कर सकेगा ।"

मै—"क्या वह सचमुच यह बात समझा भी है ।"

बापू—"जरूर, वह सब समझता है। जिसे साइमन कमीशनने समझ लिया, उसे क्या वह नही समझेगा ? वह कहेगा कि मैने तुम्हे आर्डिनेन्स निकालने दिया, बयान देने दिया, लेकिन अब मै तुम्हारे साथ और नही चल सकता । इसीलिए उसने अभी तक निर्णय रोक रखा है । होर तो कुछ भी करे मुझे आश्चर्य नही होगा । उसे तो किसी भी तरह देशको कुचलना है । इसके लिए मुसलमानोको जो भी देना जरूरी होगा वह देनेको तैयार रहेगा ।" (म० डा०, ६ ७ ३२)

: १६३ :

मोतीलाल

बढवाण स्टेशनपर दर्जी मोतीलाल, जो वहाके एक प्रसिद्ध पजा-सेवक माने जाते थे, मुझसे मिलने आए। उन्होंने मुझसे वीरमगामकी जकातकी जाचका तथा उसके सबधमे होनेवाली तकलीफोका जिक्र किया। मुझे बुखार चढ रहा था। इसलिए बात करनेकी इच्छा कम ही थी। मैंने थोडेमे ही उत्तर दिया.

'आप जेल जानेके लिए तैयार है ?"

इस समय मैंने मोतीलालको वैसा ही एक युवक समझा, जो बिना विचारे उत्साहमें 'हा' कर लेते है, परतु उन्होने बडी दृढता के साथ उत्तर दिया—

"हा, जरूर जेल जायगे; पर आपको हमारा अगुआ बनना पड़ेगा। काठियावाडीकी हैसियतसे आपपर हमारा पहला हक है। अभी तो हम आपको नहीं रोक सकते, परतु वापस लौटते समय आपको बढवाण जरूर उतरना पडेगा। यहाके युवकोका काम और उत्साह देखकर आप खुश होगे। आप जब चाहें तब अपनी सेनामें हमें भर्ती कर सकेंगे।"

उस दिनसे मोतीलालपर मेरी नजर ठहर गई। उनके साथियोने उनकी स्तुति करते हुए कहा

"यह तो दर्जीभाई है। पर अपने हुनरमें बडे तेज है। रोज एक घटा काम करके प्रतिमास कोई पद्रह रुपए अपने खर्चके लायक पैदा कर लेते हैं। शेष सारा समय सार्वजनिक सेवामें लगाते है और हम सब पढे-लिखे लोगोको राह दिखाते है और शर्मिदा करते है।"

बादको भाई मोतीलालसे मेरा बहुत सावका पडा था और मैंने देखा कि उनकी इस स्तुतिमे अत्युक्ति न थी। सत्याग्रह-आश्रमकी स्थापनाके

बाद वह हर महीने कुछ दिन आकर वहा रह जाते। बच्चोंको सीना सिखाते और आश्रममे सीनेका काम भी कर जाते। वीरमगामकी कुछ-न-कुछ बाते वह रोज सुनाते। मुसाफिरोंको उसमे जो कष्ट होते थे वह इन्हे नागवार हो रहे थे। इन मोतीलालको बीमारी भर जवानीमे ही खा गई और वढवाण उनके बिना सूना हो गया। (आ० क० १९२७)

: १६४ :

भील-नेता मोतीलाल

श्रीयुत मणिलाल कुठारी लिखते हैं

"आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूतानाके भीलोंकी हालत पर लिखते हुए आपने 'यग इडिया'में भीलनेता मोतीलालको माफ करनेकी सिफारिश की थी। सन् १९२४ में राजपूतानाके ए० जी० जी०, सर आर० ई० हालैंडने सारे मामलेपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करके और उस समय-के राजपूतानेके शातिमय वातावरणका खयाल करके सबधित राज्योको सलाह दी थी कि वे मोतीलालको क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय बाद उनके प्रभावका उपयोग पिछडी हुई और अज्ञान भील-जातिके सामाजिक सुधारमें हो सके। मुझे पता चला है कि राजपूतानेकी तमाम देशी रिया-सतोने, जिसमें मेवाडभी शामिल है, इस प्रस्तावको मजूर किया था और सर आर० ई० हालैंड एव उनके उत्तराधिकारी लेफ्टीनेन्ट कर्नल पैटरसन-ने भी मुझसे स्पष्ट ही कहा था कि मैं बबई सरकारको अधिकार-पूर्वक कह सकता हू कि अगर बबई प्रात की ईडर, दाता वगैरह रियासतें मोती-लालको क्षमा कर दें तो राजपूतानेको कोई आपत्ति न होगी। लेकिन

आज मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड-जैसी रियासत बिना मुकदमा चलाए मोतीलालजी को गिरफ्तार किए है।

"अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलालसे बेताल्लुकी जाहिर कर दी थी। मुझे विश्वास है कि यह बात सच नही है। मैं मानता हू कि आप उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आए है और उनके कामके बारेमें भी कुछ जानते है। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूगा कि आप कृपाकर इस गलतफहमीको दूर करेंगे और मेवाड दरबारको इस मामलेमें सहानुभूति-पूर्वक विचार करने और मोतीलालको छोड़ देनेकी सलाह देंगे।"

पाठक शायद ही मोतीलालको जानते हो। वह एक भोले-भाले, अपढ समाज-सुधारक और राजपूतानाके भीलोंके सेवक है। उनकी बडी इच्छा है कि भील लोग मास और मदिराका त्याग कर दे। एक समय उनका भीलोपर बहुत ज्यादा प्रभाव था। और आज भी, यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नही है, उस जातिके लोग बडे आदरसे उनका नाम लेते है, क्योकि मोतीलालके कारण ही उनमे काफी समाजिक सुधार हो सका था। यरवडा जेलसे छूटनेके बाद मुझे मोतीलालसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह न पढे-लिखे है और न ज्यादा किसीसे बात ही करते है। वह एकमात्र काम करना जानते है और अपनेमे तथा अपनेलोगोमे विश्वास करना जानते है। जो लोग कहते है कि १९२२ मे मैने उनपर अविश्वास-सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्यको छिपाना चाहते है। १९२२ मे जब मैने सुना कि वह मेरे नामका उपयोग करते है, मैने कहा था कि उन्हे ऐसा करनेका कोई अधिकार नही है। लेकिन उसके बाद और विशेषकर जब मुझे उनके कार्यका कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैने बडे जोरोसे इस बातकी सिफारिश की थी कि उन्हे क्षमा कर दिया जाय। मैने तो अपने सतोषके लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हालैडकी सिफारशमे 'यग इडिया' की पक्तियोका भी कुछ हाथ होगा। चाहे कुछ ही क्यो न हो, मुझे आशा थी कि मोतीलालको क्षमा मिल गई होगी और

१९२२ की घटनाको सत्रंधित राज्य अवतक भूल चुके होगे । इसी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड राज्यने उन्हें किसी दूसरे नए अभियोगके लिए नही, वल्कि १९२२ वाले पुराने आरोपोंके कारण ही फिरसे गिरफ्तार करके कैदमे रख छोडा है । मुझे विश्वास है कि मेवाड राज्य यह नही भूलेगा कि अगर उसने भीलोके प्यारे नेताको ज्यादा समय तक कैदमे रख छोडा तो भोलेभाले भील राज्यपर अविश्वासका आरोप करेगे, क्योकि वे तो मानते थे कि उनके नेताको क्षमा कर दिया गया है। जहा तक मै जानता हू, मोतीलालने ऐसा कोई काम नही किया है, जिसके कारण वह कैदमे रक्खे जाय । अतएव मै विश्वास करता हू कि यह भोला-भाला और सच्चा सुधारक शीघ्र ही कैदसे छोड दिया जायगा और अपने लोगोमे समाज-सुधारका काम करनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया जायगा । (हि० न०, ५ ८ २९)

: १६५ :

हसरत मोहानी

मौलाना हसरत मोहानी हम लोगोमे वडे जीवटके आदमी है । वे जितने वीर है उतने ही दृढ भी है और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह है । ब्रिटिश सरकारके प्रति तथा अग्रेजोके प्रति उनके हृदयमे घृणाके जो भाव भरे है उसके सामने उन्हे मोपलोके आचरणमे कोई दोष नही दिखाई देता ।मौलाना साहवका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ किया जाय सब ठीक और उचित है । उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोने धर्मके लिए ही यह सग्राम किया है और इसलिए मोपलोके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नही किया जा सकता । धर्म और सदाचार-

का यह परिच्छिन्न रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमे धर्मके नामपर अधर्माचरण भी धार्मिक है। जहा तक मै जानता हू, इस्लाम धर्म इस तरहकी बातोका प्रतिपादक नही है। इस सबधमे मैने अनेक मुसलमानोसे भी बातचीत की ह। वे भी मौलाना साहबके मतमे सहमत नही है। मै अपने मलाबारके साथियोमे यही कहूगा कि वे मौलानाकी बात न सुने। यद्यपि धर्मके बारेमे उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मै जानता हू कि हिंदू-मुस्लिम-एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढकर कट्टर समर्थक दूसरा नही है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कही उत्तम है। पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है। (य० इ०, भाग ३, पृष्ठ ७३३)

: १६६ :

एन० जी० रंगा

प्रोफेसर रगा एक ऐसे साथी और कार्यकर्त्ता है, जिन्हे एक लबे अर्सेसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। वह बहादुर और अच्छे स्वभाववाले है। (ह० से०, १३-४-४०)

: १६७ :

रविशंकर

श्री रविशंकर व्यास खेडा जिलेके एक साहसी सुधारक है, जिन्होंने वहांके बहादुर पर अनपढ राजपूतोंको कई बुराइयोंसे मुक्त किया है। (हि० न०, १०४३०)

भाई रविशंकरकी सेवाको लेखक नाममात्रकी समझते है। यह त्यागकी मूर्ति यदि नामकी ही सेवा करती है तो कामकी सेवा कौन करता है, मै नही जानता। (हि० न०, १४५३१)

: १६८ :

अब्दुर रहीम

. राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहब अजमलखाके बिना चल सकता है। सर अब्दुर रहीम, जिन्होने कि गोखलेके साथ-साथ, जब कि वे इसलिंगटन-कमीशनके सदस्य थे, गुणतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नही है। यदि उनका खयाल है कि हिंदुओंके साथ मुसलमानोका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा करनेके बिना मुल्क तरक्की नही कर सकता तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है। मुमकिन है कि वे गलत तरीके अख्तियार किए हुए हो, लेकिन वे आजादीके इच्छुक जरूर है। (हि० न०, ९९२६)

: १६६ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अभी बिल गजटमे प्रकाशित नही हुआ था। मेरा शरीर था तो निर्बल, किंतु मैने लबे सफरका खतरा मोल लिया। अभी ऊची-आवाजमे बोलनेकी शक्ति नही आई थी। खडे होकर बोलनेकी शक्ति जो तबसे गई सो अबतक नही आई है। खडे होकर बोलते ही थोडी देरमे सारा शरीर कापने लगना और छाती और पेटमे घबराहट मालूम होने लगती है, किंतु मुझे ऐसा लगा कि मद्राससे आए हुए निमत्रणको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। दक्षिणके प्रात उस समय मुझे घरके समान ही लगते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सबधके कारण मै मानता आया हू कि तामिल-तेलगू आदि दक्षिण प्रातके लोगोपर मेरा कुछ हक है और अबतक ऐसा नही लगा है कि मैने यह विचार करने मे जरा भी भूल की है। आमत्रण स्वर्गीय श्री कस्तूरीरगा ऐयगरकी ओरसे आया था। मद्रास जाने ही मुझे जान पडा कि इस आमत्रणके पीछे श्री राजगोपालाचार्य थे। श्री राजगोपालाचार्यके साथ मेरा यह पहला परिचय माना जा सकता है। पहली ही बार हम दोनो ने एक-दूसरेको यहा देखा।

सार्वजनिक काममे ज्यादा भाग लेनेके इरादेसे और श्रीकस्तूरीरगा ऐयगर आदि मित्रोकी मागसे वह सेलम छोडकर मद्रास वकालत करनेवाले थे। मुझे उन्हीके यहा ठहरानेकी व्यवस्था की गई थी। मुझे दो-एक दिन बाद मालूम हुआ कि मै उन्हीके घर ठहराया गया हू। वह बगला श्री कस्तूरीरगा ऐयगरका होनेके कारण मैने यही मान लिया था कि मै उन्हीका अतिथि हू। महादेव देसाईने मेरी यह भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य दूर-ही-दूर रहते थे। किंतु महादेवने उनसे भली-भाति परिचय कर लिया

था। महादेवने मुझे चेताया, "आपको श्रीराजगोपालाचार्यसे परिचय कर लेना चाहिए।"

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज ही लड़ाईके संगठनकी सलाह किया करता था। सभाओंके अलावा मुझे और कुछ सूझता ही नहीं था रौलेट बिल अगर कानून बन जाय तो उसका सविनय भंग कैसे हो? सविनय-भंगका अवसर तो तभी मिल सकता था, जब सरकार देती। दूसरे किन कानूनोंका सविनय-भंग हो सकता है? इसकी मर्यादा क्या निश्चित हो? ऐसी ही चर्चाएं होती थीं।

यों सलाह-मशविरा हो रहा था कि इसी बीच खबर आई कि बिल कानून बनकर गजटमें प्रकाशित हो गया है। जिस दिन यह खबर मिली, उस रातको मैं विचार करता हुआ सो गया। भोरमें बड़े सवेरे उठ खड़ा हुआ। अभी अर्द्ध-निद्रा होगी कि मुझे स्वप्नमें एक विचार सूझा। सवेरे ही मैंने श्रीराजगोपालाचार्यको बुलाया और बात की .

"मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके जवाबमें हमें सारे देशसे हड़ताल करनेके लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह आत्मशुद्धिकी लड़ाई है। यह धार्मिक लड़ाई है। धर्म-कार्यको शुद्धिसे शुरू करना ठीक लगता है। एक दिन सभी लोग उपवास करें और काम-धंधा बंद रखें। मुसलमान भाई रोजाके अलावा और उपवास नहीं रखते। इसलिए चौबीस घंटेका उपवास रखनेकी सलाह देनी चाहिए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें सभी प्रांत शामिल होंगे या नहीं। बंबई, मद्रास, बिहार और सिंधकी आशा तो मुझे अवश्य है, पर इतनी जगहोंमें भी अगर ठीक हड़ताल हो जाय तो हमें संतोष मान लेना चाहिए।"

यह तजवीज श्री राजगोपालाचार्यको बहुत पसंद आई। फिर तुरंत ही दूसरे मित्रोंके सामने भी रखी। सबने इसका स्वागत किया। मैंने एक छोटा-सा नोटिस तैयार कर लिया। पहले सन १९१९ के मार्चकी ३० तारीख रखी गई थी, किंतु बादमें ६ अप्रैल कर दी गई। लोगोंको

खबर बहुत थोड़े दिन पहले दी गई थी। कार्य तुरत करनेकी आवश्यकता समझी गई थी। अत तैयारीके लिए लबी मियाद देनेकी गुजाइश ही नही थी। पर कौन जाने कैसे मारा सगठन हो गया। सारे हिंदुस्तानमे शहरोमे और गावोमे हड़ताल हुई। यह दृश्य भव्य था। (मा० क० १९२७)

आज सुबह (२१-८-३२) फिर निर्णय (साप्रदायिक निर्णय) पर बातें हुई। जयकर, सप्रू और चितामणिकी रायोपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे—यह आशा रख सकते है कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नही है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते है कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चितामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढाई।

बापू—क्योकि चितामणि हिंदुस्तानी है, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चितामणि समझते है कि इस निर्णयमे ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोकी चिता ही नही। किसी भी हिंदुस्तानीको समझानेकी जरूरत नही होगी कि कितना ही अच्छा विधान गुडोके हाथमे दिया जाय तो उसकी दुर्गति भी होगी। और इस निर्णयसे विधान गुडोके ही हाथमे दिया जा रहा है। अभी तो केन्द्रीय सरकारका बाकी है। ये केन्द्रीय सरकारको एक धधकता हुआ कुड बना डालेगे और कहेगे कि अब इसमे पड़ो और जल मरो।

मालवीयजी और राजगोपालाचार्यको आज अगर इस चीजका पता चले तो वे क्या कर सकते है ? थोड़े ही दिनकी तो बात है न ? मेरे खयालसे मालवीयजी और राजाजी को भी इस बातसे थोड़ा धक्का लगानेकी जरूरत है। राजाजी तो इतनी तेज बुद्धिके है कि उन्हे फौरन मालूम हो जायगा कि इस आदमीने यह कदम कैसे उठाया।

यह बात ऐसे आरातमे ही समझमें आ जायगी, (म० डा०)

राजाजी तो सोना है। उनकी बात दुनियाके किसी भी हिस्सेमें मानी जायगी। (म० डा०, १५ १२ ३२)

•

प्रस्ताव' बनानेवाले राजाजी थे। जितना यकीन मुझको था कि मै सही रास्ते पर हू उतना ही यकीन उनको था कि उनका रास्ता सही रास्ता है। उनकी दृढता, हिम्मत और नम्रताने कई लोगोको उनकी तरफ खीच लिया। इनमे सरदार पटेल एक बहुत भारी शिकार थे। अगर मै राजाजीको रोकता तो वह अपना प्रस्ताव कमेटीके सामने लानेका विचार तक न करते। मगर मै अपने साथियोको भी उनकी दृढता, ईमानदारी और आत्मविश्वासके लिए वही साख देता हू, जो मै अपने लिए चाहता हू। मै बहुत दिनोसे देख रहा था कि हमारे सामने देशकी राजनैतिक समस्याओके बारेमे हमारा मत एक दूसरेसे दूर हट रहा था। वह मुझे यह कहनेकी इजाजत नही देते कि वह अहिंसासे दूर हटे है। उनका यह दावा है कि उनकी अहिसा ही उन्हे इस प्रस्तावतक ले गई है। उनको लगता है कि दिनरात अहिंसाके ही विचारमे डूबे रहनेसे मुझपर एक प्रकारका भूत सवार हो गया है। उनको प्राय ऐसा लगता है कि मेरा दृष्टिकोण धुधला हो गया है। मेरे प्रत्युत्तरमे यह कहनेसे कि उनकी ही दृष्टि धुधली हो गई है, कोई फायदा नही था, अगरचे हँसी-हँसीमे मैने उनसे ऐसा कह भी दिया। मेरे पास सिवाय मेरी श्रद्धाके दूसरा कोई सबूत नही है कि मै उनकी मुझमे उलटी श्रद्धाका दावेसे विरोध कर सकू। ऐसा करना साफ वाहियात बात होगी। मै वर्षोंसे ही कार्यसमितिको

'दिल्ली प्रस्ताव जिसमें सहयोग तथा एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेकी माग की गई थी।

अपने साथ नही रख सका था और इसलिए मै उनसे अलग हो गया।

मुझे यह दीपककी तरह स्पष्ट दीख गया था कि अगर वह लोग मेरी बात स्वीकार नही कर सकते थे तो उनके पास राजाजीकी बात माननेके सिवाय दूसरा चारा ही नही था। सो यद्यपि मै मानता था कि राजाजी सरासर गलती पर है, मैंने उनको उनका प्रयत्न जारी रखनेको उत्तेजन दिया। आदर्श, धैर्य, चतुराई और विरोधियोकी भावनाओके प्रति मान बताकर आखिर उन्होने बहुमत पाया। पाच सदस्य तटस्थ रहे, उन्होने वोट नही दिया। (ह० से०, १३-७-४०)

• •

राजाजीके साथ दीर्घकालसे मेरा निकटका परिचय है। मै जानता हू कि वे एक ऐसे वीर पुरुष है कि उनको किसीके सहारेकी जरूरत नही। वे ऐसे अनासक्त है कि बहुत घटे तो छोटो, बहुत मिनट तक भी मानिहानिकी ग्लानि दिलमे नही रख सकते। मै यह भी जानता हू कि उनमे सुदर विनोद-वृत्ति है, इसलिए अगर उनकी कोई हँसी भी करे तो वे बुरा नही मानेगे। इसलिए मेरा यह इकरार निजी सतोषके लिए ही माना जाय।

मै खुले तौरपर कह चुका हू कि अगर मैने राजाजीको उत्तेजन न दिया होता तो नई दिल्लीमे जो प्रास्ताव उन्होने पेश किया वह न करते। उनकी तीव्र बुद्धि और प्रमाणिकताके लिए मुझे बडा आदर है। इसलिए जब उन्होने एक चौकानेवाले आत्मविश्वासके साथ कहा कि 'इस विषयमे अहिसाके अर्थ व प्रयोगके बारेमे मेरा अभिप्राय ही सच्चा है, आपका बिलकुल गलत,'' तो मै अपने अर्थके बारेमे खुद सदिग्ध बन गया और मैने लगाम ढीली छोडकर राजाजीको उनके विचारके अनुसार चलनेको प्रोत्साहित किया। निर्बल आदमी अकस्मातसे ही न्याय करता है। इसके विपरीत मजबूत और अहिसक आदमी अन्याय अकस्मातसे करता है। मैने राजाजीको ऐसी स्थितिमे डाल दिया कि उनकी हँसी हुई और निर्दय टीकाका शिकार उन्हे बनना पडा। मेरे दिलमे शक नही कि नई दिल्लीका

प्रस्ताव रद होनेसे कांग्रेस बड़े खतरेसे बच गई है। लेकिन राजाजी ऐसा नहीं मानते। वे तो अब भी मानते हैं कि उन्होंने जो किया वही ठीक था। एक नेताके लिए और खास तौरपर जब वह राजाजीकी कोटिके हों, अच्छा नहीं कि उनके किए-कराएपर इस तरह पानी फिर जाय। अगर उनकी चलती तो जो प्रस्ताव आज देशके सामने पेश हुआ है वह भिन्न प्रकारका ही होता और मैं आज कांग्रेसके अंदर नहीं, बाहर ही होता, क्योंकि वर्धा-प्रस्तावके कुदरती परिणामस्वरूप दिल्लीका प्रस्ताव पास होनेसे पहले ही मैं तो कांग्रेससे निकल चुका था।

मेरी आशा है कि मैंने जनताको यह साबित करनेके लिए काफी मसाला दे दिया है कि राजाजीने जो कुछ किया उसमें वीरता थी और वह करनेका उन्हें अधिकार था। उसमेंसे जो गलती पैदा हुई उसके लिए जिम्मेदार मैं हूं।

जो अभिप्राय मैंने राजाजीके नई दिल्लीवाले प्रस्तावके बारेमें दिया है, वही मैं उनकी 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें भी रखता हूं। अगर पूनाका प्रस्ताव ठीक मान लिया जाय तो फिर 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें शंका नहीं हो सकती। यह बात याद रखनी चाहिए कि मुस्लिम लीग एक बड़ी संस्था है और हिंदुस्तानकी मुस्लिम प्रजाके ऊपर उसका काफी प्रभाव है। कांग्रेसने इससे पहले उससे काफी व्यवहार किया है, और मुझे जरा भी शक नहीं है कि वह फिर भी करेगी। हमारे हिसाबसे काइदे आजम चाहे कितनी ही गलतीपर क्यों न हों, हमें चाहिए कि जैसे हम खुद अपनी प्रामाणिकताके बारेमें दावा करते हैं, वैसे ही उनकी प्रामाणिकताको भी कबूल करें। जब लड़ाईके बादल बिखर जाएंगे और हिंदुस्तान अपना आजादीका जन्मसिद्ध अधिकार पा लेगा, तब मुझे शक नहीं कि कांग्रेसी लोग किसी मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसीको अपने प्रधान मंत्रीके तौरपर वैसे ही सहर्ष स्वीकार करेंगे जैसे कि एक हिन्दूको। इतना ही नहीं, वह कांग्रेसी न भी हो तो भी वैसे ही और किसी प्रकारके धर्म-वर्णके भेद बिना उसे आदर देंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि राजाजीकी तजवीजका यही अर्थ था।

आजकलकी भडकी हुई रागद्वेषादिकी ज्वाला जब ठंडी पड़ जायगी तब राजाजीके टीकाकार मेरे अभिप्रायको स्वीकार करेंगे। एक देशसेवकके बारेमे गलत राय बना लेना उचित नही है और खास तौरपर जब कि वह राजाजीके दर्जेका देशसेवक हो। राजाजीके बारेमे जो उल्टा मत बाधा गया है उससे उन्हे भले ही कुछ भी नुकसान न हुआ हो मगर कौम अपने सच्चे सेवकोके बारेमे इस तरह उलटा और गलत अभिप्राय बाधकर अपने आपको उनकी सेवासे जरूर वंचित करती है और अपने पावपर कुल्हाडी मारती है। (ह० से०, २८-९-४०)

इसमे कोई शक नही कि राजाजीने आज एक ऐसे कामको हाथमें लिया है, जिसकी वजहसे वे अपने साथियोसे जुदा पड गये है। मगर उनके सख्त-से-सख्त दुश्मन भी उनकी इस प्रवृत्तिमे स्वार्थके उद्देश्यका आरोप उनपर नही लगाएगे। कार्य करनेकी उनकी शक्ति अद्भुत है। वे जिस चीजको हाथमे लेते है, उसीमे अपनेको डुबा देनेकी उनकी तबीयत है। आज जिस तरह वे अपने विचारोका प्रचार करनेमे जुट गये है, वह भी उनके इसी स्वभावका सूचक है। उनकी अनन्यता और उत्साह सराहने योग्य है। इससे उनके प्रति हमारा आदर-भाव और भी बढना चाहिए और वे जो कुछ कहे, उसे अदबके साथ हमे सुनना चाहिए। उनका उद्देश्य ऊचे-से-ऊचा है। हिंदु-मुस्लिम एकताका प्रयत्न एक उच्च वस्तु है और जापानियोके हमलेसे देशको बचा लेनेका प्रयत्न भी उतनी ही ऊची चीज है। उनकी रायमे ये दोनो चीजे एक-दूसरेके साथ गुथी हुई है।

गुंडापन राजाजीकी दलीलोका कोई जवाब नही। उनकी सभाओमे हुल्लडबाजी करना घोर असहिष्णुताका एक चिह्न है। अगर हम दूसरे पक्षको सुननेके लिए तैयार न हुए तो लोकतत्रवादका विकास होना असभव है। इसलिए उन तमाम लोगोसे जो राजाजीकी सभाओमे हुल्लड-

बाजी करते है, मेरा नम्र निवेदन है कि वे आइंदा ऐसा न करें, बल्कि उनकी बातोंको वे उस ध्यान और धीरजसे सुने जिसके कि वे योग्य है।

पाठक मेरी इस मान्यताको जानते हैं कि राजाजी गलतीपर हैं। वे एक मिथ्या चीजका वातावरण पैदा कर रहे है। वे खुद पाकिस्तानको नही मानते और न वे राष्ट्रवादी मुसलमान या दूसरे लोग ही मानते है, जो अलग होनेके अधिकारको स्वीकार करना चाहते है। परतु इन सब लोगोका कहना है कि मुस्लिम लीगसे उसकी अलग होनेकी माग छुडवानेका यही एक रास्ता है। मुझे आश्चर्य होता है कि बहुतसे मुसलमान एक ऐसी स्वीकृतिसे खुश हो रहे है, जिसकी कुछ भी कीमत होनेके बारेमे शका है।

अगर वे तमाम लोग, जो मानते है कि आज और हमेशाके लिए हिंदुस्तान ही उनका वतन है, उसे उपस्थित सकटसे और आगे सिरपर मडराते हुए खतरेसे बचानेमें अपना पूरा हिस्सा अदा करे, तो इन दोनो भयोके पूरी तरह मिट जानेके बाद वह समय आयेगा, जब हम पाकिस्तानकी या दूसरे 'स्तानो' की भी बाते करेगे और या तो सुलह और शातिके साथ या लडकर इसका फैसला कर लेगे। कोई तीसरा पक्ष हमारी किस्मतका फैसला नही कर सकता और न उसे इसका अधिकार ही है। इसका फैसला या तो दलीलसे होगा, या तलवारसे। राजाजीका सराहनीय और देश-भक्तिपूर्ण आग्रह अगर दूसरा कोई ऐसा रास्ता खोल दे जिसका खुद उन्हें या और किसीको भी ज्ञान नही, तो बात दूसरी है। नही तो उनका तरीका हमे एक ऐसी अधीगलीमें ले जाकर छोडेगा कि जिसमे न आगे जानेका रास्ता है और न पीछे हटनेकी गुजाइश। मगर हमारे बीच इन बातोमें मतभेदका कुछ भी नतीजा क्यो न हो, मेरी विनती तो आपसी सहिष्णुता और आदरभावके लिए है। (ह० से०, ३१ ५ ४२)

• •

राजाजीकी माटुगा (बबई) वाली सभामे जो हुल्लडबाजी हुई, उसका विवरण पढनेसे दिलको चोट पहुचती है। क्या राजाजी अब

किसी तरहके सम्मानके अधिकारी ही नही रहे, और सो भी इसलिए कि उन्होने एक ऐसे विचारको अपनाया है, जो लोकमतके विरुद्ध जान पडता है ? वे निमत्रण पाकर ही माटुगा गये थे। जनताको उनकी बात शाति-पूर्वक सुननी चाहिए थी। जो उनके विचारोमे सहमत नही थे, वे उस सभामें अनुपस्थित रह सकते थे, लेकिन सभामे शामिल होनेके बाद तो उनका यह कर्तव्य था कि वे उनकी बात चुपचाप सुने। हा, सभा समाप्त होनेपर वे उनसे प्रश्न पूछ सकते थे और जिरह कर सकते थे। उनपर कोलतार छिडकने और सभा मे गड़बडी मचानेवालोने अपने हाथो अपना अपमान किया है और अपने कार्यको हानि पहुचाई है। उनका तरीका न तो स्वराज्य-प्राप्तिका तरीका है, न 'अखड हिंदुस्तान' की स्थापनाका तरीका है। आशा है, माटुगाकी यह बर्बरता, हुल्लडबाजी अपने ढगकी आखिरी चीज होगी। इस अवसरपर जो राजाजीकी कसौटीका अवसर था, उन्होने जिस दृढता, खामोशी, खुशमिजाजी और, हाजिर-जवाबीका परिचय दिया, वह उनके अनुरूप ही था। अपने इन गुणोके कारण राजाजीको नये अनुयायी चाहे न मिले, उनके प्रशसकोकी सख्या तो बढी ही होगी, क्योकि जनता आमतौरपर किसी चर्चास्पद समस्याकी तहमे नही पैठा करती। वह तो स्वभावसे वीरपूजक होती है और राजाजीमे वीरोचित गुणोकी कमी कभी रही नही। (ह० से०, ५ ७ ४२)

• • •

पलनीसे लौटते हुए श्री राजाजी और श्री गोपालस्वामीके खिलाफ एक खत मुझे दिया गया। उसमे यह भी लिखा था कि ये दोनो मेरे पास लोगोको नही आने देते, जिन्हे इनसे शिकायत है। मै जानता हू कि यह सच नही। तो भी जो मुझसे महत्वकी बात करना या मुझे लिखना चाहे, उसे कोई भी रोक नही सकता। इस खतका मेरे पास पहुचना ही यह प्रमाणित करता है। श्री कामराज नादर मेरे साथ स्पेशल रेलमे थे। पलनीके मदिरमे भी वे मेरे साथ रहे। लेकिन इसमे कोई शक नही कि

यात्रामें राजाजी और गोपालस्वामी मेरे बहुत ही समीप थे। यात्राका प्रबंध उन्होंने किया था। राजाजी मेरे सबसे पुराने मित्रोंमेंसे हैं और कहा जाता था कि अपने जीवनमें मेरे आदर्शोंका पालन वे ही सबसे बढकर करते थे। मैं जानता हूं कि १९४२ में उनका मुझसे मतभेद हुआ। मेरे दिलमें उनके लिए इस बातका आदर है कि उन्होंने खुली सभामें मेरा विरोध किया। वे बडे समाज-सुधारक हैं और जो मानते हैं, उसे निडर होकर करते हैं। उनकी दयानतदारी और राजनैतिक बुद्धिमानी-से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए दुःखकी बात है कि उनके विरुद्ध आज एक गुट बन गया है और मद्रासके कांग्रेसी हल्कोंमें इस गुटका असर है। लेकिन आम जनताका प्रेम राजाजीके साथ है। मैं इतना मूर्ख या इतना घमंडी नहीं हूं कि यह न समझ पाऊं कि यात्राके रास्तेमें दर्शनके लिए जो जनता लाखोंकी संख्यामें जमा हुई थी उसका कारण बहुत हद तक राजाजीका प्रभाव ही था। दक्षिण देशके कांग्रेसी वही करें, जो उनकी रायमें ठीक हो, लेकिन मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि उन्हें चेतावनी दूं कि वे राजाजीकी सेवाको इस वक्त हाथसे जाने न दें, क्योंकि दूसरा कोई उनकी तरह उसे कर नहीं सकेगा। (ह० से०, १०-२-४६)

: १७० :

राजेन्द्रप्रसाद

बृजकिशोरबाबू और राजेन्द्रबाबूकी जोडी अद्वितीय थी। उन्होंने प्रेमसे मुझे ऐसा अपंग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०)

मेरे साथ काम करनेवालोमे राजेन्द्रप्रसाद सबसे अच्छोमे एक है। वे जब कभी चाहे मुझे सेवाके लिए बुला सकते है। हरिजन-कार्य उनका उतना ही है जितना मेरा और उसी तरह बिहारका काम मेरा उतना ही है-जितना उनका, परतु परमात्माने उन्हे बिहारकी सहायता के लिए बुलाया है, जिस तरह मुझे उसने हरिजन कार्यके लिए बुलाया है। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

•

यह पुस्तक पूरी तो मै नही पढ सका हू। लेकिन इतना जान सका हू कि यह राजेन्द्रबाबूके जीवनका सरल वर्णन है। जाच करनेपर मुझे प्रतीति हुई है कि इस पुस्तकमे जो हकीकत दी गई है वह सब सच है, कोई अतिशयोक्ति नही है। राजेन्द्रबाबूके पवित्र चरित्रको पढकर कौन कृतार्थ नही होगा। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

• • •

राजेन्द्रबाबू हमारे उत्कृष्ट सहकारियोमेसे है। ('राष्ट्रवाणी,') (३ १२ ४५)

• • • •

राजेन्द्रबाबूका त्याग हमारे देशके लिए गौरवकी वस्तु है। नेतृत्वके लिए इन्हीके समान आचरण चाहिए। राजेन्द्रबाबू जैसा विनम्रतापूर्वक व्यवहार है और प्रभाव है वैसा कही भी किसी भी नेताका नही है। ('राष्ट्रवाणी')

: १७१ :

महादेव गोविन्द रानडे

जैसा कि स्व० गोखले कहा करते थे, रानडेकी तीक्ष्ण दृष्टिसे एक भी चीज नही बची थी और जिस चीजमे उनके देशवासियोको यत्किंचित् भी लाभ पहुच सकता था, उसे उन्होने कभी अपने मनमे नगण्य नही समझा। (ह० से०, २७ ९ ३५)

: १७२ :

रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका नाम जितना दक्षिणमे प्रसिद्ध है उतना हिंदुस्तानमे नही। इस देवीने स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेके नामको सुशोभित कर दिया है। उनकी मृत्युसे हिंदू ससारकी बडी हानि हुई है।

रमाबाईने अपने वैधव्यको जिस प्रकार सुशोभित किया है उस प्रकार बहुत कम बहनोने किया होगा। पूनाके सेवासदनमे एक हजार लडकिया और स्त्रिया अनेक प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करती है। यह सेवा सदन आज जिस गौरवको प्राप्त हुआ है वह रमाबाईकी अनन्य भक्तिके बिना उसे कभी न प्राप्त हो पाता। रमाबाईने एक ही कार्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था।

वैधव्यका अर्थ ही है अनन्य भक्ति। पातिव्रतके मानी है शुद्ध वफादारी। मामूली वफादारीका सबंध देहके साथ है। अतएव देहके साथ ही उसका अन्त हो जाता है। वैधव्यमे जो वफादारी है वह आत्माके प्रति है।

वैधव्यको धर्म स्थान देकर हिंदूधर्मने यह सिद्ध कर दिया है कि विवाह वास्तवमे शरीरका नही, बल्कि आत्माका होता है। रमाबाईने रानडेकी आत्माके साथ विवाह किया था। अतएव उन्होने उस आत्म सबधको अखडित रखा। और इसीलिए रमाबाईने उन कामोमे जो रानडेको प्रिय थे, अपनेसे होने लायक एक कामको उठा लिया है और उसमे अपना सर्वस्व लगाकर वैधव्यका पूरा अर्थ समाजको समझाया। ऐसा करके रमाबाईने स्त्री जातिकी भारी सेवा की है। जब मै सासून अस्पतालमे था तब कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि अच्छी हिंदुस्तानी दाई केवल इसी अस्पतालमे शिक्षा पाती है। ये तमाम दाइया सेवासदनके द्वारा तैयार होती है और उनकी माग सारे हिंदुस्तानसे आती है। विधवाए यदि कार्यक्षेत्रमे उतरे तो अच्छे काम करनेके अनेक स्थान उनके लिए है। केवल चरखेका ही काम इतना है कि वह सैकडो विधवाओका सारा समय ले सकता है। और यह अनुभव किस विधवाको नही हुआ कि चरखा गरीबोका रखवाला है। यह तो मैने एक ऐसा काम सुझाया जो सर्व-व्यापक और परम कल्याणकारी है। ऐसे अनेक काम है, जिनमे धनिक विधवाए गरीब विधवाओ तथा अन्य बहनोको तैयार करनेमे अपना समय लगा सकती है। (हिं० न०, ४ ५ २४)

: १७३ :

श्रीमद् राजचन्द्रभाई

मेरे जीवनपर श्रीमद् राजचन्द्रभाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पडा है कि मै उसका वर्णन नही कर सकता। उनके विषयमे मेरे गहरे विचार है। मै कितने ही वर्षोसे भारतमे धार्मिक पुरुषोकी शोधमे हू, परतु मैने ऐसा

धार्मिक पुरुष भारतमें अबतक नहीं देखा, जो श्रीमद्राजचद्र भाईके साथ प्रतिस्पर्धा कर सके। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी, ढोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे। उनमें एक ऐसी महान् शक्ति थी जिसके द्वारा वे प्राप्त हुए प्रसगका पूर्ण लाभ उठा सकते थे। उनके लेख अग्रेज तत्व-ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण, भावनामय और आत्मदर्शी है। यूरोपके तत्व-ज्ञानियोमे मै टाल्स्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान् समझता हू, परतु श्रीमद्राजचद्रभाईका अनुभव इन दोनोसे भी बढा-चढा था। इन महापुरुषोके जीवनके लेखोको अवकाशके समय पढेंगे तो आप पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पडेगा। वे प्राय कहा करते थे कि मै किसी बाडेका नही हू और न किसी बाडेमें रहना ही चाहता हू। यह सब तो उपधर्म—मर्यादित—है और धर्म तो असीम है कि जिसकी व्याख्या हो ही नही सकती। ये अपने जवाहरातके धधेसे विरक्त होते कि तुरत पुस्तक हाथमे लेते। यदि उनकी इच्छा होती तो उनमे ऐसी शक्ति थी कि वे एक अच्छे प्रतिभाशाली बैरिस्टर, जज या वाइसराय हो सकते थे। यह अतिशयोक्ति नही, किंतु मेरे मनपर उनकी छाप है। इनकी विचक्षणता दूसरेपर अपनी छाप लगा देती थी। (राजचद्र-जयती, अहमदाबादमे सभापति-पदसे दिया गया भाषण)

मेरे जीवनपर मुख्यतासे श्रीमद्राजचद्रकी छाप पडी है। महात्मा टाल्स्टाय और रस्किनकी अपेक्षा भी श्रीमदराजचद्रने मुझपर गहरा प्रभाव डाला है। (राजचद्र-जयती, वढवाणके भाषणसे)

• • •

जिनका पुण्य-स्मरण करनेके लिए हम लोग आए हुए है, उनके हम लोग पुजारी है। मै भी उनका पुजारी हू।

वे दयाधर्मकी मूर्ति थे। उन्होने दयाधर्म समझा था और उसे अपने जीवनमे उतारा था।

मैंने यह बहुत बार कहा और लिखा है कि मैंने अपने जीवनमे बहुतोसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। पर सबसे अधिक यदि मैंने किसीके जीवनमे-से ग्रहण किया हो तो वह कविश्री (श्रीमद् राजचद्र) के जीवनमेसे ग्रहण किया है। दया-धर्म भी मैने उन्हीके जीवनमेसे सीखा है।

बहुत-से प्रसगोमे तो हमे जड होकर वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। शुद्ध जड और चैतन्यमे भेद नहीके बराबर है। सारा जगत जड़रूप ही देख पडता है। आत्मा तो कभी क्वचित् ही प्रकाशित होता है। ऐसा व्यवहार अलौकिक पुरुषोका होता है और यह मैंने देखा है कि ऐसा व्यवहार श्रीमद् राजचद्रभाईका था।

वे बहुत बार कहा करते थे कि मेरे शरीरमे चारो ओरसे कोई बरछी भोक दे तो मैं उसे सह सकता हू, पर जगतमे जो झूठ, पाखड, अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म हो रहा है उसकी बरछी मुझसे सही नही जाती। अत्याचारोसे उन्हे अकुलाते मैने बहुत बार देखा है। वे सारे जगतको अपने कुटुबके जैसा समझते थे। अपने भाई या बहनकी मौतसे जितना दुख हमे होता है उतना ही दुख उन्हे ससारमे दुख और मृत्यु देखकर होता था।

राजचद्रभाईका शरीर जो इतनी छोटी उम्रमे छूट गया इसका कारण भी मुझे यही जान पडता है। यह ठीक है कि उनके शरीरमे दर्द घर किए हुए था, पर जगतके तापका जो दर्द उन्हे था वह उनके लिए असह्य था। उनके देहमे केवल शारीरिक ही दर्द होता तो उसे उन्होने अवश्य जीत लिया होता, पर उन्हे तो जान पडा कि ऐसे विषम कालमे आत्म-दर्शन कैसे हो सकता है, यह दया-धर्मकी निशानी है।

वे कहा करते थे कि जैनधर्म श्रावकोके हाथोमे न गया होता तो इसके तत्वोको देखकर जगत चकित हो जाता। ये बनिये लोग तो जैन-धर्मको गदला कर रहे है। ये लोग कीडीनगरा पूरते है। मुहमे कभी मच्छर चला जाय तो इन्हे दुख होता है। ऐसी छोटी-छोटी धर्म-क्रियाओको

ये लोग पालते है। यह धर्म-क्रियाका पालन इनके लिए अच्छा है। पर जो लोग यह समझते है कि ऐसी क्रियाओका पालन ही धर्मकी परिसीमा है वे धर्मकी नीची-से-नीची श्रेणीमे ही है। यह धर्म पतितोका है, पुण्यवानोका नही है। इसी परसे बहुतसे श्रावक कहते है कि राजचद्रको धर्मका मान नही था। वे दभी थे, अहकारी थे। पर मै खुद तो जानता हू कि दभ या अहकारका उनमे नाम भी न था। (राजचद्र-जयती, अहमदावादमे दिया गया भाषण १५ ११ २१)

बबई-बदरपर समुद्र क्षुब्ध था। जून-जुलाईमे हिंद-महासागरमे यह कोई नई बात नही होती। अदनसे ही समुद्रका यह हाल था। सब लोग बीमार पड गये थे—अकेला मै मौजमे रहा था। तूफान देखनेके लिए डेकपर रहता और भीग भी जाता।

माताजीके दर्शन करनेके लिए मै अधीर हो रहा था। जब हम डॉकपर पहुचे तो मेरे बडे भाई वहा मौजूद थे। उन्होने डाक्टर मेहता तथा उनके बडे भाईसे जान-पहचानकर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि मै उन्हीके घर ठहरू, सो वह मुझे वही लिवा ले गये। इस तरह विलायतमे जो सबध बधा था वह देशमे भी कायम रहा। यही नही, बल्कि अधिक दृढ होकर दोनो परिवारोमे फैला।

डाक्टर मेहताने अपने घरके जिन लोगोसे परिचय कराया, उनमेसे एकका जिक्र यहा किए बिना नही रह सकता। उनके भाई रेवाशकर जगजीवनके साथ तो जीवनभरके लिए स्नेह-गाठ बध गई, परतु जिसकी बात मै कहना चाहता हू वह तो है कवि रायचद्र अथवा राजचद्र। वह डाक्टर साहबके बडे भाईके दामाद थे और रेवाशकर जगजीवनकी दूकानके भागीदार तथा कार्यकर्ता थे। उनकी अवस्था उस समय २५ वर्षसे अधिक न थी। फिर भी पहली ही मुलाकातमे मैने यह देख लिया कि वह चरित्रवान् और ज्ञानी थे। वह शतावधानी माने जाते थे। डाक्टर

मेहताने कहा कि इनके शतावधानका नमूना देखना । मैंने अपने भाषा-ज्ञानका भंडार खाली कर दिया और कविजीने मेरे कहे तमाम शब्दोंको उसी नियमसे कह सुनाया, जिस नियमसे मैंने कहा था। इस सामर्थ्यपर मुझे ईर्ष्या तो हुई, किंतु उसपर मैं मुग्ध न हो पाया। जिस चीजपर मैं मुग्ध हुआ उसका परिचय तो मुझे पीछे जाकर हुआ। वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका निर्मल चरित्र और आत्म-दर्शन करनेकी उनकी भारी उत्कंठा। मैंने आगे चलकर तो यह भी जाना कि केवल आत्मदर्शन करनेके लिए वह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

हसता रमता प्रगट हरि देखूं रे
मारुं जीव्युं सफल तव लेखूं रे,
मुक्तानंद नो नाथ विहारी रे
ओधा जीवनदोरी अमारी रे।[1]

मुक्तानंदका यह वचन उनके जबानपर तो रहता ही था, पर उनके हृदयमें भी अंकित हो रहा था।

खुद हजारोंका व्यापार करते, हीरे-मोतीकी परख करते, व्यापारकी गुत्थियां सुलझाते, पर वे बातें उनका विषय न थीं। उनका विषय, उनका पुरुषार्थ तो आत्म-साक्षात्कार—हरिदर्शन—था। दुकानपर और कोई चीज हो या न हो, एक-न-एक धर्म-पुस्तक और डायरी जरूर रहा करती। व्यापारकी बात जहां खतम हुई कि धर्म-पुस्तक खुलती अथवा रोजनामचेपर कलम चलने लगती। उनके लेखोंका संग्रह गुजरातीमें प्रकाशित हुआ है। उसका अधिकांश इस रोजनामचेके ही आधारपर लिखा गया है। जो मनुष्य लाखोंके सौदेकी बात करके तुरंत

---

[1]भावार्थ यह कि मैं अपना जीवन तभी सफल समझूंगा, जब मैं हंसते-खेलते ईश्वरको अपने सामने देखूंगा। निश्चय-पूर्वक वही मुक्तानंदकी जीवन-डोरी है। —अनु०

आत्मज्ञानकी गूढ बाते लिखने बैठ जाता है वह व्यापारीकी श्रेणीका नही, बल्कि शुद्ध ज्ञानीकी कोटिका है। उनके सवधमे यह अनुभव मुझे एक वार नही, अनेक वार हुआ है। मैने उन्हे कभी गाफिल नही पाया। मेरे साथ उनका कुछ स्वार्थ न था। मै उनके बहुत निकट समागममें आया हू। मै उस वक्त एक ठलुवा वैरिस्टर था। पर जब मै उनकी दूकानपर पहुच जाता तो वह धर्म-वार्ताके सिवा दूसरी कोई वात न करते। इस समय तक मै अपने जीवनकी दिशा न देख पाया था। यह भी नही कह सकते कि धर्म-वार्ताओमे मेरा मन लगता था। फिर भी मै कह सकता हू कि रायचद्रभाईकी धर्म-वार्ता मै चावसे सुनता था। उनके वाद मै कितने ही धर्माचार्योंके सपर्कमे आया हू, प्रत्येक धर्मके आचार्योंसे मिलनेका मैने प्रयत्न भी किया है, पर जो छाप मेरे दिल-पर रायचदभाईकी पड़ी, वह किसी की न पड सकी। उनकी कितनी ही वातें मेरे ठेठ अतस्तलतक पहुच जाती। उनकी वुद्धिको मै आदरकी दृष्टि-से देखता था। उनकी प्रामाणिकतापर भी मेरा उतना ही आदर-भाव था और इससे मै जानता था कि वह जान-बूझकर उल्टे रास्ते नहीं ले जायगे एव मुझे वही वात कहेगे, जिसे वह अपने जीमे ठीक समझते होगे। इस कारण मै अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोमे उनकी सहायता लेता।

रायचदभाईके प्रति इतना आदर-भाव रखते हुए भी मै उन्हे धर्मगुरुका स्थान अपने हृदयमें न दे सका। धर्म-गुरुकी तो खोज मेरी अवतक चल रही है।

हिंदू-धर्ममे गुरुपदको जो महत्त्व दिया गया है उसे मैं मानता हू। 'गुरु विन होत न ज्ञान' यह वचन वहुतागमे सच है, अक्षर-ज्ञान देनेवाला शिक्षक यदि अधकचरा हो तो एक वार काम चल सकता है। परन्तु आत्मदर्शन करनेवाले अधूरे शिक्षकसे हरगिज काम नही चलाया जा सकता।

इसीलिए रायचदभाईको मै यद्यपि अपने हृदयका स्वामी न बना सका,

तथापि हम आगे चलकर देखेगे कि उनका सहारा मुझे समय-समयपर कैसा मिलता रहता है। यहा तो इतना ही कहना बस होगा कि मेरे जीवनपर गहरा असर डालनेवाले तीन आधुनिक मनुष्य है—रायचदभाईने अपने सजीव ससर्गसे, टॉल्स्टायने 'स्वर्ग तुम्हारे हृदयमे है' नामक पुस्तक द्वारा तथा रस्किनने 'अनटु दिस लास्ट'—'सर्वोदय' नामक पुस्तकमे मुझे चकित कर दिया है। (आ० क०, १९२७)

•

ईसाको मै त्यागी, महात्मा, दैवी शिक्षक मान सकता था, परतु एक अद्वितीय पुरुष नही। ईसाकी मृत्युसे ससारको एक भारी उदाहरण मिला, परतु उसकी मृत्युमे कोई गुह्य चमत्कार-प्रभाव था, इस बातको मेरा हृदय न मान सकता था। ईसाईयोके पवित्र जीवनमेसे मुझे कोई ऐसी बात न मिली जो दूसरे धर्मवालोके जीवनमे न मिलती थी। उनकी तरह दूसरे धर्मवालोके जीवनमें भी परिवर्तन होता हुआ मैने देखा था। सिद्धातकी दृष्टिसे ईसाई-सिद्धातोमे मुझे अलौकिकता न दिखाई दी। त्यागकी दृष्टिसे हिंदू-धर्मवालोका त्याग मुझे बढकर मालूम हुआ। अत ईसाई-धर्मको मै सपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्म न मान सका।

अपना यह हृदय-मथन मैने, समय पाकर ईसाई मित्रोके सामने रखा। उसका जवाब वे सतोषजनक न दे सके।

परतु एक ओर जहा मै ईसाई-धर्मको ग्रहण न कर सका वहा दूसरी ओर हिंदू-धर्मकी सपूर्णता अथवा सर्वोपरिताका भी निश्चय मै इस समय तक न कर सका। हिंदू-धर्मकी त्रुटिया मेरी आखोके सामने घूमा करती। अस्पृश्यता यदि हिंदू-धर्मका अग हो तो वह मुझे सडा हुआ अथवा बढा हुआ मालूम हुआ। अनेक सप्रदायो और जात-पातका अस्तित्व मेरी समझमे न आया। वेद ही ईश्वर-प्रणीत है, इसका क्या अर्थ? वेद यदि ईश्वर-प्रणीत है तो फिर कुरान और बाइबिल क्यो नही?

जिस प्रकार ईसाई मित्र मुझपर असर डालनेका उद्योग कर रहे थे,

उसी प्रकार मुसलमान मित्र भी कोशिश कर रहे थे। अब्दुल्ला सेठ मुझे इस्लामका अध्ययन करनेके लिए ललचा रहे थे। उसकी खूबियोंकी चर्चा तो वह हमेशा करते रहते।

मैंने अपनी दिक्कतें रायचंदभाईको लिखी। हिंदुस्तानमें दूसरे धर्म-शास्त्रियोंसे भी पत्र-व्यवहार किया। उनके उत्तर भी आये, परंतु राय-चंदभाईके पत्रने मुझे कुछ शांति दी। उन्होंने लिखा कि धीरज रखो और हिंदू-धर्मका गहरा अध्ययन करो। उनके एक वाक्यका भावार्थ यह था—"हिंदू-धर्ममें जो सूक्ष्म और गूढ विचार है, जो आत्माका निरीक्षण है, दया है, वह दूसरे धर्ममें नहीं है—निष्पक्ष होकर विचार करते हुए मैं इस परिणामपर पहुंचा हूं।"

मेरा अध्ययन मुझे ऐसी दिशामें ले गया जिसे ईसाई मित्र न चाहते थे। एडवर्ड मेटलैंडके साथ मेरा पत्र-व्यवहार काफी समयतक रहा। कवि (रायचंद) के साथ तो अंततक रहा। उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भेजीं। उन्हें भी पढ गया। उनमें 'पंचीकरण, 'मणिरत्नमाला', 'योगवाशिष्ठ' का मुमुक्षु-प्रकरण, हरिभद्र सूरिका 'षड्दर्शनसमुच्चय' इत्यादि थे। (आ० क० १९२७)

मैं जिनके पवित्र संस्मरण लिखना आरंभ करता हूं, उन स्वर्गीय राजचंद्रकी आज जन्मतिथि है। कार्तिक पूर्णिमा संवत् १९७९ को उनका जन्म हुआ था। मैं कुछ यहां श्रीमद्राजचंद्रका जीवनचरित नहीं लिख रहा हूं। यह कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। मेरे पास सामग्री भी नहीं। उनका यदि मुझे जीवनचरित लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मैं उनकी जन्मभूमि ववाणीआ बंदरमें कुछ समय बिताऊं, उनके रहनेका मकान देखूं, उनके खेलने-कूदनेके स्थान देखूं, उनके बालमित्रोंसे मिलूं, उनकी पाठशालामें जाऊं, उनके मित्रों, अनुयायियों और सगे-संबंधियोंसे मिलूं और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कहीं

लिखना आरभ करु। परतु इनमेसे मुझे किसी भी बातका परिचय नही।

इतना ही नही, मुझे सस्मरण लिखनेकी अपनी शक्ति और योग्यताके विषयमे भी शका है। मुझे याद है, मैने कई बार ये विचार प्रकट किए है कि अवकाश मिलनेपर उनके सस्मरण लिखूगा। एक शिष्यने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूपसे यहा उन्हीके सतोषके लिए यह लिखा है। श्रीमद्‌राजचद्रको मै 'रायचद्रभाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक सबोधन करता था। उनके सस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओके समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्रोके सतोषके लिए है। उनके सस्मरणोके साथ न्याय करनेके लिए मुझे जैन-मार्गका अच्छा परिचय होना चाहिए। मै स्वीकार करता हू कि वह मुझे नही है। इसलिए मै अपना दृष्टि-बिदु अत्यत सकुचित रखूगा। उनके जिन सस्मरणोकी मेरे जीवन पर छाप पडी है, उनके नोट्‌स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मै सतोष मानूगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन सस्मरणोके पाठक मुमुक्षुओको भी मिलेगा।

मुमुक्षु शब्दका मैने यहा जान बूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकारके पाठकोके लिए यह प्रयास नही।

मेरे ऊपर तीन पुरुषोने गहरी छाप डाली है: टॉल्टाय, रस्किन और रायचदभाई। टालस्टायने अपनी पुस्तको द्वारा और उनके साथ थोडे पत्र-व्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती नाम मैने 'सर्वोदय' रक्खा है और रायचदभाईने अपने साथ गाढ परिचयसे। जब मुझे हिंदूधर्ममे शका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमे मदद करनेवाले रायचदभाई थे। सन १८९३ मे दक्षिण अफ्रीकामे मै क्रिश्चियन सज्जनोके विशेष सम्पर्कमे आया।

उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियोको क्रिश्चियन होनेके लिये समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सबध व्यावहारिक कार्यको लेकर ही हुआ था तो भी उन्होने मेरी आत्माके कल्याणके लिए चिता करना शुरु कर दिया। उस समय मै अपना एक ही कर्त्तव्य समझ सका कि जबतक मै हिंदूधर्मके रहस्यको पूरी तौरसे न जान लू और उससे मेरी आत्माको असतोष न हो जाय तबतक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोडना चाहिए। इसलिए मैने हिंदूधर्म और अन्य धर्मोकी पुस्तके पढना शुरु कर दी। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तके पढी। विलायतके अग्रेज मित्रोके साथ पत्र-व्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शकाए रक्खी तथा हिंदुस्तान-मे जिनके ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी उनसे पत्र-व्यवहार किया। उन मे रायचदभाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सबध हो चुका था। उनके प्रति मान भी था। इसलिए जो मिल सके उनसे लेनेका मैने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शाति मिली। हिंदूधर्ममे मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मनको विश्वास हुआ। मेरी इस स्थितिके जवाबदार रायचदभाई हुए। इसमे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते है।

इतना होनेपर भी मैने उन्हे धर्मगुरु नही माना। धर्मगुरुकी तो मै खोज किया ही करता हू। और अबतक मुझे सबके विषयमें यही जवाब मिला है कि ये नही। ऐसा सपूर्ण गुरु प्राप्त करनेके लिए तो अधिकार चाहिए। वह मै कहासे लाऊ ?

× × ×

रायचन्दभाईके साथ मेरी भेंट जुलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई जब मै विलायतसे बम्बई वापस आया। इन दिनो समुद्रमे तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रातको देरीमे पहुचा। मै डाक्टर—बैरिस्टर—और अब रगूनके प्रख्यात झवेरी प्राणजीवनदास मेहताके घर उतरा था।

रायचदभाई उनके बडे भाईके जमाई होते थे। डाक्टर साहबने ही परिचय कराया। उनके दूसरे बड़े भाई झवेरी रेवाशकर जगजीवनदासकी पहचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर साहबने रायचदभाईका 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा, "कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापारमे है। आप ज्ञानी और शतावधानी है।" किसीने सूचना की कि मै उन्हे कुछ शब्द सुनाऊ और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हो, जिस क्रमसे मै बोलूगा उसी क्रमसे वे दुहरा जावेगे। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मै तो उस समय जवान और विलायतसे लौटा था। मुझे भाषा-ज्ञानका भी अभिमान था। मुझे विलायतकी हवा भी कुछ कम न लगी थी। उन दिनो विलायतसे आया मानो आकाशसे उतरा। मैने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया। और अलग-अलग भाषाओके शब्द पहले तो मैने लिख लिए; क्योकि मुझे वह क्रम कहा याद रहनेवाला था और वादमे उन शब्दोको मै बाच गया। उसी क्रमसे रायचदभाईने धीरेसे एकके बाद एक सब शब्द कह सुनाए। मै राजी हुआ, चकित हुआ और कविकी स्मरण-शक्तिके विषयमे मेरा उच्च विचार हुआ। विलायतकी हवा कम पडनेके लिए कहा जा सकता है कि यह सुदर अनुभव हुआ।

कविको अग्रेजी ज्ञान बिलकुल न था। उस समय उनकी उमर पच्चीससे अधिक न थी। गुजराती पाठशालामे भी उन्होने थोडा ही अभ्यास किया था। फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आसपाससे इतना उनका मान! इससे मै मोहित हुआ। स्मरणशक्ति पाठशालामे नही बिकती और ज्ञान भी पाठशालाके बाहर, यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो—तो मिलता तथा मान पानेके लिए विलायत अथवा कही भी नही जाना पडता परतु गुणको मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थपाठ मुझे बबई उतरते ही मिला।

कविके साथ यह परिचय बहुत आगे बढा। स्मरणशक्ति बहुत लोगोकी तीव्र होती है, इसमे आश्चर्यकी कुछ बात नही। शास्त्रज्ञान भी

बहुतोमें पाया जाता है, परतु यदि वे लोग सस्कारी न हो तो उनके पास फूटी कौडी भी नही मिलती। जहा सस्कार अच्छे होते है वही स्मरण-शक्ति और शास्त्रज्ञान सबध शोभित होता है और जगतको शोभित करता है। कवि सस्कारी ज्ञानी थे।

× × ×

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशु बाह्यातर निर्ग्रंथ जो,
सर्व सबधनु बधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशु कव महत्पुरुषने पथ जो ?
सर्व भाव थी औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देश ते सयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो .
अपूर्व०

रायचदभाईकी १८वर्षकी उमरके निकले हुए अपूर्व उद्गारोकी ये पहली दो कडिया है।

जो वैराग्य इन कडियोमे छलक रहा है, वह मैने उनके दो वर्षके गाढ परिचयमे प्रत्येक क्षणमें देखा है। उनके लेखोकी एक असाधारणता यह है कि उन्होने स्वय जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमे कही भी कृत्रिमता नही। दूसरेके ऊपर छाप डालनेके लिए उन्होने एक लाइन भी लिखी हो, यह मैने नही देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पडी ही रहती थी। इस कापीमे वे अपने मनमे जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्यमे और कभी पद्यमे होते थे। इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक क्रिया करते हुए उनमे वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हे इस जगत्के किसी भी वैभवपर मोह हुआ हो, यह मैने नही देखा।

उनका रहन-सहन मै आदरपूर्वक परतु सूक्ष्मतासे देखता था। भोजनमें जो मिले वे उसीसे सतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अगरखा, खेस, सिल्कका दुपट्टा और धोती यही उनकी पोशाक थी

तथा ये भी कुछ वहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हो, यह मुझे याद नही। जमीनपर वैठना और कुरसीपर वैठना उन्हे दोनो ही समान थे। सामान्य रीतिसे दुकानमे वे गद्दीपर वैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचारमे मग्न है। आखोमे उनके चमत्कार था। वे अत्यत तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आखोमे एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होठ पतले, नाक न नोकदार न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम और देखनेमे वे शातिमूर्ति थे। उनके कठमे इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हे सुननेवाले थकते न थे। उनका चेहरा हँसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अतरानदकी छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हे अपने विचार प्रकट करते समय कभी कोई शब्द ढूढना पडा हो, यह मुझे याद नही। पत्र लिखने वैठते तो शायद ही शब्द वदलते हुए मैंने उन्हे देखा होगा। फिर भी पढनेवाले को यह न मालूम होता था कि कही विचार अपूर्ण है अथवा वाक्य-रचना त्रुटि-पूर्ण है, अथवा शब्दोके चुनावमे कमी है।

यह वर्णन सयमीके विषयमे सभव है। वाह्याडवरसे मनुष्य वीतरागी नही हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। यह अनेक जन्मोके प्रयत्नसे मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागोको निकालनेका प्रयत्न करनेवाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कविकी स्वाभाविक थी ऐसी मेरे ऊपर छाप पडी थी।

मोक्षकी प्रथम सीढी वीतरागता है। जवतक जगतकी एक भी वस्तुमे मन रमा है तवतक मोक्षकी वात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी हो तो केवल कानोको ही ठीक वैसे ही जैसे कि हमे अर्थके समझे विना किसी सगीतका केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्णप्रिय क्रीडामेसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले

आचरणके आनेमें बहुत समय बीत जाता है। आंतर वैराग्यके बिना मोक्षकी लगन नहीं होती। ऐसे वैराग्यकी लगन कविमें थी।

× × ×

वणिक तेहनु नाम जेह जूठू नव बोले,
वणिक तेहनु नाम, तोल ओछु नव तोले,
वणिक तेहनु नाम बापे बोल्यु तेपाले,
वणिक तेहनु नाम व्याजसहित धन वाले,
विवेक तोल ए वणिकनु, सुलतान तोल ए शाव छे,
वेपार चूके जो वाणीओ, दुःख दावानल थाय छे।

—सामल भट्ट

सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार अथवा व्यापार और परमार्थ अथवा धर्म ये दोनो अलग-अलग विरोधी वस्तुए है। व्यापारमें धर्मको घुसेडना पागलपन है। ऐसा करनेसे दोनो बिगड जाते है। यह मान्यता यदि मिथ्या न हो तो अपने भाग्यमे केवल निराशा ही लिखी है, क्योकि ऐसी एक भी वस्तु नही, ऐसा एक भी व्यवहार नही जिससे हम धर्मको अलग रख सकें।

धार्मिक मनुष्यका धर्म उसके प्रत्येक कार्यमे झलकना ही चाहिए, यह रायचदभाईने अपने जीवनमें बताया था। धर्म कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमे ही, ईदके दिन ही, या रविवारके दिन ही पालना चाहिए, अथवा उसका पालन मदिरोमें, देरासरोमे और मस्जिदोमे ही होता है और दूकान या दरबारमें नही होता, ऐसा कोई नियम नही। इतना ही नही, परतु यह कहना धर्मको न समझनेके बराबर है, यह रायचदभाई कहते, मानते और अपने आचारमे बताते थे।

उनका व्यापार हीरे-जवाहरातका था। वे श्री रेवाशकर जगजीवन झवेरीके साझी थे। साथमें वे कपडेकी दूकान भी चलाते थे। अपने व्यवहारमे सपूर्ण प्रकारसे वे प्रामाणिकता बताते थे, ऐसी उन्होने मेरे

ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। चालाकी सरीखी कोई वस्तु उनमे न देखता था। दूसरेकी चालाकी वे तुरत ताड जाते थे। वह उन्हे असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भृकुटि भी चढ जाती और आखोमे लाली आ जाती, यह मै देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यवहारकुशल नही होते, इस वहमको रायचदभाईने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापारमे वे पूरी सावधानी और होशियारी बताते थे। हीरे-जवाहरातकी परीक्षा वे बहुत बारीकीसे कर सकते थे। यद्यपि अग्रेजीका ज्ञान उन्हे न था, फिर भी पेरिस वगैरहके अपने आड़तियोकी चिट्ठियो और तारोके मर्मको वे फौरन समझ जाते थे और उनकी कला समझनेमे उन्हे देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकाश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होनेपर भी वे व्यापारकी उद्विग्नता अथवा चिता न रखते थे। दुकानमे बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता तो उनके पास पड़ी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी. जिसमे वे अपने उद्गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्मचर्चा करनेमे हिचकते न थे। 'व्यापारके समयमे व्यापार और धर्मके समयमे धर्म' अर्थात् एक समयमे एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगोके सुदर नियमका कवि पालन न करते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करे तो यह हो सकता है, परतु यदि और लोग उसका उल्लघन करने लगे तो जैसे दो घोडोपर सवारी करनेवाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। सपूर्ण धार्मिक और वीतरागी पुरुष भी जिस क्रियाको जिस समय करता हो, उसमे ही लीन हो जाय, यह योग्य है। इतना ही नही, बल्कि उसे यही शोभा देता है। यह उसके योगकी निशानी है। इसमे धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरहकी जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमे भी पूर्ण एका-

ग्ता होनी ही चाहिए। अतरगमे आत्मचितन तो मुमुक्षुमे उसके श्वासकी तरह सतत चलना ही चाहिए। उससे वह एक क्षण भी वचित नही रहना। परतु इस तरह आत्मचिंतन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्यकार्य करता हो वह उसमे ही तन्मय रहता है।

मै यह नही कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मै कह चुका हू कि अपने व्यापारमे वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होनेपर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पडी है कि कविने अपने शरीरसे अवश्यकतासे अधिक काम लिया है। यह योगकी अपूर्णता तो नही हो सकती। यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीरतक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परतु शक्ति-से अधिक वोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यत सूक्ष्म राग कविमे था, यह मुझे अनुभव हुआ है।

वहुत वार परमार्थदृष्टिसे मनुष्य शक्तिसे अधिक काम लेता है और वादमे उसे पूरा करनेमे उसे कष्ट सहना पडता है। इसे हम गुण समझते है और इसकी प्रशसा करते है। परतु परमार्थ अर्थात् धर्मदृष्टिसे देखनेसे इस तरह किए हुए काममे सूक्ष्म मूर्छाका होना वहुत सभव है।

यदि हम इस जगतमे केवल निमित्तमात्र ही है, यदि यह शरीर हमे भाडे मिला है, और उस मार्गसे हमे तुरत मोक्ष साधन करना चाहिए, यही परम कर्तव्य है, तो इस मार्गमे जो विघ्न आते हो उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए। यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नही।

जो दलीले मैने ऊपर दी है, उन्हे ही किसी दूसरे प्रकारसे रायचन्द-भाई अपनी चमत्कारिक भाषामे मुझे सुना गये थे। ऐसा होनेपर भी उन्होने ऐसी कैसी उपाधिया उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हे सख्त बीमारी भोगनी पडी।

रायचदभाईको परोपकारके कारण मोहने क्षणभरके लिए घेर लिया था यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृति याति भूतानि निग्रह किं करिष्यति' यह श्लोकार्ध यहा ठीक वैठता है और इसका अर्थ भी इतना ही

है। कोई इच्छापूर्वक बर्ताव करनेके लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचनका उपयोग करते है, परतु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है। रायचन्दभाईकी प्रकृति उन्हें बलात्कार गहरे पानीमे ले गई। ऐसे कार्यको दोषरूपसे भी लगभग सम्पूर्ण आत्माओंमें ही माना जा सकता है। हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्यके पीछे अवश्य पागल बन जाते है, तभी उसे कदाचित पूरा कर पाते है।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते है कि उन्हे सब कोई ठग सकता है। उन्हे दुनियाकी बातोकी कुछ भी खबर नही पडती। यदि यह बात ठीक है तो कृष्णचद और रामचन्द्र दोनो अवतारोको केवल ससारी मनुष्योमे ही गिनना चाहिए। कवि कहते थे कि जिसे शुद्ध ज्ञान है उसका ठगा जाना असभव होना चाहिए। मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान् होनेपर भी कदाचित् ज्ञानी न हो, परतु मोक्षके लिए नीति और अनुभवज्ञानका सुसगम होना चाहिए। जिसे अनुभवज्ञान हो गया है, उसके पास पाखड निभ ही नही सकता। सत्यके पास असत्य नही निभ सकता। अहिंसाके सान्निध्यमें हिंसा बद हो जाती है। जहा सरलता प्रकाशित होती है वहा छलरूपी अधकार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटीको देखे तो उसे फौरन पहचान लेता है और उसका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है। जिसने आत्माको प्रत्यक्ष देख लिया है वह दूसरेको पहचाने बिना कैसे रह सकता है। कोई-कोई धर्मके नामपर उन्हें ठग भी लेते थे। ऐसे उदाहरण नियमकी अपूर्णता सिद्ध नही करते, परतु ये शुद्ध ज्ञानकी ही दुर्लभता सिद्ध करते है।

इस तरहके अपवाद होते हुए भी व्यवहार-कुशलता और धर्मपरायणताका सुदर मेल जितना मैंने कविमे देखा है उतना किसी दूसरेमें देखनेमे नही आया।

× × ×

रायचंदभाईके धर्मका विचार करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्मका उन्होने क्या स्वरूप समझाया था ।

धर्मका अर्थ मतमतांतर नही । धर्मका अर्थ शास्त्रोके नामसे कही जानेवाली पुस्तकोको पढ जाना, कठस्थ कर लेना अथवा उनमें जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नही है ।

धर्म आत्माका गुण है और वह मनुष्य जातिमे दृश्य अथवा अदृश्य रूपसे मौजूद है । धर्मसे हम मनुष्य-जीवनका कर्तव्य समझ सकते है । धर्मद्वारा हम दूसरे जीवोके साथ अपना सच्चा सबंध पहचान सकते है । यह स्पष्ट है कि जबतक हम अपनेको न पहचान ले तबतक यह सब कभी भी नही हो सकता । इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वय पहचान सकते है ।

यह साधन हमे जहा कही मिले, वहींसे प्राप्त करना चाहिए । फिर भले ही वह भारतवर्षमे मिले, चाहे यूरोपसे आये या अरबस्तानसे आये । इन साधनोका सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रोमे एक ही-सा है । इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रोका अभ्यास किया है । ऐसा कोई भी शास्त्र नही कहता कि असत्य बोलना चाहिए, अथवा असत्य आचरण करना चाहिए । हिंसा करना किसी भी शास्त्रमे नही बताया । समस्त शास्त्रोका दोहन करते हुए शकराचार्य ने कहा है, "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या ।" उसी बात को कुरानशरीफमे दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और वही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नही । बाइबिलमे कहा है कि मै और मेरा पिता एक ही है । ये सब एक ही वस्तुके रूपातर है । परतु इस एक ही सत्यके स्पष्ट करनेमे अपूर्ण मनुष्योने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिंदुओको काममे लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है । उसमेसे हमे बाहर निकलना है । हम अपूर्ण है और अपनेसे कम अपूर्णकी मदद लेकर आगे बढते है और अतमे न जाने अमुक हदतक जाकर ऐसा मान लेते है कि आगे रास्ता ही नही है, परतु

वास्तवमे ऐसी बात नही है। अमुक हदके बाद शास्त्र मदद नही करते, परतु अनुभव मदद करता है। इसलिए रायचदभाईने कहा है।

"ए पद श्रीसर्वज्ञे दीठु ध्यानमा, कही शक्या नही ते पद श्रीभगवत जो एह परमपद प्राप्तिनुं कर्यु ध्यानमें, गजावयर पण हाल मनोरथ रूप जो "

इसलिए अतमे तो आत्माको मोक्ष देनेवाली आत्मा ही है।

इस शुद्ध सत्यका निरूपण रायचदभाईने अनेक प्रकारोसे अपने लेखोमे किया है। रायचदभाईने बहुत-सी धर्म-पुस्तकोका अच्छा अभ्यास किया था। उन्हे सस्कृत और मागधी भाषाको समझनेमे जरा भी मुश्किल न पडती थी। उन्होने वेदातका अभ्यास किया था। इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होने अभ्यास किया था। जैन पुस्तके तो जितनी भी उनके हाथमे आती, वे बाच जाते थे। उनके बाचने और ग्रहण करनेकी शक्ति अगाध थी। पुस्तकका एक बारका बाचन उन पुस्तकोके रहस्य जाननेके लिए उन्हे काफी था। कुरान, जदेअवस्ता आदि पुस्तके भी वे अनुवादके जरिए पढ गये थे।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्मकी ओर था। उनकी मान्यता थी कि जिनागममे आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार बता देना आवश्यक है। इस विषयमे अपना मत देनेके लिए मै अपनेको बिलकुल अनधिकारी समझता हू।

परतु रायचदभाईका दूसरे धर्मोके प्रति अनादर न था, बल्कि वेदात-के प्रति पक्षपात भी था। वेदातीको तो कवि वेदाती ही मालूम पडते थे। मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होने कभी भी यह नही कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्तिके लिए किसी खास धर्मका अवलबन लेना चाहिए। मुझे अपना ही आचार-विचार पालनेके लिए उन्होने कहा। मुझे कौनसी पुस्तके बाचनी चाहिए, यह प्रश्न उठनेपर उन्होने मेरी वृत्ति और मेरे बचपनके सस्कार देखकर मुझे गीताजी बाचनेके लिए उत्तेजित किया और

दूसरी पुस्तकोंमें पंचीकरण, मणिरत्नमाला, योगवासिष्ठका वैराग्य प्रकरण, काव्य दोहन पहला भाग, और अपनी मोक्षमाला वाचनेके लिए कहा।

रायचंदभाई बहुत वार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरहके बाड़े हैं और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्षप्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथेपर किसी भी धर्मका तिलक लगानेकी आवश्यकता नहीं।

सूरत आवे त्यम तु रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे[1]

जैसे अखाका यह सूत्र था वैसे ही रायचंदभाईका भी था। धार्मिक झगड़ोंसे वे हमेशा ऊबे रहते थे। उनमें वे शायद ही कभी पड़ते थे। वे समस्त धर्मोंकी खूबियां पूरी तरहसे देखते और उन्हें उन धर्मावलंबियोंके सामने रखते थे। दक्षिण अफ्रीकाके पत्रव्यवहारमें भी मैंने यही वस्तु उनसे प्राप्त की।

मैं स्वयं तो यह माननेवाला हूं कि धर्म उस धर्मके भक्तोंकी दृष्टिसे संपूर्ण है, और दूसरोंकी दृष्टिसे अपूर्ण है। स्वतंत्र रूपसे विचार करनेसे सब धर्म पूर्णापूर्ण हैं। अमुक हदके बाद सब शास्त्र बंधन रूप मालूम पड़ते हैं। परंतु यह तो गुणातीतकी अवस्था हुई। रायचंदभाईकी दृष्टिसे विचार करते हैं तो किसीको अपना धर्म छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। सब अपने-अपने धर्ममें रहकर अपनी स्वतंत्रता-मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि मोक्ष प्राप्त करनेका अर्थ सर्वांशसे राग-द्वेष-रहित होना ही है। ('श्रीमद्राजचंद्र')

---

[1] 'जैसे सूत निकलता है वैसे ही तू रह। जैसे बने तैसे हरिको प्राप्तकर।

: १७४ :

आचार्य रामदेव

पहाड-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मै गया तब मुझे बहुत शाति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शातिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। ब्रह्मचारी लोग मेरे पाससे हटते ही नही थे। रामदेवजीसे भी उसी समय मुलाकात हुई और उनकी कार्य-शक्तिको मै तुरत पहचान सका था। यद्यपि हमारी मत-भिन्नता हमे उसी समय दिखाई पड गई थी, फिर भी हमारी आपसमे स्नेह-गाठ बध गई। गुरुकुलमे औद्योगिक शिक्षणका प्रवेश करनेकी आवश्यकताके सबधमे रामदेवजी तथा दूसरे शिक्षकोके साथमे मेरा ठीक-ठीक वार्तालाप भी हुआ। इससे जल्दी ही गुरुकुलको छोडते हुए मुझे दुख हुआ। (आ० क०, १९२७)

. . ..

आचार्य रामदेव चल बसे। आप आर्यसमाजके एक प्रसिद्ध नेता और कार्यकर्त्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्दजीके बाद वे ही कांगडी-गुरुकुलके निर्माता थे। जहातक मै जानता हूँ, वे स्वामीजीके दाहिने हाथ थे। शिक्षण-शास्त्रीके तौरपर वे बडे लोकप्रिय थे। पिछले कुछ समयसे वे अपने स्वाभाविक जोशके साथ देहरादूनके कन्या-गुरुकुलके सचालक-कार्यमे पड गये थे और कुमारी विद्यावतीके पथ-प्रदर्शन और सहारा बन गये थे। जबतक जिये, वे ही इनके लिए रुपया इकट्ठा करके लाते थे। इनको सस्थाके आर्थिक पहलूकी कुछ भी चिता नही करनी पडती थी। मै जानता हूँ कि उनकी मृत्युसे इन्हे और इनकी सस्थाको कितनी असह्य हानि पहुँची है। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजीको जानते है, जो स्त्री-शिक्षाका

महत्व समझते है और जिन्हे कुमारी विद्यावती और उनकी संस्थाकी कद्र मालूम है उन्हे अब चाहिए कि गुरुकुलको सदाके लिए आर्थिक कष्टसे मुक्त कर दें। परलोकवासी आचार्यजीके लिए इस तरहका धन-संग्रह अत्यन्त उपयुक्त स्मारक होगा। (ह० से०, ३० १२ ३९)

: १७५ :

रामसुन्दर

बहुत कुछ यत्न करनेपर भी जब एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम नही मिल सके तब अधिकारीगण इस निश्चयपर पहुचे कि अब किसीको पकडना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नामसे परिचित है। वहापर बहुतसे भारतीय रहते थे। उनमे रामसुदर नामक एक मनुष्य भी था। यह बडा वाचाल और बहादुर दीखता था। कुछ-कुछ श्लोक भी जानता था। उत्तरी भारतका रहनेवाला अर्थात थोडे-बहुत दोहे-चौपाई तो अवश्य ही उसे याद होने ही चाहिए। और तिसपर पण्डित कहा जाता था। इसलिए वहाके लोगोमें उसकी बडी प्रतिष्ठा थी। उसने कई जगह भाषण भी दिए थे। भाषण काफी जोशीले होते थे। वहाके कितने ही विघ्नसतोषी भारतीयोने एशियाटिक आफिसमे यह खबर पहुचाई कि अगर रामसुदर पण्डितको गिरफ्तार कर लिया गया तो जर्मिस्टनके बहुतसे भारतीय परवाना ले लेगे। अधिकारीगण इस लालचको कदापि रोक नही सकते थे। रामसुदर पण्डित गिरफ्तार हुए। अपने ढगका यह पहला ही मामला था। इसलिए सरकार और भारतीयोमे भी बडी हलचल मच गई। जिस रामसुदर पण्डितको केवल जर्मिस्टनके लोग ही जानते थे, उसे अब क्षणभरमे सारे दक्षिण अफ्रीकाके लोग जानने लग गये। एक

महान् पुरुषका मामला चलते समय जिस प्रकार सबकी नजर वही दौडती है ठीक उसी तरह रामसुदर पण्डितकी ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। शाति-रक्षाके लिए किसी प्रकारकी तैयारी करनेकी आवश्यकता नही थी। तथापि सरकारने अपनी ओरसे वह इतजाम भी कर लिया था। अदालतमे भी रामसुन्दरका वैसा ही आदर-सत्कार किया गया जैसा कि कौमके प्रतिनिधि और एक असामान्य अपराधीका होना चाहिए था। अदालत उत्सुक भारतीयोसे खचाखच भर गई थी। रामसुदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा हुई। उसे जोहान्सवर्गकी जेलमे रखा गया। उसको यूरोपियन वार्डमे अलग एक कमरा दिया गया था। उससे मिलने-जुलनेमे जरा भी कठिनाई नही होती थी। उसका खाना वाहरसे भेजा जाता था और भारतीय उसके लिए नित्य नए अच्छे-अच्छे पकवान पकाकर भेजते थे। वह जिस बातकी इच्छा करता, वह फौरन ही पूरी कर दी जाती। कौमने उसका जेल-दिन बडी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नही हुआ। उत्साह और भी बढ गया। सैकडो जेल जानेके लिए तैयार थे। एशियाटिक आफिसकी आशा सफल न हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेनेके लिए नही गये। इस सजाका फायदा कौमको ही हुआ। महीना खतम हुआ। रामसुदर छूटे और उन्हे वडी धूम-धामसे गाजे-वाजेके साथ जुलूस बनाकर सभास्थानपर ले गये। कई उत्साहप्रद भाषण हुए। रामसुदरको फूलोसे ढक दिया। स्वयसेवकोने उनके सत्कारमें उनकी दावत की। सैकडो भारतीय अपने मनमे कहने लगे, "अरे, हम भी गिरफ्तार हो जाते तो कितना आनद आता!" और रामसुदर पण्डितसे मधुर ईर्ष्या करने लगे।

पर रामसुदर कडवी बादाम साबित हुए। उनका जोश झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकल ही नही सकते थे, क्योकि वे अनायास पकडे गये थे। जेलमे उन्होने इतना ऐशोआराम किया कि बाहरसे भी अधिक। फिर भी स्वच्छदी और व्यसनी आदमी जेलके

एकांतवासको और अनेक प्रकारके खान-पानके होते हुए भी वहांके सयमको कदापि बर्दाश्त नही कर सकता। यही हाल रामसुदर पण्डितका हुआ। कौम और अधिकारियोसे मनमानी सेवा लेनेपर भी उन्हें जेल कडवी मालूम हुई और उन्होंने ट्रान्सवाल और युद्ध दोनोको अंतिम नमस्कार करके अपना रास्ता लिया। हरएक कौममे खिलाडी तो रहते ही है। वही हाल युद्धोका भी होता है। लोग रामसुदरको अच्छी तरह जानते थे। तथापि ऐसे भी आदमी कभी-कभी काम देते है, यह समझकर उन्होने रामसुदरका छिपा हुआ इतिहास उसकी पोल खुलनेपर भी कई दिनो तक नही सुनाया था। पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि रामसुदर तो अपना गिरमिट पूरा किए बिना ही भागा हुआ गिरमिटिया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बातको मैं घृणासे नही लिख रहा हू। गिरमिटिया होना कोई ऐब नही है। युद्धकी सच्ची शोभा बढानेवाले तो गिरमिटिए ही थे। युद्धकी जीतमे भी उन्हीका सबसे बडा हिस्सा था। पर गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य ही एक दोष है।

रामसुदरका यह इतिहास मैंने उसका ऐब बतानेके हेतुसे नही, बल्कि उसमे जो रहस्य है वह दिखानेके हेतुसे लिखा है। हरएक पवित्र आदोलन या युद्धके सचालकोको चाहिए कि वे शुद्ध मनुष्योको ही उसमे शामिल करे। तथापि आदमी कितना ही सावधान क्यो न हो, अशुद्ध मनुष्यको बिलकुल रोक देना असभव है। फिर भी यदि सचालक निडर और सच्चे हो तो अनजानत अशुद्ध आदमियोके घुस आनेपर भी युद्धको अतमे नुकसान नही पहुच सकता। रामसुदर पण्डितकी पोल खुलते ही उसकी कोई कीमत नही रही। वह तो बेचारा अब रामसुदर पडित नही, कोरा राम-सुदर ही रह गया। कौम उसे भूल गई। पर युद्धको तो उससे शक्ति ही मिली। युद्धके लिए मिली हुई जेल बट्टे-खाते नही गई। उसके जेल जाने-से कौममे जो नवीन शक्ति आई वह तो कायम ही रही, बल्कि उसके उदाहरणका भी यही असर हुआ कि अन्य कितने ही कमजोर आदमी

अपने आप युद्धसे अलग हो गये। और भी कितने ही ऐसे उदाहरण हुए। कौमकी मजबूती या कमजोरी पाठकोसे छिपी नही रह सकती। इसलिए यहापर मै यह भी कह देना चाहता हू कि रामसुदर जैसे केवल वे ही नही थे। पर मैंने तो यह देखा कि सभी रामसुदरोने आदोलनकी सेवा ही की।

पाठक रामसुदरको दोष न दे। इस ससारमे मनुष्यमात्र अपूर्ण है। जब हम किसी मनुष्यमे अधिक अपूर्णता देखते है तब हम उसकी ओर अगुली दिखाते हैं। पर सच पूछा जाय तो यह भूल हैं। रामसुदर जान-बूझकर दुर्बल नही बना था। मनुष्य अपने स्वभावकी स्थितिको बदल सकता है, उसको अपने वशमे कुछ हद तक कर सकता है, पर उसे जडसे कौन बदल सकता हैं ? जगत्कर्ताने मनुष्यको यह स्वतन्त्रता नही दे रक्खी है। शेर अगर अपने चमडेकी विचित्रताको बदल सकता हो तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। हमे यह कैसे मालूम हो सकता है कि भाग निकलनेके बाद रामसुदरको कितना पश्चाताप हुआ ? अथवा क्या उसका भाग निकलना ही पश्चातापका एक दृढ प्रमाण नही माना जा सकता ? अगर वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या पडी थी ? परवाना लेकर खूनी कानूनके अनुसार वह हमेशा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नही, बल्कि वह चाहता तो एशियाटिक आफिसका दलाल बनकर दूसरोको धोखा दे सकता था और सरकारका प्रिय बन सकता था। यह सब न करते हुए अपनी कमजोरी कौमको बतानेमे वह शरमाया और उसने अपना मुह छिपा लिया। अपने इस कार्यके द्वारा भी उसने कौमकी सेवा ही की, ऐसा उदार अर्थ हम क्यो न लगावे ?

(द० अ० स०, १९२४)

: १७६ :

कालीनाथ राय

आज मुस्लिम परिषदपर एक सुदर लेख 'ट्रिब्यून' में आया। वह पढ कर सुनाया गया तो बापू कहने लगे

Long live Kalinath Roy (चिरजीवी हो कालीनाथ राय) ! कौमी सवाल और अछूतोंके लिए सयुक्त मताधिकार जैसे सवालोपर आजकल इस आदमीके लेख बहुत अनुभव और ज्ञानपूर्ण आते है। (म० डा०, भाग १, पृष्ठ ४७)

: १७७ :

दिलीपकुमार राय

'मन-मदिरमे प्रीति बसा ले'—श्रीदिलीपकुमार रायके, जिन्होने इस भजनको आजकी प्रार्थना-सभामे गाया है, कठमे जो माधुर्य है और उनके गानेमें जो कला है, वह मुझको मीठे लगे। वैसे तो यह मामूली चीज है, लेकिन उसे जिस ढगसे सुदर बनाया गया, उसीका नाम कला है। (प्रा० प्र०, २८ १० ४७)

आपने आजका बहुत मीठा भजन सुना। जिन्होने हमको यह मीठा भजन सुनाया उन्हें आप लोग सब जानते तो होगे नही। उनका नाम दिलीपकुमार राय है। उन्होने हर जगहका भ्रमण किया है। उनके कठका माधुर्य जैसा है वैसा हिंदुस्तानमे तो कम लोगोके पास है। मै तो कहता हू

कि शायद सारी दुनियामे भी वहुत कम लोगोके पास है। मेरे पास ये दोपहरको आ गये थे। तब कोई अधिक समय तो मेरे पास था नही, सिर्फ १० मिनट थे। उस वक्त उन्होने 'वन्देमातरम्' सुनाया, जिसको उन्होने अपने मधुर स्वरमे बिठाया। क्योकि वे बगाली है इसलिए तो उन्हें जानना ही चाहिए। चूकि वे मुझको सुनाना चाहते थे, इसलिए सुन लिया। लेकिन मैं कोई सगीत-शास्त्री तो हू नही। उनको मुझसे मुहब्बत है, जो एक-दूसरेके साथ बन जाती है। पीछे उन्होने इकबालका 'सारे जहासे अच्छा' भजन सुनाया। उसको भी उन्होने एक नए स्वरमे बिठाया है। मुझको यह बडा अच्छा लगा। वे ऋषि अरविंदके आश्रममे, जो पाण्डुचेरीमे है, कई वर्षोसे रहते है। वहा कोई तालीम तो उन्होने ली नही। जब वहा गये तब भी वे सगीत-शास्त्री थे। पीछेसे अपनी कलाको बढाते रहते है। (प्रा० प्र०, २६ १० ४७)

: १७८ :

प्रफुल्लचन्द्र राय

बगाली लोग दीवाने है। जिस तरह दास दीवाने है उसी तरह प्रफुल्लचन्द्र राय भी दीवाने है। जब वे मचपर व्याख्यान देते है तब मानो नाचते है। कोई नही मान सकता कि वे ज्ञानी है। हाथ पछाडते है। पैर पछाडते है। जैसा जी चाहता है अपनी बगलामे अग्रेजीभी घुसेडते है। जब बोलते है तो अपनेको भूल जाते है। अपने विचारके आवेशमे ही मग्न होते है। इस बातकी शायद ही परवा हो कि लोग हँसेगे, या क्या कहेगे। जबतक उनकी बाते न सुने, उनकी आखसे अपनी आख न मिलावे तबतक उनकी महत्ताका

कुछ भी पता हमे नही लग सकता। मुझे याद है कि जब मैं कलकत्तेमे गोखलेके साथ रहता था और आचार्य राय उनके पडोसी थे तब एक समय हम तीनो स्टेशन पर गये थे। मेरे पास तो अपने तीसरे दर्जेका टिकट था। ये दोनो मुझे पहुचाने आये थे। तीसरे दर्जेके मुसाफिरोको पहुचानेवाले तो भिखारी ही हो सकते है, पर गोखलेका भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगडी, रेशमी किनारेकी धोती, उनके लिए टिकटबाबूकी दृष्टिमे काफी थे। परतु यह दुबला ब्रह्मचारी, मैला-सा कुरता पहना हुआ, भिखारी जैसा दिखाई देनेवाला, इसे विना टिकट कौन अदर जाने देने लगा। मेरी यादके अनुसार वे विना दु खके बाहर खडे रहे और मेरे खचाखच भरे डब्बेमे किसी तरह घुसनेपर भी हठधर्मीकी टीका करते हुए गोखले अपने साथीसे जा मिले। आचार्य राय क्यो बहुसख्यक विद्यार्थियोके हृदयमें साम्राज्य करते है? वे भी त्यागी है और अब तो हो गये है खादी-दीवाने। शिक्षा-विभागकी एक बगालिन अधिष्ठात्रीसे यह कहते हुए उन्हे जरा सकोच न हुआ—"आप खादी न पहने तो किस कामकी?" ऐसा न कहे तो उनके खुलनाके भिखारियोकी बनाई खादीको कौन खरीदेगा? (हि० न०)

: १७९ :

रिच

इग्लैडमे काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी तो हमारी अवश्य ही बहुत सहायता कर रही थी, तथापि वहाके रीति-रिवाजके मुआफिक उनमे तो खास-खास मत और पक्षके मनुष्य ही आ सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसे कितने ही लोग थे जो उसमे नही आए थे, पर फिर भी हमे पूरी सहायता करते थे।

हमे यह मालूम हुआ कि यदि इन सबको एकत्र करके इस काममे उन्हे लगा दिया जाय तो बहुत काम हो सकता है। इसलिए इस उपदेशसे हमने एक स्थायी समितिकी स्थापना करनेका निश्चय किया। यह बात तमाम पक्षके लोगोको बहुत पसद आई।

हरएक सस्थाका उत्कर्ष या अपकर्ष प्राय उसके मत्रीके ऊपर ही निर्भर रहता है। मत्री ऐसा होना चाहिए जिसका उस सस्थाके हेतु पर न केवल पूरा-पूरा विश्वास हो, बल्कि उसमे इतनी शक्ति भी होनी चाहिए कि वह उसकी सफलताके लिए अपना बहुत-सा समय दे सके और उसका काम करनेकी उसमे पूरी योग्यता हो। मि० रिच जो दक्षिण अफ्रीकामे थे और जो मेरे आफिसमे गुमाश्तेका काम कर चुके थे तथा जो लदनमे उस समय बैरिस्टरीका अभ्यास कर रहे थे, ऐसे ही योग्य पुरुष थे। उनमे ये सब गुण थे। वह वही इग्लैडमे थे और यह काम भी करना चाहते थे। इसलिए एक कमेटी बनानेकी हम लोग हिम्मत भी कर सके। (द० अ० स०)

: १८० :

आचार्य सुशील रुद्र

आचार्य सुशील रुद्रका देहात ३० जूनको हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाज-सेवी थे। उनकी मृत्युसे मुझे जो दु ख हुआ है उसमे पाठक मेरा साथ दे। भारतकी मुख्य बीमारी है राजनैतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हीको मानता है जो उसे दूर करनेके लिए खुले आम सरकारसे लडाई लडते है, जिसने कि अपनी जल और थल सेना तथा धन-बल और कूट-नीतिके द्वारा अपनी मजबूत मोर्चाबदी कर ली

है । इससे स्वभावत उसे उन कार्यकर्ताओंका पता नही रहता जो निस्वार्थ होते है और जो जीवनके दूसरे विभागोमें, जो कि राजनीतिसे कम उपयोगी नही होते है, अपनेको खपा देते है । सेंट स्टीफन्स कालेज, देहलीके प्रिसिपल सुशीलकुमार रुद्र ऐसे ही विनीत कार्यकर्ता थे। वे पहले दरजेके शिक्षाशास्त्री थे । प्रिसिपलके नाते वे चारो ओर लोकप्रिय हो गये थे । उनके और उनके विद्यार्थियोके बीच एक प्रकारका आध्यात्मिक सबध था । यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि वे अपने हृदयमे हिंदू धर्म और इस्लामके लिए भी जगह रखते थे । इन्हे वे बडे आदर की दृष्टिसे देखते थे । उनका ईसाई धर्म औरोसे फटक कर, अलग रहनेवाला न था । जो अकेले ईसा-मसीहको दुनियाका तारनहार न मानता हो उसके सर्वनाशकी दुहाई देने-वाला न था । अपने धर्मपर दृढ रहते हुए भी वे औरोको सहन करते थे । वे राजनीतिके बडे तेज और चिताशील स्वाध्यायी थे । अग्रगामी कहे जानेवाले लोगोके प्रति अपनी सहानुभूतिकी कवायद जहा वे न दिखाते थे तहा वे छिपाते न थे । जबसे, १९१५, मे मैं अफ्रीकासे लौटा मैं जब कभी देहली जाता उन्हीका अतिथि होता । रौलट कानूनके सिलसिलेमे जबतक मैने सत्याग्रह नही छेडा तबतक यह कार्य निर्विघ्न जारी रहा । ऊचे हल्कोमें उनके कितने ही अग्रेज मित्र थे । एक पूरे अग्रेजी मिशनसे उनका सबध था । अपने कालेजके वे पहले ही हिंदुस्तानी प्रिसिपल थे । इसलिए मेरे दिलने कहा कि मेरा उनके साथ समागम रहने और उनके घरमें ठहरनेसे शायद लोगोको यह गलत ख्याल हो कि मेरा उनका मतैक्य है और उनके साथियोको अनावश्यक सकटका सामना करना पडे । इसलिए मैने दूसरी जगह ठहरना चाहा । उनका जवाब अपने ढगका था—मेरा धर्म लोगोके अनुमानसे अधिक गहरा है । मेरे कुछ मत तो मेरे जीवनके घनिष्ट अग है। वे गहरे और दीर्घकालके मनन और प्रार्थना-के बाद निश्चित हुए है । मेरे अग्रेज मित्र उन्हे जानते है । यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथिके रूपमे मै आपको अपने घरमे रखू तो

वे इसका गलत अर्थ नही कर सकते। और यदि कभी मुझे इन दो बातोमे से कि अग्रजोके अदर जो कुछ मेरा प्रभाव है वह चला जाय या आप किसी एकको चुनना पडे तो मै जानता हू कि मै किस चीजको पसद करूगा। आप मेरे घरको नही छोड सकते। तब मैने कहा—"लेकिन मुझसे तो हर किस्मके लोग मिलनेके लिए आते है। आप अपने मकानको सराय तो बना नही सकते।" उन्होने उत्तर दिया—' सच पूछो तो मुझे यह सब अच्छा मालूम होता है। आपके मित्रोका आना-जाना मुझे पसद है। यह देख-कर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकानमे ठहराकर मेरे हाथो कुछ देशसेवा हो रही है।"पाठकोको शायद मालूम न हो कि खिलाफतके दावेको प्रत्यक्ष रूप देनेके लिए जो पत्र मैने वायसरायको लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रिंसिपल रुद्रके मकानमे तैयार हुआ था। वे तथा चार्ली एड्र्यूज उसमे सुधार सुझानेवाले थे। उन्हीके घरकी छाहमें बैठकर असहयोगकी कल्पना उत्पन्न और प्रवर्तित हुई। मौलानाओ, दूसरे मुसल-मानो तथा अन्य मित्रो और मेरे बीच जो निजी मत्रणा हुई उसकी कार्र-वाहीको वे बडी दिलचस्पीके साथ चुपचाप देखते थे। उनके तमाम कार्य धर्म-भावसे प्रेरित होते थे। ऐसी हालतमे दुनियावी सत्ता छिन जानेका कोई डर न था—तथापि वही धर्म-भाव उन्हे सासारिक सत्ताके अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रताके मूल्यको समझनेमे सहायक होता था। जिस धार्मिक भावसे मनुष्यको विचार और आचारके सुदर मेलका यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी सत्यताको उन्होने अपने जीवनमे चरितार्थ कर दिखाया था। आचार्य रुद्रने अपनी ओर इतने उच्च चरित्र लोगोको आकर्षित किया था जिनके सहवासकी इच्छा किसीको हो सकती है। बहुत लोग नही जानते है कि श्री सी० एफ० एड्रयूज हमे प्रिंसिपल रुद्रके ही कारण प्राप्त हुए है। वे जुडे भाई जैसे थे। उनका स्नेह आदर्श मित्रताके अध्ययन-का विषय था। प्रिंसिपल रुद्र अपने पीछे दो लडके और एक लडकीको छोड गये है। सब वयस्क है और अपने काममे लगे हुए है। वे जानते

है कि उनके शोकमें उनके उच्च हृदय पिताके कितने ही मित्र शरीक हैं।
(हिं० न०, ९.७.२५)

: १८१ :

पारसी रुस्तमजी

पारसी रुस्तमजीके नामसे पाठक भलीभांति परिचित हैं। पारसी रुस्तमजी मेरे मवक्किल और सार्वजनिक कार्यमें साथी, एक ही साथ बने, बल्कि यह कहना चाहिए कि पहले साथी बने और बादको मवक्किल। उनका विश्वास तो मैंने इस हदतक प्राप्त कर लिया था कि वह अपनी घरू और खानगी बातोंमें भी मेरी सलाह मांगते और उनका पालन करते। उन्हें यदि कोई बीमारी भी हो तो वह मेरी सलाहकी जरूरत समझते और उनके और मेरे रहन-सहनमें बहुत कुछ भेद रहनेपर भी वह खुद मेरा उपचार करते।

मेरे इस साथीपर एक बार बड़ी भारी विपत्ति आ गई थी। हालांकि वह अपनी व्यापार-संबंधी भी बहुत-सी बातें मुझसे किया करते थे फिर भी एक बात मुझसे छिपा रखी थी। वह चुंगी चुरा लिया करते थे। बंबई-कलकत्तेसे जो माल मंगाते उसकी चुंगीमें चोरी कर लिया करते थे। तमाम अधिकारियोंसे उनका राह-रसूख अच्छा था। इसलिए किसीको उनपर शक नहीं होता था। जो बीजक वह पेश करते उसीपरसे चुंगीकी रकम जोड़ ली जाती। शायद कुछ कर्मचारी ऐसे भी होंगे जो उनकी चोरीकी ओरसे आंखें मूंद लेते हों।

परंतु आखा भगतकी यह वाणी कहीं झूठी हो सकती है?

"काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन।"

(यानी कच्चा पारा खाना और चोरीका धन खाना बराबर हैं।)

एक बार पारसी रुस्तमजीकी चोरी पकड़ी गई। तब वह मेरे पास दौड़े आए। उनकी आखोसे आसू निकल रहे थे। मुझसे कहा

"भाई, मैंने तुमको धोखा दिया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मैं चुंगीकी चोरी करता रहा हू। अब तो मुझे जेल भोगनेके सिवाय दूसरी गति नहीं है। बस, अब मै बरबाद हो गया। इस आफतमेंसे तो आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने वैसे आपसे कोई बात छिपा नही रखी है; परंतु यह समझकर कि यह व्यापारकी चोरी है, इसका जिक्र आपसे क्या करू यह बात मैंने आपसे छिपाई थी। अब इसके लिए पछताता हू।"

मैंने उन्हे धीरज और दिलासा देकर कहा—"मेरा तरीका तो आप जानते ही है। छुड़ाना-न-छुड़ाना तो खुदाके हाथ हैं। मै तो आपको उसी हालतमे छुड़ा सकता हू जब आप अपना गुनाह कबूल कर ले।"

यह सुनकर उस भले पारसीका चेहरा उतर गया।

"परंतु मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना ही क्या काफी नहीं है?" रुस्तमजी सेठने पूछा।

"आपने कसूर तो सरकारका किया हैं, तो मेरे सामने कबूल करनेसे क्या होगा?" मैने धीरेसे उत्तर दिया।

"अंतको तो मै वही करूगा, जो आप बतावेंगे; परतु मेरे पुराने वकील-की भी तो सलाह ले लें, वह मेरे मित्र भी है।" पारसी रुस्तमजीने कहा।

अधिक पूछ-ताछ करनेसे मालूम हुआ कि यह चोरी बहुत दिनोसे होती आ रही थी। जो चोरी पकडी गई थी वह तो थोडी ही थी। पुराने वकीलके पास हम लोग गये। उन्होने सारी बात सुनकर कहा,

"यह मामला जूरीके पास जायगा। यहाके जूरी हिंदुस्तानीको क्यो छोडने लगे? पर मै निराश होना नही चाहता।"

इन वकीलके साथ मेरा गाढा परिचय न था। इसलिए पारसी रुस्तमजीने ही जवाब दिया:

"इसके लिए आपको धन्यवाद है। परंतु इस मुकदमेमें मुझे मि० गांधीकी सलाहके अनुसार काम करना है। वह मेरी बातोंको अधिक जानते हैं। आप जो कुछ सलाह देना मुनासिब समझें हमें देते रहिएगा।"

इस तरह थोडेमें समेटकर हम रुस्तमजी सेठकी दूकानपर गये। मैंने उन्हे समझाया—"मुझे वह मामला अदालतमे जाने लायक नही दिखाई देता। मुकदमा चलाना-न-चलाना चुगी अफसरके हाथमे है। उसे भी सरकारके प्रधान वकीलकी सलाहसे काम करना होगा। मैं इन दोनोंके लिए तैयार हू, परंतु मुझे तो उनके सामने यह चोरीकी बात कबूल करनी पडेगी जो कि वे अभी तक नही जानते हैं। मैं तो यह सोचता हू कि जो जुरमाना वे तजवीज कर दे उसे मजूर कर लेना चाहिए। बहुत मुमकिन है कि वे मान जायगे। परंतु यदि न मानें तो फिर आपको जेल जानेके लिए तैयार रहना होगा। मेरी राय तो यह है कि लज्जा जेल जानेमे नही बल्कि चोरी करनेमें है। अब लज्जाका काम तो हो चुका। यदि जेल जाना पडे तो उसे प्रायश्चित्त ही समझना चाहिए। सच्चा प्रायश्चित्त तो यह है कि अब आगेसे ऐसी चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए।" मैं यह नहीं कह सकता कि रुस्तमजी सेठ इन सब बातोंको ठीक-ठीक समझ गये हों। वह बहादुर आदमी थे। पर इस समय हिम्मत हार गये थे। उनकी इज्जत बिगड जानेका मौका आ गया था और उन्हे यह भी डर था कि खुद मेहनत करके जो यह इमारत खडी की थी वह कही सारी की-सारी ढह न जाय।

उन्होंने कहा

"मैं तो आपसे कह चुका हू कि मेरी गर्दन आपके हाथमें है। जैसा आप मुनासिब समझें वैसा करें।"

मैंने इस मामलेमें अपनी सारी कला और सौजन्य खर्च कर डाला। चुगीके अफसरसे मिला, चोरीकी सारी बात मैंने निःशंक होकर उनसे

कह दी। यह भी कह दिया कि "आप चाहे तो सब कागजपत्र देख लीजिए। पारसी रुस्तमजीको इस घटना पर बडा पश्चात्ताप हो रहा है।"

अफसरने कहा .

"मै इस पुराने पारसीको चाहता हू। उसने की तो यह बेवकूफी है; पर इस मामलेमें मेरा फर्ज क्या है, सो आप जानते है। मुझे तो प्रधान वकीलकी आज्ञाके अनुसार करना होगा। इसलिए आप अपनी समझानेकी सारी कलाका जितना उपयोग कर सकें वहा करें।"

"यदि पारसी रुस्तमजीको अदालतमे घसीट ले जानेपर जोर न दिया जाय तो मेरे लिए बस है।"

इस अफसरसे अभय दान प्राप्त करके मैने सरकारी वकीलके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनसे मिला भी। मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्यप्रियताको उन्होने देख लिया और उनके सामने मै यह सिद्ध कर सका कि मै कोई बात उनसे छिपाता नही था। इस अथवा किसी दूसरे मामलेमे उनसे सावका पडा तो उन्होने मुझे यह प्रमाण-पत्र दिया था—"देखता हू कि आप जवावमे 'ना' तो लेना ही नही जानते।"

रुस्तमजीपर मुकदमा नही चलाया गया। हुक्म हुआ कि जितनी चोरी पारसी रुस्तमजीने कबूल की है उसके दूने रुपये उनसे ले लिए जाए और उनपर मुकदमा न चलाया जाय।

रुस्तमजीने अपनी इस चुगी-चोरीका किस्सा लिखकर काचमे जडाकर अपने दफ्तरमे टाग दिया और अपने वारिसो तथा साथी व्यापारियोको ऐसा न करनेके लिए खबरदार कर दिया। रुस्तमजी सेठके व्यापारी मित्रोने मुझे सावधान किया कि यह सच्चा वैराग्य नही, श्मशानवैराग्य है।

पर मै नही कह सकता कि इस बातमे कितनी सत्यता होगी। जब मैने यह बात रुस्तमजी सेठसे कही तो उन्होने जवाब दिया कि आपको धोखा देकर मै कहा जाऊगा। (आ० क०, १९२७)

• • •

बी-अम्माकी मृत्यु होनेपर मौ० शौकतअलीने कहा था—हिंदुस्तानका एक सच्चा सिपाही कम हो गया। पारसी रुस्तमजीकी मृत्युमे भी एक सच्चा सिपाही कम होगया है। यही नही, मेरा तो एक परम मित्र ही कम हो गया है। पारसी रुस्तमजी जैसे आदमी मैने बहुत थोडे देखे है। शिक्षा उन्होने नाममात्रके ही लिए प्राप्त की थी। अग्रेजी भी थोडी ही जानते थे। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली था। पढनेका बहुत शौक न था। जवानीमे ही व्यापारमे पड गये थे। केवल अपने परिश्रमके बल पर एक मामूली गुमाश्तेकी हालतसे एक बडे व्यापारीकी सीढीपर जा पहुचे थे। फिर भी उनकी व्यवहार-बुद्धि तीव्र थी, उनकी उदारता हातिमकी जैसी थी, उनकी सहिष्णुता तो इतनी बढी हुई थी कि खुद कट्टर पारसी होते हुए भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई, आदिके प्रति एक-सा प्रेम रखते थे। किसी भी चदा चाहनेवाले या हाथ फैलानेवालेको उनके घरसे खाली हाथ जाते हुए मैने नही देखा। अपने मित्रोके प्रति उनकी वफादारी इतनी सूक्ष्म थी कि कितने ही लोग उन्हीको अपना मुख्तारनामा दे जाते थे। मैने देखा है कि बडे-बडे मुसलमान व्यापारी अपने नाते-रिश्तेदारोको छोड कर पारसी रुस्तमजीको अपना एलची बनाते थे। कोई भी गरीब पारसी रुस्तमजीकी दुकानसे खाली नही लौटता था। पारसी रुस्तमजी अपने लोगोके प्रति जितने उदार थे खुद अपने प्रति उतने ही कजूस थे। आमोद-प्रमोदका तो नाम भी न जानते थे। अपने या स्वजनोके लिए विचारपूर्वक खर्च करते थे। घरमे अत तक बहुत सादगी कायम रखी थी। गोखले, एड्रूज, सरोजिनी देवी आदि पारसी रुस्तमजीके ही यहा ठहरते थे। छोटी-से-छोटी बात पारसी रुस्तमजीके ध्यानसे दूर न रहती। गोखलेके असख्य अभिनन्दन-पत्र इत्यादिके बडे-बडे पैतालीस अददको पैक कराना, उन्हे जहाज पर चढाना, आदि सारा भार पारसी रुस्तमजी पर न हो तो किसपर हो।

अपनी प्रिय धर्मपत्नीकी मृत्यु पर उनके नामका जेरबाई ट्रस्ट करके

अपनी सपत्तिका बडा भाग उन्होने धर्म-कार्यके निमित्त रख छोडा था। अपनी सतानको उन्होने कभी भी चटक-मटककी हवा न लगने दी। उन्हें सादी रहन-सहन सिखाई और उनके लिए इतनी ही विरासत रख छोडी है, जिससे वे भूखो न मर सके। अपने वसीयतनामेमे उन्होने अपने तमाम रिश्तेदारोको याद किया है।

पूर्वोक्त प्रकारकी ही सावधानी और दृढताके साथ उन्होने सार्वजनिक हलचलोमे योग दिया था। सत्याग्रहके समयमे अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेके लिए तैयार व्यापारियोमे पारसी रुस्तमजी सबसे आगे थे।

अगीकृत कार्यको हर तरहका सकट उपस्थित होनेपर भी उसे न छोडनेकी टेव उन्हे थी। अपेक्षाकृत अधिक दिनोतक जेलमे रहना पडा, तो भी वे हिम्मत न हारे। लडाई आठ साल तक चली, कितने ही मजबूत लडवैया गिर गये, पर पारसी रुस्तमजी अटल बने रहे। अपने पुत्र सोराबजीको भी उन्होने लडाईमे स्वाहा कर दिया।

इन हिंदुस्तानी सज्जनकी मुलाकात मुझसे १८९३ मे हुई। पर ज्यो-ज्यो मै सार्वजनिक कामोमे पडता गया त्यो-त्यो पारसी रुस्तमजीमे रहे जवाहरातकी कदर करना मै सीखता गया। वे मेरे मवक्किल थे। सार्वजनिक कामोमे मेरे साथी थे और अतको मेरे मित्र हो गये। वे अपने दोषोका वर्णन भी मेरे सामने बालककी तरह आकर कर देते। वे मेरे प्रति अपने विश्वासके द्वारा मुझे चकित कर देते थे। १८९७ मे जब गोरोने मुझपर हमला किया तब मेरे और मेरे बाल-बच्चोका आश्रय-स्थान रुस्तमजीका मकान था। गोरोने उनके मकान, असबाब आदिमे आग लगा देनेकी धमकी दी। पर उससे पारसी रुस्तमजीका रूवा तक खडा न हुआ। दक्षिण अफ्रीकामे जो नाता उन्होने जोडा सो ठेठ मृत्यु-दिन तक कायम रखा। यहा भी वे सार्वजनिक कामोके लिए रुपया-पैसा भेजते रहते थे। दिसबरमे महासभाके समय उनके यहा आनेकी सभावना थी। पर ईश्वरको कुछ और ही करना था। रुस्तमजी सेठकी मृत्युसे

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी बड़ी हानि हुई है। सोराबजी अडाज-णिया गये, फिर अहमद महमद काछलिया गये, अभी-अभी पी० के० नायडू गये और अब पारसी रुस्तमजी भी चले गये। अब दक्षिण अफ्रीकामें इन सेवकोंकी कोटिके भारतवासी शायद ही रहे हो। ईश्वर निराधारो-का रखवाला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोंकी रक्षा करेगा। परंतु पारसी रुस्तमजीकी जगह तो हमेशा खाली ही रहेगी। (हिं० न०, ३० ११ २४)

: १८२ :

सोराबजी रुस्तमजी

एक प्रसग उल्लेखनीय है। वेरूलमसे कई मजदूर निकल पडे थे। वे किसी प्रकार लौटकर जाना नही चाहते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंको लेकर वहा खडा था। लोगोपर गोली चलानेका हुक्म वह देनेको ही था कि स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लडका बहादुर सोराब-जी, जिसकी उम्र उस समय शायद ही अठारह वर्षकी होगी—डरबनसे यहा आ पहुचा। जनरलके घोडेकी लगाम थामकर उसने कहा, "आप गोलिया चलानेका हुक्म न दे, मै अपने लोगोको शातिपूर्वक अपने-अपने कामपर लौटा देनेकी जम्मेदारी लेता हू।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवान-की बहादुरीपर मुग्ध हो गया और उसने सोराबजीको अपना प्रेम-बल आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोको समझाया। वे समझ गये और अपने-अपने काम पर चले गये। इस तरह एक नौजवान के प्रसग-ावधान, निर्भयता और प्रेमके कारण खूनकी नदी बहते-बहते रुक गई। (द० अ० स०)

: १८३ :

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर, केम्ब्रिजके ग्रेजुएट थे। नेटालके गिरमिटिया माता-पितासे जन्म ग्रहण करनेपर भी 'साहब लोग' बन गये थे। वह तो घरमे भी विना बूटके नही चल सकते थे। इमाम साहबको तो वजू करते वक्त पाव धोने पडते और खुले पैरसे नमाज पढनी पडती। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नही करना पडता था, पर उन्होने बैरिस्टरीको छोड दिया, बगलमे साग-तरकारीकी टोकरी लटकाए और फेरी करते हुए गिरफ्तार हुए। उन्होने भी जेल भुगती। एक दिन रॉयपेनने मुझसे पूछा

"क्या मै सफर भी तीसरे दर्जेमे ही करूँ?"

मैने उत्तर दिया, "यदि आप पहले और दूसरे दर्जेमे सफर करेगे तो तीसरे दर्जेमे मुझे किससे सफर कराना चाहिए? जेलमे आपको बैरिस्टर कौन कहेगा?"

जोसेफ रॉयपेनके लिए यह उत्तर काफी था। वह भी जेलमे सिधारे। (द० अ० स०)

वह बैरिस्टर थे, पर उन्हे इस बातका अहकार नही था। वह अतिशय कठिन परिश्रम नही कर सकते थे। ट्रेनसे अपना असबाब उतार कर उसे बाहर गाडीपर रख देना भी उनके लिए कठिन था। परतु यहा तो वह भी मेहनत पर चढ गये। उन्होने वह सब यथाशक्ति कर लिया। टॉल्स्टॉय फार्मपर कमजोर आदमी सशक्त हो गये और सभी परिश्रमके आदी हो गये (द० अ० स०)

: १८४ :

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतरायको गिरफ्तार क्या किया, सरकारने हमारे एक बडे-से-बडे मुखियाको पकड लिया है। उनका नाम भारतके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। अपने स्वार्थ-त्यागके कारण वे अपने देश-भाइयोके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अहिंसाके प्रचारके लिए और उसके साथ ही लोकमतको सगठित और प्रकट करनेके लिए उन्होने जितना परिश्रम किया है उतना बहुत ही थोडे लोगोने किया है। उनकी गिरफ्तारीसे सरकारकी नीति या वृत्तिका जितना सच्चा पता चलता है उतना दूसरी किसी बातसे नही।

पजाबने तुरत ही उनकी जगहपर अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होने आगा सफदरको अपना अगुवा बनाया है। पजाबी भाइयोको उनसे अच्छा नेता नही मिल सकता था। वे एक सच्चे मुसलमान और एक वीर हिंदुस्तानी है। उन्होने जितनी सेवाए की है वे सब अज्ञातरूपसे की है। मुझे इस बातमे जरा भी सदेह नही है कि लोग लालाजीकी तरह ही सच्चे हृदयसे उनका साथ देगे। पजाबी भाई लालाजीको बडे-से-बडा गौरव जो दे सकते है वह यह है कि वे यही समझकर कि लालाजी हमारे साथ ही है, उनका काम बराबर आगे बढाते रहें। (हि० न०, ११ १२ २१)

आखिरकार लाजपतराय, पडित सतानम, मलिक लालखान और डाक्टर गोपीचदके मुकदमेका फैसला हो गया। लालाजी तथा पडित सतानमको अठारह-अठारह महीनेकी कैदकी सजा दी गई। अभियुक्तोके बहुतेरा विरोध करनेपर भी सरकारने जबरदस्ती उनके बचावके लिए

एक वकील नियुक्त किया था। इस तमाशेके होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था। सजाका हुक्म सुनाए जानेके जरा पहले ही लालाजीने मुझे एक पत्र लिखा। उसमे उनके चित्तकी प्रसन्नता टपकी पड़ती है। वह इस प्रकार है

"आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसादजी और पुरुषोत्तमलालके द्वारा जो सदेश भेजा उनके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मै बहुत मजेमें हू। मैने अन्न-त्याग नहीं किया था। मै अपने आरामके लिए शोरोगुल मचानेके खिलाफ हूं। हम यहा इसलिए नही आए है कि किसी तरहकी सुविधाएं या रिआयतें चाहें। सच्चा हाल अखबारोमें जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुच गया होगा। हम सब लोगोका चित्त बहुत प्रसन्न है और मै राष्ट्रीय पाठशालाओ तथा धार्मिक ग्रथोके अध्ययनमें अपने समयका खूब सदुपयोग कर रहा हू। अहमदाबादमें जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्वपक्षीय परिषद् (राउड टेबल कान्फ्रेन्स)के हालात मुझे मालूम हो गये है। हमारी तकलीफोकी वजहसे हमारे सिद्धातोके निर्णयमें बाधा न होने दीजिएगा। आप यकीन मानिए, हम अपने मनोरथको पूरा करनेके लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए, उतनी तकलीफें बरदाश्त करनेको हर तरहसे तैयार हैं। और अब जब कि उसीके लिए हम यहां आए हुए है तो हमें उसे अखीर-तक निबाहना चाहिए।"

हमे आशा करनी चाहिए कि लालाजी और पडित सतानमको उनका अध्ययन जारी रखने दिया जायगा। मै उन्हे तथा उनके साथियोको यह भी सूचित करनेका साहस करूगा कि वे मौलाना शौकतअली और श्री राजगोपालाचारी तथा उनके साथियोका अनुकरण करे, अर्थात् वे साहित्य-सबधी उद्योगोके साथ-ही-साथ चरखा कातनेपर भी ध्यान देगे। मै अभिवचन देता हू कि बीच-बीचमे चरखा कातते रहनेसे लालाजीके इतिहास-लेखन तथा पण्डित सतानमके सस्कृत अध्ययनमे हानि न होगी।

सर्वपक्षीय परिषद्के सबधमे लालाजीने जो उद्गार प्रकट किए है उनकी ओर मै उन देश-सेवकोका ध्यान दिलाता हू, जो मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक प्रेरणासे प्रेरित होकर, अपने देशके साथ प्रेम करने तथा अपनी अतरात्माकी पुकारके अनुसार आचरण करनेके अपराधके कारण जेलोमें चले जानेवाले कैदियोको छुडानेके उद्देश्यसे कोई निपटारा जल्दी करनेका प्रयत्न कर रहे है । हमारी प्रतिष्ठाके अनुकूल कोई निपटारा होता हो तो उसके रास्तेमे हमे काटे न बखेरना चाहिए, पर यदि हम अपने जेल जानेवाले देश भक्तोके शरीर-सुखके खयालसे कोई असतोपजनक सधि कर बैठेगे तो ऐसा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा । यदि हम अपनी ही इच्छासे निमत्रित किए गये कष्ट-सहनको कम करनेके लिए जरा भी अनुचित रीतिसे झुक गये तो ऐसा करना देशकी हार्दिक अभिलापाको ठीक-ठीक न जानना होगा । (हिं० न०, २५ १ '२२)

दूसरे व्यक्ति जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी है । मैने तो लालाजीको एक बच्चेके समान खुले दिल वाला पाया है । उनके त्यागकी जोड लगभग हुई नही । मेरी उनसे हिंदू मुसलमानोके बारेमे एक बार नही अनेक बार बाते हुई है । वे मुसलमानोके साथ तनिक भी दुश्मनी नही रखते, लेकिन उन्हे जल्दी एकता हो जानेमे शक है । वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिए प्रार्थना कर रहे है । खुद शकित रहते हुए भी वे हिंदू-मुसलमानोकी एकताके कायल है, क्योकि जैसा कि उन्होने मुझसे कहा है वे स्वराज्यके कायल है । वे मानते है कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नही हो सकता । तो भी वे यह नही जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी । मेरा उपाय उन्हे पसद है, परतु इस बातमे शक है कि हिंदू लोग उसका मर्म समझ पावेगे या नही और अगर समझ पावेगे तो उसकी शराफतकी कदर करेगे या नही । यहा मै इतना कहे देता हू कि मै अपनी तदबीरको उदात्त शरीफाना नही कहता । मेरे खयालमे तो यह

विलकुल ठीक और हो सकने लायक तदवीर है। (हिं० न०, १ ६.२४)

• •

मैं खयाल करता हू कि वहुतसे व्याख्यान-दाताओंकी तरह मेरा भी यह दुर्भाग्य है कि सवाददाता-गण मेरे व्याख्यानोकी अक्सर गलत रिपोर्ट भेज देते है, यद्यपि वे जानबूझकर ऐसा नही करते। मुझे याद है कि १८९६ ई० मे स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताने, जवकि मै पहले-पहल भारतवर्षमे व्याख्यान देनेके लिए खडा हुआ था, मुझसे कहा था कि यदि आप चाहते हो कि लोग आपके व्याख्यानको सुने और उसकी सही रिपोर्ट भेजी जाय तो आपको अपना व्याख्यान लिख लेना चाहिए। उनकी इस अच्छी सलाहके लिए मैने उन्हे हमेशा धन्यवाद दिया है। मै यह जानता हू कि यदि उस दिनकी सभाके लिए मैने उनकी सलाहके अनुसार काम न किया होता तो वहा मेरी बडी फजीहत होती, लेकिन जब-जब मेरे व्याख्यानोकी रिपोर्ट गलत भेजी गई है तब-तब बबईके उस बिना ताजके राजाकी, सलाहको याद करनेका मुझे अवसर मिला है। कहा जाता है कि किसीने यह सवाद भेजा है कि अमृतसरकी खिलाफत-परिषदमे मैने लाला लाजपतरायको भीरु कहा है। लालाजी जो कुछ भी हो वे भीरु नही है। मेरे व्याख्यानका पूर्वापर सबध देखनेसे प्रतीत होगा कि मै उनका इस आक्षेपसे कि वे मुसलमानोके विरोधी है बचाव कर रहा था। उस समय मैने जो कुछ कहा था वह यह है लालाजी सदा शकितचित्त रहते है और उन्हे मुसलमानोके उद्देश्यके बारेमे बडी शका रहती है। लेकिन वे मुसलमानोकी दोस्ती सच्चे दिलसे चाहते है। लालाजीके प्रति मेरा बडा आदरभाव है। मै उन्हे बहादुर आत्मत्यागी, उदार सत्यनिष्ठ और ईश्वरसे डरनेवाला मानता हू। उनका स्वदेशप्रेम बडा ही शुद्ध है। देशकी जितनी और जैसी सेवा उन्होने की है उसमे उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम है। और यदि ऐसे शख्सोपर सदेह किया जा सके कि उनके उद्देश्य हीन है तो हमे हिंदू-मुस्लिम ऐक्यसे उसी प्रकार निराश

होना पडेगा जिस प्रकार हमे अलीभाइयोपर हीन उद्देश्य रखनेका सदेह करनेपर निराश होना पडे। हम सब अपूर्ण है, हमारा मत एक-दूसरेके खिलाफ दूषित होगया है। हम, हिंदू और मुसलमान, जैसे है वैसे ही समझे जाने चाहिए। जो हिंदू-मुस्लिम ऐक्यको अपना धर्म मानते है उन्हे तो जो साधन हमारे पास है उसीके द्वारा उसे सपादन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अपने औजारोको बुरा कहने वाला कारीगर आप ही बुरा है। कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि एक मरतबा एक साधारण चाकूसे ही मैने एक बडा गभीर आपरेशन किया था, क्योकि उस समय मेरे पास कोई औजार न था और खौलते हुए पानीके सिवा दूसरी कोई जीव-जतु-विनाशक औषधि भी न थी। उन्होने हिम्मतसे काम लिया और उनका रोगी भी बच गया। हम भी एक दूसरेका विश्वास करे और हम सही-सलामत रहेगे। एक-दूसरेका विश्वास करनेके यह मानी कभी नही हो सकते कि जबानी तो हम एक दूसरेके प्रति विश्वास जाहिर करे और हृदयमे विश्वासको ही स्थान दें। यह सचमुच भीरुता ही है, और भीरु भीरुमे या भीरु और बहादुरोमे मित्रता हो ही नही सकती। (हिं० न०, १४ १२ २४)

हिंदू महासभाके एक उत्साही सदस्य ने मुझे 'यग इडिया' और 'नवजीवन'मे उत्तर देनेके लिए कोई १५ प्रश्न भेजे है। एक दूसरे महाशयने इन्ही प्रश्नोके तरीकेपर मेरे साथ इसी बारेमे बहस की है। मै उन सब प्रश्नोका उत्तर देना नही, चाहता हू लेकिन उनमे कुछको तो मै छोड देनेकी भी हिम्मत नही कर सकता हू, क्योकि उन प्रश्नोसे तो पडित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजीपर वर्तमान पत्रोमे जो आक्रमण हो रहा है उस ओर मेरा ध्यान खीचा गया है। मुझसे यह प्रश्न पूछे गये है

"क्या आपको उनके भले उद्देश्यके बारेमें शंका है? क्या आप उन्हें सीधी तौरपर या और किसी दूसरे तरीकेपर हिंदू-मुस्लिम एक्यके विरोधी मानते हैं? आप मानते है कि क्या वे देशको जानबूझकर किसी भी प्रकार की हानि पहुचा सकते है?"

मै अक्सर यह देखता हू इन स्वदेश-भक्त वीरोपर इस प्रकार आक्रमण होता है। मै यह भी जानता हू कि मेरे बहुतसे मुसलमान मित्रोको इन दोनो प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओके प्रति सपूर्ण अविश्वास है। लेकिन मै, बहुतेरी बातोमे उनसे कितना भी मतभेद क्यो न रक्खू, उनमेसे किसी एक पर भी कभी भी अविश्वास नही ला सकता हू। जिस प्रकार मैने मुसलमानोको मालवीयजी और लालाजीपर इस प्रकार आक्षेप करते हुए देखा है, उसी प्रकार हिन्दुओको भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मुसलमानोपर ऐसे आक्षेप करते हुए देखा है, लेकिन मै उनमेसे किसी भी पक्षके आक्षेपोपर विश्वास नही ला सका हू और मै अपना मतव्य भी किसी भी पक्षको नही समझा सका हू। मालवीयजी और लालाजी दोनो ही देशके कसे हुए सेवक है। दोनो बहुत दिनोसे, देशकी बराबर प्रशसनीय सेवा कर रहे है। उनके साथ दिल खोलकर बातचीत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, लेकिन मुझे एकभी ऐसा अवसर याद नही जब मैने उन्हें मुसलमानोका विरोधी पाया हो। लेकिन इसका मतलब यह नही कि उन्हे मुसलमान नेताओके प्रति अविश्वास नही है और इस बड़े कठिन और नाजुक प्रश्नके उपायके सबधमे हम लोग एक राय है। उन्हे ऐक्यकी आवश्यकताके बारेमें कुछ भी सदेह नही है और उन्होने अपने विचारोके अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी किया है। मेरी रायमें तो इन नेताओके उद्देश्यके सबधमे शका करना ही ऐक्यके होनेके सबधमें शका प्रकट करना है। जब हम लोग सधि करेंगे—किसी-न-किसी दिन हमें यह करना ही होगा—उस समय उनकी बातोका हिंदू-समाज पर ठीक वैसा ही असर पडेगा जैसा कि मुसलमानोमे मौलाना अबुल कलाम

आजाद और हकीम साहबकी बातोका असर पडता है। (हिं० न०, १७ १२ २५)

"आपके तारके लिए आभार मानता हू। लोगोकी ओरसे पुलिसको हमला करनेके लिए कोई कारण नहीं मिला है। यह मामला इरादापूर्वक किया गया था। दो सख्त चोटें लगी है, मगर गभीर नहीं हैं। एक बाईं छातीपर और एक कधेपर लगी है। दूसरी चोटें सत्यपाल, गोपीचद, हंसराज, मुहम्मद आलम आदि मित्रोने सभाल लीं। दूसरोपर भी मार पडी है और चोटें लगी है; किंतु चिताका कोई कारण नहीं है।"[1]

—लाजपतराय

मैने लाला लाजपतरायको तारसे धन्यवाद दिया था और हालत पूछी थी। उसके जवाबमे तुरत ही लालाजीने ऊपरका तार भेजा। आजके लोगोमे से, जबकि अधिकाश की अभी रेखे भी नही भीगी थी, लालाजीने 'पजाब केशरी' का नाम पाया था। अबतक उनका यह इलकाब जैसा-का-तैसा कायम है, क्योकि चाहे उनके पक्ष और विपक्षमें कुछ भी क्यो न कहा जाय, वे अब भी पजाबके सबसे बडे निर्विवाद नेता है और सारे भारतवर्षमें सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित नेताओमें से है। वे महासभाके सभापति हो चुके है, यूरोपमे उनका नाम है और वे उन गिने-चुने नेताओमे से है, जो दिलकी बात तुरत ही कह देते है, गो कोई भले ही गलतफहमी करे या उससे भी अधिक उन्हें अवसर पहचाननेवाला मूर्ख समझे। मगर लालाजी अपनी आदतसे लाचार है, क्योकि वे अपने दिलमे कोई बात छिपाकर रख ही नही सकते। जो बात सोची, वह वे कहेंगे ही।

---

[1]साइमन कमीशनके लाहौर आनेपर जो जलूस उसके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए निकाला गया था, लालाजीने उसका नेतृत्व किया था। पुलिसने उस जलूसपर लाठिया चलाई थीं।

इसलिए जब मैने यह शीर्षक पढा "लालाजीपर मार" और मारके ब्यौरे पढे तभी मेरे मुहसे निकल गया--"शाबाश !" अब हमे स्वराज्य पानेमे बहुत देर नही लगेगी, क्योकि चाहे हमारी क्राति हिंसक हो या अहिसक, स्वतत्र होनेके पहले हमे देशके नामपर मरनेकी कला सीखनी होगी। इसके अलावा जबतक महान प्रयत्न न किया जावे, अहिंसक दबावमे भी शासक झुकेगे नही । आदर्श और सपूर्ण अहिंसाके सामने, मै यह कल्पना कर सकता हू कि शासकोकी वृत्ति बिलकुल ही बदल जानी सभव है । मगर गोकि आदर्श और सपूर्ण कार्यक्रम बनाना सभव है, तथापि उसका सपूर्ण और आदर्श अमल कभी सभव नही है । इसलिए सबमे सस्ती बात यही है कि नेताओपर मार पडे या गोली चले । अबतक अनजान आदमियोपर मार पडी है या वे मारे गये है । थोडेसे आदमियोको गोली मारनेसे भी देशका ध्यान जितना आकर्षित नही होता उससे कही अधिक लालाजीपर हमला करनेसे हुआ है । लालाजी तथा दूसरे नेताओपर हमलेसे हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञ विचारमे पड गये है और सरकारकी शाति तो जरूर ही भग हो गई होगी । (हि० न०, ८ ११ २८)

लाला लाजपतरायका देहात हो गया । लालाजी चिरजीवी होवे । जबतक हिंदुस्तानके आकाशमे सूर्य चमकता है तबतक लालाजी मर नही सकते । लालाजी तो एक सस्था थे । अपनी जवानीके ही समयसे उन्होने देशभक्तिको अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेममे सकीर्णता न थी । वे अपने देशसे इसलिए प्रेम करते थे कि वे ससारसे प्रेम करते थे । उनकी राष्ट्रीयता अतर्राष्ट्रीयतासे भरपूर थी । इसलिए यूरोपियन लोगोपर भी उनका इतना अधिक प्रभाव था । यूरोप और अमेरिकामे उनके अनेक मित्र थे । वे मित्र लालाजीको जानते थे और इसलिए उनसे प्रेम करते थे ।

उनकी सेवाए विविध थी । वे बडे ही उत्साही समाज और धर्म सुधारक थे । हममेसे बहुतसे लोगोके समान वे भी इसीलिए राजनीतिज्ञ

वने थे कि समाज और धर्म सुधारकी उनकी लगन राजनीतिमे शामिल हुए विना पूरी होती ही नही थी। सार्वजनिक जीवन शुरू करनेके कुछ ही समय बाद उन्होने देख लिया था कि विदेशी गुलामीमे देशके स्वतत्र हुए विना हमारे इच्छित सुधारोमेसे बहुतसे नही हो सकेंगे। जैसा कि हममेसे बहुतोको जान पडता है, उन्हे भी जान पडा था कि विदेशी परतत्रताका जहर देशकी नस-नसमे घुस गया है।

ऐसे एक भी सार्वजनिक आदोलनका नाम लेना असभव है, जिसमे लालाजी शामिल न थे। सेवा करनेकी उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होने शिक्षण सस्थाए खोली, वे दलितोके मित्र बने, जहा कही दु ख-दारिद्र्य हो, वही वे दौडते थे। नवयुवकोको वे असाधारण प्रेमसे अपने पास जमा करते थे। सहायताके लिए किसी नवजवानकी प्रार्थना उनके पास वेकार न गई। राजनैतिक क्षेत्रमे वे ऐसे थे कि उनके विना चल ही नही सकता था। अपने विचार प्रकट करनेमे वे कभी भयभीत न हुए। उस समय भी जब कि कष्ट सहना रोजमर्राकी बात नही हो गई थी, अपने विचार निर्भीकतासे प्रकाशित करनेके लिए उन्होने कष्ट सहा था। उनके जीवनमे कोई छिपा हुआ रहस्य नही था। उनकी अत्यत अधिक स्पष्टवादितासे मित्रोको, अगर प्राय घबराहटमे पडना होता तो, उनके आलोचक भी चक्करमे पड जाते थे। मगर उनकी यह आदत छूटनेवाली नही थी।

मुसलमान मित्रोका लिहाज रखता हुआ भी मै दावेके साथ यह कहता हू कि लालाजी इस्लामके दुश्मन नही थे। हिदू धर्मको सबल बनाने तथा शुद्ध करनेकी उनकी प्रबल इच्छाको भूलसे मुसलमानो या इस्लामके प्रति घृणा नही समझनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानोमे एकता स्थापित करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी। वे हिंदू राजकी चाहना नही करते थे, किंतु वे हिंदुस्तानी राजकी इच्छा करते थे। अपने आपको हिंदुस्तानी कहनेवाले सभी लोगोमे वे सपूर्ण समानता स्थापित करना चाहते थे।

लालाजीकी मृत्युमे भी हम परस्पर एक दूसरेपर विश्वास करना सीखें और अगर हम निर्भय बन जाय तो यह तुरत ही सभव है ।

उनके लिए एक राष्ट्रीय स्मारककी माग अवश्य ही होनी चाहिए और वह होगी भी । मेरी विनम्र सम्मतिमे कोई स्मारक तबतक सपूर्ण नही हो सकता जबतक कि स्वतत्रता जरूर प्राप्त करनी है, यह दृढ विश्वास न हो, और स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए वे जीते थे, इसीके लिए उनकी ऐसी गौरवमयी मृत्यु भी हुई । जरा हम याद करे कि उनकी अतिम इच्छा क्या थी । उन्होने नई पीढीको हिंदुस्तानकी स्वतत्रता प्राप्त करने तथा उसके गौरवकी रक्षा करनेका भार सोपा है । नई पीढीमे उन्होने जो विश्वास दिखलाया वह क्या उसके योग्य आपको साबित करेगी ? और हम बूढोमे से, जो भारतवर्षको स्वतत्र देखनेके लालाजी तथा दूसरे अनेक स्वर्गीय देशभक्तोके स्वप्नको सही बनानेके लिए अभी तक बचे हुए है, एक बार सभी मिलकर महान् प्रयत्न कर अपनेको लालाजीके जैसे देशबधु पानेका अधिकारी सिद्ध करेगे ।

इसके अलावा हम जन-सेवक-सघको भी नही भूल सकते । इस सघको उन्होने अपने विविध कामोकी उन्नतिके लिए स्थापित किया था और वे सब काम देशोन्नतिके लिए थे । सघके सबधमे उनकी उच्चाभिलाषाए बहुत बडी थी । उनकी इच्छा यह थी कि सारे भारतवर्षमे से कुछ नव-युवक मिलकर, एक कार्यमे लगकर, एक दिलसे काम करे । यह सघ अभी बच्चा ही है । इसे स्थापित हुए बहुत साल नही हुए है । अपने इस महान कामको मजबूत पाएपर रखनेका समय उन्हें नही मिला था । यह भार राष्ट्रके ऊपर है और राष्ट्रको इसकी फिक्र करनी चाहिए । (हिं० न०, २२ ११ २८)

लालाजीका अतसमयतक मुझपर विश्वास रहा । यह मेरा सौभाग्य था । उनके अनेक गुणोमे से जो हमारे लिए आज अधिक-से-अधिक

मूल्यवान हो सकता है वह था उनका हरिजन-प्रेम, अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका अखड युद्ध। जिस समय हिंदू भारतके हृदयमे हरिजनोके प्रति अपने कर्तव्य-पालन करनेकी भावना उदय नही हुई थी, उस समय उन्होने यह युद्ध किया था। वे अपनी जोरदार भाषामे बराबर कहते थे कि अछूतपन हिंदूधर्मका कलक है। यदि लालाजीने इस युद्धके सिवाय और कुछ काम न भी किया होता तो भी हिंदुओके दिलोमे लालाजीकी पवित्र स्मृति सदा बनी रहती। परन्तु लालाजीके देशव्यापी गुणोको, उनकी अखिल भारतीय सेवाओको कौन नही जानता ? उन्हे 'पजाब-केसरी' की उपाधि यू ही तो नही मिली थी! (२७ १२ ३३ को एल्लोरमे लालाजीके चित्रका उद्घाटन करते समय का भाषण)

जब राजनीतिको लोग भूल जायगे, जब जनताका ध्यान खीच लेने-वाली अनेक क्षणभगुर वस्तुए भी विस्मृत हो जायगी, तब भी लालाजीके गभीर और विशाल हरिजन-प्रेमको और उनकी तज्जनिक महान सेवाओको करोडो हिंदू ही नही, बल्कि कोटिश सवर्ण हिंदू भी— और हिंदू ही क्यो, समस्त भारतवर्ष बडी श्रद्धाभक्तिसे याद किया करेगा। लालाजी एक महान मानव-प्रेमी थे और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था। उनकी प्रत्येक वर्षीके अवसरपर हमे अपने जीवनमे लालाजीको उनकी प्रत्येक विगत वर्षीकी अपेक्षा, अधिकाधिक सजीव करते जाना चाहिए। लालाजी-जैसे समाज-सुधारकोका जब निधन होता है तब केवल उनकी देहका ही नाश होता है। उनका कार्य और उनके विचारोका देहके साथ अत नही होता। उनकी शक्ति तो उत्तरोत्तर बढती जाती है। हमे इसका अनुभव तब और अधिक होता है जब हम देखते है कि ज्यो-ज्यो समय बीतता है त्यो-त्यो इस जीर्ण चोलेके बाहर इसका प्रभाव स्वत प्रकट होता जाता है। मनुष्यके अदर जो क्षणजीवी अग है वह देहके साथ नाशको प्राप्त हो जाता है, किंतु मनुष्यका जो शाश्वत अविनाशी अग है, वह तो देहके भस्मीभूत

होनेपर भी जीवित रहता है और देहका बंधन दूर हो जानेसे वह और भी अधिक प्रकाशमान हो जाता है। इस विचारको सामने रखकर हमें लालाजीकी स्मृतिको चिरजीवी रखना चाहिए। हरिजन हिंदू तथा सवर्ण हिंदू दोनों ही स्व० लालाजीका पुण्यस्मरण करके हिंदू-समाजमें से यह अस्पृश्यताका पाप-कलङ्क धो डालनेका नये सिरेसे संकल्प करें। हरिजन तो उन त्रुटियोंको दूर करें जो अत्याचार बर्दाश्त करते-करते लोगों-में पैदा हो जाती हैं और सवर्ण अपने उस पापको पखारकर शुद्ध हो जाय, जो उन्होंने हरिजनोंको जन्मना अस्पृश्य और अपनेको जन्मना उच्च मानकर किया है। (ह० से०, २३ ११ ३४)

• • • • • • •

लाला लाजपतरायजी तो पंजाबके शेर माने जाते थे। वह तो चले गए। मैं तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिंदीमें बोलना कब सीखोगे। वह कहते थे, यह नहीं होनेका। याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखो कि वे हवन इत्यादि भी करवाते थे। चूंकि मैं उन्हींके घरमें ठहरता था, इसलिए मैं यह सब देखता था। हवनमें तो संस्कृत ही काममें आती है और अजीब बात थी कि यह सब होते हुए भी वे थोड़ा-थोड़ा पढ़ तो लेते थे देवनागरीमें, लेकिन उनकी मादरी जबान उर्दू ही थी। वे कहते थे कि उर्दूमें तो मुझसे कहो तो घंटों बोल लेता हूं और बोलते थे, और उर्दूके तो मैं आपको क्या बताऊं, वे बड़े भारी विद्वान् थे और बहुत शीघ्रतासे लिख सकते थे। अंग्रेजीमें भी वे घंटों बोल सकते थे, लेकिन संस्कृतमय हिंदी तो उनकी समझमें भी नहीं आती थी। जब मैं चुन-चुनकर अरबी-फारसीके शब्द लाता तब वे मेरी बात समझ सकते थे। (प्रा० प्र०, १८ ११ ४७)

: १८५ :

लाटन

मि० लाटन डर्बनके वहुत पुराने और वडे रयातनामा वकील थे। मै भारत गया, उसके पहले ही उनके साथ मेरा वहुत घनिष्ट संवंध हो चुका था। अपने महत्वपूर्ण मुकदमोमें मैं उन्हीकी सहायता लेता था और कई वार उनको अपने मामलोमें वडा वकील भी वनाता था। वे वडे वहादुर आदमी थे। शरीरके ऊचे-पूरे थे। (द० अ० स०)

: १८६ :

लुटावन

उत्तर हिंदुस्तानसे गिरमिटमे आया हुआ लुटावन नामक एक वूढा मवक्किल था। अवस्था ७० वर्षसे भी अधिक होगी। उसे वडी पुरानी दमे और खासीकी व्याधि थी। अनेको वैद्योके क्वाथ-पुडियो और कई डॉक्टरोकी वोतलोको वह आजमा चुका था। उस समय मुझे अपने इन (प्राकृतिक) उपचारोमे असीम विश्वास था। मैने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तोका पालन करो और फार्म ही पर रहो तो मैं अपने उपचारोका प्रयोग तुमपर कर सकूगा। उसका इलाज करनेकी वात तो मै कैसे कह सकता था? उसने मेरी शर्तोको कवूल किया। लुटावनको तमाखूका वहुत भारी व्यसन था। मेरी शर्तोमे एक यह भी थी कि वह तमाखू छोड दे। लुटावनको एक दिनका उपवास कराया। प्रतिदिन वारह वजे धूपमे 'कूने वाथ' देना शुरु किया। उस समय की ऋतु भी

धूपमे बैठने लायक थी। उसे थोडा भात, कुछ जेतूनका तेल, शहद और कभी-कभी शहदके साथ-साथ खीर, मीठी नारगी, अगूर और भुने हुए गेहूकी कॉफी आदि भोजनके लिए दिया जाता था। नमक और तमाम मसाले वद कर दिए गये थे। जिस मकानमे मै सोता था उसी मकानमे जरा अदरकी तरफ, लुटावनका भी विस्तर लगा दिया जाता था। सबके बिस्तरमे दो कवल रहते थे, एक विछानेका और एक ओढनेका। लकडीका तकिया भी रहता था।

एक सप्ताह वीता, लुटावनके शरीरमे तेज प्रवेश करने लगा, दमा कम हुआ, खासी भी घट गई। पर रातको दमा और खासी दोनो सताने। मुझे तमाखूका शक हुआ। मैने उससे पूछा। लुटावनने कहा, "मै नही पीता।" फिर एक-दो दिन गये। पर खासीमे कोई फर्क नही हुआ। अब छिपकर लुटावनपर नजर रखनेका निश्चय किया। सब जमीनपर ही सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही। इसलिए मि० कैलन-बेकने मुझे बिजलीकी एक जेबी वत्ती दे रक्खी थी। वह भी एक रखते थे। इस वत्तीको लेकर मै सोता था। मैने निश्चय किया कि एक रात विस्तर हीमे पडे-पडे जागू। दरवाजेमे वाहर बरामदेमे मेरा बिस्तर लगा हुआ था और दरवाजेके अदर नजदीक ही लुटावन लेट रहा था। करीब आधी रातके लुटावनको खासी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीडी पीना शुरू किया। मै भी धीरेसे चुपचाप उसके बिस्तरके पास जा खडा हुआ और वत्तीकी कलको दबाया। लुटावन घबडाया। वह समझ गया। बीडी बुझाकर उठ खडा हुआ। और मेरे पैर पकडकर बोला, "मैने बडा गुनाह किया, अब मै कभी तमाखू नही पीऊगा। आपको मैने धोखा दिया। मुझे आप माफ करे।" यह कहकर वह गिडगिडाने लगा। मैने उसे आश्वासन-पूर्वक कहा कि बीडी छोडनेमे उसीका हित था। मेरे अनुमानके अनुसार खासी जरूर मिट जानी चाहिए थी। वह मिटी नही, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीडी छूटी और उसके साथ-

ही-साथ दो-तीन दिनमे दमा और खासीकी शिकायत भी कम हो गई। इसके वाद एक मासमें लुटावन विलकुल नीरोग हो गया। उसके चेहरेपर खूब रौनक आगई और वह विदा होनेके लिये तैयार हुआ। (द० अ० स०)

: १८७ :

लाजरस

पहले मै यह वतला चुका हू कि ट्रासवालसे जो वहने आई थी, वे द्राविड प्रात की थी। वे एक द्राविड कुटुवके यहा ठहरी थी, जो ईसाई था। यह कुटुव मझोले दर्जेका था। उसके एक छोटासा जमीनका टुकडा और दो-तीन कमरेवाला एक छोटा-सा मकान था। इन्हीके यहा ठहरनेका मैने भी निश्चय किया। मालिक-मकानका नाम लाजरस था। गरीवको किसका डर हो सकता है ? ये सब मूलत गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा थे। इसलिए उनको और उनके सबधियोको भी तीन पौंडवाला कर देना पडता था। गिरमिटियाओके दु खोसे तो वे पूरी तरह परिचित थे। इसलिए उनके साथ उनकी सहानुभूति होना भी स्वाभाविक ही था। इस कुटुवने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मेरा स्वागत करना मित्रोके लिए आसान काम तो कभी रहा ही नही है, परतु इस वार तो वह और भी मुश्किल था। मेरा स्वागत करना मानो प्रत्यक्ष निर्धनताका स्वागत करना और शायद जेलको भी निमत्रण देना था। इस स्थितिमें शायद ही कोई धनिक व्यापारी अपनेको इस खतरेमे डालनेके लिए तैयार होता। अपनी तथा उनकी परिस्थितिको इस तरह समझ लेनेपर भी उन्हें ऐसी विकट परिस्थितिमे डालना मेरे लिए सर्वथा अनुचित था। वेचारे लाजरसको थोडा-सा वेतन ही खोनेका डर था और

वह उसे बरदाश्त भी कर सकता था। उसे कोई कैद करना चाहे तो भले ही करे, पर अपने से भी गरीब गिरमिटियाओंके दुखोंको कैसे चुपचाप सह सकता था ? उसने अपने यहा इन गिरमिटियाओंकी सहायताके लिए आई हुई बहनोंको अपनी आखो जेलमे जाते देखा था। उसे मालूम हुआ कि उनके प्रति उसका भी कुछ कर्तव्य है, इसीलिए उसने मुझे भी स्वीकार किया। स्वीकार किया, पर अपना सर्वस्व भी अर्पित कर दिया; क्योकि उसके यहा मेरे जानेके बाद उसका घर एक धर्मशाला बन गया। सैकडो आदमी और हर तरहके आदमी आते-जाते थे। उसके मकान के आस-पास की जमीन आदमियोसे खचाखच भर गई। चौबीसो घटे उसके मकानपर रसोई होती रहती थी, जिसमे उसकी धर्मपत्नीने जीतोड महनत की। इतनेपर भी जब कभी देखिए, तब वे दोनो हँसमुख ही नजर आते थे। उनकी मुखाकृतिमे मैंने अप्रसन्नता नही देखी। (द० अ० स०)

: १८८ :

टी० एम० वर्धीस और जी० रामचन्द्रन्

अगर श्री टी० एम० वर्धीस और श्री जी० रामचन्द्रन विश्वासके लायक नही है तो भी मुझे इस बातका यकीन दिलानेके लिए हमारा[1] मिलना जरूरी है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे मनमे उनकी हिम्मत, आत्म-बलिदान, कार्यदक्षता और प्रामाणिताके लिए बहुत मान है। श्री जी० रामचन्द्रन साबरमतीके एक पुराने आश्रमवासी हैं। उन्होंने मुझे कभी अविश्वासका कारण नही दिया। (ह० से०, २७ ७ ४०)

---

[1]गांधीजी तथा त्रावणकोरके दीवान।

: १८६ :

ए० एस० वाडिया

पूनाके श्री ए० एस० वाडियाका निम्नलिखित पत्र मुझे मिला है। जैसा कि उससे मालूम पड़ेगा, वह उन गरीबोंके सच्चे हमदर्द हैं, जो गर्मियोंमें महाबलेश्वर जानेवालोंके लिए नीचेके मैदानोंसे लकडियोंकी मोलियां लेजाकर जैसे-तैसे अपना निर्वाह करते हैं। श्री वाडिया लिखते हैं

"मैं महाबलेश्वर इसलिए गया था कि दक्षिणी रोडेशियापर अपनी नई किताब लिखनेके लिए जो एकांत और शांति मैं चाहता था वह मिल जाए। लेकिन वहां मेरा ध्यान और शक्तियां अचानक उन देहातियोंकी तकलीफोंपर चली गईं, जो नीचेकी घाटियोंसे घास और लकडियोंके भारी-भारी बोझ लेकर महाबलेश्वर आते और नाममात्रके दामोंपर हमारे बाजारमें बेचते थे। जिन पहाडी पगडंडियोंसे वे आम तौरपर आते उन्हींके बीच वे जंगली स्थान थे, जहां बैठकर मैं अपनी 'रोडेशियाके चमत्कार' पुस्तक लिखता था। जब कभी मैं उनसे बात करता, वे जरूर उन रास्तोंकी भयंकर हालतकी शिकायत करते जिनसे होकर वे आते थे, क्योंकि नुकीले पत्थरोंसे उनके पैरों में चोट लगती और फफोले पड जाते थे। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं खुद जाकर नीचेके रास्तोंकी हालत देखूं और उन्हें सुधारनेके लिए कुछ करूं। उनकी इच्छा पूरी करनेके लिए मैं खुद नीचे घाटियोंमें गया और उन रास्तोंको देखा। वे पथरीले, ढालू और बीच-बीचमें खतरनाक तौरसे तंग थे। पूछताछ करनेपर मुझे पता लगा कि सौ साल पहले जब जनरल लार्ड निकनने महाबलेश्वरका पता लगाया था तबसे अबतक कभी किसी आदमीका हाथ इन रास्तोंपर नहीं लगा, बल्कि लोगोंके बराबर आते-जाते रहनेसे ही ये बन गये हैं।

मुझे लगा कि गांववालोंकी शिकायतें ठीक हैं और इसपर तत्काल

ध्यान देनेकी जरूरत है। अत मैंने 'रोडेशियापर' किताब लिखना बद करके मजूरोको कामपर लगाया और रास्तोको साफ व चौड़ा करने, अवरोधक पत्थरोको हटाने तथा लकडीकी मोलियां लानेमें दरख्तोकी जो डालिया रुकावट डालती थी उन्हें कटवानेका काम व्यवस्थित रूपसे शुरू कर दिया। ८ सप्ताह तक यह काम जारी रहा, जिस बीच मैंने कुल मिलाकर कोई एक हजार मजूरोको कामपर लगाया होगा। छोटे-बडे मिलाकर एक दर्जन रास्ते उन्होने बनाए और ठीक व दुरुस्त किए होगे। इनमेंसे चार रास्ते कोकणके दूरवर्ती गावोसे शुरू होकर कोकणके पहाडी नाको व दक्षिणकी पहाड़ियोपर होते हुए महाबलेश्वर तक आते है। डबील टोक और बाबली टोक नामक कोकणके पहाडकी दो चाकूकी धार जैसी नुकीली चोटियोको तो मैंने इतना सकडा और खतरनाक पाया कि पहाडकी चोटियोपर चलनेवाली तेज हवासे सिरपर बोझा उठाते हुए स्त्रियो, बच्चोको नीचे लुढकनेका खतरा होनेपर सचमुच मुहके बल लेटकर अपने हाथ-पैरोके सहारे रेंगना ही पड़ता है। इन दोनो पहाडी चोटियोको, जो हरएक आधमीलके करीब थी, मैंने बिलकुल तुड़वा दिया है, हालाकि उनके कुछ हिस्से बडे मजबूत पत्थरके थे और पत्थरके छोटे-छोटे टुकडोके तीनसे चार फुटतक चौडे रास्ते सुरक्षित स्थानोपर बनवा दिए है।

"अब मैं उस मुख्य बातपर आता हू जिसके लिए कि मैं आपको यह सब लिख रहा हू। मैं आपसे पूछता हू कि क्या सरकार इस बातके लिए बाध्य नहीं है कि जैसे वह सवारी गाडियोके आने-जानेके लिए सडकोको ठीक हालतमें रखती है उसी तरह गाववालोके उपयोगके लिए मैंने जो रास्ते बनाए है उन्हें वह अच्छी हालत में रक्खे ? जाच करनेपर मुझे पता लगा है कि मौसमके दर्मियान महाबलेश्वर जानेके लिए कोकणके कोई ५०-६० गाव इन नए बन हुए रास्तोका उपयोग करेंगे। मैंने यह भी पता लगाया है कि ये गाव भूमि-करके रूपमें हर साल ५० से २०० रु० तक देते है, बल्कि एक तो ३०० रु० देता है। इन गावोकी गाढी कमाईसे जो कुछ

हजार रुपया सरकार हर साल भूमि-करके रूपमें वसूल करती है उनके वदले-में इनके लिए वह क्या करती है, यह मै नहीं जानता । आपको यह याद रखना चाहिए कि कोकण और दक्षिणके इन ६० गावोके लिए महावलेश्वर ही एक और अकेला ऐसा जरिया है कि जिसके द्वारा वे अपना सरकारी पावना अदा करनेके लिए हर साल कुछ रुपए कमा सकते है । इसमेंसे अधिकाशके पास अपने जमीनके थोडे-से हिस्सेसे जो कुछ मिल जाए, वशर्ते कि वरसात ठीक हो जाए, उसके सिवा और कोई जरिया नहीं है और हरएकके पास जमीनका जो थोडा-सा टुकडा है उसमें पैदा होनेवाला अनाज खुद उसके तथा उसके कुटुवके लिए मुश्किलसे ही पूरा होता है । नतीजा यह होता है कि जो-कुछ रुपया उन्हें चाहिए उसके लिए घास और लकडीके भारे लेकर उन्हें महावलेश्वर जाना पडता है । और कुटुवकी परवरिशके लिए खाली पुरुषोके जानेसे ही काम नहीं चलता, वल्कि उनकी स्त्रियो और माताओ तथा १०–१२ सालके वच्चोतकको उनके साथ भारे लेकर जाना पडता है । आप मुझपर विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन मैंने ऐसे दर्जनो पुरुषो, स्त्रियो व वच्चोसे खुद वातचीत की है, जो मगल-वारके सवेरे लगनेवाले साप्ताहिक वाजारके लिए महावलेश्वर पहुचनेको रविवारके तीसरे पहर कोकणके अपने गावोसे रवाना होते है और दो दिनकी सारी मेहनत व तकलीफके वाद हरेक कमाता है कुल ४ आने या अधिक-से-अधिक ५ आने ।

"इन गाववालोसे वातें कर करके मैंने कुछ और हालात भी मालूम किए है, जो शायद आपके लिए उपयोगी होगे

१—इन सवने इस वातकी शिकायत की कि उनके खेतोकी जमीन साल-व-साल अनुत्पादक होती जा रही है, जिससे दस साल पहले जितनी उपज हुआ करती थी अव उससे आधीके करीव होने लगी है ।

२—इनका कहना है कि काग्रेस-सरकारने हरेक मवेशी पीछे ४ आने कर फिर लगा दिया है, जिससे पिछले दो सालोसे वह मुक्त थे ।

३—गांवोके आसपास जो जमीनें पड़ती पड़ी हुई हैं उन्हें काश्तके लिए दे दिया जाए और जो छोटे-छोटे जगली इलाके सुरक्षित रक्खे गये हैं उन्हें उनके मवेशियोके लिए खोल दिया जाए ।

"महात्माजी, मैं चाहता हूं कि इन आदिजनोकी, जैसा कि महाबलेश्वरके आसपास की घाटियोके इन गरीब ग्रामीणोको मैं कहता हू और जिनकी भलाई व बहबूदीके लिए मेरी दिलचस्पी है, मददके लिए आप जरूर कुछ करें ।"

मैंने यह पत्र बबईके मत्रियोके पास भेज दिया था और पाठकोको यह बतलाते हुए मुझे खुशी होती है कि उन्होने इस बारेमे कार्रवाही करनेका निश्चय कर लिया है । जिन पगडडियोको श्री वाडियाने पहलेसे कही ज्यादा साफ-सुथरा और सुरक्षित बना दिया है, बबई-सरकार उन्हे मरम्मत कराकर अच्छी हालतमे रक्खा करेगी । साथ ही, दूसरी जिन बातोका श्री वाडियाने जिक्र किया है उनकी भी वह व्यवस्था करेगी । श्री वाडियाने जो कुछ किया उसका विस्तृत विवरण भेजनेके लिए मैंने उन्हे लिखा था । ऐसा मालूम पडता है कि पगडडिया बनानेमे मजदूरोके साथ खुद उन्होने भी काम किया और उनके रोड-इजीनियर खुद वही बने । अपनी जेबसे उन्होने २००रु०से ज्यादा रुपया खर्च किए और १२५ रु० उनके दो मित्रोने दिए । मुझे इस बातका पक्का भरोसा है कि अपनी किताब लिखना स्थगित करके श्री वाडियाने कुछ खोया नही है, क्योकि बहुत सभवत अब उसमे उनकी बिलकुल असली उदारताका फल भी मिल जायगा । अपने पास बची हुई रकममेसे दानस्वरूप कुछ देनेका तो फैशन बन गया है, लेकिन रुपएकी तरह अपना परिश्रम लोग नही देते । जो ऐसा करते है वे अपने दानका यथासम्भव सर्वोत्तम उपयोग करते हैं । आशा है कि पहाडोपर जानेवाले दूसरे लोग भी श्री वाडियाके सुदर उदाहरणका अनुकरण कर उन गरीबोकी हालतका अध्ययन करके सुधारनेकी कोशिश करेगे, जो बिना कोई शिकायत किए अक्सर

किसी तरह पेट भरने लायक मजूरी पर ही काम करते है। (ह० से०, २६ ७ ३६)

: १६० :

वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर

एक दूसरी वहन भयकर वुखार लेकर (जेलसे) वाहर निकली, जिसने थोडे ही दिन वाद उसे परमात्माके घर पहुचा दिया। उसे मै कैसे भूल सकता हू? वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर अठारह वर्षकी वालिका थी। मै उसके पास गया तव वह विस्तरसे उठ भी नही सकती थी। कद ऊचा था। उसका लकडीके-जैसा शरीर डरावना मालूम होता था।

मैंने पूछा—"वालीअम्मा, जेल जानेपर पश्चाताप तो नही है?"

"पश्चाताप क्यो हो! अगर मुझे फिर गिरफ्तार करें तो मै पुन' इसी क्षण जेल जानेको तैयार हू।"

"पर इसमें यदि मौत आ जाय तो?"

"भले ही आवे न! देशके लिए मरना किसे न अच्छा लगेगा?"

इस वातचीतके कुछ दिन वाद वालीअम्मा की मृत्यु हो गई। देह चला गया, पर वह वाला तो अपना नाम अमर कर गई। इसकी मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए स्थान-स्थानपर शोक-सभाए हुईं और कौमने इस पवित्र देवीका स्मारक वनानेके लिए एक 'वालीअम्मा हॉल' नामक भवन वनवानेका निश्चय किया। पर कौमने इस हॉलको वनवा कर अपने धर्मका पालन अभी तक नही किया! उसमे कई विघ्न उपस्थित हो गये। कौममे फूट हो गई। मुख्य कार्यकर्त्ता एकके वाद एक वहासे चले गये।

पर वह ईंट-पत्थरका स्मारक बने, या न भी बने, वालीअम्माकी सेवाका नाश नही हो सकता। इस सेवाका हॉल तो उसने स्वय अपने हाथोसे बना रक्खा है। आज भी उसकी वह मूर्त्ति कितने ही हृदयोमे विराज रही है। जहातक भारतवर्षका नाम रहेगा वहातक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमे वालीअम्माका नाम भी अमर रहेगा। (द० अ० स०)

• • • • •

इन बहनोका बलिदान विशुद्ध था। उनका जेल जाना उनका आर्त-नाद था, शुद्ध यज्ञ था। ऐसी शुद्ध हार्दिक प्रार्थनाको ही प्रभु सुनते है। यज्ञकी शुद्धि ही मे उसकी सफलता है। भगवान तो भावनाके भूखे है। भक्ति-पूर्वक अर्थात् नि स्वार्थ भावसे अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प और जल भी परमात्माको प्रिय है। उसे वे सप्रेम अगीकार करके करोडो गुना फल देते है। सुदामाके मुट्ठीभर चावलके बदलेमे उसकी वर्षोकी भूख भाग गई। अनेकके जेल जानेसे चाहे कोई फल न निकले, मगर एक शुद्धात्माका भक्तिपूर्ण समर्पण किसी समय निष्फल नही हो सकता। कौन कहता है कि दक्षिण अफ्रीकामे किस-किसका यज्ञ सफल हुआ, पर इतना हम जरूर जानते है कि वालीअम्माका बलिदान अवश्य ही सफल हुआ। (आ० क० १९२७)

: १९१ :

वासन्ती देवी

बेगम मुहम्मदअलीने अगोरा फडके लिए जहा-जहासे रुपया प्राप्त किया है वहासे शायद मौलाना साहब भी न ले पाते। यह बात मै पहले ही कह चुका हू कि उनका भाषण तो मौलाना साहबसे भी बढिया होता

है । अब मैं पाठकोंको एक रहस्य और सुनाता हूं । बंगालमें आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती वासंती देवी और उर्मिलादेवीने । वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरीं । यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बंगालका ध्यान इस तरफ गया । देशबंधुदासके प्रचंड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया । मेरे पास एक पत्र वहांसे आया है । उसमें यही मालूम होता है । यह बात गलत नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री क्या है ? वह साक्षात त्यागमूर्ति है । जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाड़को भी हिला देती है । (हिं० न०, २५ १२ २१)

•

कुछ वर्ष पूर्व मैंने स्वर्गीया रमाबाई रानडेके दर्शनका वर्णन किया था । मैंने आदर्श विधवाके रूपमें उनका परिचय दिया था ।

इस समय मेरे भाग्यमें एक महान् वीरकी विधवाके वैधव्यके आरंभका चित्र उपस्थित करना बदा है ।

वासंती देवीके साथ मेरा परिचय १९१९ में हुआ है । गाढ़ परिचय १९२१ में हुआ । उनकी सरलता, चातुरी और उनके अतिथि-सत्कारकी बहुतेरी बातें मैंने सुनी थीं । उनका अनुभव भी ठीक-ठीक हुआ था । जिस प्रकार दार्जिलिंगमें देशबंधुके साथ मेरा संबंध घनिष्ट हुआ उसी तरह वासंती देवीके साथ भी हुआ । उनके वैधव्यसे तो परिचय बहुत ही बढ़ गया है । जबसे वे दार्जिलिंगसे शवको लेकर कलकत्ते आई हैं तबसे मैं कह सकता हूं कि उनके साथ ही रहा हूं । वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आस-पास बहुतेरी बहनें बैठी थीं । पूर्वाश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं । वैधव्यमें मुझे क्या बुलातीं ? पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोंमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था । एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा । मांगमें सिंदूर, ललाटपर कुंकुम, मुंहमें पान, हाथमें चूड़ियां और साड़ीपर लैस, हंस-मुख चेहरा—इनमेंसे एक भी चिन्ह मैं

न देखू तो वासती देवीको किस तरह पहचानू ? जहा मैने अनुमान किया था कि वे होगी वहा जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। चेहरा तो पहचानमे आया। रुदन रोकना असभव हो गया। छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा।

उनके मुखपर सदा-शोभित हास्य आज कहा था ? मैने उन्हे सात्वना देने, रिझाने और बातचीत करानेकी अनेक कोशिशे की। बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली।

देवी जरा हँसी।

मुझे हिम्मत हुई और मै बोला।

'आप रो नही सकती। आप रोओगी तो सब लोग रोवेगे। मोना (बडी लडकी) को बडी मुश्किलसे चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लडकी) की हालत तो आप जानती ही है। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बडे प्रयाससे शात हुई है। आप दया रखिएगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।"

वीरागनाने दृढता-पूर्वक जवाब दिया

"मै नहीं रोऊगी। मुझे रोना आता ही नहीं।"

मै इसका मर्म समझा, मुझे सतोष हुआ।

रोनेसे दु खका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हलका नही करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे ?

अब मै कैसे कह सकता हू—"लो, चलो हम भाई-बहन पेट भर रो ले और दु ख कम कर ले ?"

हिंदू विधवा दु खकी प्रतिमा है। उसने ससारके दुखका भार अपने सिर ले लिया है। उसने दु खको सुख बना डाला है। दु खको धर्म बना डाला है।

वासती देवी सब तरहके भोजन करती थी। १९२० तकके समयमे

उनके यहा छप्पन भोग होते थे और सैकडो लोग भोजन करते थे। पान-के विना वे एक मिनिट नही रह सकती थी। पानकी डिबिया पास ही पड़ी रहती थी।

अव शृगार-भावका त्याग, पानका त्याग, मिष्ठानोका त्याग, मास-मत्स्यका त्याग, केवल पतिका ध्यान, परमात्माका ध्यान।

इस दु खको सहन करना धर्म है या अधर्म ? और धर्मोंमे तो ऐसा नही देखा जाता। हिंदू-धर्मशास्त्रियोने भूल तो न की हो ? वासती देवीको देखकर मुझे इसमें भूल नही दिखाई देती, वल्कि धर्मकी शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिंदू-धर्मका शृगार है। धर्मका भूषण वैराग्य है, वैभव नही। दुनिया भले ही और कुछ कहे तो कहती रहे।

परतु हिंदू शास्त्र किस वैधव्यकी स्तुति और स्वागत करता है ? १५ वर्षकी मुग्धाके वैधव्यका नही जो कि विवाहका अर्थ भी नही जानती। वाल-विधवाओके लिए वैधव्य धर्म नही, अधर्म है। वासती देवीको मदन खुद आकर ललचावे तो वह भस्म हो जाय। वासती देवीके शिवकी तरह तीसरी आख है। परतु पद्रह वर्षकी वालिका वैधव्यकी शोभाको क्या समझ सकती है ? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। वाल-विधवाओकी वृद्धिमें मुझे हिंदू-धर्मकी अवनति दिखाई देती है। वासती देवी-जैसीके वैधव्यमे मै शुद्धधर्मका पोषण देखता हू। वैधव्य सव तरह, सव जगह, सव समय, अनिवार्य सिद्धात नही है। वह उस स्त्रीके लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।

रिवाजके कुएमे तैरना अच्छा है। उसमे डूवना आत्महत्या है।

जो वात स्त्रीके सवधमें वही वात पुरुषके सवधमे होनी चाहिए। रामने यह कर दिखाया। सती सीताका त्याग भी वे सह सके। अपने ही किए त्यागसे खुद ही जले। जवसे सीता गई तवसे रामचद्रका तेज घट गया। सीताके देहका तो त्याग उन्होने किया पर उसे अपने हृदयकी स्वामिनी वना लिया। उस दिनसे उन्हे न तो शृगार भाया, न दूसरा

वैभव। कर्तव्य समझकर तटस्थताके साथ राज्यकार्य करते हुए शात रहे।

जिस बातको आज वासती देवी सह रही है, जिसमेसे वे अपने विलासको हटा सकती है, वे बाते जबतक पुरुष न करेगे तबतक हिंदू धर्म अधूरा है। 'एकको गुड और दूसरेको थूहर' यह उल्टा न्याय ईश्वरके दरबारमे नही हो सकता। परतु आज हिंदू पुरुषोने इस ईश्वरीय कानूनको उलट दिया है। स्त्रीके लिए वैधव्य कायम रक्खा है और अपने लिए श्मशान-भूमिमें ही दूसरे विवाहकी योजना करनेका अधिकार!

वासती देवीने अबतक किसीके देखते, आसूकी एक बूदतक नही गिराई है। फिर भी उनके चेहरेपर तेज तो आ ही नही रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हो। यह हालत देखकर मैने उनसे निवेदन किया कि थोडा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमें तो बैठी, पर बोलने क्यो लगी? मैने कितनी ही बातें चलाईं—वे सुनती रही। पर खुद उसमे बराय नाम शरीक हुईं। हवाखोरी की तो, पर पछताईं। सारी रात नीद न आई। "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है?" ऐसे विचारोमे रात गई। भोवल (उनका लडका) मुझे यह खबर दे गया। आज मेरा मौनवार है। मैने कागजपर लिखा है—"यह पागलपन हमे माताजीके सिरसे निकालना होगा। हमारे प्रियतमको प्रिय लगनेवाली बहुतेरी बाते हमे उसके वियोगके बाद करनी पडती है। माताजी विलासके लिए मोटरमे नही बैठी थी, केवल आरोग्यके लिए बैठी थी। उन्हे स्वच्छ हवाकी बहुत जरूरत थी। हमे उनका बल बढाकर उनके शरीरकी रक्षा करनी होगी। पिताजीके कामको चमकाने और बढानेके लिए हमे उनके शरीरकी आवश्यकता है। यह माताजीसे कहना।"

"माताजीने तो मुझसे कहा था कि यह बात ही आपसे न कही जाय।

पर मुझसे न रहा गया। अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटरमें बैठनेके लिए न कहें।"—भोवलने कहा।

बेचारा भोवल! किसीका लौटाया न लौटनेवाला लड़का आज बकरी जैसा बनकर बैठा है। उसका कल्याण हो!

पर इस साध्वी विधवाका क्या? वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कड़ाहमें भटकता था और मुझ-जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दुःखकी कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम संभालकर रखना! वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे।

वासंती देवीकी जय हो! (हिं० न०, २७२५)

: १६२ :

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेण्ट है, जो अंततोगत्वा दोनों जातियोंको जोड़ेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोंको नहीं जोड़ेगा, पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थीने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण-से-पाषाण हृदयोंको पिघलावेगी, और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर, किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैला गया है, कि गणेशशंकर विद्यार्थीके समान महान, आत्मत्यागी और नितांत वीर पुरुषका रक्त भी, आज तो इसे धो बहानेके लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्यमें ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानसे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें। मैं उनकी दुःखिनी विधवा और उनके बच्चोंके साथ अपनी

आतरिक समवेदना प्रकट नही करता, पर गणेशशकर विद्यार्थीकी योग्य पत्नी और सतानके नाते उन्हें बधाई देता हू। वह मरे नही है। आज वह तबसे कही अधिक सच्चे रूपमे जी रहे है, जब हम उन्हें भौतिक शरीरमे जीवित देखते थे और पहचानते न थे। (हिं० न०, ९ ४.३१)

... ...

तीन कार्यकर्त्ता—दो हिंदू और एक मुसलमान—दगा मिटानेके खयालसे गये और उसी कोशिशमे काम आये। मुझे उनकी मौतका दु ख नही होता। रुलाई नही आती। इसी तरह श्री गणेशशकर विद्यार्थीने कानपुरके दगेमे अपनी जान कुरबान की थी। दोस्तोने उनको रोका और कहा था, "दगेकी जगह न जाइए। वहा लोग पागल हो गये है। वे आपको मार डालेंगे।" लेकिन गणेशशकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नही थे। उन्हे यकीन था कि उनके जानेसे दगा जरूर मिटेगा। वे वहा पहुंचे और दगेके जोशमे पागल बने लोगोके हाथो मारे गये। उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे खुशी ही हुई थी। यह सब मैं आपको भड़कानेके लिए नही कहता। मैं तो आपको यह समझाना चाहता हू कि आप मरनेका पाठ सीख ले तो सब खैर-ही-खैर है। अगर गणेश-शकर विद्यार्थी, बसतराव और रज्जबअली-जैसे कई नौजवान निकल पडे तो दगे हमेशाके लिए मिट जाय। (ह० से०, १४.७.३६)

: १९३ :

विनोबा भावे

श्री विनोबा भावे कौन है ? मैंने उन्हे ही इस सत्याग्रहके लिए क्यो चुना ? और किसीको क्यो नही ? मेरे हिंदुस्तान लौटनेपर सन् १९१६

में उन्होंने कालिज छोड़ा था। वे संस्कृतके पंडित हैं। उन्होंने आश्रममें शुरूसे ही प्रवेश किया था। आश्रमके सबसे पहले सदस्योंमेंसे वे एक हैं। अपने संस्कृतके अध्ययनको आगे बढ़ानेके लिए वे एक वर्षकी छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्षके बाद ठीक उसी घड़ी, जबकि उन्होंने एक वर्ष पहले आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रममें फिर आ पहुंचे। मैं तो भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रममें वापस पहुंचना था। वे आश्रममें सब प्रकारकी सेवा-प्रवृत्तियों—रसोईसे लगाकर पाखाना सफाईतक—में हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभावसे ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समयका ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा वे कातनेमें ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलनामें रखे जा सकते हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कताईको सारे कार्यक्रमका केंद्र बनानेसे ही गावोंकी गरीबी दूर हो सकती है। स्वभावसे ही शिक्षक होनेके कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवीको दस्त-कारीके द्वारा बुनियादी तालीमकी योजनाका विकास करनेमें बहुत योग दिया है। श्री विनोबाने कताईको बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। वह बिलकुल मौलिक चीज है। उन्होंने हँसी उड़ानेवालोंको भी यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीममें बखूबी किया जा सकता है। तकली कातनेमें तो उन्होंने क्रांति ही ला दी है और उसके अंदर छिपी हुई तमाम शक्तियोंको खोज निकाला है। हिंदुस्तानमें हाथकताईमें इतनी संपूर्णता किसीने प्राप्त नहीं की जितनी कि उन्होंने की है।

उनके हृदयमें छुआछूतकी गंधतक नहीं है। साम्प्रदायिक एकतामें उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लामधर्मकी खूबियोंको समझनेके लिए उन्होंने एक वर्षतक कुरानशरीफका मूल अरबीमें अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने अरबी भी सीखी। अपने पड़ोसी मुसलमान

भाइयोसे अपना सजीव सपर्क बनाए रखनेके लिए उन्होने इसे आवश्यक समझा ।

उनके पास उनके शिष्यो और कार्यकर्ताओका एक ऐसा दल है जो उनके इशारेपर हर तरहका बलिदान करनेको तैयार है । एक युवकने अपना जीवन कोढियोकी सेवामे लगा दिया है । उसे इस कामके लिए तैयार करनेका श्रेय श्री विनोबाको ही है । औषधियोका कुछ भी ज्ञान न होनेपर भी अपने कार्यमे अटल श्रद्धा होनेके कारण उसने कुष्ठरोगकी चिकित्साको पूरी तरह समझ लिया है । उसने उनकी सेवाके लिए कई चिकित्साघर खुलवा दिए है । उसके परिश्रमसे सैकडो कोढी अच्छे हो गये है । हाल हीमे उसने कुष्ठ-रोगियोके इलाजके सबधमे एक पुस्तिका मराठीमे लिखी है ।

विनोबा कई वर्षोतक वर्धाके महिला-आश्रमके सचालक भी रहे है । दरिद्रनारायणकी सेवाका प्रेम उन्हे वर्धाके पासके एक गावमे खीच ले गया । अब तो वे वर्धासे पाच मील दूर पौनार नामक गावमें जा बसे है और वहासे उन्होने अपने तैयार किए हुए शिष्योके द्वारा गाववालोके साथ सपर्क स्थापित कर लिया है । वे मानते है कि हिंदुस्तानके लिए राजनैतिक स्वतत्रता आवश्यक है । वे इतिहासके निष्पक्ष विद्वान है । उनका विश्वास है कि गाववालोको रचनात्मक कार्यक्रमके बगैर सच्ची आजादी नही मिल सकती और रचनात्मक कार्यक्रमका केंद्र है खादी । उनका विश्वास है कि चरखा अहिंसाका बहुत ही उपयुक्त बाह्य चिह्न है । उनके जीवनका तो वह एक अग ही बन गया है । उन्होने पिछली सत्याग्रहकी लडाइयोमे सक्रिय भाग लिया था । वे राजनीतिके मचपर कभी लोगोके सामने आये ही नही । कई साथियोकी तरह उनका यह विश्वास है कि सविनय आज्ञा-भगके अनुसधानमे शात रचनात्मक काम कही ज्यादा प्रभावकारी होता है, इसकी अपेक्षा कि जहा आगे ही राजनैतिक भाषणोका अखड प्रवाह चल रहा है वहा जाकर और भाषण दिए जाये । उनका पूर्ण विश्वास है कि

चरखेमे हार्दिक श्रद्धा रखे विना और रचनात्मक कार्यमे सक्रिय भाग लिए बगैर अहिंसक प्रतिकार सभव नही।

श्री विनोबा युद्धमात्रके विरोधी है। परन्तु वे अपनी अतरात्माकी तरह उन दूसरोकी अतरात्माका भी उतना ही आदर करते है जो युद्धमात्रके विरोधी तो नही है, परतु जिनकी अतरात्मा इस वर्त्तमान युद्धमे शरीक होनेकी अनुमति नही देती। अगरचे श्री विनोबा दोनो दलोके प्रतिनिधिके तौरपर है यह हो सकता है कि सिर्फ हालके इस युद्धमे विरोध करनेवाले दलका खास एक और प्रतिनिधि चुननेकी मुझे आवश्यकता अनुभव हो। (ह० से०)

विनोबा लिख सकते है मगर वह कभी न लिखेगे। शास्त्र-रचनाके लिए समय निकालना उनकी दृष्टिमे अधर्म होगा। मै भी उसे अधर्म समझूगा। ससारको शास्त्रकी भूख नही। सच्चे कर्मकी है और हमेशा रहेगी। जो इस भूखको मिटा सकता है, वह शास्त्र-रचनामे न पडे। (ह० से०, २ ३ ४६)

: १६४ :

रशब्रुक विलियम्स

एक पत्र-लेखकने 'वावे क्रानिकल' पत्रसे काट कर यह कतरन भेजी है

"मि० रशब्रुक विलियम्सने 'मांचेस्टर गार्डिअन' में एक पत्र लिखकर यह जाहिर किया है कि गये वर्षके आखिरी महीनोके दरमियान काग्रेसके दक्षिण पक्षीय नेता एक ऐसा निश्चित रुख अख्तियार करते जा रहे थे कि जिससे प्रातीय सरकारोसे मिलते-जुलते किसी-न-किसी समझौतेपर केन्द्रीय

सरकारके सबधमें भी पहुचनेकी बात सरकारको सुझा सकते थे । इसलिए काग्रेसको अपनी ताकतका हिसाब लगाना पड़ा । लीगके प्रतापसे, मुसलमानोका समर्थन तो उन्हें प्राप्त ही नही और बगैर ऐसे समर्थनके, जबतक कुछ नए मित्र न मिल जाय, तबतक केन्द्रीय सरकार बनाना नामुमकिन है । इसी वजहसे देशी राज्योपर सारा ध्यान केंद्रित करना काग्रेसके लिए जरूरी हो गया, जिससे देशी राज्योसे ऐसे अनुकूल प्रतिनिधि प्राप्त किए जा सकें, जोकि काग्रेसके कार्यक्रमसे सहानुभूति रखते हो ।"

मि० रशब्रुक विलियम्स भारतके पुराने 'शत्रु' है । असहयोगके दिनोमे हिंदुस्तानकी सरकारी वार्षिक पुस्तक इडियन ईयर बुकका उन्होने सपादन किया था, जिसमे अपनी दिमागी उपजकी उन्होने कितनी ही बाते लिखी थी और जिन हकीकतोका उल्लेख वे छोड नही सके, उनको उन्होने अपने रगमें रग दिया था । अखबारोमे प्रकाशित रिपोर्ट अगर सही है तो कहना चाहिए कि उन्होने फिर अपना वही पुराना भेस 'माचेस्टर गार्डिअन' मे दिखाया है । (ह० से०, ११ ३ ३९)

: १९५ :

स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण और विवेकानदके बारेमे रोलाकी पुस्तके ध्यान और दिलचस्पीके साथ पढ ली है । रामकृष्णके बारेमे हमेशा पूज्यभाव तो रहा ही था । उनके बारेमे पढा तो थोडा ही था, मगर कई चीजे भक्तोसे सुनी थी । उनपरसे भाव पैदा हुआ था । यह नही कह सकता कि रोलाकी पुस्तके पढनेसे उसमे वृद्धि हुई है । असलमे रोलाकी दोनो पुस्तके पश्चिमके लिए लिखी गई है । यह तो नही कहूगा कि हमे उनसे कुछ नही मिल सकता ।

मगर मुझे बहुत कम मिला है। जिन बातोंका मुझपर प्रभाव पड़ा था, वे भी रोलाकी पुस्तकोंमें हैं। उसके सिवा जो नई बातें हैं उनसे प्रभावमें कोई वृद्धि नहीं हुई। मुझे यह नहीं लगा कि जितने भक्त रामकृष्ण थे, उतने विवेकानंद भी थे। विवेकानंदका प्रेम विस्तृत था, वे भावनासे भरपूर थे और भावनामें बह भी जाते थे। यह भावना उनके ज्ञानके लिए हिरण्मय पात्र थी। धर्म और राजनीतिमें उन्होंने जो भेद किया था, वह ठीक नहीं था। मगर इतने महान व्यक्तिकी आलोचना कैसी? और आलोचना करने बैठ जाए तो कैसी भी आलोचना की जा सकती है। हमारा धर्म तो यह है कि ऐसे व्यक्तियोंसे जो कुछ लिया जा सके वह ले लें। तुलसीदासका जड-चेतनवाला दोहा मेरे जीवनमें अच्छी तरह रम गया है, इसलिए आलोचना करना मुझे पसंद ही नहीं आता। मगर मैं जानता हूं कि मेरे मनमें भी कोई आलोचना रह गई हो तो उसे जाननेकी तुम्हें इच्छा हो सकती है। इसीलिए मैंने इतना लिख दिया है। मेरे मनमें शंका नहीं है कि विवेकानंद महान सेवक थे। यह हमने प्रत्यक्ष देख लिया कि जिसे उन्होंने सत्य मान लिया, उसके लिए अपना शरीर गला डाला। सन् १९०१ में जब मैं बेलूर मठ देखने गया था, तब विवेकानंदके भी दर्शन करनेकी बड़ी इच्छा थी। मगर मठमें रहनेवाले स्वामीने बताया कि वे तो बीमार हैं। शहरमें हैं और उनसे कोई मिल नहीं सकता। इसलिए निराशा हुई थी। मुझमें जो पूज्यभाव रहा है, उसके कारण मैं बहुत-सी आपत्तियोंसे बच गया हूं। उस समय कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था, जिससे मैं भावनाके साथ मिलने दौड़ न जाता था। और ज्यादातर जगहोंपर मैं भी, कलकत्तेके लंबे रास्तोंमें, पैदल ही जाता था। इसमें भक्तिभाव था, रुपया बचानेकी वृत्ति न थी। वैसे मेरे स्वभावमें यह चीज भी हमेशा रही तो है ही।
(म० डा०, १७ ३२)

: १६६ :

वेरस्टेन्ट

'प्रिटोरिया न्यूज' के सपादक वेरस्टेन्ट भी खुले दिलसे भारतीयोकी सहायता करते थे। एक वार प्रिटोरियाके टाउन हालमे वहाके मेयरकी अध्यक्षतामे गोरोकी एक विराट सभा हुई थी। उसका हेतु था एशियानिवासियोकी बुराई और खूनी कानूनकी हिमायत करना। अकेले वेरस्टेन्टने इसका विरोध किया। अध्यक्षने उन्हे बैठ जानेकी आज्ञा दी, पर उन्होने बैठनेसे साफ इन्कार कर दिया। इस पर गोरोने उनके बदनपर हाथ डालनेकी धमकी भी दी, तथापि वे टाउन-हालमे उसी प्रकार नरसिहकी तरह गरजते रहे। आखिर सभाको अपना प्रस्ताव बिना पास किए ही उठना पडा। (द० अ० स० १९२५)

: १६७ :

अल्बर्ट वेस्ट

सबसे पहले अल्बर्ट वेस्टका नाम उल्लेखनीय है। कोमके साथ तो उनका सबध युद्धके पहले हीसे हो गया, पर मुझसे इससे भी पहले उनका परिचय हुआ था। जब मैने जोहासबर्गमे अपना दफ्तर खोला उस समय मेरे साथमे बालबच्चे नही थे। पाठकोको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोका तार मिलते ही मै एकदम रवाना हो गया था और सो भी एक सालमे लौट आनेके विचारसे। जोहासबर्गमे एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमे मै नियमसे सुबह-शाम भोजनके लिए जाता था।

वेस्ट भी वहीं आते थे। वहीं मेरा उनका परिचय हुआ। वह एक दूसरे गोरेके भागीदार बनकर एक छापाखाना चला रहे थे। सन् १९०४मे जोहासवर्गके भारतीयोमें भीषण प्लेगका प्रकोप हुआ था। मै रोगियोकी सेवा-शुश्रूषामें लगा और उसके कारण उस भोजन-गृहका मेरा जाना अनियमित हो गया। जब कभी जाता तो इस खयालसे कि मेरे ससर्गका भय दूसरे गोरेको न हो, मै सबसे पहले ही भोजन कर लेता था। जब लगातार दो दिन तक उन्होंने मुझे नहीं देखा तो वह घबड़ा गये। तीसरे दिन सुवह जब मै हाथ-मुह धो रहा था वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही मैने वेस्टका प्रसन्न चेहरा देखा।

उन्होने हँसकर कहा—"आपको देखते ही मेरे दिलको तसल्ली हुई। आपको भोजन-गृहमें न देखकर मै घवरा गया था। अगर मुझसे आपकी कोई सहायता हो सकती हो तो जरूर कहे।"

मैने हँसते हुए उत्तर दिया—"रोगियो की शुश्रूषा करोगे?"

"क्यो नही? जरूर, मै तैयार हू।"

इस विनोदके वीच मैने कुछ सोच लिया। मैने कहा—"आपसे मै दूसरे प्रकारके उत्तरकी अपेक्षा ही नही करता था। पर इस कामके लिए तो मेरे पास वहुतसे सहायक है। आपसे तो मै इससे भी कठिन काम लेना चाहता हू। मदनजीत यहीपर रुका हुआ है। 'इडियन ओपीनियन' और प्रेस निराधार है। मदनजीतको मैने प्लेगके कामके लिए रख छोडा है। आप अगर डर्वन जाकर उस कामको सभाल ले तो सचमुच यह बडी भारी सहायता होगी। पर मै आपको अधिक नही दे सकूगा। सिर्फ १० पौड मासिक वेतन। हा, अगर प्रेससे कुछ लाभ हो तो उसमे आपका आधा हिस्सा रहेगा।"

"काम अवश्य जरा कठिन है। मुझे अपने भागीदारकी आज्ञा लेनी होगी। कुछ उगाही भी बाकी है। पर कोई चिंताकी वात नही। आज शामतककी मोहलत आप मुझे दे सकते है?"

"अवश्य, हम लोग छ बजे शामको पार्कमे मिलेगे।"

"जरूर, मै भी आ पहुचूगा।"

छ बजे शामको हम मिले। भागीदारकी आज्ञा भी मिल गई। उगाही कामको मेरे जिम्मे करके दूसरे दिन शामकी ट्रेनमे मि० वेस्ट रवाना हो गये। एक महीनेके अदर उनकी यह रिपोर्ट आई—

"इस छापेखानेमे नफा तो नामको भी नही है। नुकसान-ही-नुकसान है। उगाही बहुत बाकी है; लेकिन हिसाबका कोई ठिकाना नही है। ग्राहकोके नाम भी पूरे नही लिखे गये है। मै यह शिकायत करनेके खयालसे नही लिखता। आप विश्वास रखिए, मै लाभके लालचसे यहा नही आया हूं। अत इस कामको भी नही छोडूगा। पर मै आपको यह तो सूचित किये ही देता हू कि बहुत दिनतक आपको क्षति-पूर्ति करनी होगी।"

ग्राहकोको बढाने तथा मेरे साथ कुछ बातचीत करनेके लिए मदनजीत जोहासबर्ग आये थे। मै हर महीने थोडे-बहुत पैसे देकर घाटेकी पूर्ति किया ही करता था। इसलिए मै निश्चय रूपसे यह जानना चाहता हू कि और कितना गहरा इस काममे मुझे उतरना होगा ? पाठकोसे मै यह तो पहले ही कह चुका हू कि मदनजीतको छापेखानेका कोई अनुभव नही था। इसलिए मै इस बातके विचार ही मे था कि किसी अनुभवी आदमीको उनके साथमे रख दिया जाय तो बडा अच्छा हो। यह विचार मै कर रहा था कि इधर प्लेगका प्रकोप शुरू हो गया। इस काममे तो मदनजीत बडे कुशल और निर्भय आदमी थे, इसलिए मैने उनको यही रख लिया। इस-लिए वेस्टके स्वाभाविक प्रश्नका उपयोग मैने कर लिया और उन्हे समझा दिया कि प्लेगके कारण ही नही, बल्कि स्थायी रूपसे उन्हे यहा रखना होगा। इसलिए उन्होने उपर्युक्त रिपोर्ट भेजी। पाठक जानते ही है कि इसलिए छापेखानेको तथा पत्रको भी फिनिक्स ले जाना पडा। वेस्टके १० पौड मासिक वेतनके बदले फिनिक्समे तीन पौंड हो गये। पर इन परिवर्तनोमे वेस्टकी पूरी सम्मति थी। मुझे तो एक दिन भी ऐसा अनुभव

नही हुआ कि उन्हे कभी यह विचार ही पैदा हुआ हो कि मेरी आजीविका कैसे चलेगी। धर्मका अभ्यास न होनेपर भी वह एक अत्यत धार्मिक मनुष्य है। वह वडे ही स्वतत्र स्वभावके मनुष्य है। जो वस्तु उन्हे जैसी दीखे उसे वैसी ही कहनेवाले है। कालेको कृष्णवर्णी नही, काला ही कहेगे। उनकी रहन-सहन वडी सीधी-सादी थी। हमारे परिचयके समय वह ब्रह्मचारी थे। मै जानता हू कि वह ब्रह्मचर्यका पालन भी करते थे। कितने ही साल वाद वह इग्लैड गये और अपने माता-पिताका क्रिया-कर्म करके अपनी शादी भी कर लाए। मेरी सलाहसे अपने साथमे स्त्री, सास और कुवारी वहनको भी ले आये। वे सब फिनिक्समे ही वडी सादगीके साथ रहते थे और हर प्रकारसे भारतीयोमे मिल जाते थे। मिस वेस्ट अब ३५ वर्षकी हुई होगी। पर अब भी कुमारी है। वह अपना जीवन वडी पवित्रताके साथ व्यतीत कर रही है। उन्होने कोई कम सेवा नही की। फिनिक्समे रहनेवाले शिष्योको रखना उन्हे अग्रेजी पढाना, सार्वजनिक पाकशालामे रसोई करना, मकानोको साफ रखना, कितावे सभालना, छापाखानेमे टाइप जमाना (कम्पोज करना) तथा छापेखानेका अन्य काम करना आदि सब काम वे करती थी। इन कामोमेसे कभी एक कामके लिए भी इस महिलाने आनाकानी नही की। आजकल वह फिनिक्समे नही है, पर इसका कारण यह है कि मेरे भारतवर्ष लौट आनेपर उनका हल्का-सा भार भी छापाखाना नही उठा सकता था। वेस्टकी सासकी अवस्था इस समय ८० वर्षसे भी अधिककी होगी। वह सिलाईका काम वहुत अच्छा जानती है। और ऐसे काममे इतनी वयोवृद्धा महिला भी पूरी सहायता करती थी। फिनिक्समे उन्हे सब दादी (ग्रैनी) कहते थे और उनका वडा सम्मान करते थे। मिसेज वेस्टके विषयमे तो कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नही है। जब फिनिक्समेसे बहुतसे आदमी जेल चले गये तब वेस्ट कुटुवने मगनलाल गाधीके साथ मिलकर फिनिक्सका सब कामकाज सभाल लिया था। पत्र और छापेखानेका वहुत-सा काम वेस्ट करते थे। मेरी तथा

अन्य लोगोकी अनुपस्थितिमे गोखलेको तार वगैरह भेजना होता तो वेस्ट ही भेजते। अतमे वेस्ट भी पकडे गये (पर वे फौरन ही छोड दिये गये थे) तब गोखले घबराये और एन्ड्रयूज तथा पियर्सनको उन्होने भेजा। (द० अ० स०, १९२५)

•

वेस्टका जन्म विलायतके लाउथ नामक गावमे एक किसान कुटुबमे हुआ था। पाठशालामे उन्होने बहुत मामूली शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने ही परिश्रमसे अनुभवकी पाठशालामे पढकर और तालीम पाकर होशियार हुए थे। मेरी दृष्टिमे वह एक शुद्ध, सयमी, ईश्वर-भीरु साहसी और परोपकारी अग्रेज थे। (आ० क०, १९२७)

अब, वेस्टका विवाह भी यही क्यो न मना लू ? उस समय ब्रह्मचर्य विषयक मेरे विचार परिपक्व नही हुए थे। इसलिए कुवारे मित्रोका विवाह करा देना उन दिनो मेरा एक पेशा हो बैठा था। वेस्ट जब अपनी जन्मभूमिमे माता-पितासे मिलनेके लिए गये तो मैने उन्हे सलाह दी थी कि जहा तक हो सके विवाह करके ही लौटना, क्योकि फिनिक्स हम सबका घर हो गया था और हम सब किसान बन बैठे थे, इसलिए विवाह या वश-वृद्धि हमारे लिए भयका विषय नही था।

वेस्ट लेस्टरकी एक सुदरी विवाह लाए। इस कुमारिकाके परिवारके लोग लेस्टरके जूतेके एक बडे कारखानेमे काम करते थे। श्रीमती वेस्ट भी कुछ समयतक उस जूतेके कारखानेमे काम कर चुकी थी। उसे मैने सुदरी कहा है, क्योकि मै उसके गुणोका पुजारी हू और सच्चा सौदर्य तो मनुष्यका गुण ही होता है। वेस्ट अपनी सासको भी साथ लाये थे। यह भली बुढिया अभी जिंदा है। अपनी उद्यमशीलता और हँसमुख स्वभावसे वह हम सबको शर्माया करती थी। (आ० क०, १९२७)

: १९८ :

स्वामी श्रद्धानन्द

पहाड़-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मै गया तब मुझे बहुत शाति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शातिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। (आ० क०)

स्वामी श्रद्धानदजी पर भी लोग विश्वास नही करते है। मै जानता हू कि उनकी तकरीरे ऐसी होती है, जिनपर कई बार बहुतोको गुस्सा आ जाता है। परतु वे भी हिंदू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते है, पर दुर्भाग्यसे वे यह मानते है कि हरएक मुसलमान आर्यसमाजी बनाया जा सकता है, जैसे कि शायद बहुतेरे मुसलमान मानते है कि हरएक गैर मुस्लिम किसी-न-किसी दिन इस्लामको कबूल कर लेगा। श्रद्धानदजी निडर और बहादुर आदमी है। अकेले हाथो उन्होने गगाजीके किनारेपर नगईके जगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपमे बदल दिया। उन्हे अपने तथा अपने कामपर श्रद्धा है, पर वे जल्दबाज है और थोडी-सी बातपर जोशमे आ जाते है। पर इन तमाम दोषोके होते हुए मै उन्हे ऐसा नही मानता जो समझाए न समझे। स्वामीजीको तो मै उन्ही दिनोसे चाहने लगा हू जब मै दक्षिण अफ्रीकामे था। हा, अब मै उन्हे ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हू, पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नही हो पाया। मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहला रहा है। (हिं० न०, १९२४)

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा। कोई छ महीने हुए स्वामी श्रद्धानदजी सत्याग्रहाश्रममे आ कर दो-एक दिन ठहरे थे। बातचीतमे उन्होने

मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमे उन्हे मार डालनेकी धमकी दी जाती थी। किस सुधारकके सिरपर बोली नही बोली गई है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पानेमे अचभेकी कोई बात नही थी। उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नही है।

स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर नही। जिसमे उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे। उन विश्वासोके लिए उन्हे कष्ट झेलने पडे। वे वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होने कभी सिर नही झुकाया। वे योद्धा थे और योद्धा रोग-शैय्या पर मरना नही चाहता। वह तो युद्धभूमिका मरण चाहता है।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानदजी बहुत बीमार पडे। डाक्टर असारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने अनुरागसे उनसे सभव था, डाक्टर असारी उनकी सेवा करते थे। इस महीनेके शुरूमे मेरे पूछनेपर उनके पुत्र प्रो० इद्रने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे है और मेरा प्रेम और दुआ मागते है। मै उनके बिना मागे ही उनपर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था।

भगवानको उन्हे शहीदकी मौत देनी थी। इसलिए जब वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गये, जो इस्लामपर धार्मिक चर्चाके नामपर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटानेको पानी मागनेके बहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्मसिहको पानी लेनेको बाहर हटा दिया और जिसने नौकरकी गैरहाजिरीमे बिस्तर पर पडे हुए रोगीकी छातीमे दो प्राणघातक चोटे की। स्वामीजीके अतिम शब्दोकी हमे खबर नही। लेकिन अगर मै उन्हे कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिलकुल सदेह नही है कि उन्होने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नही जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिए गीताकी भाषामे वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए यानी सत्यके लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नही है। वह तो सबसे बडी मित्र है। वह हमे कष्टोसे मुक्ति देती है। हमारी इच्छाके विरुद्ध भी हमे छुटकारा देती है। हमे बराबर ही नई आशाए, नए रूप देती है। वह नीदके समान मीठी है, किंतु तो भी किसी मित्रके मरनेपर शोक करनेकी चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नही रहता। अतएव इस मृत्युपर मै शोक नही कर सकता। स्वामीजी और उनके सबधी ईर्ष्याके पात्र है, क्योकि श्रद्धानदजी मर जानेपर भी अभी जीते है। उससे भी अधिक सच्चे रूपमे वे जीते है, जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीरको लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्युपर जिस कुलमे उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वे थे, वे सभी धन्यताके पात्र है। वे वीर पुरुष थे। उन्होने वीरगति पाई। (हिं० न०, २३ १२ २६)

मेरे पास अखबारवाला आया था और कुछ जाहिर करनेका आग्रह उसने दो बार किया। मैने उसे कह दिया कि मुझसे कुछ कहना पार लगे मेरी ऐसी हालत नही है। श्रीमती नायडूने भी मुझे यही कहा कि कुछ सदेशा दो। उनसे भी मैने इन्कार कर दिया। अब फिर मुझे यही आज्ञा होती है। इसलिए अपने उद्‌गार प्रकट करनेकी कोशिश करता हू, किंतु मेरी ऐसी दशा नही है कि मै कुछ कह सकू। हा, तत्काल मेरे मनपर कैसा असर हुआ यह मै कह सकता हू सही। लालाजीका तार मेरे पास पहुचते ही तुरत मैने मालवीयजी आदिको खबर भेजी और लालाजी और स्वामी-जीके सुपुत्र इद्रको तार भेजा। इस तारमे दुख या शोक प्रकट न करके मैने तो जनाया कि यह सामान्य मृत्यु नही है। इस मृत्युपर मै रो नही सकता। अगर्चे कि यह मृत्यु असह्य है तो भी मेरा दिल शोक करनेको नही कहता। वह तो कहता है कि यह मृत्यु हम सबको मिले तो क्या ही अच्छा हो ?

स्वामी श्रद्धानदकी दृष्टिसे इस प्रसगको धर्म प्रसग कहेगे। वे बीमार थे। मुझे तो कुछ खबर न थी, किंतु एक मित्रने खबर दी कि स्वामीजी भाग्यसे ही बच जाय तो बच जाय। पीछेसे मेरे तारके उत्तरमे उनके लडकेका तार मिला कि उन्हे धीरे-धीरे आराम हो रहा है। यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर असारी बहुत अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा कर रहे है। इस प्रकारकी गभीर बीमारीने वे बिछौनेपर पडे थे और उस बिछौनेपर ही उनके प्राण लिए गये। मरना तो सबको है, किंतु यो मरना किस कामका! सारे हिंदुस्तानमे और पृथ्वी पर जहा-जहा हिंदुस्तानी लोग होगे, वहा-वहा स्वामीजीके, स्वाभाविक बीमारी से, मरनेसे जो असर होता उसकी अपेक्षा इस अपूर्व मरणसे अजीब ही असर होगा। मैने भाई इद्रको समवेदनाका एक भी तार या पत्र नही लिखा है। उन्हे और कुछ दूसरा कह ही नही सकता। इतना ही कह सकता हू कि तुम्हारे पिताको जो मृत्यु मिली है वह धन्य मृत्यु है।

किंतु यह सब बात तो मैने स्वामीजीकी दृष्टिसे, मेरी अपनी दृष्टिसे की है। मै अनेक बार कह चुका हू कि मेरे लेखे हिंदू और मुसलमान दोनो ही एक है। मै जन्मसे हिंदू हू और हिंदू धर्ममे मुझे शाति मिलती है। जब-जब मुझे अशाति हुई, हिंदू धर्ममेसे ही मुझे शाति मिली है। मैने दूसरे धर्मोका भी निरीक्षण किया है और इसमे चाहे जितनी कमिया और त्रुटिया होवे तो भी मेरे लिए यही धर्म उत्तम है। मुझे ऐसा लगता है और इसीसे मै अपनेको सनातनी हिंदू मानता हू। कितने सनातनियोको मेरे इस दावेसे दुःख होता है कि विलायतसे आकर यह सुधरा हुआ आदमी हिंदू कैसा! किंतु मेरा हिंदू होनेका दावा इससे कुछ कम नही होता और यह धर्म मुझे कहता है कि मै सबके साथ मित्रतासे रहू। इसीसे मुझे मुसलमानोकी दृष्टि भी देखनी है।

मुसलमानकी दृष्टिसे जब इस बातका विचार करता हू तो मुझे दूसरी ही बात मालूम पडती है। यह काड मुसलमानके हाथ बन पडा धर्म-

चर्चाके बहाने घरमे प्रवेश करके उसने यह कृत्य किया। नौकरने तो कहा, "स्वामीजी बीमार है। आज नही मिल सकते।" दरवाजेपर हुज्जत हुई। स्वामीजीने सुनकर कहा, "अच्छा है, आ जाने दो।" और स्वामीजीमे उससे बात करनेकी शक्ति न रहनेपर भी उन्होने बाते की। बात करनेकी तो उनमे ताकत ही नही थी। स्वामीजीको तो उसे समझाकर विदा कर देनेको था, इसलिए बुलाकर कहा, "भाई, अच्छे हो जानेपर तुम्हे जितनी बहस करनी हो कर लेना, किंतु आज तो बिछौनेपर पडा हू।" इस पर उसने पानी मागा। धर्मसिहको स्वामीजीने आज्ञा दी, "इनको पानी पिला दो।" आज्ञाकारी नौकर पानी लेने जाता है तबतक तो यहा उसने रिवाल्वर निकाल ली। एकसे सतोष न हुआ तो दो गोली मारी। स्वामीजी-ने उसी समय प्राण खोए। धर्मसिह आवाज सुनकर अपने मालिकको बचाने दौडा, किंतु बचावे कौन? ईश्वरको स्वामीजीके शरीरकी रक्षा नही करनी थी। धर्मसिहके ऊपर भी वार हुआ। उसे चोट लगी। वह अस्पतालमे है। मारनेवाला अब्दुल रशीद हिरासतमे है। ऐसे सयोगोके बीच किए गये इस खूनसे मुसलमानोके लिए हिंदुओमे कैसा भाव पैदा होगा, इसका मुझे बहुत दु ख है और इसमे भी शका नही है कि हिंदू जनताका मुसलमानोके प्रति उलटा ख्याल होगा, क्योकि आज दोनो जातियोमे प्रेम नही है, विश्वास नही है।

हमारे लिए यह एक अच्छा शिक्षा-पाठ बनना चाहिए कि स्वामीजीका खून अब्दुल रशीदके हाथो हो। इससे हम एक-दूसरेको समझ ले।

श्रद्धानदजी और मेरे बीच कैसा सबध था, वह तो आज मै यहा नही कहूगा। मेरे सामने वे अपने दिलकी बाते कहा करते थे। कोई छ महीने हुए जब वे आश्रममे आये थे तब कहते थे, "मेरे पास धमकीके कितने पत्र आते है। लोग धमकी देते है कि तुम्हारी जान ले ली जायगी, पर मुझे उनकी कुछ परवा नही।" वह तो बहादुर आदमी थे। उनसे बढकर बहादुर आदमी मैने ससारमे नही देखा। मरनेका उन्हे डर नही था, क्योकि

वे सच्चे आस्तिक, ईश्वरवादी आदमी थे। इसीसे उन्होंने कहा मेरी जान अगर ले ही ली जाय, तो उसमे होना ही क्या है। (हिं० न०, ६ १ २७)

यह उचित ही है कि हिंदू महासभाकी ओरसे स्वामी श्रद्धानदके स्मरणके लिए धनकी सहायता मागी जाय। स्वामीजी सन्यास-धारणके बाद जिन कामोके लिए जीते थे, उनके लिए चदा इकट्ठा करनेका हिंदू महासभाने निश्चय किया है। इस निश्चयके लिए मै उसे साधुवाद देता हू। वे काम है, अस्पृश्यता-निवारण, शुद्धि और सगठन। ५ लाखकी अपील की गई है। 'अस्पृश्यता' के लिए और शुद्धि और सगठनके लिए भी उतनेकी ही। जिनका शुद्धिमे विश्वास है उन्हे इस अपीलपर सहायता देनेका पूरा अधिकार है।

मेरे लिए अछूतोद्धारके ही कोषकी कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिंदू-धर्मके सुधार और इसकी सच्ची रक्षाके लिए अछूतोद्धार सबसे बडी वस्तु है। इसमे सब कुछ शामिल है और इसलिए हिंदूधर्मका यह सबसे काला दाग है। अगर यह मिट जाय तो शुद्धि और सगठनसे जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमे इससे अपने आपही मिल जायगा। और मै यह इसलिए नही कहता कि अछूतोंकी, जिन्हे हरएक हिंदूको गले लगाना चाहिए, बहुत बडी सख्या है, कितु इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाजको तोड डालनेके ज्ञान और उससे होनेवाली शुद्धिसे इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामीजी उस सुधारके जीवित मूर्त्ति थे, क्योकि वे इसमे आधासाझा सुधार नही चाहते थे। वे समझौता नही कर सकते, दब नही सकते थे। अगर उनकी चलती तो वे बात-की-बातमे हिंदू धर्मसे 'अस्पृश्यता' को निकाल बाहर करते। वे हरएक मदिरको, हरएक कुएको, सबकी बराबरीके हकके साथ अछूतोके लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानदजी-

के लिए मै इससे अच्छा कोई स्मारक नही सोच सकता कि हरएक हिंदू आजसे अपने दिलोसे 'अस्पृश्यता' की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगोके समान वर्ताव करे। उस आदमीकी पैसाकी सहायता तो, मेरी समझमे, अस्पृश्यताको हिंदूधर्मसे सदाके लिए निकाल डालनेकी उसके दृढ निश्चयका चिह्न भर होगी।

स्वामीजीको सामुदायिक और धार्मिक रूपसे सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए जनवरी, सोमवारका दिन, निश्चय किया गया है। मुझे आशा है कि हर शहर-गावमे यह होगा। मगर इस प्रदर्शनका असल मतलब ही गायब हो जायगा अगर उसमे भाग लेनेवाले अपनेमेंसे उसीके साथ 'अस्पृश्यता' की अपवित्रताको दूर न करे। हरएक अछूतको उसमे शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उसी दिन अछूतोके लिए सभी मदिर खोल दिए जाते। अगर सगठित रूपसे उद्योग किया जाय तो उस दिन सूर्यास्तके पहले ही कोष भरा जा सकता है।

स्वामीजीसे मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुशीरामके नामसे प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रासे हुआ। उस समय वे कागडी गुरुकुलके प्रधान थे जो कि उनका सबसे पहला और बडा शिक्षा-क्षेत्रका काम है। वे सिर्फ पश्चिमी शिक्षापद्धतिसे ही सतुष्ट न थे। लडकोमे वे वेद-शिक्षाका प्रचार करना चाहते थे और वे पढाते थे हिंदीके जरिए, अग्रेजीके नही। शिक्षा-कालमे वे उन्हे ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोके लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमे चदा देनेके लिए लडकोको उन्होने उत्साहित किया था। वे चाहते थे कि लडके खुद कुली बन कर, मजदूरी कर के चदा दे, क्योकि वह युद्ध क्या कुलियोका नही था? लडकोने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमाकर मेरे पास भेजी। इस विषयमे स्वामीजीने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिंदीमे था। उन्होने मुझे 'मेरे प्रिय भाई' कहकर लिखा था।

इसने मुझे महात्मा मुशीरामका प्रिय बना दिया। इससे पहले हम दोनो कभी मिले नही थे।

हम लोगोके बीचके सूत्र ऐन्ड्रयूज थे। उनकी इच्छा थी कि जब कभी मै देश लौटू, उनके तीनो मित्रो, कवि ठाकुर, प्रिन्सीपल रुद्र और महात्मा मुशीराम से परिचय प्राप्त करू।

वह पत्र पानेके बाद से हम दोनो एक ही सेनाके सैनिक बन गये। उनके प्रिय गुरुकुलमे हम १९१५मे मिले और उसके बाद से हरएक मुलाकातमे हम दोनो परस्पर निकट आते गये और एक दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारत, सस्कृत और हिदीके प्रति उनका प्रेम असीम था। बेशक, असहयोगके पैदा होनेके बहुत पहले से ही वे असहयोगी थे। स्वराजके लिए वे अधीर थे। अस्पृश्यतासे वे नफरत करते थे और अस्पृश्योकी स्थिति ऊची करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता पर कोई बधन लगाना वे नही सह सकते थे।

जब 'रौलट ऐक्ट' का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सबसे पहले शुरू करनेवालोमे से वे थे। उन्होने मुझे बहुत ही प्रेमसे भरा हुआ एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगाम और अमृतसर काडके बाद सत्याग्रहको स्थगित किया जाना वे नही समझ सके। उस समयसे हमारे बीच मतभेद शुरू हुए, किंतु उससे हम लोगोके भाई-भाईके सबधमे कभी कोई अतर नही पडा। उस मतभेदसे मुझपर उनका बाल-सुलभ स्वभाव प्रकट हुआ। परिणामका विचार किए बिना ही, उन्हे जैसा मालूम था मुझसे सच्ची बात कह दी। वे अतिसाहसिक थे। समय बीतनेके साथ-साथ हम दोनोमे जो स्वभावका अतर था, उसे मै देखता गया, किंतु उससे तो उनकी आत्माकी शुद्धता ही सिद्ध हुई। सबको सुनाकर विचार करना कुछ पाप नही है। यह तो एक गुण है। यह सत्यप्रियताका सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामीजीने अपने विचार गुप्त रक्खे ही नही।

बारडोलीके निश्चयसे उनका दिल टूट गया। मुझसे वे निराश हो

गए। उनका प्रकट विरोध बहुत जबर्दस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रोंमें और भी विरोध होता था, किंतु हमारे मतभेद पर जितना वे जोर देते थे, प्रेमपर भी उतना ही। प्रेमका विश्वास केवल पत्रोंमें ही दिला देनेसे वे सतुष्ट न थे। मौका मिलनेपर उन्होंने मुझे ढूढ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी समझनेकी कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूढनेका असल कारण यह था कि अगर जरूरत हो तो मुझे वे विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाईके समान मुझपर उनकी प्रीति जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उसके सस्थापक पर मेरे मतोसे और उनके नामका उल्लेख करनेसे उन्हे बहुत कष्ट हुआ, परन्तु इस धक्केको सह लेनेकी शक्ति हमारी मित्रतामे थी। वे यह नही समझ सकते थे कि महर्षिके विषयमे मेरे मतो और अपने व्यक्तिगत शत्रुओंके प्रति ऋषिकी असीम क्षमाका एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षिमे उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओ पर कोई भी टीका वे सह नही सकते थे।

शुद्धि आन्दोलनके लिए मुसलमान पत्रोमे उनकी बडी कडी आलोचनाए और निन्दा की गई है। मै स्वय उनके दृष्टिबिन्दुको स्वीकार नही कर सका था। अब भी मै उसे नही मानता। किन्तु मेरी नजरमे, अपने दृष्टिबिन्दुसे वे, अपनी स्थितिका पूरा बचाव करते थे, जबतक शुद्धि और तबलीग मर्यादाके भीतर रहे, तबतक दोनो ही बराबर छूटके अधिकारी है।

.अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनो शुद्धिका आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामीजीकी मृत्युसे भी लाभ उठाया जा सकता था।

एक महान सुधारकके जीवनके स्मरणोको मै सत्याग्रहाश्रममे, उनके कुछ महीनो पहलेके आखिरी आगमनकी बातके बिना खत्म नही कर सकता। मुसलमान मित्रोको मै विश्वास दिलाता हू कि वे मुसलमानोके दुश्मन

नही थे। कुछ मुसलमानोका विश्वास वे वेशक नही करते थे, किन्तु उन लोगोसे उनका कुछ द्वेष नही था। उनका ख्याल था कि हिन्दू दबा दिये गए है और उन्हे वहादुर वनकर अपनी और अपनी इज्जतकी रक्षा करने योग्य बनना चाहिए। इस बारेमे उन्होने मुझसे कहा था कि "मेरे विषयमे बडी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातोमे मै बिलकुल निर्दोष हू। मेरे पास धमकीके कितने—एक पत्र आया करते है।" मित्रगण उन्हे अकेले चलनेसे मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया करता था, "ईश्वरकी रक्षाके सिवाय और किस रक्षाका मै भरोसा करू ? उसकी आज्ञाके बिना एक तिनका भी नही हिलता। मै जानता हू कि जबतक वह मुझसे इस देहके द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बाका नही हो सकता।"

आश्रममे रहते समय उन्होने आश्रम पाठशालाके लडके-लड़कियोसे बाते की। उनका कहना था कि हिन्दू-धर्मकी सबसे वडी रक्षा आत्मशुद्धिसे ही होगी, भीतरसे ही होगी। चारित्र्य और शरीरके गठनके लिए, ब्रह्मचर्यपर वे बहुत जोर देते थे। (हि० न०, ६.१ २७)

• ••

स्वामी श्रद्धानन्दके स्वर्गवासके विषयमें महासभाके सामने निम्नलिखित आशयका प्रस्ताव पेश किया गया था

"स्वामी श्रद्धानदजीका नामर्दी और दगाबाजीसे खून किया गया है, इसके लिए महासभा अपना तीव्र तिरस्कार प्रकट करती है और स्वदेश तथा स्वधर्मकी सेवामें अपना जीवन और शक्ति अर्पण करनेवाले, अत्यजो और वैसे ही पतितो और निर्बलोकी सहायताको निडर होकर दौडनेवाले इस वीर और महानुभावकी करुणाजनक मृत्युसे उसकी सम्मतिमें देशकी न पूरी होनेवाली हानि हुई है।"

यह प्रस्ताव पेश करनेका भार पहले मौलाना मुहम्मदअलीपर दिया गया था, किंतु अतमें सभापति महोदयने गाधीजीसे वह प्रस्ताव पेश करनेको

कहा। गांधीजीको लंबा भाषण न करना था, किंतु अनायास ही, अनिच्छासे, अथवा ईश्वरेच्छासे कहिए उन्हें लंबा भाषण करना पड़ा। उस भाषणमें सारी सभाके हृदयका तार मानो झनझना रहा था। भाषणमेंके बहुतसे उद्‌गार तो महासमितिके भाषणवाले ही थे। किंतु एक-दो बातें ऐसी थीं जो उस भाषणमें अप्रकट थीं, इस भाषण में उनपर विस्तारसे विवेचन किया गया। महासमितिमें उन्होंने कहा था—"इस खूनके लिए शोक करना भला नहीं मालूम होता। ऐसा खून तो हरएक वीर पुरुष चाहता है।" इस वाक्यको जरा सुधार करके उन्होंने कहा

वीर पुरुषको जब ऐसी मृत्यु मिलती है तो वह उसे मित्रके समान गले लगाता है। किन्तु इससे कोई यह नहीं चाहता कि उसका कोई खून करें। कोई भी अपने साथ अन्याय करे, गुनहगार बने, कोई भी मनुष्य दुष्कृत्य करे, ऐसी इच्छा ही करना अनुचित है।

स्वामीजी वीरोंके अग्रणी थे। अपनी वीरतासे उन्होंने भारतको आश्चर्य-चकित कर दिया था। इसका साक्षी मैं हूं कि देशके लिए अपना शरीर कुर्बान करनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। वे अनाथ-बंधु थे। अछूतोंके लिए उन्होंने जितना किया उससे अधिक हिन्दुस्तानमें दूसरे किसीने नहीं किया है। उनकी दूसरी सेवाओंका वर्णन मैं यहां करना नहीं चाहता। स्वामीजीके जैसे वीर, देशभक्त, ईश्वरके अनन्यभक्त और सेवकका खून देशके लिए जैसा लाभदायक है, वैसा ही, उसे दुःख होना भी स्वाभाविक है, क्योंकि हम लोग अपूर्ण मनुष्य हैं।

हमारे यहां दो जातियां हैं। बदनसीबीसे वे एक-दूसरेको जहरीली नजरोंसे देखती हैं। एक-दूसरेको दुश्मन मानती हैं। इसी कारण यह हत्या हो सकी है। मुसलमान मानते हैं कि स्वामीजी, लालाजी और मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन हैं। उधर हिन्दू समझते हैं कि सर अबदुर्रहीम तथा दूसरे मुसलमान हिन्दुओंके शत्रु हैं। दोनोंके ख्याल निहायत खोटे

है। स्वामीजी इस्लामके दुश्मन न थे, मालवीयजी और लालाजी नही है। लालाजी और मालवीयजीको अपने विचार प्रकट करनेका पूरा अधिकार है और उनके विचार जिन्हे गलत मालूम हो, उन लोगोको उन्हे गाली देनेका अधिकार नही है। हिन्दुस्तानके नम्र सेवककी हैसियतसे मेरी यह सम्मति है। जब कभी हम अखबार देखे, भाग्यसे ही ऐसा कोई मुसलमान अखबार मिलता हो जिसमे इन देश-सेवकोको गाली न दी गई हो। उन्होने क्या गुनाह किया है ? वे जिस रीतिसे काम करना चाहते है, उसमे हम भले ही शामिल न हो, किन्तु मेरा मत है कि मालवीय-जी अपनी सेवाओसे भारत-भूषण बने हुए है। (तालिया) तालियोसे आप देश-सेवा नही कर सकते। मै आज जो कुछ बोल रहा हू वह ईश्वर-को सामने रखकर। मेरे हृदयके भीतर आग जल रही है। उसकी दो-चार चिनगारिया ही मै तुम्हे दे रहा हू, जिसमे हम उनकी आत्मबलिसे पूरा लाभ उठावे और उनके पवित्र रुधिरसे अपना दिल शुद्ध करे। सच्ची दृष्टिसे मै आज वही शुद्धि चाहता हू जो श्रद्धानन्दजी चाहते थे। माल-वीयजीको मैने भारत-भूषण कहा है, किन्तु लालाजी भी जो मानते है उसे ही कहनेवाले है। उनकी भी देश-सेवा कुछ कम नही है। सर अबदुर्रहीम मानते है कि मुसलमानोको बगालमे अधिक नौकरिया मिलनी चाहिए। उनकी राय हमे भले ही न रुचे मगर इसके लिए हम क्या उन्हे गाली देगे ? मुहम्मदअली कहते है कि गाधीके लिए मुझे मान है, आदर है मगर जो मुसलमान कुरानशरीफपर ईमान लाता है, उसका ईमान गाधीके ईमानसे कही अच्छा है। इसपर हम बुरा क्यो माने ? स्वामीजी आत्म-बलि-दानसे दूसरा ही धर्म बतला गये है। उन्होने एक बार मुझसे पूछा था कि आर्यसमाज उदार कैसे नही ? आप क्या जानते है कि महर्षि दया-नन्दने अपनेको जहर देनेवालेके साथ क्या किया था। मैने जवाब दिया कि मै महर्षिकी क्षमाशीलताको जानता हू। मगर स्वामीजी तो महर्षिके भक्त थे। उन्होने सारी कथा कह सुनाई। महर्षि क्षमाशील थे, क्योकि

उनके आगे युधिष्ठिरका उज्ज्वल उदाहरण था। वे उपनिषदोंके भक्त थे। श्रद्धानन्दजी भी वैसे ही क्षमाशील थे। शुद्धिपर बातें करते समय उन्होंने एक बार कहा था कि "मैं मुसलमानोंको हिन्दुओंका दुश्मन नहीं मानता।" 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तका उपदेश करनेवाले और गीताके भक्त श्रद्धानन्दजी किसीको दुश्मन क्योंकर मान सकते थे? उन्होंने कहा, "मैं मुसलमानको भाई मानता हूं, मित्र मानता हूं, किन्तु हिन्दूको भी भाई मानता हूं और उसकी सेवा करना चाहता हूं।"

मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि कोई मुसलमान मेरे मुंहपर थूके तो भी मैं उसे भाई और मित्र समझूं। मैं बतलाता हूं कि इन तीनोंमेंसे कोई मुसलमानोंका दुश्मन नहीं है। वैसे ही सर अब्दुर्रहीम या मियां फजली-हुसैन हिन्दुओंके शत्रु नहीं। मियां फजलीहुसैनने मुझसे कहा था कि मैं कांग्रेसवाला हूं और मुझे हिन्दुओंसे मुहब्बत है, मगर इससे मुसलमानों-की सेवा क्यों न करूं? वे कहते हैं कि आधी नौकरियां मुसलमानोंको मिलनी चाहिए। इसपर तुम कहो कि एक भी नहीं देनी चाहिए। मगर इसपरसे हिन्दुओंका दुश्मन उन्हें क्योंकर माना जायगा? हम अपनी कल्पनाशक्तिका दुरुपयोग करके काल्पनिक दुश्मन बना लेते हैं। मैं फिर कहता हूं कि सर अब्दुर्रहीम, जिन्ना, अलीभाई हिन्दुओंके शत्रु नहीं और मालवीयजी तथा लालाजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। मुसलमान भी आज इकरार करते हैं कि श्रद्धानन्दजीमें बुराई न थी, वे मैले दिलके आदमी न थे, उनके वे दुश्मन न थे।

रशीदको मैंने भाई क्यों कहा है, यह तुम अब समझ सके होगे। मैं तो उसे गुनहगार भी नहीं मानता। गुनहगार तो मैं हूं, लालाजी हैं, मालवीयजी हैं, अलीभाई हैं। गीतामें कहा है 'समत्वं योग उच्यते'। इन्सान इन्सानके बीचमें फर्क न करो। ब्राह्मण और चांडाल, हाथी और गायके बीच अन्तर न रक्खो। इससे मैंने कहा कि रशीद मेरा भाई है और वह गुनहगार भी नहीं है।

आज श्रद्धानन्दजीके लिए आसू बहानेका समय नही है। आज तो क्षत्रियता बतानेका अवसर है। क्षत्रियता क्षत्रियका खास गुण भले ही न हो मगर ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी उसे दिखा सकते है। खासकर आजका 'स्वराज युग' हम सबके लिए क्षत्रियताका युग है। इसलिए रोनेकी बात छोड दे और श्रद्धानन्दजीके बलिदानसे, रशीदके किये खूनसे जो पाठ मिले उसे हृदयमे धरे। (हि० न०, १३ १ २७)

• • •

स्वामीजीका देहात हुआ ही नही है। देहात तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देहको मिटानेकी कोशिश करेगे, अगर्चे कि सच्ची बात तो यह है कि हमारी कोशिशसे भी उनकी देहका नाश होनेको नही है। जबतक यह गुरुकुल कायम है, जबतक एक भी स्नातक गुरुकुलकी सेवा करता है, तबतक स्वामीजी जीते ही है। स्वामीजीका शरीर तो किसी दिन गिरनेको था ही। पर स्वामीजीका सबसे बडा काम गुरुकुल है, उन्होने अपनी सारी शक्ति इसमे लगा दी थी, इसे पैदा करनेमे उन्होने अधिक-से-अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्यकी प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसीकी शक्ति नही कि वह गुरुकुलको मिटा दे।

पर गुरुकुलको चिरस्थायी रखनेके लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवनमे देखी। वीरताका लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्यका सयम है। वीरता और वीर्यकी रक्षासे तुम देश और धर्मकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकोगे। मै जानता हू कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहाके बहुतसे विद्यार्थियोके पत्र मेरे पास पडे हुए है। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते है। स्तुति तो नाकाम चीज है उसका असर मेरे ऊपर नही होता। परन्तु जब विद्यार्थी चिढकर गाली देते है तो मुझे चिंता होती है क्योकि क्रोधसे वीर्यका नाश होता है। स्वामीजीके सामने मैने ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्या रक्खी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्रीका मलिन स्पर्श न करनेमे ही ब्रह्मचर्य नही होता। हा, ब्रह्मचर्य

वहासे शुरू जरूर होना है। पर क्षमाकी पराकाष्ठा ब्रह्मचर्यका लक्षण है। पिछले साल स्वामीजी जब टकारियासे पीछे लौटते समय मुझसे मिलने गये थे तो उन्होने मुझसे कहा कि 'हिंदूधर्मकी रक्षा नीतिमे ही सभव है।' अगर तुम वैदिक आचार और विचारकी रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रक्खो कि तुम्हें पग-पगपर रुपये मिल जायगे, मगर ब्रह्मचर्यका, नीतिका पाया यहापर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टीमें मिल जायगा। इस भूमिके तो आत्मा नही है। इसको आत्मा तुम्ही हो। अगर तुम आत्म-बल खो दोगे और 'उदरनिमित्त बहुकृतवेष' जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादीकी बात करने नही आया हू। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरताका—क्षमाका है। उसे भूल जाओगे तो स्वामीजीका नाम कायम नही रहेगा। रशीदकी गोलीसे स्वामीजीका क्या हुआ? वे तो उस गोलीसे ही अमर हुए।

स्वामीजीका दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शब्दोमे मालवीयजीने खादीकी वकालत की, मैं नही कर सकता। पर इतना जरूर कहूगा कि अगर हम हमेशा गरीबो और अछूतोकी फिक्र रक्खेगे तो खादी से अलग नही रह सकते।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओकी रक्षा करे, गुरुकुलका कल्याण करे और स्वामीजीका हरएक काम परमात्मा चालू रखे। (हि० न०, ३१ ३ २८)

•

अगर कोई मुझे 'महात्मा' के नामसे पुकारते भी थे तो मैं यही सोच लेता था कि महात्मा मुशीरामजीके बदले भूलसे मुझे किसीने पुकार लिया होगा। उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीकामे ही सुन ली थी। हिंदुस्तानसे धन्यवाद और सहानुभूतिका सदेश भेजनेवालोमे एक वे भी थे और मैं

जानता था कि हिंदुस्तानकी जनताने उन्हे उनकी देश-सेवाओके लिए महात्माकी उपाधि दी थी। (२१ १ ४२)

: १६६ :

कुमारी श्लेजीन

अब एक पवित्र बालाका परिचय देता हू। गोखलेने उसे जो प्रमाणपत्र दिया उसको पाठकोके सामने रक्खे बिना मै नही रह सकता। इस बालाका नाम मिस श्लेजीन है। मनुष्योको पहचाननेकी गोखलेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआबेसे जजीबार तक बातचीत करनेके लिए हमे अच्छा शात समय मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय तथा अग्रेज नेताओ-से उनका अच्छा परिचय हो गया था। इनमेसे मुख्य पात्रोका आपने सूक्ष्म चरित्र-चित्रण कर बताया और मुझे बराबर याद है कि उन्होने मिस श्लेजीनको भारतीय तथा गोरोमे भी सबसे पहला स्थान दिया।

"इसका जैसा निर्मल अत करण, कामके वक्त एकाग्रता, दृढता मैने बहुत थोड़े लोगोमें देखी है। और बिना किसी आशा-प्रलोभनके इसे भारतीय आदोलनमें इस तरह सर्वार्पण करते हुए देखकर तो मै आश्चर्य-चकित हो गया हू। इन सभी गुणोके साथ-साथ उसकी होशियारी और फुर्तीलापन उसे इस युद्धमें एक अमूल्य सेविका बना रहा है। मेरे कहनेकी आवश्यकता तो नही, पर फिर भी कहे देता हूं कि तुम इसे मत छोड़ना।"

मेरे पास एक स्काचकुमारी शार्टहैंड और टाइपिस्टका काम करती थी। उसकी भी प्रामाणिकता और नीतिशीलता बेहद थी। मुझे अपने जीवनमे यो तो कई कटु अनुभव हुए है, पर इतने सुदर चारित्र्यवान् अग्रेज तथा भारतीयोसे मेरा सबध हुआ है कि मै तो उसे सदा अपना अहोभाग्य

ही मानता आया हूं। इस बीच कुमारी मिस डिकके विवाहका अवसर आया और उसका वियोग हुआ। मि० कैलनबेक मिस श्लेजीनको लाए और मुझे कहने लगे,

"इस बालाको इसकी माने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, पर इसमें मजाककी आदत और स्वाधीनता हदसे ज्यादा है। शायद इसे उद्धत भी कह सकते हैं। आप सभाल सकें तो इसे आप अपने पास रक्खें। मैं इसे आपके पास तनखाहके लिए नहीं रखता।"

मैं तो अच्छे शार्टहैंड टाइपिस्टको २० पौंड मासिक वेतन तक देनेके लिए तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यता और शक्तिका मुझे कुछ पता नहीं था। मि० कैलनबेकने कहा

"अभी तो इसे महीनेके छ पौंड दीजिएगा।"

मैंने फौरन मजूर कर लिया। शीघ्र ही मुझे उसके विनोदी स्वभावका अनुभव हुआ। पर एक महीनेके अदर तो मुझे उसने अपने वशमें कर लिया। रात और दिन जिस समय चाहो काम देती। उसके लिए कोई बात असभव या मुश्किल तो थी ही नहीं। इस समय उसकी उम्र १६ वर्षकी थी। मवक्किल तथा सत्याग्रहियोको भी उसने अपनी निस्पृहता तथा सेवाभावसे वशमे कर लिया था। यह कुमारी आफिस और युद्धकी एक चौकीदार बन गई। किसी भी कार्यकी नीतिके विषयमे उसके हृदयमे शका उत्पन्न होते ही वह स्वतत्रता-पूर्वक मुझसे वाद-विवाद करती और जबतक मैं उसको नीतिके विषयमे उसे कायल न कर देता तबतक उसे कभी सन्तोष नही होता था। जब हम सब लोग गिरफ्तार हो गए और अगुआओ मे से लगभग अकेले काछलिया बाहर रह गए तब इस कुमारिकाने लाखोका हिसाब सभाला था। भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योसे काम लिया था। काछलिया भी उसीका आश्रय लेते, उसीकी सलाह लेते थे। हम लोगोके जेलमे चले जानेपर डोकने 'इडियन ओपोनियन' की जिम्मेदारी अपने हाथोमे ली, पर वह वृद्ध पुरुष भी 'इडियन ओपीनियन'के

लिए लिखे हुए लेख मिस श्लेजीनसे पहले पास करा लेते । और मुझसे उन्होंने कहा,

"अगर मिस श्लेजीन नहीं होती तो मैं कह नहीं सकता कि अपने कामसे मुझे खुद भी संतोष होता या नही। उसकी सहायता और सूचनाओंकी सच्ची कीमत आकना बहुत मुश्किल है।"

और कई बार उसकी सूचनाए उचित ही होगी, यह समझकर मै उन्हे मजूर भी कर लिया करता। पठान, पटेल, गिरमिटिया, आदि सब जातिके और सभी उम्रके भारतीयोसे वह सदा घिरी हुई रहती थी। वे उसकी सलाह लेते और वह जैसा कहती वैसा ही करते। दक्षिण अफ्रीकामे अक्सर गोरे लोग भारतीयोके साथ एक ही डिब्बेमे नही बैठते। ट्रान्सवालमे तो उनको एक जगह बैठनेकी मनाही भी करते है। वहा तो यह भी कानून था कि सत्याग्रही तीसरे ही दर्जेमे सफर करे। इतना होते हुए भी मिस श्लेजीन जानबूझकर भारतीयोके डब्बेमे बैठती और गार्डके साथ झगडा भी करती। मुझे भय था और श्लेजीनको भी इस बातकी शका थी कि वह कही गिरफ्तार न हो जाय। पर यद्यपि सरकारको उसकी शक्ति, उसका युद्ध-विपयक ज्ञान और सत्याग्रहियोके हृदयपर उसने जो अधिकार प्राप्त कर लिया था उसका पता था, तथापि उसने मिस श्लेजीनको गिरफ्तार नही किया। और इसमे उसने सचमुच बुद्धि और विवेकसे ही काम लिया। मिस श्लेजीनने कभी अपने छ के सवा छ पौड होनेकी न तो इच्छा ही की और न कुछ कहा ही। उनकी कितनी ही आवश्यकताओका जब मुझे पता लगा तब मैंने उनके दस पौड कर दिए। उन्होने बडी हिचकिचाहटके साथ उसको स्वीकार किया, पर उससे आगे बढानेसे तो उन्होने साफ इन्कार कर दिया। उन्होने कहा :

"इससे अधिककी मुझे आवश्यकता ही नहीं और यदि इतनेपर भी ले लू तो जिस उद्देश्यसे मै आपके पास आई हू वही व्यर्थ हो जाय।"

इस उत्तरके आगे मै चुप हो गया। पाठक शायद यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे होगे कि मिस श्लेजीनने कहा तक शिक्षा पाई थी ? वे केप यूनीवर्सिटीकी इन्टरमीजिएट परीक्षामे उत्तीर्ण हो चुकी थी। शार्टहैड वगैरामें पहले दर्जेके प्रमाणपत्र प्राप्त किए थे। युद्धमे मुक्त होनेपर वे उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस समय ट्रान्सवालकी किसी कन्या पाठशालामे प्रधानाध्यापिका है। (द० अ० स० १९२५)

यह बहन आज ट्रासवालमे किसी हाईस्कूलमे शिक्षिका-का काम करती है। जब मेरे पास यह आई थी तब उसकी उम्र १७ वर्षकी होगी। उसकी कितनी ही विचित्रताओके आगे मै और मि० कैलेनबेक हार खा जाते। वह नौकरी करने नही आई थी। उसे तो अनुभव प्राप्त करना था। उसके रगो-रेशेमे कही रग-द्वेषका नाम न था। न उसे किसीकी परवाह ही थी। वह किसीका अपमान करनेमे भी नही हिचकती थी। अपने मनमे जिसके सबधमे जो विचार आते हो वह कह डालनेमे जरा सकोच न करती थी। अपने इस स्वभावके कारण वह कई बार मुझे कठिनाइयोमे डाल देती थी, परतु उसका हृदय शुद्ध था, इससे कठिनाइया दूर भी हो जाती थी। उसका अग्रेजी ज्ञान मैने अपनेसे हमेशा अच्छा माना था, फिर उसकी वफादारीपर भी मेरा पूर्ण विश्वास था। इससे उसके टाइप किए हुए कितने ही पत्रोपर बिना दोहराए दस्तखत कर दिया करता था।

उसके त्याग-भावकी सीमा न थी। बहुत समय तक तो उसने मुझसे सिर्फ ६ पौड महीना ही लिया और अतमे जाकर १० पौडसे अधिक लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। यदि मै कहता कि ज्यादा ले लो तो मुझे डाट देती और कहती

"मै यहा वेतन लेने नहीं आई हू। मुझे तो आपके आदर्श प्रिय है। इस कारण मै आपके साथ रह रही हू।"

एक बार आवश्यकता पडनेपर मुझसे उसने ४० पौड उधार लिए थे और पिछले साल सारी रकम उसने मुझे लौटा दी।

त्याग-भाव उसका जैसा तीव्र था वैसी ही उसकी हिम्मत भी जबरदस्त थी। मुझे स्फटिककी तरह पवित्र और वीरतामे क्षत्रियको भी लज्जित करनेवाली जिन महिलाओसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमे मै इस बालिकाकी गिनती करता हू। आज तो वह प्रौढ कुमारिका है। उसकी वर्तमान मानसिक स्थितिसे मै परिचित नही हू, परतु इस बालिकाका अनुभव मेरे लिए सदा एक पुण्य-स्मरण रहेगा और यदि मै उसके सबधमे अपना अनुभव न प्रकाशित करू तो मै सत्यका द्रोही बनूगा।

काम करनेमे वह न दिन देखती थी, न रात। रातमे जब भी कभी हो, अकेली चली जाती और यदि मै किसीको साथ भेजना चाहता तो लाल-पीली आखे दिखाती। हजारो जवामर्द भारतीय उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उसकी बात मानते थे। जब हम सब जेलमे थे, जबकि जिम्मेदार आदमी शायद ही कोई बाहर रहा था, तब उस अकेलीने सारी लडाईका काम सम्हाल लिया था। लाखोका हिसाब उसके हाथमे, सारा पत्र-व्यवहार उसके हाथमे और 'इडियन ओपीनियन' भी उसी हाथमे—ऐसी स्थिति आ पहुची थी, पर वह थकना नही जानती थी।

मिस श्लेज़ीनके बारेमे लिखते हुए मै थक नही सकता, पर यहा तो सिर्फ गोखलेका प्रमाण-पत्र देकर समाप्त करता हू। गोखलेने मेरे तमाम साथियोसे परिचय कर लिया और इस परिचयसे उन्हे बहुतोसे बहुत सतोष हुआ था। उन्हे सबके चरित्रके बारेमे अदाज लगानेका शौक था। मेरे तमाम भारतीय और यूरोपीय साथियोमे उन्होने मिस श्लेज़ीनको पहला नबर दिया था

"इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता मैने बहुत कम लोगोमें देखी है। मेरी नजरमें तो मिस श्लेज़ीनका नबर तुम्हारे सब साथियोमें पहला है।" (आ० क०, १९२७)

: २०० :

आईनर

मेरा तो खयाल है कि संसारमे ऐसा एक भी स्थान और जाति नही, जिसमे यथा समय और संस्कृति मिलनेपर बढिया-से-बढिया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हो। दक्षिण अफ्रीकामे सभी स्थानोपर मैं इसके उदाहरण सौभाग्यवश देख चुका हू। पर केपकालोनी मे मुझे इसके उदाहरण अधिक संख्यामे मिले। उनमें सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात् है श्री मेरीमैन। इन्हे लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते। केपकालोनी मे आप अध्यक्ष भी रह चुके है। यदि श्री०मेरीमैनके जैसे श्रेष्ठ नही तो उनसे दूसरे नबरमे वहाके आईनर और मोल्टोनोके परिवार है। कानून के विख्यात हिमायती श्री, डब्ल्यू० पी, आईनर इसी आईनर-परिवार-मे हो गये है। केपकालोनीके प्रधान मण्डलमें भी वे रह चुके है। श्री मेरीमैन और ये दोनो परिवार हमेशा हबशियोका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोपर हमला होता तब-तब उसके लिए वे झगडते। और यद्यपि वे सब भारतीयो और हबशी लोगोको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेमधारा भारतीयोकी ओर भी अवश्य बहती। उनकी दलील यह थी कि हबशी लोग गोरोके पहलेसे यहा रह रहे है और उनकी यह मातृभूमि है। इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोसे नही छीना जा सकता। किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाए तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नही कहा जा सकता। पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोकी ओर ही झुकता। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमे केपटाउन हालमे जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री आईनर ही थे। श्रीमेरीमैन ने भी उनसे बडे प्रेम और विनय-

पूर्वक बातचीत की और भारतीयोंके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया। केपटाउनके समाचार-पत्रोमे भी पक्षपातकी मात्रा इधर-उधर समाचार पत्रोकी अपेक्षा सदा कम रहती। (द० अ० स० १६२५)

: २०१ :

ओलिव श्राईनर

दूसरी महिला है ओलिव श्राईनर। दक्षिण अफ्रीकाके विख्यात श्राईनर-कुटुबमे उनका जन्म हुआ था। वे बडी विदुषी थी। श्राईनर नाम इतना विख्यात है कि जब उनकी शादी हुई तब उनके पतिको श्राईनर नाम ग्रहण करना पडा, जिससे ओलिवका श्राईनर कुटुबके साथ सबध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोसे लुप्त न हो जाय। यह कोई उनका वृथाभिमान नही था। मेरा विश्वास है कि उन महिलाके साथ मेरा अच्छा परिचय था। उनकी सादगी और नम्रता उनकी विद्वत्ताके समान ही उनका आभूषण थी। कभी एक दिन भी उनके दिमागमे यह खयाल नही आया कि उनके हबशी नौकर और स्वय उनके बीच कोई अतर है। जहा-जहा अग्रेजी भाषा बोली जाती है, तहा-तहा उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढी जाती है। वह गद्य है, पर काव्यकी पक्तिमे रखने योग्य है। और भी उन्होने बहुत-कुछ लिखा है। इतनी विदुषी, इतनी बडी लेखिका होनेपर भी अपने घरमे रसोई करना, घर साफ-सुथरा रखना तथा बर्तन आदि साफ करना आदि कामोसे न तो वह कभी शर्माती और न कभी परहेज करती थी। उनका यह खयाल था कि वह उपयोगी मेहनत उनकी लेखन-शक्ति को मद करनेके बदले उत्तेजित ही करती थी और उनके प्रभावसे भाषामे एक प्रकार की मर्यादा और व्यवस्थितता आ जाती थी। इस महिला ने भी

दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमें उनका जो कुछ भी वजन था, उसका उपयोग भारतीयोके पक्षमे किया था। (द० अ० स०)

ओलिव श्राईनर दक्षिण अफ्रीकामे वडी लोकप्रिय महिला है। जहा-जहा तक अग्रेजी भापा वोली जाती है वहा-वहा तक उनका नाम विख्यात है। मनुष्यमात्रपर उनका असीम प्रेम था। जव देखिए तव यही मालूम होता कि उनकी आखोसे अविरल प्रेमकी धारा वह रही है। इसी देवीने 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक लिखी है। 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नाम-से उनकी कीर्ति चारो ओर तभीसे है। उनका स्वभाव इतना सरस और सीधा-सादा था कि इतने वडे खान्दानमे पैदा होकर और इतनी वडी विदुषी होनेपर भी घरपर वे अपने वर्तन खुद ही साफ करती। (द० अ०स०)

: २०२ :

सुल्तान शहरियार

शहरियार साधारण आदमी नही है। वह काफी वडा आदमी है। लेकिन उसकी भी नजर आप लोगोपर यानी हिंदुस्तानपर ही है (प्रा० प्र०, ३ ५ ४७)

: २०३ :

जॉर्ज बर्नार्ड शा

बर्नार्ड शा अग्रेजोको ऊचा समझते हैं। अग्रेज समझते है कि उनके-जैसा खूबसूरत कौन है। वे बहुत अच्छा मजाक करते हैं। कहते है कि अग्रेज कुछ गलती नही करते। वे धर्मके लिए ही सब-कुछ करते है। वे कहते हैं कि अग्रेज धर्मके लिए लडाई करता है। लूट करता है तो भी वह धर्मके नामपर, क्योकि किसीके पास अधिक पैसा क्यो रहे। हमे गुलाम बनाता है तो भी धर्मके नामपर—अच्छा बनानेके लिए। राजाका खून करता है तो वह भी धर्मके लिए अर्थात् जनमतके लिए। वे सब काम धर्मके नामपर करते है। (प्रा० प्र०, ८-७-४७)

: २०४ :

श्रीनिवास शास्त्री

मेरे लिए वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री सदृश सच्चे आदमी बहुत कम है, पर उनके आचरणोसे मुझे विस्मय होता है। उनका विश्वास है कि मैं भारतवर्षको अधकार-पूर्ण गढेमे लिए चला जा रहा हू, पर इससे मेरे प्रति उनका अनुराग कम नही हो गया होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि इस असहयोग आदोलनने हजारो व्यक्तियोको यह बात सुझा दी होगी कि हम लोग व्यक्ति-विशेषकी अप्रतिष्ठा और अनादर न करके भी उसके आचरण, कार्यवाही और कार्यप्रणालीकी आलोचना और विरोध कर

सकते हैं। मनुष्य सदा अपूर्ण होता है, इससे हमे दूसरोकी ओर सदा नर्म रहना चाहिए और जहातक हो एकाएक किसी तरहका दोषारोपण नही करना चाहिए। (य० इ०, २५ ५ २१)

• •   • •   • •

दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयोको यह सुनकर बडी तसल्ली होगी कि माननीय शास्त्रीने पहला भारतीय राजदूत बनकर अफ्रीकामे रहना स्वीकार कर लिया है, बशर्ते कि सरकार वह स्थान ग्रहण करनेके प्रस्तावको आखिरी बार उनके सामने रक्खे। भारत सेवक-समिति और शास्त्रीजीने यह बडा ही त्याग किया है, जो वे इस निर्णयपर पहुचे है। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि यदि यह प्रस्ताव नही किया जाता तो वे भारतमे अपना काम छोडकर इस जिम्मेदारीको अपने सिरपर लेनेके जरा भी इच्छुक नही थे। परतु जब उनसे साग्रह यह अनुरोध किया गया कि वे ही एक ऐसे आदमी हैं, जो उस समझौतेके अनुसार कार्य शुरू कर सकते है, जिसके स्वीकृत करानेमे उनका बहुत भारी हाथ रहा है, तो उन्हे इस प्रार्थना और आग्रहको मजूर करना ही पडा। दक्षिण अफ्रीकासे समय-समयपर जो तार भेजे गये थे उनसे हमे पता चलता है कि वहाके अग्रेज भी इस बातके लिए कितने उत्सुक थे कि शास्त्रीजी ही इस सम्माननीय पदको ग्रहण करे। शास्त्रीजीकी वक्तृत्व-शक्ति, निस्पृहता, मधुर विवेकशीलता और असीम सचाईने यूनियन सरकार और वहाके यूरोपीय लोगोके हृदयमे उनके लिए चाह और आदर उत्पन्न कर दिया, जब वे हबीबुल्ला शिष्ट मडलके साथ कुछ दिनके लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे। मै खुद जानता हू कि हमारे दक्षिण अफ्रीका-निवासी भाई इस बातके लिए कैसे असीम चितातुर थे कि किस प्रकार शास्त्रीजी ही, वहा भारतके पहले राजदूत बनकर जाय। और श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्रीजीके लिए भी तो जिन्हे परमात्माने ऐसे उदार हृदयसे भूषित किया है, ऐसे सर्वसम्मत अनुरोधको अस्वीकार करना असभव था। अब यह प्राय निश्चित है कि शीघ्र ही

उनकी बाकायदा नियुक्ति होकर, उसकी खबर प्रकाशित कर दी जायगी।

इन पहले राजदूतका काम भी उनके लिए निश्चित कर दिया जायगा। नि सदेह, यूनियन सरकार और हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय भाई भी भारतके इस पहले राजदूतसे बडी-बडी आशाए तो करते ही होगे। चूकि शास्त्रीजी स्वय भारतीय और एक विख्यात पुरुष है, नि सदेह यूनियन सरकार जरूर यह सोचती होगी कि जहा तक भारतीयोसे सबध है, उन्हे समझा-बुझाकर शास्त्रीजी सरकारके प्रस्तावो आदिका काम सरल कर देगे। दूसरे शब्दोमे यो कहिए कि यूनियन सरकार उनसे आशा करती है कि शास्त्रीजी उसकी बातोको भारतीय समाज तथा भारत सरकारके सामने सहानुभूति-पूर्वक रक्खेगे। इधर भारतीय समाज भी आशा करता है कि शास्त्रीजी इस बातका जरूर आग्रह करेगे कि समझौतेका सम्मानयुक्त, बल्कि उदारता-पूर्वक पालन हो। दो प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारोको सतुष्ट करना यो कठिन तो है ही, पर दक्षिण अफ्रीकामे, जहा कि जातियो और दलोके स्वार्थोमे आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध है, यह काम कही अधिक मुश्किल है। किंतु मै जानता हू कि अगर इस सूक्ष्म तराजूको अपने हाथमे कोई उठा सकता है और दक्षिण अफ्रीकासे सबध रखनेवाले सभी दलोको सतुष्ट कर सकता है तो अकेले शास्त्रीजी ही एक ऐसे आदमी है। मेरा खयाल है कि यूनियन सरकारके मत्री यह तो अपेक्षा नही रखते होगे कि भारतीय समाजको उसके न्याय्य स्वत्वोको दिलानेमे शास्त्रीजी एक इच भर भी पीछे हट जाय। हा, अधिक-से-अधिक शास्त्रीजी यह कर सकते है कि वे भारतीयोको १९१४ के समझौतेका उल्लघन करके आगे बढनेसे रोके, कम-से-कम तबतक तो जरूर रोके, जबतक कि वहाके भारतीय अनुकरणीय आत्मसयम और अपने अन्य व्यवहार द्वारा १९१४ मे प्राप्त किए समझौतेसे आगे बढनेकी अपनी पात्रताको सिद्ध नही कर देते। अत यदि हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय

भाई इस भारतके प्रतिनिधिके कामको सरल और अपनी परिस्थितिको सुरक्षित कर लेना चाहे तो वे उनसे बडे-बडे चमत्कारोकी आशाए करना छोड दे। उनका यह अनुमान गलत होगा कि "चूकि हम अभी एक सम्मान-नीय समझौता करा चुके है और उसपर अमल करानेके लिए भारतका एक महान पुरुष हमारे यहा आ रहा है, इसलिए अब तो हमारी परिस्थिति-मे एकदम कायापलट हो जायगा।" उन्हे याद रखना चाहिए कि मान-नीय शास्त्रीजी वहा उनके वकील बनकर, उनके प्रत्येक व्यक्तिगत शिका-यतके लिए लडनेको नही जा रहे है। उनको मामूली व्यक्तिगत शिकायते सुना-सुनाकर परेशान करना उस सोनेके अडे देनेवाले पक्षीकी हत्या करने-के समान है। वे तो वहा भारतीय सम्मानके रक्षक बन कर जा रहे है। सर्वसाधारण भारतीय समाजके स्वत्व और स्वाधीनताकी रक्षाके लिए वे वहा जा रहे है। शास्त्रीजी वहा यह देखनेके लिए जा रहे है कि यूनियन सरकार कही कोई नवीन रुकावटी कानून न बनाने पाए। अलावा इसके वे देखेगे कि वर्तमान कानूनोका पालन उदारता-पूर्वक तो हो रहा है। उनके पालनमे भारतीयोके स्वत्वोको कोई हानि तो नही हो रहा है, आदि। अत यदि उनसे कोई व्यक्तिगत शिकायत की भी जाय तो वह किसी व्यापक सर्वसाधारण नियमका उदाहरण-स्वरूप हो। इसलिए यदि व्यक्तिगत मामलोमे शास्त्रीजीकी सहायता मागनेमे दक्षिण अफ्रीकाका भारतीय समाज दूरदर्शी सयमसे काम न लेगा तो वह उनकी परिस्थितिको असह्य और उस महान् उद्देशयके लिए उन्हे असमर्थ बना देगा जिसके लिए वे वहा विशेष रूपसे भेजे गये है। और सचमुच एक राजदूतकी उपयोगिता केवल यही समाप्त नही हो जाती कि वह केवल सरकारी पदसे सबध रखनेवाले अपने कर्तव्यका पालन भर कर ले, बल्कि उसकी वह अप्रत्यक्ष सेवा कही अधिक उपयोगी है जो सरकारी तथा गैरसरकारी कामोको लेकर उससे मिलने-जुलनेवाले लोगोपर उसके मिलनसार स्वभाव और सच्चरित्रके प्रभाव द्वारा होती है। अत यदि हमारे देशभाई शास्त्री-

जीकी दिमागी और हृदयके महान् गुणोका उपयोग करना चाहे तो वे मेरी बताई उपर्युक्त मर्यादाओका जरूर खयाल रक्खें।

मैं समझता हू कि यदि श्री शास्त्रीजी जावेंगे तो श्रीमती शास्त्री भी उनके साथ दक्षिण अफ्रीका जावेगी। दक्षिण अफ्रीकामे रहनेवाले भारतीयोके लिए यह वडे ही लाभकी वात है। भारतीय वहनें प्रेमसे श्रीमती शास्त्रीको वहा घेर ले। उन्हे वे समाज-सेवाका एक अमूल्य साधन पावेगी, क्योकि दक्षिण अफ्रीकामे फैली हुई हजारो वहनोका जीवन ऊचा उठानेमें वे वहुत सहायक होगी। (हि० न०, २८ ४ २७)

· · · ·

इस सप्ताहमे मिले एक पत्रमे एक सज्जनने क्लर्कसड्रोपकी प्रसिद्ध घटना का, जिसके वारेमे दक्षिण अफ्रीकाके अखवारोके पन्ने-के-पन्ने भरे रहते है, आखो देखा सच्चा वर्णन किया है। यूनियन सरकारके नि सकोच पूरी और स्पष्ट माफी माग लेनेसे यद्यपि इस घटनापर राजनैतिक दृष्टिसे अब कुछ भी कहना वाकी नही रह जाता है और न कुछ कहनेकी जरूरत ही है तो भी इस षडयन्त्रके सामने जिसका कि परिणाम श्रीशास्त्रीके लिए प्राणातक भी हो सकता था, उन्होने जो उदारता और हिम्मतका व्यवहार किया है उसकी प्रशसा कितनी ही क्यो न की जाय वह कम ही होगी। मेरे सामने जो पत्र है उससे मालूम होता है कि जिस सभामे वे व्याख्यान दे रहे थे, उसको तोड देनेके लिए डेप्युटिमेयरके नेतृत्वमे जो दल आया था उसने वत्तिया वुझा दी, फिर भी वह भारतमाताका सच्चा सपूत और प्रतिनिधि अपने स्थानपर यत्किंचित भी घवडाए विना डटा रहा, जरा भी न हटा और जव भडाका होनेके कारण सभाके हालमे श्रोताओको सास लेना भी मुश्किल हो गया तव वे वाहर गए और वहा, जैसे कोई वात ही नही हुई हो, इस घटनाके प्रति इशारा तक न करते हुए उन्होने अपना व्याख्यान पूरा किया। यो तो इस घटनाके पहले ही दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोमे वे प्रिय हो गये थे, परन्तु शास्त्रीजीके इस वीर हिम्मतभरे

और उदार आचरणने वहाके यूरोपियनोके विचारमें उन्हे और भी अधिक गौरवान्वित कर दिया है। और क्योकि उन्हे अपने लिए यश नही चाहिए था (शास्त्री जैसे अधिक कीर्त्तिमे लजानेवाले मनुष्य कदाचित ही मिल सकेंगे) उन्होने जिस कामके वे प्रतिनिधि थे, उसके लाभमें अपनी लोकप्रियताका बडी योग्यता और सफलता-पूर्वक उपयोग किया। दक्षिण अफ्रीकामें उनके बहुत ही थोडे समयके निवासमें उन्होने अपने देश-वासियोका गौरव बहुत बढा दिया है। हम यह आशा करे कि वहाके भारतीय अपने आदर्श व्यवहारसे अपनेको उस गौरवके योग्य प्रमाणित करेंगे।

परतु दक्षिण अफ्रीकाके मुश्किल और नाजुक प्रश्नको हल करनेमें उनके कार्यका महत्व केवल इसी पर, जो एक घटना-मात्र है, निर्भर नही है। हम उनके दफ्तरकी भीतरी कार्रवाईके विषयमे, सिवा उनके परिणामोके कुछ नही जानते। पर इसमे उन्हे उस सारी राजनीतिकला-का उपयोग करना पडता था जो अपने पक्षके सत्य होनेके विश्वाससे प्राप्त होती है तथा जो झूठ, कपट तथा नीचताको कभी बरदाश्त नही कर सकती। परतु हम यह जरूर जानते है कि सस्कृत और अग्रेजीकी अपार विद्वत्ता और जुदा-जुदा विषयोका ज्ञान, वाक्यपटुता इत्यादि कुदरतसे प्रचुरता-से मिली हुई बख्शिशोको अपने कार्यके लिए उपयोग करनेमे, उन्होने कोई कसर नही की है। चुनदा यूरोपियनोके बडे श्रोतृ-समूहके आगे वे भारतीय तत्त्वज्ञान और सस्कृतिपर व्याख्यान देते थे, जिससे उनके दिलोपर बडा असर होता था और उस पक्षपातके परदेको, जिसके कारण यूरोपियनोका बडा समूह अबतक भारतीयोमे कोई गुण ही नही देख सकता था, उन्होने पतला कर दिया है। दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोके प्रश्न मे, ये व्याख्यान ही शायद उनका सबसे बडा और अधिक स्थायी हिस्सा है।

शास्त्रीजीकी जगहके लिए योग्य व्यक्ति चुनना भारत सरकारके

लिए एक बडा गभीर प्रश्न होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकामे और भी अधिक ठहरनेके लिए उनपर जितना भी दबाव डाला गया उन्होने उसे स्वीकार नही किया है। दक्षिण अफ्रीकासे आये पत्रोसे मालूम होता है कि वहाके भारतीय श्री शास्त्रीके आनेकी तैयारीके कारण कितने चिंतित है। श्रीशास्त्रीने जिस कार्यको सफलता-पूर्वक आरभ किया है और जिसके वे प्रतिनिधि रहे है उसको जारी रखनेके लिए यदि कोई लायक व्यक्ति न मिला तो यह बडे ही दु:खकी बात होगी। मुझे आशा है कि दक्षिण अफ्रीकामे भारतके एजेन्टके पदको सरकार और प्रजाकीय दल, दोनोहीके लिए खुला रखनेका अब वायसरायके आफिसमे रिवाज पड गया है। यह आशा की जाती है कि इसके लिए जो कोई भी चुना जाय वह सरकार और प्रजा दोनोको समान रूपसे मान्य होगा और जो केवल भारत सरकारका ही नही, किंतु भारतके लोगोका भी प्रतिनिधि होगा। (हि० न०, १८ १० २८)

•

श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान है। शिक्षकके रूपमे उनकी तभीसे ख्याति रही है, जबकि इनमेसे बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदा ही नही हुए थे या अपनी किशोरावस्थामे ही थे। उनकी महान् विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनो ही ऐसी चीजे है, जिनके कारण ससारकी कोई भी यूनीवर्सिटी उन्हे अपना वाइस चासलर बनानेमे गौरव ही अनुभव करेगी। ('विद्यार्थियोसे')

•

मौतने न सिर्फ हमारे बीचसे, बल्कि समूची दुनियाके बीचसे भारत-माताके एक बडे-से-बडे सपूतको उठा लिया है। उनके परिचयमे आने-वाला हर कोई देख सकता था कि वे हिंदुस्तानको बहुत ही प्यार करते थे। पिछले दिनो जब मै उनसे मद्रासमे मिला था, उन्होने सिवा हिंदुस्तान और उसकी सस्कृतिके, जिनके लिए वे जीए और मरे, दूसरी किसी बातकी

चर्चा ही नही की। जब वे मृत्युशय्यापर पडे दीखते थे, तब भी मुझे विश्वास है कि उनको अपनी कोई चिंता नही थी। उनका संस्कृत-ज्ञान अंग्रेजीके उनके अगाध ज्ञानसे ज्यादा नही तो कम भी न था। मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह कि अगरचे राजनीतिमे हमारे खयाल एक-दूसरेसे मिलते नही थे, तो भी हमारे दिल एक ही थे और मैं यह कभी सोच नही सकता कि उनकी देशभक्ति हमारे किसी बडे-से-बडे देशभक्तसे कम थी। शास्त्रीजी जिंदा है, यद्यपि उनका नामधारी शरीर भस्म हो चुका है। (ह० से०, २१।४।४६)

: २०५ :

खुशालशाह

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन राष्ट्रीय ऋणके सबंधमे जाच करनेके लिए काग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यत महत्वकाका लेख है। राष्ट्रीय महासभाका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे विना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशालशाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनदनके अधिकारी है। 'यगइडिया'के विदेशी पाठक जानते है कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनो ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। खुशालशाह भारत प्रख्यात अर्थशास्त्री है, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोके लेखक है और बहुत वर्ष तक (आज अभी तक) बबई यूनीवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनो सज्जन सदैव काममे घिरे रहते है, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौपे हुए इस उत्तरदायि-

त्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नही था। रिपोर्टके लेखकोका यह परिचय मैने इस लिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोका लिखा हुआ लेख नही, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले है, और जो धाधलीबाज उपदेशक नही, वरन् स्वय जिस विषयके ज्ञाता है, उसीपर लिखने वाले और अपने शब्दोको तौल-तौलकर व्यवहारमे लानेवालोकी यह कृति है। (हि० न०, ६ ८ ३१)

: २०६ :

पीर महबूबशाह

पीर महबूबशाह गिरफ्तार हो गए। वे बडे ही बहादुर आदमी थे। मुझे उनके दोष तथा निर्दोषिताके बारेमे कुछ नही कहना है। पर जो अभियोग उनपर चलाया गया था यदि वह ठीक है तो वह स्वीकार करना पडेगा कि उनकी भाषामे उत्तेजना फैलाने और शाति भग करनेके भाव थे और इस अवस्थामे उन्हे जो दड दिया गया है अर्थात् दो वर्षके लिए साधारण कारावास, बहुत ही हलका है। यदि अपराध साबित हो गया तो कोई भी दडसे बच नही सकता, चाहे वह कितना ही बडा आदमी क्यो न हो और चाहे वह कितना ही बडा सरकारी पदाधिकारी क्यो न हो। जिस बातके लिए मै उनकी प्रशसा करने बैठा हू वह उनकी वीरता, धीरता और उदासीनता है। उन्होने वीरता तथा धीरताके साथ अपने मुकदमेकी पैरवी करने तथा सफाई देनेसे इन्कार कर दिया और उदासीनताके साथ कानून-नियुक्त अदालतके निर्णयको स्वीकार करना तय किया। इससे मुझे विदित होता है कि उन्हे इस असहयोग सग्रामका तत्व मिल गया है। उनके अनु-

यायियोंने उनकी इस दण्डाज्ञाको जिस प्रकार सहन किया है उससे भी अतिशय संतोष होता है।

बादको समाचार मिला कि पीरसाहबने माफी माग ली और वे रिहा कर दिये गए। इससे तो हमारी प्रत्यक्ष दुर्बलता प्रकट होती है। दासताकी कमजोर हवामें पालित तथा पोषित होनेके कारण कभी-कभी हम लोगोंमेंसे बड़े लोग भी साधारण झंझावातमें काप उठते हैं और उसके सामने सिर झुका देते हैं। हम लोगोंने पश्चिमी सभ्यताका अनुकरण अवश्य किया, पर उसके अन्तर्गत जो शिक्षा लेनी पड़ती है उसके अभ्यस्त न होकर हमने अपनी अवस्था इतनी खराब कर डाली है कि सादी सजाकी साधारण कठिनाइया भी हमसे नही झेली जाती। पर पीर महबूबशाहकी माफीसे हमें हताश नही होना चाहिए। मान लीजिए कि एक आदमी कई घोड़ोपर असबाब लादे चला जा रहा है। मार्गमें एक घोड़ा थक गया। तो क्या अन्य घोड़ोका यह कर्तव्य नही है कि वे अपने साथीके भारको आपसमे बाट लें? इसी तरह हमें थोड़ा और प्रयास करके यह बोझ अपने ऊपर ले लेना चाहिए। हम लोग मनुष्य है, समझदार जीव है, यह समझ लिया जा सकता है कि जब हमारा एक साथी फिसल पड़ता है तो उसका बोझ सभालनेके लिए हमें कितना प्रयास करना चाहिए। (य० इ०, १२.६ २०)

: २०७ :

जनरल शाहनवाज

जनरल शाहनवाज आज आए थे। बिहारसे मेरे चले जानेपर भी वे वहापर काम करते है। वेतन नही लेते। फिर भी बाकायदा

पद्रह दिनकी छुट्टी लेकर घर जा रहे हैं। उन्होने बताया कि बिहारमे जो मुसलमान लौटकर नही आते थे और जिन्हे हिदू पहले डराते थे वे भी अब लौट आये है, क्योकि समझानेपर हिदू अपना धर्म समझ गए और उन्होने मुसलमानोके स्वागतके लिए लगातार दो दिनतक परिश्रम करके उनका रास्ता साफ किया और जो झोपडिया ढह गई थी उनके बनानेमे भी योग दिया। दूसरे देहातोमे भी ऐसा ही अच्छा काम हुआ है। (प्रा० प्र०, ५ ५ ४७)

: २०८ :

राजकुमार शुक्ल

राजकुमार शुक्ल नामके एक किसान चपारनमे रहते थे। उनपर नीलकी खेतीके सिलसिलेमे बडी बुरी बीती थी। वह दुख उन्हे खल रहा था और उसीके फलस्वरूप सबके लिए इस नीलके दागको धो डालने का उत्साह उनमे पैदा हुआ था।

जब मै काग्रेसमे लखनऊ गया था तब इस किसानने मेरा पल्ला पकडा।

"वकीलबाबू, आपको सब हाल बताएगे।"

कहते हुए चपारन चलनेका निमत्रण मुझे देते जाते थे।

यह वकीलबाबू और कोई नही, मेरे चपारनके प्रिय साथी, बिहारके सेवा-जीवनके प्राण, वृजकिशोरबाबू ही थे। उन्हे राजकुमार शुक्ल मेरे डेरेमे लाए। वह काले अलपकेका अचकन, पतलून वगैरा पहने हुए थे। मेरे दिलपर उनकी कोई अच्छी छाप नही पडी। मैने समझा कि ये इस भोले किसानको लूटनेवाले कोई वकील होगे।

मैने उनसे चपारनकी थोडी-सी कथा सुन ली और अपने रिवाजके मुताबिक जवाब दिया, "जबतक मै खुद जाकर सब हाल न देख लू तबतक मै कोई राय नही दे सकता। आप काग्रेसमे इस विषयपर बोले, किंतु मुझे तो अभी छोड ही दीजिए।" राजकुमार शुक्ल तो चाहते थे कि काग्रेसकी मदद मिले। चपारनके विषयमे काग्रेसमे बृजकिशोरबाबू बोले और सहानुभूतिका एक प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्लको इसमे खुशी हुई, परतु इतने ही से उन्हे सतोष न हुआ। वह तो खुद चपारनके किसानोके दुख दिखाना चाहते थे। मैने कहा, "मै अपने भ्रमणमे चपारनको भी ले लूगा और एक-दो दिन वहाके लिए दे दूगा।" उन्होने कहा—"एक दिन काफी होगा, अपनी नजरोमे देखिए तो सही।"

लखनऊसे मै कानपुर गया था। वहा भी देखा तो राजकुमार शुक्ल मौजूद।

"यहांसे चपारन बहुत नजदीक है। एक दिन दे दीजिए।"

"अभी तो मुझे माफ कीजिए, पर मै यह वचन देता हू कि मै आऊगा जरूर।" यह कहकर वहा जानेके लिए मै और भी बध गया।

मै आश्रममे पहुचा तो वहा भी राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे-पीछे मौजूद।

"अब तो दिन मुकर्रर कर दीजिए।"

मैने कहा—"अच्छा, अमुक तारीखको मुझे कलकत्ते जाना है, वहा आकर मुझे ले जाना।" कहा जाना, क्या करना, क्या देखना, मुझे इसका कुछ पता न था। कलकत्तेमे भूपेनबाबूके यहा मेरे पहुचनेके पहले ही राजकुमार शुक्लका पडाव पड चुका था। अब तो इस अपढ-अनघढ परतु निश्चयी किसानने मुझे जीत लिया।

१९१७ के आरभमे कलकत्तेसे हम दोनो रवाना हुए। हम दोनोकी एक-सी जोडी—दोनो किसान-से दीखते थे। राजकुमार शुक्ल और मै—हम दोनो एक ही गाडीमे बैठे। सुबह पटना उतरे।

पटनेकी यह मेरी पहली यात्रा थी। वहा मेरी किसीसे इतनी पहचान नही थी कि कही ठहर सकू।

मैंने मनमे सोचा था कि राजकुमार शुक्ल है तो अनपढ किसान, परतु यहा उनका कुछ-न-कुछ जरिया जरूर होगा। ट्रेनमे उनका मुझे अधिक हाल मालूम हुआ। पटनेमे जाकर उनकी कलई खुल गई। राजकुमार शुक्लका भाव तो निर्दोष था, परतु जिन वकीलोको उन्होने मित्र माना था वे मित्र न थे, वल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रितकी तरह थे। इस किसान मवक्किल और उन वकीलोके बीच उतना ही अतर था, जितना कि वरसातमे गगाजीका पाट चौडा हो जाता है।

मुझे वह राजेद्रवावूके यहा ले गये। राजेद्रवावू पुरी या और कही गये थे। वगलेपर एक-दो नौकर थे। खानेके लिए कुछ तो मेरे साथ था, परतु मुझे खजूरकी जरूरत थी, सो वेचारे राजकुमार शुक्लने वाजारसे ला दी।

परतु विहारमे छुआछूतका वडा सख्त रिवाज था। मेरे डोलके पानीके छीटेसे नौकरको छूत लगती थी। नौकर वेचारा क्या जानता कि मैं किस जातिका था? अदरके पाखानेका उपयोग करनेके लिए राजकुमारने कहा तो नौकरने वाहरके पाखानेकी तरफ उगली उठाई। मेरे लिए इसमे असमजसकी या रोषकी कोई वात न थी, क्योकि ऐसे अनुभवोसे मैं पक्का हो गया था। नौकर तो वेचारा अपने धर्मका पालन कर रहा था और राजेद्रवावूके प्रति अपना फर्ज अदा करता था। इन मजेदार अनुभवोसे राजकुमार शुक्लके प्रति जहा एक ओर मेरा मान वढा, तहा उनके सबधमे मेरा ज्ञान भी वढा। अव पटनासे लगाम मैंने अपने हाथमे ले ली। (आ० क०)

: २०९ :

स्टोक्स

मिस्टर स्टोक्स ईसाई है। वह परमात्माके प्रकाशके सहारे चलना चाहते है। उन्होने भारतवर्षको अपना घर बना लिया है। उन्होने कोटा-गिरिमे अपना निवासस्थान बनाया है और एकातमे रहकर पहाडी जातियो-के उद्धारमे ही वे अपनी सारी शक्ति लगा रहे है। वहीसे निरपेक्ष होकर वे असहयोगकी गति भी देख रहे है। उन्होने कलकत्ताके 'सर्वेन्ट' तथा अन्य पत्रोमे असहयोगपर तीन लेख लिखे है। जिस समय मै बगालमे दौरा कर रहा था मैने इन लेखोको पढा था। मिस्टर स्टोक्स असहयोग आदो-लनके पक्षमे है, पर पूर्ण स्वाधीनताके परिणामको सोचकर वे डर जाते है अर्थात् उन्हे इस बातकी आशका है कि यदि अग्रेज भारतको एकदम छोडकर चले जायगे तो यहा अनेक तरहके उपद्रव उठ खडे होगे। उन्हे भय लगता है कि तुरत ही विदेशियोके आक्रमण होने लगेगे, जैसे उत्तर पश्चिमसे अफगान ओर पहाडी गुर्खे भारतपर एक साथ ही टूट पडेगे। पर कार्डिनल न्यूमनके शब्दोमे मै उस भविष्यकी बातकी चिंता नही करता। (य० इ०, २९ १२ २०)

: २१० :

जनरल स्मट्स

मैने जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा कि उनका नवीन वक्तव्य सुलहका भग करता है। अपने पत्रमे मैने उनके उस भाषणकी

ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया, जो सुलहके बाद एक सप्ताहके अदर ही उन्होने दिया था। उस भाषणमे उन्होने ये शब्द कहे थे "ये लोग (एशियावासी) मुझे एशियाटिक कानून रद करनेके लिए कह रहे है। जबतक ऐच्छिक परवाने वे नही ले लेते तबतक उस कानूनको रद करनेसे मैने इन्कार किया है।" अधिकारी लोग प्राय ऐसी बातोका जवाब नही देते जो उन्हे उलझनमे डालती है। अगर देते भी है तो गोल-मोल। जनरल स्मट्स इस कलामे सिद्धहस्त है। उन्हे आप चाहे जितना लिखे, उनके विरुद्ध चाहे जितने भाषण करे, पर यदि वे उत्तर देना नही चाहेगे तो उत्तरमे उनके मुहसे एक शब्द भी निकलवाना असभव है। सभ्यताका यह सामान्य नियम उनके लिए बधनकारक नही हो सकता था कि प्राप्त पत्रोका उत्तर देना ही चाहिए। इसलिए अपने पत्रके उत्तरमे मुझे किसी प्रकारका सतोष प्राप्त नही हो सका।

अल्बर्ट कार्ट राईट हमारे मध्यस्थ थे। मै उनसे मिला। वह स्तब्ध हो गए और मुझसे कहने लगे, "सचमुच मै इस आदमीको समझा ही नही सकता। एशियाटिक कानूनको रद करनेवाली बात मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक तरहसे याद है। मुझसे जो बन पडेगा मै जरूर करूगा। पर आप जानते है कि जहा यह आदमी किसी एक बातको पकड लेता है तहा फिर दूसरेकी नही चलती। अखबारोके लेखोकी तो वह जरा भी परवाह नही करता। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी सहायताका आपको कोई उपयोग न होगा।" हास्किन वगैरासे भी मै मिला। उन्होने जनरल स्मट्सको एक पत्र लिखा। उन्हे भी बडा ही असतोषकारक उत्तर मिला। मैने 'इडियन ओपीनियन'मे भी 'विश्वासघात' शीर्षक कई लेख लिखे, पर जनरल स्मट्स क्यो इन बातोकी परवाह करते? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए आप चाहे जितने कडुवे विशेषणोका प्रयोग करे, उनपर कोई असर न होगा। वे तो अपना निश्चित काम करनेमे मस्त रहते है। मै नही जानता कि जनरल स्मट्सके लिए इन दो विशेषणोमेसे

किस विशेषणका उपयोग ठीक हो सकता है। यह तो मुझे जरूर कबूल करना होगा कि उनकी वृत्तिमे एक तरहकी 'फिलासफी'—सिद्धात-निष्ठा है। मुझे याद है कि जिस समय हमारा पत्र-व्यवहार जारी था, अख-बारोमें लेख लिखे जा रहे थे, तब तो मैं उन्हे निष्ठुर ही समझता था। पर अभी तो यह युद्धका पूर्वार्ध—केवल दूसरा वर्ष था। युद्ध तो आठ वर्ष तक जारी रहा। इस बीचमे मैं उनसे कई बार मिला। बादकी हमारी बातो-से मेरा यह खयाल कुछ बदल गया और मैंने महसूस किया कि जनरल स्मट्सकी धूर्तताके विषयमे दक्षिण अफ्रीकामे बनी हुई सामान्य धारणामे कुछ परिवर्तन होना जरूरी है। दो बाते मैं पूरी तरह समझ गया। एक तो यह कि उन्होने अपनी राजनीतिके विषयमे एक मार्ग निश्चित कर लिया है और वह केवल अनीतिमय तो हरगिज नही। पर साथ ही मैंने यह भी देख लिया कि उनके राजनीति-शास्त्रमे चालाकीके लिए और मौका पडनेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1] (द० अ० स०, १९२५)

उसके बाद जनरल स्मट्सका उदाहरण लीजिए। वह अकेला जनरल नही है। उसका पेशा तो वकालतका है। वकीलोमे अटर्नी जनरल होनेके साथ ही वह कुशल किसान भी था। प्रिटोरियाके पास उसकी बहुत बडी जमीदारी है। वहा जैसे फलके वृक्ष है, वैसे आसपासके प्रदेशोमे कही नही पाए जाते। ये सब ऐसे लोगोके उदाहरण है, जो समरके विख्यात सेनानायक थे और साथही जो रचनात्मक कार्यके महत्वको जानते थे। ('विजयी बारडोली' पृष्ठ ३९०)

---

[1]यह छपते हुए हम यह जान गए कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अत हो सकता है।—मो० क० गाधी

: २११ :

सापुरजी सकलातवाला

'बधु' सकलातवालाकी आतुरताका पार नही। उनकी बातोमे सच्चाई झलकती है। उनके त्याग वहुत बडे है। गरीबोके लिए उनके प्रेमका लोहा सभी मानते है। इसलिए मेरे नाम उनकी खुली भावुक अपीलपर मैंने उतनी ही गभीरतासे विचार किया है, जितनी ऐसे सच्चे देशभक्त और विश्वप्रेमीके पत्रके लिए चाहिए। अगर मुझे सच्चाईके जवावमे सच्चाईका व्यवहार करना है, या अपने धर्मका सच्चा वने रहना है तो 'हा' कहनेकी मेरी लाख इच्छा रहनेपर भी मुझे 'नही' ही कहना होगा। मगर मै अपने खास ढगपर उनकी अपीलके जवावमे 'हा' कह सकता हू। उनकी शर्त्तोपर मै उनसे सहयोग करू—इसकी उनकी अतिशय वलवती इच्छाके नीचे यह बडी शर्त्त मानी हुई है ही कि मै 'हा' तो तभी कहू जव उनकी दलीलसे मेरे दिल और दिमागको सतोष हो जाय। सच्चे विश्वासके कारण 'नही' कहना, उस 'हा' से लाख दर्जे अच्छा और बडा है, जो किसीको महज खुश करनेके लिए या जो उससे भी बुरी बात है, चितासे बचनेके लिए कहा जाय।

उनके साथ हार्दिक सहयोग करनेकी पूरी इच्छा होते हुए भी मै अपना रास्ता वद देखता हू। उनकी वास्तविकताए कपोल-कल्पित है और उनके आधारपर निकाले गये नतीजे जरूर ही निराधार है। जहा कही वे वास्तविकताए सच है, मेरी सारी शक्ति उनके जहरीले असर (मेरे प्रति) को ही दूर करनेमे लग जाती है। मुझे इसका खेद है। मगर हम जरूर दुनियाके दो छोरोपर है। मगर खैर, एक बडी चीज हम दोनोमे समान है। दोनोका ही कहना है कि देश और विश्वका भला ही हमारे एकमात्र उद्देश्य है। इसलिए इस समय हम लोग उलटी दिशाओमे

जाते हुए भले ही मालूम पडते हो, मगर मेरी आशा है कि एक दिन हम मिलेगे जरूर। मै वचन देता हू कि अपनी भूल समझने ही में काफी क्षति-पूर्ति करुगा। इस बीचमें मेरी भूल ही, चूकि मै उसे भूल नही मानता, मेरा अवलव और तसल्ली होगी। (हि० न०, १७ ३ २०)

: २१२ :

सत्यपाल

डॉ० सत्यपालने सार्वजनिक जीवनसे हटनेके लिए नाहक ही मेरा उल्लेख किया है। अगर अतरात्माकी प्रेरणासे उन्होने सार्वजनिक जीवनसे हटनेका निश्चय किया है तब तो उनका निर्णय ठीक है; लेकिन अगर लाला दुनीचदको लिखे हुए मेरे निर्दोषपत्र के कारण ऐसा किया है तो उन्होने बहुत बडी गलती की है। अव्वल तो वह पोस्टकार्ड पजाबके उस सारे वातावरणके सबधमें था, जिसके फलस्वरूप न केवल इस या उस व्यक्तिके बल्कि खुद मेरे खिलाफ अविश्वासकी भावना पैदा हुई है। कोई आलोचक चाहे तो इसे कायरता कह सकता है, लेकिन यह चाहे कायरता हो या आत्मविश्वासका अभाव हो, पर जबतक मुझमे यह चीज मौजूद है तबतक मै मध्यस्थताके लिए बेकार हू। इसलिए डॉ० सत्यपाल-की प्रेरणासे जब सरदार मगलसिह और लुधियानाके दूसरे मित्र वर्धा आये तो मैने उनसे कहा कि मै तो इस कामके लिए बेकार हू, लेकिन राष्ट्रपतिकी हैसियतसे राजेद्रबाबू पजाब जानेके लिए उपयुक्त व्यक्ति है। उन्होने यह मजूर भी कर लिया है कि स्वास्थ्य ठीक रहा और दूसरे काम-काज आडे न आए तो जल्दी-से-जल्दी वह वहा जायगे। लेकिन मैने तो इन मित्रोको सुझाया है कि अपने-आप अपनी मदद करनेके बराबर कोई मदद नही

है। अत उन्हे अपनी खुदकी मेहनतसे ही अपने घरको व्यवस्थित करना चाहिए। डॉ० सत्यपाल अगर अपनी अतरात्माकी प्रेरणासे सार्वजनिक जीवनसे नही हटे है तो बहुत देरतक वह अपनेको उससे बाहर नही रख सकेंगे। खुद उनकी प्रकृति ही इस कृत्रिम आत्मसयमके विरुद्ध विद्रोह करेगी। इसलिए मै इससे अच्छा एक तरीका सुझाता हू। वह यह कि वह दलबदीसे अलग हो जाय। पुराने झगडे-टटोको भूल जाय और पजाबमे सच्ची एकता पैदा करनेके काममे जुट पडे। यह कैसे किया जा सकता है, यह मै नही कह सकता। मेरे पास ऐसी कोई सामग्री भी नहीं है जो इसके लिए कोई कार्यक्रम बना सकू। अत खुद उन्हीको यह सोचना चाहिए। मै तो सिर्फ यही कह सकता हू कि अगर वह सचमुच चाहते हैं तो ऐसा कर सकते है। यह तो हरएक जानता है कि पजाबमे उनके अनुयायी है, वह एक अदम्य कार्यकर्त्ता हैं और उन्होने काफी कुर्बानी की है, इसलिए पजाबके काग्रेसियोमे अगर कोई एकता पैदा कर सकता है, तो निश्चय ही वह डॉ० सत्यपाल है। लेकिन चाहे वह हो या कोई और, जो कोई ऐसा करे उसे अपनेको भूलकर अपने या अपने दलके हितसे जनताके हितको तरजीह देनी चाहिए, क्योकि वही वास्तवमे काग्रेसका भी हित है। मेरी हिचकिचाहटके पीछे मेरी जो यह तीव्र भावना है उसपर भी ध्यान रखना जरूरी है कि पजाबके काग्रेसियोको मनमे कोई गाठ रक्खे बगैर आपसमे हिलमिल जाना चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए। (ह० से०, १९ ८ ३९)

: २१३ :

तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नही थे। मगर ज्ञानी थे, भजनोके भडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने इकतारेसे और भजनोसे आश्रमके लोगोको मुग्ध कर देते थे। जैसे वे थे, वैसी ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोतारामजीसे पहले ही चली गई।

जहा बहुतसे आदमी एक साथ रहते हो, वहा कई प्रकारके झगडे होते ही है। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमे भाग लिया हो, या किसी झगडेके कभी कारण बने हो। तोतारामजीको धरती प्यारी थी, खेती उनका प्राण थी। आश्रममे वर्षो पहले वे आये और उसे कभी नही छोडा। छोटे-बडे, स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमे हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमे छुआछूतकी गध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीति मे उन्होने भाग नही लिया था, फिर भी उनका देश-प्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खडा रह सकता था। त्याग उनमे स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमे गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए थे। और दीनबधु ऐन्ड्रूज उन्हे ढूढ लाए थे। उन्हे आश्रममे लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अतिम घडी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई

गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लडकी अमीना बहनने की थी।

परोपकाय सता विभूतय (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमे अक्षर-अक्षर सच थी। (ह० से०, १८ १.४८)

: २१४ :

तेजबहादुर सप्रू

आज सप्रूकी राय आई। उन्हें वैधानिक प्रश्नके सामने इस सवालका महत्व तुच्छ लगता है। इस निर्णयके देनेमें उन्हें साफ नीयत और ईमानदारीकी कोशिश दिखाई देती है। बापूने जरा सी आलोचना की :

सप्रूका काम मुजेसे उलटा है। जातीय माग पूरी हो जाय तो मुजेको विधानकी परवाह नही, सप्रूको विधान मिल जाय तो कुछ भी हो जाय उसकी परवाह नही। (म० डा०, १९ ८ ३२)

आज सुबह फिर निर्णयपर बातें हुई। जयकर, सप्रू और चितामणिकी रायोपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहा अलग हो जायगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू आशा इस लिए रख सकते हैं कि विलायतमे भी इस मामलेमे इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चितामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू · क्योकि चितामणि हिदुस्तानी है, जब कि सप्रूका मानस यूरोपियन

है । चितामणि समझते हैं कि इस निर्णयमे ही वहुत कुछ विधान आ जाता है । सप्रू यह मानते है कि विधान मिल गया तो फिर इन वातोकी चिंता ही नही । (म० डा०, २१ ८ ३२)

: २१५ :

सम्पूर्णानन्द

श्री जयप्रकाशनारायण और श्री सपूर्णानदजीने साफ शब्दोमे कह दिया हैं कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञामे जो भाग जोडा गया, है उसके खिलाफ है। मुझे उनका वडा लिहाज है। वे योग्य है, वीर है और उन्होने देशके खातिर कष्ट उठाए है। लडाईमें वे मेरे साथी वन सके तो इसे मै अपना सौभाग्य समझू। मै उन्हे अपने विचारका वना सकू तो मुझे कितनी खुशी हो। लडाई आनी ही है और मुझे उसका नायक वनना है तो यह काम मै ऐसे सहायकोके भरोसे नही कर सकता जिनका कि कार्यक्रमपर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमे उसके वारेमे शकाए हो।(ह० से०, २० १ ४०)

: २१६ :

साकरबाई

महासभा-सप्ताहमे मुझे ववईके श्रीगोविदजी वसनजी मिठाईवाला की माताके पत्र मिले थे, पर उसी समय मै उनका उपयोग 'नवजीवन'मे

न कर सका। श्रीगोविंदजीपर बबईकी अदालतमे एक फौजदारी मुकदमा चल रहा है। उसकी बाते बबईके अखबारोमे आगई है। उनकी चर्चा मै यहा नही करना चाहता। इस मुकदमेमे श्रीगोविंदजीकी माता श्रीमती साकरबाईकी जो वीरता दिखाई देती है उसीकी तरफ मै पाठकोका ध्यान दिलाना चाहता हू। साकरबाई बडी हिम्मतके साथ पुलिसके पास गई। अदालतमे भी अपने बेटेके पास कैदियोके कटरेके सामने खडी रही, जिससे अपने बेटेके चित्तमे किसी तरहकी कमजोरी न आने पावे। श्री गोविंदजी का लालन-पालन बडे ऐशोआराममे हुआ है। बबईके दगेके समय उन्हे जो चोटे आई थी वे तो अभी ठीक ही नही हुई है। उन्हे जेलकी यातनाए सहनेका कभी अवसर नही हुआ। मित्र लोग उनको जमानतपर छुडवाने-का प्रयत्न करते है। यह कहकर कि यह मुकदमा तो निजी है, राजनैतिक नही, सफाई पेश करनेकी प्रेरणा करते है। इन सब भयोसे बचानेके लिए तथा सत्यकी रक्षाके लिए साकरबाई अपने बेटेके पिंजडेके सामने खडी रही। अपनी उपस्थितिसे मानो उसको सुरक्षित कर दिया। साकरबाई-की हिम्मत तो देखिए, उन्होने स्वय ही श्री गोविंदजीको जमानतपर छुडानेसे मना कर दिया। वे बहन जानती थी कि असहयोगकी प्रतिज्ञा करनेवाला मनुष्य अदालतमे अपनी सफाई दे ही नही सकता, फिर मुकदमा चाहे खानगी हो चाहे सार्वजनिक, सच्चा हो या बनावटी। सो उन्होने इस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिए अदालतमे जानेका साहस किया। (हि० न०, ८ १ २२)

: २१७ :

सांडर्स

'स्टेट्समैन' और 'इंग्लिशमैन' दोनो दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका महत्त्व समझते थे। उन्होने मेरी लबी-लबी बातचीत छापी, 'इंग्लिशमैन' के मि० साडर्सने मुझे अपनाया। उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था, उनका अखबार मेरे लिए खुला था। अपने अग्रलेखमे कमी-वेशी करनेकी भी छूट उन्होने मुझे दे दी। यह भी कहू तो अत्युक्ति नही कि उनका-मेरा खासा स्नेह हो गया। उन्होने भरसक मदद देनेका वचन दिया। मुझसे कहा कि दक्षिण अफ्रीका जानेके बाद भी मुझे पत्र लिखिएगा और वचन दिया कि मुझसे जो-कुछ हो सकेगा करूगा। मैंने देखा कि उन्होने अपना यह वचन अक्षरश पाला और जबतक उनकी तबीयत खराब न हो गई, उन्होने मेरे साथ चिट्ठी-पत्री जारी रखी। मेरी जिदगीमे ऐसे अकल्पित मीठे सबध अनेक हुए है। मि० साडर्सको मेरे अदर जो सबसे अच्छी बात लगी वह थी अत्युक्तिका अभाव और सत्यपरायणता। उन्होने मुझसे जिरह करनेमे कोई कसर न रखी थी उसमे उन्होने अनुभव किया कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके पक्षको निष्पक्ष होकर पेश करनेमे तथा उनकी तुलना करनेमे मैंने कोई कमी नही रखी थी। (आ० क०)

: २१८ :

वी० डी० सावरकर

गाधीजीने बतलाया कि लोकमान्यकी यह जन्मभूमि सारे भारतवर्षके लिए तीर्थ-भूमि है। यह भी याद दिलाया कि श्री सावरकर भी

यही रहते हैं और सावरकरके साथ अपने परिचय, इग्लैंडमें उनके साथ वार्तालापकी बात की, उनके स्वार्थ-त्याग और देशसेवाका उल्लेख करके बतलाया कि उनके साथ जबर्दस्त मतभेद होते हुए भी मित्रता तो पहले ही जैसी बनी हुई है।

"मतभेद चाहे जितना हो, तो भी प्रेमभाव तो चलता रहना चाहिए। अगर ऐसा न हो तो मुझे मेरी पत्नीका भी दुश्मन बनना चाहिए। इस दुनियामे ऐसे दो व्यक्तियोको मै नही जानता जिनमे मतभेद कतई न हो। गीताका समदृष्टिका उपदेश माननेवाला होकर मैने तो अपनी जिदगीमे ऐसा प्रयत्न किया है कि जिसके साथ मतभेद हो, उसके साथ भी उतना स्नेह रखना जितना अपने माता, पिता, भाई-बहन, या पत्नीके साथ।"

सभामें जानेसे पहले गाधीजीने, काले पानीसे तपश्चर्या करके लौटे हुए भाई सावरकरके घर जाकर उनसे भेंट कर ली थी। पाच-दस मिनटमें बहुत बात क्या हो सकती थी? गाधीजीको यहा पर इसका पता चला कि अस्पृश्यता और शुद्धिके संबधमें उनके विचारोको उल्टा स्वरूप दिया जाता है। पर और अधिक चर्चाके लिए उन्होने सावरकरसे पत्र-व्यवहार करनेका आग्रह किया:

आप जानते है कि सत्यके प्रेमीके तौरपर, सत्यके लिए मरणपर्यत लडनेवालेके तौरपर, मेरे मनमे आपका कितना आदर है। आखिर हम दोनोका ध्येय तो एक ही है। इसलिए आप जिस-जिस विषयमे मेरे साथ चर्चा करना चाहे उस विषयमे खूब पत्र-व्यवहार चलाइए और अगर आपकी इच्छा हो तो शुद्धि, खादी वगैरहके विषयमे खुलासा कर लेनेके लिए मै दो-तीन दिन निकालकर आपके साथ रत्नागिरिमे रहनेको तैयार हू।"

श्री सावरकरने कहा, "आप जैसे मुक्तको मैं बंदी बनाना नहीं

चाहता।" पत्र लिखनेकी सलाह उन्होंने खुशीसे स्वीकार कर ली। (हिं० न०, १७ ३ २७)

: २१६ :

अप्टन सिंक्लेयर

आजकल तो The Wet Parade (दि वेट परेड) पढ रहे हैं और बडी दिलचस्पीके साथ। सिंक्लेयरके बारेमें कहा

यह आदमी तो अद्भुत सेवा कर रहा दीखता है। समाजकी एक-एक गदगीको लेकर बैठा है और उसका खुले आम भडाफोड करता है। (म० डा०, १२ ३ ३२)

अमरीकाके लेखकोंके बारेमें राजाजीको कुछ भ्रम हो गया है। हार्डीका साहित्य मैंने पढा नही है। ज़ोलाका भी नही पढा है। इसका मुझे हमेशा दुःख रहा है। मगर सिंक्लेयरका बिलकुल तिरस्कार नही किया जा सकता। प्रचारकी दृष्टिसे लिखे हुए उपन्यासोंमें प्रचारका ही दोष मानकर उन्हें हरगिज हलका नही बनाया जा सकता। प्रचारकके लिए तो उसकी सारी कला उसीमें भर दी जाती है। अपने खयालको वह छिपाता नही। और फिर भी कहानीमें रसको आंच नही आने देता। Uncle Tom's Cabin (टामकाकाकी कुटिया) साफ तौरपर प्रचारके लिए लिखी गई चीज है। मगर उसकी कलाकी बराबरी कौन कर सकता है? सिंक्लेयर एक जबरदस्त सुधारक है और सुधारके प्रचारके लिए उसने अलग-अलग उपन्यास लिखे है और यह कहा

जाता है कि सब रससे भरे है। समय मिला तो मै उन्हे पढूगा। (म० डा०, २६ ६.३२)

: २२० :

सिंह

भारतवर्षके इस सम्मानित सेवकके सम्मानमे ओरोकी अजलियोके साथ-साथ मै भी अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करता हू। जब कभी भारत-वर्षके सेवकोकी सेवाओका मूल्य आका जायगा, लार्ड सिंहकी सेवाए वहुमूल्य गिनी जायगी। सभी राजनैतिक वातोमे उनकी सलाह पूछी जाती थी। उसकी कीमत भी वडी समझी जाती थी। लार्ड सिंहकी मोतसे देश गरीब ही हुआ है। (हि० न०, ८ ३ २८)

: २२१ :

श्रीकृष्ण सिन्हा

मुसलमानोको वहा (विहारमे) डरनेका क्या कारण है? दो अच्छे मुसलमान-सेवक उनकी सेवा कर रहे है। फिर वहाके मत्रि-मडल मे श्रीकृष्ण सिन्हा है, जो पूरे सजग है। (प्रा० प्र०, २८ ५ ४७)

: २२२ :

सिमंडज

मुझे इतना तो जरूर ही कह देना चाहिए कि विलायतमे हमने एक क्षण भी बेकाम नही जाने दिया। बहुतसे गश्ती-पत्र वगैरा भेजना तथा इसी प्रकारके अन्य सब काम एक आदमीसे कभी नही बन सकते। उसमे बड़ी मददकी जरूरत होती है। बहुत-सी सहायता तो ऐसी है जो पैसे खर्च करनेपर मिल सकती है, पर मेरा ८० सालका अनुभव यह है कि यह उतनी गहरी और फलशील नही होती जैसी कि शुद्ध स्वयसेवकोकी होती है। सौभाग्यवश हमे वहा ऐसी ही सहायता मिली थी। बहुतसे भारतीय नौजवान जो वहा अध्ययन कर रहे थे वे हमारे आसपास बने रहते और उनमें से कितने ही बिना किसी प्रकारके लोभके सुबह-शाम हमे हमेशा सहायता करते रहते। पते लिखना, नकले करना, टिकिट चिपकाना या डाकघरमे जाना, आदि। किसी भी कामके लिए मुझे यह याद नही आता कि उन्होने यह कहा हो कि यह काम हमारे दर्जेको शोभा नही देता, इसलिए हम नही कर सकते। पर इन सबको एक तरफ बैठा देनेवाला और मदद करनेवाला एक अग्रेज मित्र दक्षिण अफ्रीकामे था। वह भारतमे रह चुका था। इसका नाम था सिमंडज। अग्रेजीमे एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि जिन्हे परमात्मा चाहता है उन्हे वह जल्दी उठा लेता है। भरजवानीमे इस परदुखभजन अग्रेजको यमदूत ले गये। 'परदुखभजन' विशेषण किसी खास उद्देश्य से ही लगाया गया है। यह भला भाई जब बबईमे था तब, अर्थात् १८९७मे, प्लेगके भारतीय बीमारोके बीच बेधड़क होकर उसने काम किया था और उनकी उसने सहायता की थी। छूतके रोगके रोगियोकी सहायता करते समय मृत्युसे जरा भी न डरना यह भाव तो मानो उसके खूनमे भर दिया गया था।

जाति अथवा रंगद्वेष उसे छू तक न गया था। उसका स्वभाव बडा ही स्वतन्त्र था। उसने अपना एक सिद्धात बना रखा था कि माइनॉरिटी अर्थात् अल्पसख्यकोके साथ ही हमेशा सत्य रहता है। इसी सिद्धातके अनुरूप वह जोहासबर्गमे मेरी ओर आकर्षित हुआ। वह कई बार विनोदमे कहता कि याद रखिए आपका पक्ष बडा हुआ नही कि मैने इसे छोडा नही, क्योकि मै यह माननेवाला हू कि बहुमतके हाथमे सत्य भी असत्यका रूप धारण कर लेता है। उसने बहुत कुछ पढा था। जोहासबर्गके एक करोडपति सर जॉर्ज फेररका वह खास विश्वस्त मत्री था। शोर्टहैड लिखनेमे बाका था। विलायतमे हम पहुचे तब वह अनायास कहीसे आ मिला। मुझे तो उसके घरबारकी कोई खबर नही थी। पर हम तो जनताके सेवक अर्थात् अखबारोकी चर्चाके विषय ठहरे। इसलिए उस भले अग्रेजने हमे फौरन ढूढ लिया और जो कुछ सहायता हो सकती थी वह करनेकी तैयारी बताई। उसने कहा, "अगर चपरासीका काम भी कहोगे तो जरूर करूगा। पर यदि शोर्टहैडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही है कि मेरे जैसा कुशल लेखक आपको कभी नही मिल सकता।" हमे तो दोनो सहायताओ-की आवश्यकता थी। और इस अग्रेजने रात-दिन एक भी पैसा न लेते हुए हमारा काम कर दिया, [यह कहते हुए मै लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। रातके बारह-बारह और एक-एक बजे तक तो वह हमेशा टाइप-रायटरपर ही डटा रहता। समाचार पहुचाना, डाकखाने जाना यह सब सिमडज करता और सब हँसते-हँसते। मुझे याद है कि इसकी मासिक आय लगभग ४५ पौंड थी। पर यह सब वह अपने मित्रो वगैराकी सहायतामे लगा देता। उसकी उम्र उस समय करीब ३० सालकी होगी। पर अबतक अविवाहित ही था और आजीवन वैसे ही रहना भी चाहता था। मैने इसे कुछ तो लेनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने साफ इन्कार कर दिया। वह कहता, "यदि मै इस सेवाके लिए मजदूरी लू तो अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाऊ।" मुझे याद है कि आखिरी रातको हमे

अपना काम समेटते, असबाव बाधते सुबहके तीन बज गए थे। पर तबतक भी वह जागता ही रहा। हमें दूसरे दिन स्टीमरपर बैठाकर ही वह हमसे जुदा हुआ। वह वियोग बडा दु खदाई था। मैंने तो यह कई बार अनुभव किया है कि 'परोपकार' केवल गेहुए रगके लोगोकी ही विरासत नही है। (द० अ० स०)

: २२३ :

सुखदेव

'अनेकोमेसे एक' का लिखा हुआ पत्र स्वर्गीय सुखदेवका पत्र है। श्री सुखदेव भगतसिंहके साथी थे। यह पत्र उनकी मृत्युके बाद मुझे दिया गया था। समयाभावके कारण मै इसे जल्दी ही प्रकाशित न कर सका।

लेखक 'अनेकोमेसे एक' नही है। राजनैतिक स्वतत्रताके लिए फासी-को गले लगानेवाले अनेक नही होते। राजनैतिक खून चाहे जितने निंद्य हो तो भी जिस देश-प्रेम और साहसके कारण ऐसे भयानक काम किए जाते है, उनकी कद्र किए बिना रहा नही जा सकता। और हम आशा रखे कि राजनैतिक खूनियोका सप्रदाय बढ नही रहा है। यदि भारत-वर्षका प्रयोग सफल हुआ, और होना ही चाहिए, तो राजनैतिक खूनियोका पेशा सदाके लिए बद हो जायगा। मै स्वय तो इसी श्रद्धासे काम कर रहा हू। (हि० न०, ३० ४ ३१)

: २२४ :

उमर सुभानी

श्री उमर सुभानीजीकी बडी अचानक और अकाल मृत्यु हो गई। हमारे बीचसे एक महान देशभक्त और कार्यकर्ता उठ गया। एक समय बबईमें श्री उमर सुभानीकी तूती बोलती थी। बबईका कोई सार्वजनिक कार्य, उमर सुभानीके दिन बिगडनेसे पहले ऐसा न होता था जिसमे उनका हाथ न हो। फिर भी वह कभी सामने मचपर नही आते थे। मचको तैयार कर देते थे। बबईके सौदागरोमे वे बहुत प्रिय थे। उनकी सूझ प्राय. बहुत तीक्ष्ण और बेलाग होती थी। उनकी उदारता दोषकी हद तक पहुच जाती थी। पात्र-कुपात्र सब हीको वह दान दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यके लिए उनकी थैलीका मुह खुला रहता था। जैसा उन्होने कमाया वैसा ही खर्च भी किया। उमर सुभानी हर कामकी हद कर देते थे। उन्होने आढतके काममे भी हद कर दी और इसीसे उनपर तबाही आ गई। एक महीनेमे ही उन्होने अपनी आमदनीको दुगुना कर लिया और दूसरेही महीनेमे दिवाला पीट लिया। परतु उन्होने अपनी हानिको तो बहादुरीसे सह लिया, परतु उनके अभिमानने उन्हे सार्वजनिक कार्योसे हटा लिया, क्योकि अब उनपर इन कामोमे लाखो रुपया खर्च करनेको नही था। वह माध्यमिक रास्तेपर चलना जानते ही नही थे। यदि चदेकी फेहरिस्तमे सबसे पहले वह नही रह सकते तो बस फिर वह उस फेहरिस्त-की तरफ मुह मोडकर भी न देखेगे। इसलिए गरीब होते ही वह सार्व-जनिक कार्योसे हाथ खीचकर बैठ गए। जहा कही और जब भी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सुभानीका नाम बिला याद आये न रहेगा और न उनकी देशकी सेवा ही कोई भूल सकता है। उनका जीवन हर अमीर नौजवानके लिए आदर्श और चेतावनी दोनो है। उनका जोश-

भरा देशभक्तिका कार्य आदर्श योग्य है। उनका जीवन हमे बताता है कि रुपया रखकर भी एक मनुष्य काबिल हो सकता है और उस रुपएको सार्वजनिक कार्योंकी भेंट कर सकता है। उनका जीवन अमीर नौजवानोंको, जो बडे-बडे काम करनेकी धुनमे रहते है, चेतावनी भी देता है।

उमर सुभानी कोई निर्बुद्ध सौदागर नहीं था। जिस समय उनको हानि हुई उस समय और भी बहुतसे सौदागरोको हानि हुई थी। उन्होंने जो बहुत-सी रुई भर ली थी उसको हम मूर्खता नही कह सकते। वह बबईके सौदागरोमे अच्छा स्थान रखते थे, फिर भी उन्होने इस प्रकार और लाभके ध्यानसे रुपया क्यो लगाया ? परतु वह तो देशभक्तकी हैसियतसे हौसला बढाए रखना अपना कर्तव्य समझते थे। उनका जीवन और नाम जनताकी जागीर था और उन्हे बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए था। मै समझता हू कि काम बिगड जानेके बाद सब लोग अक्लमदीकी बाते बताया करते है, परतु मै उनके दोष ढूढनेके अभिप्रायसे कुछ नही कह रहा हू। मै तो चाहता हू कि हम सब इस देशभक्तके जीवनसे शिक्षा ले। आनेवाली सतानको किसी कामके बिगड जानेसे शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरोकी गलतियोसे भी हमे कुछ सीखना ही चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह अपने हृदयमे देशप्रेम रखना चाहिए। हम सबको दान देनेमे उमर सुभानी होना चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह धार्मिक द्वेषसे दूर रहना चाहिए। परतु हम सबको उमर सुभानीकी तरह लापरवाह और असावधान होनसे बचना चाहिए। यही इस देशभक्तने हम सबके लिए वसीयत छोडी है और हम सबको उस वसीयतसे लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवारके साथ अत्यत सहानुभूति है और मै उनके साथ उनके शोकमे सम्मिलित हू। (हि० न०, १५ ७ २६)

: २२५ :

हसन शहीद सुहरावर्दी

यहापर मै कैसे भूल सकता हू कि शहीदसाहबने कलकत्तेमे बडा काम किया । अगर वह नही करते तो मै ठहरनेवाला नही था । शहीदसाहबके लिए हम लोगोके दिलमे बहुत सदेह थे । अभी भी है । उससे हमको क्या ? आज हम सीखे कि कोई भी इन्सान हो, कैसा भी हो, उससे हमको दोस्ताना तौरसे काम करना है । हम किसीके साथ किसी हालतमे दुश्मनी नही करेगे, दोस्ती ही करेगे । शहीदसाहब और दूसरे चार करोड मुसलमान पडे है । वे सब-के-सब फरिश्ते तो है ही नही । ऐसे ही सब हिंदू और सिख भी फरिश्ते थोडे ही है । अच्छे और बुरे हममे है, लेकिन बुरे कम है । (प्रा० प्र०, १८ १ ४८)

: २२६ :

अब्दुल्ला सेठ

नेटालका बदर यो तो डरबन कहलाता है, पर नेटालको भी बदर कहते है । मुझे बदरपर लिवाने अब्दुल्ला सेठ आए थे । जहाज धक्केपर आया । नेटालके जो लोग जहाजपर अपने मित्रोको लेने आए थे, उनके रग-ढगको देखकर मै समझ गया कि यहा हिंदुस्तानियोका विशेष आदर नही । अब्दुल्ला सेठकी जान-पहचानके लोग उनके साथ जैसा बरताव करते थे उसमे एक प्रकारकी क्षुद्रता दिखाई देती थी, और वह मुझे चुभ रही थी । अब्दुल्ला सेठ इस दुर्दशाके आदी हो गए थे । मुझपर जिनकी

दृष्टि पडती जाती वे मुझे कुतूहलसे देखते थे, क्योंकि मेरा लिबास ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियोंसे कुछ निराला मालूम होता था। उस समय फ्रॉक कोट आदि पहने था और सिरपर बगाली ढगकी पगडी दिए था।

मुझे घर लिवा ले गए। वहा अब्दुल्ला सेठके कमरेके पासका कमरा मुझे दिया गया। अभी वह मुझे नही समझ पाए थे, मैं भी उन्हे नही समझ पाया था। उनके भाईकी दी हुई चिट्ठी उन्होने पढी और बेचारे पसोपेसमे पड गए। उन्होने तो समझ लिया कि भाईने तो यह सफेद हाथी घर बधवा दिया। मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हे बडा खर्चीला मालूम हुआ, क्योंकि मेरे लिए उस समय उनके यहा कोई खास काम तो था नही। मामला उनका चल रहा था ट्रासवालमे। सो तुरत ही वहा भेजकर वह क्या करते? फिर यह भी एक सवाल था कि मेरी योग्यता और ईमानदारीका विश्वास भी किस हदतक किया जाय? और प्रिटो-रियामे खुद मेरे साथ वह रह नही सकते थे। मुद्दालेह प्रिटोरियामे रहते थे। कही उनका बुरा असर मुझपर होने लगे तो? और यदि वह मामले-का काम मुझे न दे तो और काम तो उनके कर्मचारी मुझसे भी अच्छा कर सकते थे। फिर कर्मचारीसे यदि भूल हो जाय तो कुछ कह-सुन भी सकते थे। मुझसे तो कहनेसे रहे। काम या तो क्लरकुनीका था या मुकदमेका —तीसरा था नही। ऐसी हालतमे यदि मुकदमेका काम मुझे नही सौंपते है तो घर बैठे मेरा खर्च उठाना पडता था।

अब्दुल्ला सेठ पढे-लिखे बहुत कम थे। अक्षर-ज्ञान कम था, पर अनुभव-ज्ञान बहुत बडा था। उनकी बुद्धि तेज थी और वह खुद भी इस बातको जानते थे। अभ्याससे अग्रेजी इतनी जान ली कि बोलचालका काम चला लेते। परन्तु इतनी अग्रेजीके बलपर वह अपना सारा काम चला लेते थे। बैकमे मैनेजरोसे बाते कर लेते, यूरोपियन व्यापारियो से सौदा कर लेते, वकीलोको अपना मामला समझा देते। हिंदुस्तानियोमें उनका

काफी मान था। उनकी पेढी उस समय हिंदुस्तानियोमे सबसे बडी नही तो, बडी पेढियोमे अवश्य थी। उनका स्वभाव वहमी था।

वह इस्लामका बडा अभिमान रखते थे। तत्त्वज्ञानकी बातोके शौकीन थे। अरबी नही जानते थे, फिर भी कुरान-शरीफ तथा आम तौरपर इस्लामी-धर्म-साहित्यकी वाकफियत उन्हे अच्छी थी। दृष्टात तो जबानपर हाजिर रहते थे। उनके सहवाससे मुझे इस्लामका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान हुआ। जब हम एक-दूसरेको जान-पहचान गए तब वह मेरे साथ बहुत धर्म-चर्चा किया करते।

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन अदालत दिखाने ले गये। वहा कितने ही लोगोसे परिचय कराया। अदालतमे अपने वकीलके पास मुझे बिठाया। मजिस्ट्रेट मेरे मुहकी ओर देखता रहा। उसने कहा—"**अपनी पगड़ी उतार लो।**"

मैंने इन्कार किया और अदालतसे बाहर चला आया।

मेरे नसीबमे तो यहा भी लडाई लिखी थी।

पगडी उतरवानेका रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठने समझाया। मुसलमानी लिबास पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगडी यहा पहन सकता है। दूसरे भारतवासियोको अदालतमे जाते हुए अपनी पगडी उतार लेनी चाहिए।

....पगडी उतार देनेका अर्थ था मान-भग सहन करना। सो मैंने तो यह तरकीब सोची कि हिंदुस्तानी पगडीको उतारकर अग्रेजी टोप पहना करू, जिससे उसे उतारनेमे मान-भगका भी सवाल न रह जाय और मैं इस झगडेसे भी बच जाऊ।

पर अब्दुल्ला सेठको यह तरकीब पसद न आई। उन्होने कहा—

"यदि आप इस समय ऐसा परिवर्तन करेंगे तो उसका उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहने रहना चाहते होगे उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर आपके सिरपर अपने ही देशकी पगड़ी

शोभा देती है। आप यदि अंग्रेजी टोपी लगावेंगे तो लोग 'वेटर' समझेंगे।"

इन वचनोमे दुनियवी समझदारी थी, देशाभिमान था और कुछ सकुचितता भी थी। समझदारी तो स्पष्ट ही है। देशाभिमानके विना पगडी पहननेका आग्रह नही हो सकता था। सकुचितताके विना 'वेटर' की उपमा न सूझती। गिरमिटिया भारतीयोमे हिंदू, मुसलमान और ईसाई तीन विभाग थे। जो गिरमिटिया ईसाई हो गए, उनकी सतति ईसाई थी। १८९३ ई०मे भी उनकी सख्या वडी थी। वे सव अंग्रेजी लिवासमे रहते। उनका अच्छा हिस्सा होटलमे नौकरी करके जीविका उपार्जन करता। इसी समुदायको लक्ष्य करके अंग्रेजी टोपीपर अब्दुल्ला सेठने यह टीका की थी। उसके अदर वह भाव था कि होटलमे 'वेटर' वनकर रहना हलका काम है। आज भी यह विश्वास वहुतोके मनमे कायम है।

कुल मिलाकर अब्दुल्ला सेठकी वात मुझे अच्छी मालूम हुई। मैने पगडीवाली घटनापर, पगडीका तथा अपने पक्षका समर्थन अखवारोमे किया। अखवारोमे उसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'—अनचाहा अतिथि—के नामसे मेरा नाम अखवारोमे आया और तीन ही चार दिनके अदर अनायास ही दक्षिण अफ्रीकामे मेरी ख्याति हो गई। किसीने मेरा पक्ष-समर्थन किया, किसीने मेरी गुस्ताखीकी भरपेट निंदा की।

मेरी पगडी तो लगभग अततक कायम रही। वह कव उतरी, यह वात हमे अतिम भागमे मालूम होगी। (आ० क० १९२७)

: २२७ :

विलियम विल्सन हंटर

दक्षिण अफ्रीकाके सवालके महत्वको भारतीयोसे भी पहले समझने-वाले और वैसी ही कीमती सहायता करनेवाले सज्जन सर विलियम विल्सन हटर थे। वे 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सपादक थे। इनके पास ज्योही पहला पत्र पहुचा त्योही उन्होने उसमे दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिको यथार्थ स्वरूपमे जनताके सामने रख दिया। जहा-जहा उचित मालूम हुआ वहा-वहा उन्होने खानगी पत्र भी लिखे। अगर कोई महत्वपूर्ण प्रश्न छिड जाता तो इनकी डाक बराबर नियमसे हर सप्ताह आती। अपने पहले ही पत्रमे उन्होने लिखा था—"आपने वहाकी स्थितिका जो हाल लिखा है उसे पढकर मै दुखित हू। आप अपना काम निसन्देह विनय-पूर्वक, शातिके साथ और सयमसे ले रहे है। इस प्रश्नमे मै पूरी तरहसे आपके साथ हू और न्याय प्राप्त करनेके लिए मुझसे जो कुछ बन पडेगा सब करना चाहता हू। मुझे तो निश्चय है कि इस विषयमे हम एक इचभर भी पीछे पैर नही रख सकते। आपकी माग तो ऐसी है कि कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उसमे तिलमात्र रद्दो-बदल नही कर सकता।" करीब-करीब यही शब्द उन्होने 'टाइम्स' के अपने पहले लेखमे लिखे थे और आखिर तक उसी बातपर कायम रहे। लेडी हटरने अपने एक पत्रमे लिखा था कि जब उनकी मृत्युका समय आया तब उन दिनोमे भी उन्होने भारतीयोके प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेके लिए एक ढाचा तैयार कर रखा था। (द० अ० स०)

: २२८ :

हरबत सिंह

कुछ दिन तो वाक्सरेस्टकी जेलमे हमने सुख-पूर्वक बिताए। यहा हमेशा नए कैदी आते रहते थे, इसलिए नित्य नई खबरे भी मिलती रहती थी। इन सत्याग्रही कैदियोमे हरबतसिंह नामका एक बूढा था। उसकी अवस्था ७५ वर्षसे भी अधिक होगी। वह कही खानोमे नौकरी नही करता था। उसने तो बरसो पहले अपना गिरमिट पूरा कर दिया था। इसलिए वह हडतालिया नही था। मेरे गिरफ्तार हो जानेपर लोगोमे जोश खूब बढ गया था और वे नेटालमे ट्रान्सवालमे प्रवेश कर अपनेको गिरफ्तार करा दिया करते थे। हरबतसिंहने भी इनके साथ-साथ ट्रान्सवाल जानेका निश्चय किया।

एक दिन हरबतसिंहसे मैंने पूछा, "आप क्यो जेलमे आए ? आप जैसे बूढोको मैंने जेलमे आनेका निमत्रण नही दिया है।"

हरबतसिंहने उत्तर दिया

"मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लडके तक हम लोगोके लिए जेल चले गए ?"

"लेकिन आप जेलके दु खोको बर्दाश्त नही कर सकेंगे। आप जेल छोडकर चले जावे। क्या मै आपके छूटनेके लिए कोशिश करू ?"

"मै जेल हरगिज नही छोडूगा। मुझे एक दिन मरना तो हई है। फिर ऐसा दिन कहा, जो मेरी मौत यहीं हो जाय !"

इस दृढताको मै कैसे विचलित कर सकता था ? वह तो इतनी विकट थी कि विचलित करनेपर भी डिग नही सकती थी। हरबतसिंह की जो भावना थी, ठीक वही हुआ। उसने जेल ही मे अपनेको मृत्युके हाथोमें सौंप दिया। उसका शव वॉक्सरेस्टसे डरबन मगवाया गया था। सम्मान-

पूर्वक सैकडो भारतीयोकी उपस्थितिमे हरबतसिहका अग्नि-सस्कार किया गया। पर इस युद्धमे ऐसे एक नही, अनेको हरबतसिह थे। हा, जेलमे मरनेका सौभाग्य जरूर अकेले हरबतसिहको ही प्राप्त हुआ और इसी लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे उसका नाम उल्लेखनीय भी हो गया। (द० अ० स० १९२५)

: २२९ :

एमिली हाबहाउस

मिस हाबहाउस लार्ड हाबहाउसकी पुत्री है। बोअर युद्ध शुरू हुआ तब यह महिला लार्ड मिल्नरके सामनेसे होकर ट्रान्सवाल पहुची थी। जब लार्ड किचनरने अपनी जगत्प्रसिद्ध कासेन्ट्रेशन कैप ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेटमे बैठाई उस समय यह महिला अकेली बोअर ओरतोमे घूमती और उन्हे दृढ रहने, धीरज रखनेके लिए उपदेश करती और उत्साह देती। वह स्वय मानती थी कि इस युद्धमे अग्रेजोकी ओर न्याय नही है, इसलिए स्वर्गीय स्टेडकी तरह परमात्मासे प्रार्थना करती थी कि इस युद्धमे अग्रेजोका पराभव हो जाय। इस प्रकार बोअरोको सेवा करनेपर जब उसने देखा कि जिस अन्यायके खिलाफ बोअर लोग लडे थे, वैसा ही अन्याय अज्ञानके कारण वे ही अब भारतीयोके प्रति कर रहे है तब उससे नही रहा गया। बोअर जनता उसका बडा सम्मान करती थी और उनपर बहुत प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका बहुत निकट सबध था। उन्हीके यहा वह ठहरती थी। खूनी कानून रद करवानेके लिए उसने अपनी ओरसे कुछ उठा न रक्खा। (द० अ० स० १९२५)

...

समाचारपत्रोसे हमे विदित हुआ है कि कुमारी एमिली हावहाउस-की मृत्यु हो गई है। वह एक वहुत शरीफ और वडी वहादुर स्त्री थी। वे पुरस्कारका कभी न ख्याल करते हुए सेवा किया करती थी। उनकी सेवा ईश्वरार्पण की हुई मानव-समाजकी सेवा थी। वे शरीफ अग्रेजी कुलमे उत्पन्न हुई थी। वे अपने देशके प्रति प्रेम रखती थी और इसी कारण वे उसके द्वारा किए गये किसी अन्यायको सहन नही कर सकती थी। उन्होने वोअर-युद्धके घोर अत्याचारको समझ लिया था। उन्होने विचार किया कि उस युद्धके सुलगानेमे इगलैडका सरासर कसूर है। उन्होने ऐसे समयमे उस युद्धकी निंदा अत्यत कडी भाषामे की थी, जब कि इगलैड उसके पीछे दीवाना हो रहा था। वे दक्षिण अफ्रीका गई और वहा उनकी आत्माने उन शिविर-कारागारोके खडे किए जाने तथा उनमे पराजित वीरोके वालवच्चोको जवर्दस्ती लाकर रखनेकी पशुताका घोर विरोध किया, जिन शिविर-कारागारोको लार्ड किचनरने युद्धमे विजय प्राप्त करनेके लिए आवश्यक ठहराया था। यह उसी समयकी वात है जब कि विलियम स्टेडने, अग्रेजोकी पराजयके लिए, ईश्वर-प्रार्थना करवाई थी। एमिली हावहाउस, यद्यपि वे दुर्वल थी, तथापि शारीरिक असुविधाओका कुछ भी ख्याल न करके दक्षिण अफ्रीका फिर गई और वहा उन्होने अपने प्रति अपमान तथा उसमे गए-गुजरे वर्तावका आह्वान किया। वे वहा कैद कर ली गई और वापस लौटा दी गई। उन्होने उन सवको एक सच्ची वहादुर स्त्रीकी भाति सहन किया। उन्होने वोअर-जातियोके दिल मजवूत किए और उनसे कहा कि आशाको कदापि न त्यागो। उन्होने उनसे यह भी कहा कि यद्यपि इगलैड मदमे चूर है, तथापि इगलैडके अनेक पुरुषो तथा स्त्रियोमे वोअर लोगोके प्रति सहानुभूति है और किसी-न-किसी दिन उनकी वात सुनी जायगी। और यही हुआ। सर हैनरी कैम्पवेल वैनरमैन जन-साधारण चुनावमे वडे वहुमतसे लिवरल दलके नेता चुने गए और उन वोअर लोगोके नुक्सानकी पूर्त्ति यथासभव की गई, जिन्होने युद्धमे क्षति

उठाई थी। युद्धके समाप्त होजानेपर उस अवसरपर जबकि दक्षिण अफ्रीका-का सत्याग्रह जारी था मुझे मिस हाबहाउससे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो जान-पहचान हुई थी, वह क्रमश जीवनपर्यंतकी मैत्री बन गई। हिंदुस्तानियो तथा दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके बीच सन् १९१४ ई० वाले समझौतेमे उनका भाग कोई मामूली भाग न था। वे जनरल बोथाकी मेहमान थी। उस समय जनरल बोथाने कई बार मुलाकात-विषयक मेरे प्रस्तावोपर टालमटूलकी थी, उन्होने हर मर्तबा 'गृहसचिव'के सामने अपनी बात पेश करनेको कहा था, परतु मिस हाबहाउसने जनरल बोथाके साथ यह आग्रह किया कि वे मुझसे अवश्य मिले। इसलिए उन्होने 'केपटाउन' मे जनरल साहबके निवास-स्थानपर जनरल तथा उनकी पत्नी, स्वय वे तथा मै इनके बीचमे वार्तालापके निमित्त एकत्रित होनेका प्रबध कराया। उनका नाम बोअर-लोगोमे एक ऐसा नाम था जिसके लेने-मात्रसे उन लोगोमे विश्वासका सिक्का जम जाता था और उन्होने अपने सारे प्रभावको हिंदुस्तानी मामलेमे लगाकर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मै हिंदुस्तानमे आया (और जबकि) रौलेट ऐक्टका आदोलन चल रहा था—उन्होने मुझे यह लिखा कि मुझे यदि फासीके तख्तेपर नही तो कारागारमे अपना जीवन अत करना पडेगा, और मै इस बातसे चिंतित नही हू। उनमे इस त्यागकी शक्ति पूर्ण रूपसे मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा थी ही कि कोई भी आदोलन, बिना उसके पोषकके बलिदानके सफल नही हुआ करता। अभी पारसाल ही उन्होने मुझे लिखा था कि मै दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतवासियोके पक्षमे अपने मित्र जनरल हार्टजोगसे खूब लिखा-पढी कर रही हू। उन्होने मुझे यह भी लिखा था कि आप उनके (जनरलके) प्रति कुपित न हो और आप उनसे जो आशा रखते हो, उसका ख्याल मुझे दे।

हिंदुस्तानकी स्त्रियोको चाहिए कि वे इस अग्रेज महिलाको याद रक्खे।

उन्होने कभी विवाह नही किया। उनका जीवन स्फटिककी भाति स्वच्छ था। उन्होने अपनेको ईश्वर-सेवाके लिए अर्पित कर रक्खा था। उनका स्वास्थ्य तो बिलकुल गया-बीता था। उनको लकवेकी बीमारी थी। परतु उनके उस दुर्बल और रोगग्रसित शरीरमे वह आत्मा दीप्यमान थी, जो कि राजाओ और शाहशाहोके ससैन्य बलको भी ललकार सकती थी। वे किसी मनुष्यसे डरती न थी, क्योकि उनको केवल ईश्वरका भय था।
(हि० न०, २२ ७ २६)

: २३० :

हास्किन

जैसे-जैसे आदोलन आगे बढता चला वैसे-वैसे अग्रेज भी उसमे रस लेने लगे। मुझे यह कह देना चाहिए यद्यपि ट्रान्सवालके अग्रेजी अखबार अक्सर उस खूनी कानूनके पक्षमे ही लिखते और गोरोके विरोधका समर्थन करते थे, तथापि अगर कोई प्रख्यात भारतीय उनमे कोई लेख भेजते तो उसे वे खुशीसे छापते थे। सरकारके पास भारतीयोकी जो दरख्वास्ते जाती थी उन्हे भी वे या तो पूरी छापते थे या उनका सार दे देते थे। बडी-बडी सभाए होती थी। उनमे कभी-कभी वे अपने रिपोर्टर भी भेजते थे। और जहा ऐसा न हो वहा यदि सभाकी रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते और वह छोटी होती तो उसे भी छाप देते थे।

गोरोका यह विवेक भारतीयोके लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ। आदोलनके बढते ही कितने ही गोरोका भी मन उसने आकर्षित कर लिया। इस श्रेणीके ऐसे गोरे अगुवा जोहासबर्गके एक लखपति मि० हास्किन थे। उनमे रगद्वेषका तो पहले ही से अभाव था। पर आदोलन शुरु होने-

पर भारतीयोकी हलचलमे उन्होने अधिक दिलचस्पी दिखाई। (द० अ० स०)

: २३१ :

नारायण हेमचंद्र

लगभग इसी दरमियान स्वर्गीय नारायण हेमचद्र विलायत आए थे। मै सुन चुका था कि वह एक अच्छे लेखक है। नेशनल इडियन एसोसिएशनवाली मिस मैनिगके यहा उनसे मिला। मिस मैनिग जानती थी कि सबसे हिल-मिल जाना मै नही जानता। जब कभी मै उनके यहा जाता तब चुपचाप बैठा रहता। तभी बोलता, जब कोई बातचीत छेडता।

उन्होने नारायण हेमचद्रसे मेरा परिचय कराया।

नारायण हेमचद्र अग्रेजी नही जानते थे। उनका पहनावा विचित्र था। बेढगी पतलून पहने थे। उसपर था एक बादामी रगका मैला कुचैला-सा पारसी काटका बेडौल कोट। न नेकटाई, न कालर। सिरपर ऊनकी गुथी हुई टोपी और नीचे लबी दाढी।

बदन इकहरा, कद नाटा कह सकते है। चेहरा गोल था, उसपर चेचकके दाग थे। नाक न नोकदार थी न चपटी। हाथ दाढीपर फिरा करता था।

वहाके लाल-गुलाल फैशनेबल लोगोमे नारायण हेमचद्र विचित्र मालूम होते थे। वह औरोसे अलग छटक पडते थे।

"आपका नाम तो मैने बहुत सुना है। आपके कुछ लेख भी पढे है। आप मेरे घर चलिए न ?"

नारायण हेमचद्रकी आवाज जरा भर्राई हुई थी। उन्होने हँसते हुए जवाव दिया—

"आप कहा रहते है ?"

"स्टोर स्ट्रीटमे।"

"तव तो हम पडोसी है। मुझे अग्रेजी सीखना है। आप सिखा देंगे ?"

मैंने जवाव दिया—"यदि मै किसी प्रकार भी आपकी सहायता कर सकू तो मुझे वडी खुशी होगी। मै अपनी शक्ति भर कोशिश करूगा। यदि आप चाहें तो मै आपके यहा भी आ सकता हू।"

"जी नही, मै खुद ही आपके पास आऊगा। मेरे पास पाठमाला भी है। उसे लेता आऊगा।"

समय निश्चित हुआ। आगे चलकर हम दोनोमे वडा स्नेह हो गया।

नारायण हेमचद्र व्याकरण जरा भी नहीं जानते थे। 'घोडा' क्रिया और 'दौडना' सज्ञा वन जाती है। ऐसे मजेदार उदाहरण तो मुझे कई याद है। परन्तु नारायण हेमचद्र ऐसे थे, जो मुझे भी हजम कर जाय। वह मेरे अल्प व्याकरण-ज्ञानसे अपनेको भुला देनेवाले जीव न थे। व्याकरण न जाननेपर वह किसी प्रकार लज्जित न होते थे।

"मै आपकी तरह किसी पाठशालामें नहीं पढा हू। मुझे अपने विचार प्रकट करनेमें कहीं व्याकरणकी सहायताकी जरूरत नहीं दिखाई दी। अच्छा, आप वगला जानते है ? मै तो वगला भी जानता हू। मै वगालमें भी घूमा हू। महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोरकी पुस्तकोका अनुवाद तो गुजराती जनताको मैंने ही दिया है। अभी कई भाषाओके सुदर ग्रथोके अनुवाद करने है। अनुवाद करनेमें भी शब्दार्थपर नही चिपटा रहता। भावमात्र दे देनेसे मुझे सतोष हो जाता है। मेरे वाद दूसरे लोग चाहे भले ही सुदर वस्तु दिया करें। मै तो विना व्याकरण पढे मराठी भी जानता हू, हिंदी भी जानता हू और अव अग्रेजी भी जानने लग गया हू। मुझे तो

सिर्फ शब्द-भडारकी जरूरत है। आप यह न समझ लें कि अकेली अग्रेजी जान लेनेभरसे मुझे सतोष हो जायगा। मुझे तो फ्रास जाकर फ्रेंच भी सीख लेनी है। मैं जानता हू कि फ्रेंच साहित्य बहुत विशाल है। यदि हो सका तो जर्मन जाकर जर्मन भाषा भी सीख लूगा।"

इस तरह नारायण हेमचद्रकी वाग्धारा बे-रोक बहती रही। देश-देशातरोमे जाने व भिन्न-भिन्न भाषा सीखनेका उन्हे असीम शोक था।

"तब तो आप अमेरिका भी जरूर ही जावेगे ?"

"भला इसमें भी कोई सदेह हो सकता है ? इस नवीन दुनियाको देखे बिना कही वापस लौट सकता हू ?"

"पर आपके पास इतना धन कहा है ?"

"मुझे धनकी क्या जरूरत पड़ी है ? मुझे आपकी तरह तड़क-भडक तो रखना है ही नहीं। मेरा खाना कितना और पहनना क्या ? मेरी पुस्तकोसे कुछ मिल जाता है और थोडा-बहुत मित्र लोग दे दिया करते हैं, वह काफी है। मै तो सर्वत्र तीसरे दर्जेमें ही सफर करता हू। अमेरिका तो डेकमें जाऊगा।"

नारायण हेमचद्रकी सादगी बस उनकी अपनी थी। हृदय भी उनका वैसा ही निर्मल था। अभिमान छूतक नही गया था। लेखकके नाते अपनी क्षमतापर उन्हे आवश्यकतासे भी अधिक विश्वास था।

हम रोज मिलते। हमारे बीच विचार तथा आचार-साम्य भी काफी था। दोनो अन्नाहारी थे। दोपहरको कई बार साथ ही भोजन करते। यह मेरा वह समय था, जब मै प्रति सप्ताह सत्रह शिलिगमे ही अपना गुजर करता और खाना खुद पकाया करता था। कभी मै उनके मकानपर जाता तो कभी वह मेरे मकानपर आते। मै अग्रेजी ढगका खाना पकाता था, उन्हे देशी ढगके बिना सतोष नही होता था। उन्हे दाल जरूरी थी। मै गाजर इत्यादिका रसा बनाता। इसपर उन्हे मुझपर बडी दया आती। कहीसे वह मूग ढूढ लाए थे। एक दिन मेरे लिए मूग पकाकर लाए, जो

मैने बडी रुचि-पूर्वक खाए। फिर तो हमारा इस तरहका देने-लेनेका व्यवहार बहुत बढ गया। मै अपनी चीजोका नमूना उन्हे चखाता और वह मुझे चखाते।

इस समय कार्डिनल मैनिगका नाम सबकी जबानपर था। डाकके मजदूरोने हडताल कर दी थी। जॉनबर्न्स और कार्डिनल मैनिगके प्रयत्नोसे हडताल जल्दी बद हो गई। कार्डिनल मैनिगकी सादगीके विषयमे जो डिसरैलीने लिखा था, वह मैने नारायण हेमचद्रको सुनाया।

"तब तो मुझे उस साधु पुरुषसे जरूर मिलना चाहिए।"

"वह तो बहुत बडे आदमी है। आपसे क्योकर मिलेगे?"

"इसका रास्ता मै बता देता हू। आप उन्हें मेरे नामसे एक पत्र लिखिए कि मै एक लेखक हू। आपके परोपकारी कार्योपर आपको धन्य-वाद देनेके लिए प्रत्यक्ष मिलना चाहता हू। उसमें यह भी लिख दीजिएगा कि मै अग्रेजी नही जानता। इसलिए—अपना नाम लिखिए—बतौर दुभाषियाके मेरे साथ रहेगे।"

मैने इस मजमूनका पत्र लिख दिया। दो-तीन दिनमे कार्डिनल मैनिगका कार्ड आया। उन्होने मिलनेका समय दे दिया था।

हम दोनो गये। मैने तो, जैसा कि रिवाज था, मुलाकाती कपडे पहन लिए। नारायण हेमचद्र तो ज्यो-के-त्यो, सनातन वही कोट और वही पतलून। मैने जरा मजाक किया, पर उन्होने उसे साफ हँसीमे उडा दिया और बोले—

"तुम सब सुधारप्रिय लोग डरपोक हो। महापुरुष किसीकी पोशाकको तरफ नही देखते। वे तो उसके हृदयको देखते हैं।"

कार्डिनलके महलमे हमने प्रवेश किया। मकान महल ही था। हम बैठे ही थे कि एक दुबलेसे ऊचे कदवाले वृद्ध पुरुषने प्रवेश किया। हम दोनोसे हाथ मिलाया। उन्होने नारायण हेमचद्रका स्वागत किया।

"मै आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता। मैंने आपकी कीर्ति

सुन रखी थी। आपने हडतालमें जो शुभ काम किया है, उसके लिए आपका उपकार मानना था। संसारके साथ पुरुषोंके दर्शन करनेका मेरा अपना रिवाज है। इसलिए आपको आज यह कष्ट दिया है।"

इन वाक्योंका तरजुमा करके उन्हे सुनानेके लिए हेमचद्रने मुझसे कहा।

"आपके आगमनसे मैं बडा प्रसन्न हुआ हू। मैं आशा करता हू कि आपको यहाका निवास अनुकूल होगा और यहां के लोगोसे आप अधिक परिचय करेंगे। परमात्मा आपका भला करे!" यो कहकर कार्डिनल उठ खडे हुए।

एक दिन नारायण हेमचद्र मेरे यहा धोती और कुरता पहनकर आए। भली मकान-मालकिनने दरवाजा खोला और देखा तो डर गई। दौडकर मेरे पास आई (पाठक यह तो जानते ही है कि मैं बार-बार मकान बदलता ही रहता था) और बोली— **"एक पागल-सा आदमी आपसे मिलना चाहता है।"** मैं दरवाजेपर गया और नारायण हेमचद्रको देखकर दग रह गया। उनके चेहरेपर वही नित्यका हास्य चमक रहा था।

"पर आपको लडकोने नही सताया?"

"हां, मेरे पीछे पड़े जरूर थे, लेकिन मैंने कोई ध्यान नही दिया तो वापस लौट गए।"

नारायण हेमचद्र कुछ महीने इग्लैंडमे रहकर पेरिस चले गए। यहा फ्रेचका अध्ययन किया और फ्रेच पुस्तकोका अनुवाद करना शुरू कर दिया। मैं इतनी फ्रेच जान गया था कि उनके अनुवादोको जाच लू। मैंने देखा कि वह तर्जुमा नही, भावार्थ था।

अतमे उन्होने अमेरिका जानेका अपना निश्चय भी निबाहा। बडी मुश्किलसे डेक या तीसरे दर्जेका टिकट प्राप्त कर सके थे। अमेरिकामे जब वह धोती और कुरता पहनकर निकले तो असभ्य पोशाक पहननेका

जुर्म लगाकर वह गिरफ्तार कर लिए गये थे। पर जहातक मुझे याद है, वादमे वह छूट गए। (आ० क० १६२७)

: २३२ :

अकबर हैदरी

स्व० सर अकवर हैदरी अपूर्व गुणोकी राशि थे। वे एक वडे विद्वान, दार्शनिक और सुवारक थे। वे एक चुस्त मुसलमान थे, परतु इस्लाम और हिंदू धर्ममे वह परस्पर विरोव नही पाते थे। उन्होने अन्य धर्मोका भी अभ्यास किया था। उनकी मित्रमडलीकी विविधता ही उनकी उदारवृत्तिकी द्योतक थी। दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंससे हम इकट्ठे एक ही जहाज में लौटे थे। जहाजपर सध्याकी जो हमारी प्रार्थना होती थी उसमे वे नियमित आते थे। गीताके श्लोक और हम जो भजन गाते थे उनमे वह इतना रम लेते थे कि उन्होने महादेव देसाईसे उन सवका अनुवाद अपने लिए करा लिया था। उन्होने मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि हिंदुस्तान पहुचनेपर साम्प्रदायिक ऐक्यके लिए हम दोनो साथ दोरा करेगे, परतु ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था। स्व० लार्ड विलिग्डनने मेरे लिए दूसरा ही कार्यक्रम तय्यार कर रखा था। मुझे सत्याग्रह आदोलनमे कूदना पडा और सर अकवर और मेरे वीच तय किया हुआ प्रोग्राम लटकता ही रह गया। वे श्री अरविंदसे प्रभावित हुए थे। जिस समय पाडीचेरीके ऋषि श्री अरविद अपने भक्तोको त्रैमासिक दर्शन देते है उस समय वे अचूक तौर पर वहा रहते थे।

सर अकवरकी मृत्युसे देशकी भारी हानि हुई है। उनके दुखी कुटुवके प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। (ह० से०, १८ १ ४२)

: २३३ :

सेम्युअल होर

सेम्युअल होरके भाषणके शब्द बापूको फिरसे सुनाने पर बापू बोले :

इसकी बात मुझे अच्छी लगती है। इसे एक भी बीच-बचाव करनेवालेकी गरज नही है, क्योकि इसका कोई विश्वस्त आदमी नही है। ऐसोके साथ लडनेमे मजा आता है। ऐसे आदमीके हाथसे ही भला होगा। सेकीसे यह आदमी हजार गुना अच्छा है। वह तो सोचे कुछ और कहे कुछ। यह आदमी जो सोचता है, वही कहता है। एक बार मैंने उससे पूछा—आप यह मानते है न कि यहा जो इतने सारे आदमी है, उनमेसे किसीकी शक्तिपर भी आपका विश्वास नही है? वह बोला—

"अगर सच्चे दिलसे कहा जाय तो मुझे कहना चाहिए कि यह बात सच है, मुझे विश्वास नहीं है।"

मैंने इसी बात पर उसे बधाई दी थी कि मुझे आपकी ईमानदारी बहुत पसद है।

प्रीवाने 'टाइम्स'में होरको जवाब दिया है। बापू कहने लगे .

बडा गोरवपूर्ण पत्र कहा जायगा और 'टाइम्स'का इसे छापना यही जाहिर करता है कि खुद 'टाइम्स'को भी सेम्युअल होरका वर्णन पसद नही आया। यह आदमी बेहया हो गया दीखता है। सच्चा तो था ही, मगर इसकी सच्चाईमे भी बेहयाई थी। जब उसने कहा कि उसे किसी भी हिंदुस्तानीकी बुद्धि या शक्तिपर विश्वास नही है। (म० डा० ३ ५ ३२)

सर सेम्युअल होरसे तो बहुत बार मिलता था। इतना मुझे कहना

चाहिए कि वह मेरे साथ साफ दिलसे बात करता था। यह नही था कि मेरे साथ एक बात और दूसरेके साथ दूसरी बात। सबके साथ उसने एक ही बात की। वह साफ कहता था, "सत्ता तो हमारे हाथोमे है। तुम लोग मुझे सलाह दे सकते हो। उसपर अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। वह तुम्हे हमपर ही छोडना होगा।' मैने कहा, "आजादी तो जब आवेगी तब, मगर आज इतना तो हो कि उस आनेवाली आजादीकी कुछ झलक आपके कामोमे दिखाई दे। कानून चाहे कुछ भी हो, लेकिन प्रथा तो ऐसी बने कि हमारे कामोमे हमारी सलाहसे आप चले। अभी घनश्यामदास और पुरुषोत्तमदास हमारे अर्थशास्त्री है। अर्थशास्त्रमे वे हमारे नुमाइदे है। हिदके अर्थशास्त्रके मामलोमे आप उनकी सलाहसे चलें।" मगर वह कहने लगा, "यह तो हो नही सकता।" (का०क०, ३ १२ ४२)

: २३४ :

हार्निमैन

इतनेमे प्रजाको सोता छोडकर सरकार मि० हार्निमैनको चुरा ले गई। मि० हार्निमैनने 'बबई क्रानिकल' को एक प्रचड शक्ति बना दिया था। इस चोरीमे जो गदगी थी उसकी बदबू मुझे अबतक आया करती है। मै जानता हू कि मि० हार्निमैन अधाधुधी नही चाहते थे। मैने सत्याग्रह कमेटीकी सलाहके बिना ही पजाब सरकारके हुक्मको तोडा था सो उन्हे पसद नही था। मैने सविनय-भगको जो मुल्तवी किया, उससे वह पूरे सहमत थे। मेरे सत्याग्रह मुल्तवी रखनेका इरादा प्रकट करनेके पहले ही पत्र द्वारा उन्होने मुझे मुल्तवी रखनेकी सलाह दी थी

और वह पत्र बबई और अहमदाबादके फासलेके कारण, मेरा इरादा जाहिर कर चुकनेके बाद मुझे मिला था। इसलिए उनके देश-निकालेपर मुझे जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही दु ख भी हुआ। (आ० क० १९२७)

•

बबई सरकार और मेरे खयालसे भारत सरकार भी अपनेको इसलिए बधाई दे सकती है, क्योकि उन्होने हिंदुस्तानके और एक बहादुर अग्रेजके साथ जो अन्याय किया था उसे बडी आनाकानीके साथ आज हटाकर दूर किया है। उन्होने हार्निमैनको भारतमे, जिस देशपर उन्हे बडा प्रेम है और जिसके लिए वे बडा प्रयत्न कर रहे है, आनेसे न रोकनेकी बडी हिम्मत की है। यह कोई भी नही जानता है कि हार्निमैनको अकस्मात यहासे देशनिकाला देनेका सच्चा कारण क्या था। उनपर कोई मुकद्दमा न चलाया गया था और न उन्हे उन पर लगाए गये अपराधोसे इन्कार करनेका अवसर ही दिया गया था।

इस प्रकार अपनी ही इच्छासे जबरदस्ती समुद्रपार भेज देनेके ऐसे दृष्टातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकारका कैसा अनुत्तरदायी अधिकार है। हार्निमैनके बनिस्बत और किसीने भी ऐसे अधिकारको रोकनेके लिए अधिक कोशिश और बहस न की थी और आखिर वे ही उसके बलि हो गए थे। श्री हार्निमैनके स्वागतमे मै भी अपना नम्र हिस्सा देता हू। उनके लौट आनेसे स्वराज्यके लिए जो शक्तिया युद्ध कर रही है उनमे सामर्थ्य और उत्साहकी वृद्धि होगी और उससे जो लोग ऐसे यशस्वी युद्धमे लगे हुए है उनके हृदयमे बडा ही आनद होगा। उनके सामने जो कठिन कार्य पडा हुआ है उसे करनेके लिए श्री हार्निमैनको तदुरुस्ती और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो! (हि० न०, १४ १ २६)

हार्निमैन अब गधे हांकने लगे है। बापू कहने लगे

यह हार्निमैनका दूसरा पहलू है। (म० डा०, ८ ८ ३२)

• •

आज अखबारोमें पहलेकी पूर्तिमें और नरम दलके लोगोके जवाबमें हुआ होरका भाषण आया।

शामको इसी भाषणपर हार्निमेनका लेख पढा। बापूको यह लेख बहुत पसद आया। इसमें हार्निमैन होरको राजनैतिक नीति-से शून्य और बेशर्म कहा है। बापूने कहा--यह ठीक है। सारा लेख पढकर कहने लगे

'यह आदमी आजकल जोरदार लेख लिख रहा है।—(म० डा०, भाग २)

× × ×

हार्निमैन समझनेकी शक्ति रखता है, इसलिए सारा लेख बढिया लिखा है। (म० डा०, भाग २)